।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(सप्तम भाग : क्रियायोगसार खण्ड एवं श्लोकानुक्रमणी)

सम्पादक एवं टीकाकार

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

श्रीपद्ममहापुराणम् (1-7 भाग) – आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2016
₹ 7500 (सात भाग–सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

|| Shri ||
Chaukhamba Surbharti Prakashan
592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part VII : Kriyāyogasāra Khaṇḍa & Śloka Index)

Edited with Hindi Commentary by :
Acharya Shivprasad Dvivedi
(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan
Varanasi

विषयानुक्रम

७. क्रियायोगसार खण्ड

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

सप्तम क्रियायोगसार खण्ड

पहला अध्याय

लक्ष्मीनाथपदारविन्दयुगलं ब्रह्मेश्वराद्यामर-
श्रेणीनम्रशिरोलिमालममलं वन्दामहे सन्ततम् ।
भक्त्या योगिमनस्तडागसुषमासन्दोहपुष्यत्तमं
गङ्गाम्भोमकरन्दबिन्दुनिकरं संसारदुःखापहम् ॥१॥
यो मूर्ती र्बहुधा विधाय भगवान्रक्षत्यशेषं जग-
द्यत्पादार्चनतत्परा नहि पुनर्मज्जन्ति विश्वार्णवे ।
सर्वप्राणिहृदम्बुजेषु वसतिर्यस्य प्रभोः सन्ततं
रम्यक्रोडवपुर्धराय हरये देवाय तस्मै नमः ॥२॥
वेदेभ्य उद्धृत्य समस्तधर्मान्योऽयं पुराणेषु जगाद देवः ।
व्यासस्वरूपेण जगद्धिताय वन्दे तमेतं कमलासमेतम् ॥३॥
एकदामुनयः सर्वे सर्वलोकहितैषिणः । सुरम्ये नैमिषारण्ये गोष्ठीं चक्रुर्मनोरमाम् ॥४॥
तत्रान्तरे महातेजा व्यासशिष्यो महायशाः। सूतःशिष्यगणैर्युक्तः समायातो हरिं स्मरन् ॥५॥
तमायान्तं समालोक्य सूतं शास्त्रार्थपारगम्। नेमुःसर्वेसमुत्थाय शौनकाद्यास्तपोधनाः॥६॥
सोऽपि तान्सहसा भक्त्या मुनीन्परमवैष्णवान् ।
ननाम दण्डवद्भूमौ सर्वधर्मविदाम्बरः ॥७॥
वरासने महाबुद्धिसतैर्दत्ते मुनिसत्तमैः । उवास ह मुनिर्मध्ये सर्वैः शिष्यगणैर्वृतः ॥८॥

जैमिनि व्यास सम्वाद पूर्वक क्रियायोगसार की पूर्व पीठिका

ब्रह्मा शिव आदि देव वृन्द के शिर समूह रूपी भ्रमर माला से सुशोभित, भक्ति भरे योगियोंके मन रूपी सरोवर सौन्दर्य समूह को अत्यधिक पुष्ट बनाने वाले, गङ्गाजल के मकरन्द समूह तथा संसार दुःख को दूर करने वाले भगवान् लक्ष्मीनाथ के दोनों चरणारविन्दों की हम सदा वन्दना करते हैं ॥१॥ जो भगवान अपने अनेक शरीरों का निर्माण करके सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं, जिनके चरणों की पूजा करने वाले पुनः संसार सागर में नहीं डूबते हैं, जो हरि सभी जीवों के हृदय कमल में सदा निवास करते हैं; उन मनोहर सूकर शरीर को धारण करने वाले श्रीहरि को नमस्कार है ॥२॥ जो भगवान् व्यास रूप धारण करके संसार का कल्याण करने के लिए वेदों से समस्त धर्मों को निकालकर उन सबों को पुराणों में कहे उन श्रीहरि की लक्ष्मीजी के साथ मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥ एक बार सम्पूर्ण संसार का कल्याण चाहने वाले सभी मुनिगण अत्यन्त मनोहर नैमिषारण्य में मनोभिराम गोष्ठी किए ॥४॥ उसी बीच महातेजस्वी, महायशस्वी व्यासजी के शिष्य सूतजी अपने शिष्य समुदाय के साथ श्रीहरि का स्मरण करते हुए आ गये॥५॥ शास्त्रों के अर्थों में पारङ्गत आते हुए सूतजी को देखकर शौनक आदि सभी तपस्वी, उठकर उनको प्रणाभ किए । परम वैष्णव मुनियों को देखकर सहसा भक्ति पूर्वक वे भी उन लोगों को साष्टाङ्ग प्रणाम किए॥६-७॥ तदनन्तर उन मुनिश्रेष्ठों द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ आसन पर सूतजी अपने शिष्यों के साथ मुनियों के बीच में बैठ गये ॥८॥ वहाँ पर बैठे हुए उन सूतजी से मुनियों में श्रेष्ठ शौनिक महर्षि नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर

तत्रोपविष्टं तं सूतं शौनको मुनिसत्तमः । बद्धाञ्जलिरिमां वाचमुवाच विनयान्वितः ॥९॥

शौनक उवाच

महर्षे सूत सर्वज्ञ ! कलिकाले समागते । केनोपायेन भगवन्भूरिभक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥१०॥
कलौ सर्वे भविष्यन्ति पापकर्मरता जनाः । वेदविद्याविहीनाश्च तेषां श्रेयः कथं भवेत् ॥११॥

कलावन्नगताः प्राणा लोकाः स्वल्पायुषस्तथा ।
निर्धनाश्च भविष्यनित नानादुःखप्रपीडिताः ॥१२॥
प्रयाससाध्यं सुकृतं शास्त्रेषु क्रियते द्विज ! ।
तस्मात्केऽपि करिष्यन्ति कलौ न सुकृतंजनाः ॥१३॥

सुकृतेषु विनष्टेषु प्रवृत्ते पापकर्मणि। सवंशः प्रलयं सर्वे गमिष्यन्ति दुराशयाः॥१४॥
स्वल्पश्रमैरल्पवित्तैरल्पकालैश्च सत्तम ! । यथा भवेन्महापुण्यं तद्वै कथय सूत नः ॥१५॥
यस्योपदेशतः पुण्यं पापं वा कुर्वते जनाः। सतद्भागी भवेन्मर्त्य इति शास्त्रेषु निश्चितम्॥१६॥
पुण्योपदेशः सदयः कैतवैश्च विवर्जितः । पापमार्गविरोधी च चत्वारः केशवोपमाः॥१७॥

ज्ञानं सम्प्राप्य संसारे यः परेभ्यो न यच्छति ।
ज्ञानरूपी हरिस्तस्मै प्रसन्न इव नेक्षते ॥१८॥

ज्ञानरत्नैश्च रत्नैश्च परसन्तोषकृन्नरः। स ज्ञेयः सुमतिर्नूनं नररूपधरो हरिः ॥१९॥
त्वमेव मुनिशार्दूल ! वेदवेदाङ्गपारगः। त्वदृते नहि वक्ताऽन्यो यतस्त्वं व्यासशासितः॥२०॥

सूत उवाच

धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ ! त्वमेव वैष्णवाग्रणीः ।
यतः समस्तलोकानां हितं वाञ्छसि सर्वदा ॥२१॥

कहे ॥९॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** हे महर्षे सर्वज्ञ सूतजी ! कलिकाल के आ जाने पर मनुष्यों की श्रीभगवान् में किस उपाय से विपुल भक्ति हो सकती है ॥१०॥ कलि में सभी लोग पाप करने वाले हो जायेंगे और वेद विद्या से विहीन हो जायेंगे उन लोगों का कल्याण कैसे हो ॥११॥ कलियुग में प्राण अन्न में हो जायेगा । लोग अल्पायु हो जायेंगे, वे निर्धन एवं अनेक प्रकार के दुःखों से पीडित होयेंगे ॥१२॥ हे द्विज ! शास्त्रों में प्रयास साध्य पुण्यों को बतलाया गया है । अतएव कोई भी कलियुग में पुण्य नहीं करेगा ॥१३॥ पुण्यों के विनष्ट हो जाने तथा पाप कर्म के होते रहने पर दुष्ट लोग अपने वंश के साथ विनष्ट हो जायेंगे ॥१४॥ हे सत्तम ! कम श्रम, अल्प धन तथा अल्पकाल में जिस तरह से महापुण्य की प्राप्ति हो, हे सूतजी ! आप उसे ही बतलायें ॥१५॥ जिसके उपदेश से मनुष्य पुण्य अथवा पाप करते हैं, वह मनुष्य भी उसका पुण्य या पाप का भागी होता है यह शास्त्रों में निश्चित किया गया है ॥१६॥ पुण्योपदेश, दयायुक्त, छल, कपट रहित तथा पाप मार्ग के विरोधी होना ये चारों भगवान् केशव के समान हैं ॥१७॥ जो ज्ञान प्राप्त करके दूसरें कों ज्ञान नहीं देता है तो ज्ञान रूपी श्रीहरि उसको प्रसन्नता पूर्वक नहीं देखते हैं ॥१८॥ ज्ञान रूप रत्न के द्वारा तथा रत्नों द्वारा दूसरों को सन्तुष्ट करने वाले मनुष्य का उसे ज्ञानी नहीं अपितु मनुष्य रूप धारण किए हुए श्रीहरि समझना चाहिए ॥१९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत हैं । आपको छोड़कर कोई दूसरा वक्ता नहीं है, क्योंकि आप महर्षि व्यास के शिष्य

शृणु शौनक ! वक्ष्यामि यत्त्वया श्रोतुमिच्छितम् ।
सर्वलोकहितार्थाय वैष्णवानां विशेषतः ॥२२॥
पृष्टो जैमिनिना सर्वं यदुवाच शृणुष्व तत् । महर्षिजैमिनिर्नाम योगाभ्यासरतः सदा॥२३॥
प्रणम्य शिरसा व्यासं पप्रच्छ मुनिसत्तमः ॥२४॥

जैमिनिरुवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ व्यास ! सत्यवतीसुत ! । कलौ कस्माद्भवेन्मोक्षस्तन्ममाऽऽचक्ष्व मूलतः॥२५॥

सूत उवाच

जैमिनेर्वचनं श्रुत्वा व्यासः सन्तुष्टमानसः । प्रारभे मुनिशार्दूल ! कथां मङ्गलसंयुताम् ॥२६॥

व्यास उवाच

जैमिने ! मुनिशार्दूल धन्योऽसि त्वं महामते ! ।
नारायणकथां श्रोतुं यतो वाञ्छसि सर्वदा ॥२७॥
सत्कथाश्रवणे बुद्धि र्यस्य यस्य प्रवर्तते। तस्य तस्य भवेज्ज्ञानं ज्ञानं मोक्षप्रदं विदुः ॥२८॥
न वैष्णवकथां यस्मै रोचते पापिने भुवि। वृथैव सृष्ट्वा विधिना भूमिर्भारवती कृता ॥२९॥
कथा यैर्जगतीवक्तुं श्लाघ्यते वैष्णवैर्जनैः ।
तां मिथ्यामिवयो वक्ति स ज्ञेयःपापिनां वरः ॥३०॥
यस्मिन्दिने मुनिश्रेष्ठ श्रूयते न हरेः कथा । तद्दिनं दुर्दिनं मन्ये घनच्छन्नं न दुर्दिनम् ॥३१॥
यत्र यत्र महीभागे वैष्णवी वर्तते कथा। सान्निध्यं तत्र भगवान्न जहाति कदाचन॥३२॥
यो वैष्णवकथारम्भे विघ्नकृन्मानवो भवेत्। तमेव शप्तवा भगवान्दैवतैः सह गच्छति॥३३॥

हैं॥२०॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं आप ही वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं क्योंकि आप सदैव सभी जीव का कल्याण करना चाहते हैं ॥२१॥ हे शौनक ! आप जिसको सुनना चाहते हैं उसे मैं कहता हूँ वह सभी लोकों का कल्याण करने वाला है और वैष्णवों का विशेष रूप से हितकारी है ॥२२॥ महर्षि जैमिनि के पूछने पर उन्होंने जो उत्तर दिया उसे आप सुनें । महर्षि जैमिनि सदा योगाभ्यास में लगे रहते थे । उन्होंने व्यासजी को प्रणाम करके उनसे पूछा ॥२३-२४॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा—** हे सभी धर्मों को जानने वाले भगवन् ! हे सत्यवती नन्दन ! कलियुग में कैसे मोक्ष हो सकता है ? उसे आप मुझे पूर्ण रूप से बतलायें ॥२५॥ **सूतजी ने कहा—** जैमिनि के वचन को सुनकर सन्तुष्ट मन वाले व्यासजी मङ्गलमयी कथा प्रारम्भ किए ॥२६॥ **व्यासजी ने कहा—** हे महामते ! हे मुनिश्रेष्ठ जैमिनि आप धन्य हैं क्योंकि आप सर्वदा भगवान् नारायण की कथा सुनना चाहते हैं ॥२७॥ जिस-जिस व्यक्ति की सत्कथा को सुनने में बुद्धि प्रवृत्त होती है, उस उसको ही ज्ञान होता है और ज्ञान ही मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥२८॥ संसार में जिस पापी को भगवान् विष्णु की कथा अच्छी नहीं लगती है उसकी ब्रह्माजी व्यर्थ में ही सृष्टि करके पृथिवी को भारवती बनाये है ॥२९॥ संसार में कथा कहने के लिए जो वैष्णवों के द्वारा प्रशंसित होता है, उसको जो झूठी कथा जो कहता है उसको पापियों में श्रेष्ठ समझना चाहिए ॥३०॥ हे मुनिश्रेष्ठ! जिस दिन श्रीहरि की कथा नहीं सुनी जाती है उसी दिन को मैं दुर्दिन मानता हूँ; मेघासन्न दिन को नहीं॥३१॥ पृथिवी के जिस-जिस भाग में भगवान् विष्णु की कथा होती है, वहाँ-वहाँ पर श्रीभगवान् का

प्रभावं वासुदेवस्य श्रुत्वा हृष्यन्ति ये जनाः ।
ज्ञेयास्त एव देवांशाः पूज्या दृश्याश्च सत्तमाः ॥३४॥
नारायणप्रभावं ये श्रुत्वा चोपहसनित वै । ते विज्ञेया दानवांशा नरा नरकभागिनः ॥३५॥
तत्र तीर्थानि सर्वाणि गङ्गादीनि द्विजोत्तम ! ।
देवर्षयश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः ॥३६॥
शृण्वतां लोकसङ्घानां पापव्याधिविनाशनी । नारायणकथा यत्र वर्तते प्रतिवासरम् ॥३७॥
मुने क्रियायोगसारं बह्वर्थं पापनाशनम्। नारायणकथोपेतं सेतिहासं निशामय॥३८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
जैमिनिव्याससम्वादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

सान्निध्य बना रहता है, वे उस स्थान को कभी नहीं छोड़ते हैं ॥३२॥ कथा के प्रारम्भ करने में जो मनुष्य विघ्न करता है उसी को शाप देकर भगवान् देवताओं के साथ वहाँ से चले जाते हैं ॥३३॥ भगवान् वासुदेव के प्रभाव को सुनकर जो लोग प्रसन्न होते हैं उन श्रेष्ठ पुरुषों को देवांश समझना चाहिए और उनको देखकर उनकी पूजा करनी चाहिए ॥३४॥ जो भगवान् नारायण के प्रभाव को सुनकर उसका उपहास करते हैं, उन मनुष्यों को दानवांश और नरक भागी समझना चाहिए ॥३५॥ वहीं पर गङ्गा आदि सभी तीर्थ, सभी देवर्षिगण, देवगण, मुनिगण एवं तपस्वीगण विद्यमान रहते हैं ॥३६॥ सुनने वाले मनुष्यों के पाप तथा व्याधि को विनष्ट करने वाली भगवान् नारायण की कथा जहाँ पर प्रतिदिन होती है ॥३७॥ हे मुने ! बहुत से पापों का नाश करने वाले क्रियायोग का सार जो भगवान् नारायण की कथा से युक्त है उसको इतिहास पूर्वक आप सुनें ॥३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के क्रियायोगसार खण्ड के जैमिनि व्यास संवाद के अन्तर्गत पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

दूसरा अध्याय

व्यास उवाच

सृष्टेरादौ महाविष्णुः सिसृक्षुःसकलं जगत्। स्त्रष्टा पाता च संहर्ता त्रिमूर्तिरभवत्स्वयम्॥१॥
सृष्ट्यर्थमस्य जगतः ससर्ज ब्रह्मसञ्ज्ञकम्। दक्षिणाङ्गतआत्मानमात्मना श्रेष्ठपूरुषः॥२॥
ततस्तु पालनार्थाय जगतो जगतीपतिः। विष्णुः ससर्ज वामांशान्निजांशं केशवं मुने !॥३॥
अथ संहारणार्थाय जगतो रुद्रमव्ययम्। मुने ससर्ज मध्याङ्गात्कृतपद्मालयः प्रभुः॥४॥
रजःसत्त्वं तमश्चेति पुरुषं त्रिगुणात्मकम्।
वदन्ति केचिद् ब्रह्माणं विष्णुं केचिच्च शङ्करम्॥५॥
एको विष्णुस्त्रिधा भूत्वा सृजत्यत्ति च पाति च।
तस्माद्भेदो न कर्त्तव्यस्त्रिषु लोकेषु सत्तमैः॥६॥
आद्या प्रकृतिरेतस्य महाविष्णोः परात्मनः। निदानं भूतविश्वस्य विद्याविद्येति गीयते॥७॥
भावाभावस्वरूपा सा जगद्धेतुःसनातनी। ब्राह्मी लक्ष्मीरम्बिकेति त्रिमूर्त्तिः सहसाऽभवत्॥८॥
सृष्टिस्थितिविनाशेषु यां नियोज्य ततो मुने !।
आद्यां चैवाऽऽद्यपुरुषस्तत्रैवाऽन्तरधीयत॥९॥

जैमिनि व्यास संवाद के अन्तर्गत भगवान् विष्णु की प्रकृति के वर्णन पूर्वक पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति पूर्वक सृष्टि के प्रारम्भ में योगनिद्रा में गये हुए भगवान् विष्णु द्वारा ब्रह्माजी की प्रार्थना से जगकर मधु कैटभ का वध किया जाना, ब्रह्माजी द्वारा की गयी भगवान् विष्णु की स्तुति, प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु द्वारा ब्रह्माजी को सृष्टि करने का वरदान देना, वैष्णव लक्षण का वर्णन, भगवान् विष्णु का अन्तर्धान होना, ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि किया जाना, और इस अध्याय के पढ़ने से होने वाले फल का वर्णन

व्यासजी ने कहा— सृष्टि के प्रारम्भ में सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने की इच्छा वाले महाविष्णु स्वयं स्त्रष्टा, रक्षक तथा संहार करने वाले इन तीन शरीरों को धारण किए॥१॥ इस जगत् की सृष्टि करने के लिए ब्रह्माजी की अपने दक्षिणाङ्ग से वे श्रेष्ठ पुरुष को सृष्टि किए॥२॥ उसके पश्चात् जगत् का पालन करने के लिए जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु अपने बायें अङ्ग से केशव की सृष्टि किए॥३॥ उसके पश्चात् जगत् का संहार करने के लिए हे मुने ! अव्यय रुद्र की सृष्टि कमल को आसन बनाने वाले भगवान् किए॥४॥ कुछ लोग रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण से युक्त क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को बतलाते हैं॥५॥ चूकि एक ही विष्णु तीन रूप धारण करके जगत् की सृष्टि, संहार और उसका पालन करने का काम करते हैं अतएव श्रेष्ठ पुरुषों को त्रैलोक्य में भेद नहीं करना चाहिए॥६॥ महात्मा महाविष्णु की आद्या प्रकृति ही सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूपिणी विद्या तथा अविद्या के नाम से कही जाती है॥७॥ वह जगत् के कारण भूत सनातनी एवं भाव तथा अभाव स्वरूपा है। वही ब्राह्मी, लक्ष्मी तथा अम्बिका इन तीन शरीरों वाली हो गयी॥८॥ हे मुने ! उसी आद्य प्रकृति की सृष्टि, स्थिति तथा विनाश के कार्यों में लगाकर आद्य पुरुष श्रीभगवान् वहीं पर अन्तर्धान हो गये॥९॥ उसी की आज्ञा से ब्रह्माजी ने पृथिवी, आकाश

यस्याऽऽज्ञया ततो ब्रह्मा महाभूतान्ससर्ज ह। पृथिव्याकाशवाय्वम्बुवह्नीन्पञ्च समाधिना ॥१०॥
भूर्भुवःस्वस्तथा चैव महश्चैव जनस्तथा। तपश्च सत्यमित्यादीन्सृष्टवान्कमलासनः॥११॥
अतलं सृष्टवान्ब्रह्मा ततोऽधो वितलं द्विज ! ।
ततोऽधः सुतलं चैव ततोऽधश्च तलातलम् ॥१२॥
महातलमधस्तस्मात्ततोऽपश्च रसातलम् । तस्मादधश्च पातालं लोकानेव यथाक्रमम् ॥१३॥
देवतानां निवासार्थं रत्नसानुं महागिरिम् । सृष्टवान्पृथिवीमध्ये जाम्बूनदसमुज्ज्वलम् ॥१४॥
मन्दरं चरमं चैव त्रिकूटमुदयाचलम् । अन्यांश्च पर्वतांश्चैव सृष्टवान्विविधानपि ॥१५॥
लोकालोकस्ततश्चैव तन्मध्ये सप्त सागराः । सप्तद्वीपाश्च विप्रेन्द्र ! परमेशःस्वयम्भुवा ॥१६॥
जम्बूद्वीपो द्विजश्रेष्ठ ! द्वीपश्च प्लक्षसञ्ज्ञितः ।
विज्ञेयो द्विगुणस्तस्माच्छाल्मलो द्विगुणस्ततः ॥१७॥
ते च प्लक्षादयो द्वीपाः सर्व भागसमन्विताः ।
समस्तगुणसंयुक्ता देवदेवर्षिभूषिताः ॥१८॥
सप्तद्वीपा इमे विप्र सप्तसागरवेष्टिताः। तेषां नामानि वक्ष्यामि सागराणां निशामय॥१९॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः । एते समुद्रा देवर्षे ! पूर्वस्माच्च परःपरः ॥२०॥
विज्ञेया द्विगुणाः सर्व आलोकालोकपर्वतात् ।
द्वीपे द्वीपे ततो ब्रह्मा वृक्षगुल्मलतादिकान् ॥२१॥
तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्सृष्टवान्द्विजसत्तम ! । अथ देवान्मनुष्यांश्च नागान्विद्याधरांस्तथा ॥२२॥
क्रमात्ससर्ज पुत्रांश्च ततो दक्षादिकान्मुनीन् । ब्रह्मक्षत्रियविट्छूद्रानान्यांश्चैवान्त्यजांस्तथा ॥

वायु, जल तथा अग्नि इन पाँच महाभूतों की सृष्टि समाधिस्थ होकर किए ॥१०॥ उसके पश्चात् ब्रह्माज़ी ने भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक की सृष्टि की ॥११॥ फिर ब्रह्माजी ने सबके ऊपर अतल की, उसके नीचे वितल की, उसके नीचे सुतल की उसके नीचे तलातल की, उसके नीचे महातल की उसके नीचे रसातल की तथा उसके नीचे पाताल लोक की क्रमानुसार सृष्टि की ॥१२-१३॥ देवताओं के निवास के लिए रत्नमय शिखा वाले महान् पर्वत की पृथिवी के बीच में सृष्टि की वह सुवर्ण के समान चमकने वाला है ॥१४॥ उन्होंने मन्दराचल, चरमाचल, त्रिकूट पर्वत, उदयाचल तथा दूसरे अनेक पर्वतों की सृष्टि की ॥१५॥ उसके बीच में उन्होंने लोकालोक पर्वत के सात सागरों तथा सात द्वीपों की ब्रह्माजी ने सृष्टि की ॥१६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जम्बूद्वीप, प्लक्ष द्वीप को उन्होंने बनाया वह जम्बूद्वीप से दो गुना बड़ा है और उसके दो गुना बड़ा शल्मली दीप हैं ॥१७॥ वे प्लक्ष आदि द्वीप सभी भोगों से युक्त तथा सभी गुणों से युक्त हैं । वे देवों तथा देवियों से भूषित हैं ॥१८॥ हे विप्र ! ये सातो द्वीप सात सागरों से घिरे हैं । अब मैं उन सागरों का नाम बतलाता हूँ लवण समुद्र, इक्षु समुद्र, सुरा समुद्र, सर्पि समुद्र, दधि समुद्र, दुग्ध समुद्र और जल समुद्र ये सात सागर हैं । हे देवर्षे ! ये सभी समुद्र पूर्व-पूर्व समुद्र की अपेक्षा उत्तरोत्तर दो-दो गुना बड़े हैं । वे सभी लोकलोक पर्वत से दो गुना बड़े हैं । उसके बाद ब्रह्माजी ने प्रत्येक द्वीपों में वृक्ष, लता एवं गुल्म इत्यादि की ॥१९-२१॥ तथा तिर्यग्योनि के जीवों की सृष्टि किए । उसके बाद देवताओं, मनुष्यों, नागों तथा विद्याधरों की ॥२२॥ क्रमशः सृष्टि उन्होंने

तेषां च वर्तनादीनि सृष्टवान्स प्रजापतिः ॥२३॥
हिमाद्रिदक्षिणं यद्वै विन्ध्याद्रेरुत्तरं तथा। आहुस्तद्भारतं वर्षं शुभाशुभफलप्रदम् ॥२४॥
आसाद्य भारते वर्षे ये जन्म तु नरोत्तमाः। धर्मकर्माणि कुर्वन्ति ते सर्वे केशवोपमाः ॥२५॥
कर्मभूमौ कृतं कर्म शुभं वाऽशुभमेव वा। तत्फलं भुञ्जते लोका भोगभूमिषु सत्तम ! ॥२६॥
कर्मभूमिं समागत्य यो धर्मकर्मसूद्यतः। न च तेन समः कोऽपि त्रिषु लोकेषु विद्यते॥२७॥

तस्य स्यात्सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
श्रीनारायणसेवायां मतिर्यस्य च विद्यते ॥२८॥
जन्मकोट्यिर्जितैः पुण्यैः संसारैकाधिनायके।
नारायणे देवदेवे भक्तिःस्यात्सुदृढा नृणाम् ॥२९॥
समस्तसुखदश्चाऽपि स श्लाध्यो निर्भयोऽपि च।
त्याज्यः स देशः सहसा न तिष्ठेद्यत्र वैष्णवः ॥३०॥
जन्मान्तरार्जितं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु।
तत्क्षणात्क्षयमाप्नोति भगवद्भक्तदर्शनात् ॥३१॥

वैष्णवाङ्घ्रिजलं यस्तु समस्तपातकापहम्। वहेत्स्वशिरसा भक्तया गङ्गास्नानेन तस्यकिम्॥३२॥
मुहूर्त्तमपि यः कुर्यात्सङ्गं भागवतैः सह। स मुच्यते सर्वपापैर्ब्रह्महत्यामुखैरपि॥३३॥

धर्मकर्माणि विप्रेन्द्र ! क्रियन्ते यानि कानि च।
भगवद्भक्तपुरतस्तानि स्युरक्षयाणि च ॥३४॥

की अपने पुत्रों दक्ष आदि की तथा मुनियों की सृष्टि की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र फिर उन्होंने तथा दूसरे अन्यजों की तथा उनके रहने आदि की ब्रह्माजी ने व्यवस्था की ॥२३॥ जो हिमालय से दक्षिण और विन्ध्यादि से उत्तर में वर्ष है उसे भारत वर्ष कहते हैं। भारतवर्ष को ही शुभ तथा अशुभ फल प्रदान करने वाला कहा गया है ॥२४॥ भारत वर्ष में जन्म लेकर जो श्रेष्ठ मनुष्य धार्मिक कर्म करते हैं वे सबके सब भगवान् केशव के समान हैं ॥२५॥ इस कर्म भूमि में किए गये शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल वे श्रेष्ठ भोग भूमियों में प्राप्त करते हैं ॥२६॥ कर्म भूमि में आकर जो धार्मिक कार्यों में लगा रहता है; उसके समान त्रैलोक्य में कोई भी नहीं है ॥२७॥ उसका जन्म सफल हो जाता है और जीवन सुवन हो जाता है। भगवान् नारायण की सेवा में जिसकी बुद्धि लगी रहती है ॥२८॥ करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्यों के द्वारा संसार के एक मात्र स्वामी देवाराध्य भगवान् नारायण में मनुष्यों की सुदृढ़ा भक्ति होती है ॥२९॥ सभी सुखों को देने वाले उस श्लाघ्य तथा निर्भय देश को भी सहसा त्याग देना चाहिये जहाँ पर वैष्णव न हों॥३०॥ दूसरे जन्म में अर्जित स्वल्प अथवा अधिक पाप भगवद् भक्त का दर्शन करते ही उसी क्षण विनष्ट हो जाता है ॥३१॥ वैष्णव का चरणोदक सभी पापों को विनष्ट करने वाला है। उसको अपने शिर पर जो धारण करता है उसको गङ्गा स्नान करने का फल लाभ होता है ?॥३२॥ जो एक मुहूर्त भी भागवतों की सङ्गति कर लेता है। वह ब्रह्महत्या इत्यादि पापों से मुक्त हो जाता है ॥३३॥ हे विप्रेन्द्र ! जितने भी धर्म कर्म भगवद् भक्त के समक्ष किए जाते हैं, वे सबके सब अक्षय हो जाते हैं ॥३४॥ जहाँ

मुहुर्त्तं वा मुहूर्त्तार्द्धं यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः। सत्यं सत्यं पुनः सत्यं तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥३५॥
अन्नं वा सलिलम्वाऽपि फलम्वा वैष्णवाय च ।
यत्किञ्चिद्दीयते विप्र ! तद्दानमक्षयं भवेत् ॥३६॥
समस्तदेवतारूपो वैष्णवः परिकीर्त्तितः। स चेत्सन्तोषितस्तेन तोषिताः सर्वदेवताः ॥३७॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे नानादुःखसमन्विते। भगवद्भक्तपुरुषः कदाचिन्नाऽवसीदति ॥३८॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र ! क्रियायोगेन केशवम् ।
समाराध्य सदा भक्त्या व्रज विष्णोःपरम्पदम् ॥३९॥

सूत उवाच

तदेतद्वचनं श्रुत्वा कानीनस्य महात्मनः। शिरस्यञ्जलिमाधाय जैमिनिः पर्यपृच्छत॥४०॥

जैमिनिरुवाच

भगवद्भक्तमाहात्म्यं त्वया प्रोक्तं पुनःपुनः। गुरो ! किं लक्षणं तेषां तत्सर्वं ब्रूहि साम्प्रतम्॥४१॥
कथं वा वैष्णवालोका ज्ञातव्या मुनिसत्तम ! ।
आदितो ब्रूहि तत्सर्वं यदि ते मय्यनुग्रहः ॥४२॥

व्यास उवाच

मधुकैटभयोः पूर्वं हतयोर्वेधसा स्वयम्। पृष्टो यदाह भगवांस्तन्निशामय वेद्मयहम्॥४३॥
कल्पान्ते रुद्ररूपेण संहृत्य सकलं जगत्। स्वयमेकश्च भगवान्सुष्वाप योगमायया ॥४४॥
सुप्ते तस्मिन्भगवति योगनिद्राविमोहिते। अभवत्पृथिवी सर्वा सलिलौघपरिप्लुता ॥४५॥
अतो ब्रह्मा जगत्स्रष्टा तन्नाभिकमलोपरि। तमादिपुरुषं ध्यात्वा तस्थौ तद्गतमानसः ॥४६॥

पर एक मुहूर्त अथवा आधा मुहूर्त भी वैष्णव ठहरते हैं यह परम सत्य है कि वही स्थान तीर्थ और तपोवन है ॥३५॥ हे विप्र ! वैष्णव को जो कुछ भी अन्न, जल अथवा फल दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है ॥३६॥ वैष्णव को समस्त देवता स्वयम् कहा गया है जो वैष्णव को सन्तुष्ट करता है, उससे सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥३७॥ इस अनेक दुःखों से युक्त भयङ्कर संसार में भगवद् भक्त कभी भी दुःखी नहीं होता है ॥३८॥ इसीलिए आप भी हे विप्र श्रेष्ठ ! क्रियायोग के द्वारा भगवान् केशव को सदा भगवान् विष्णु की भक्ति पूर्वक आराधना करके भगवान् विष्णु के परम्पद में चले जाएँ ॥३९॥ **सूतजी ने कहा—** व्यासजी के इस वचन को सुनकर जैमिनि महर्षि शिर से अंजलि को संयोजित करके पूछे ॥४०॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा—** आपने भगवद् भक्त के माहात्म्य का बार-बार वर्णन किया है । हे गुरो ! भगवद् भक्तों का लक्षण क्या है उसे आप मुझे पूर्ण रूप से बतलाइये ॥४१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वैष्णव लोगों को कैसे जानना चाहिए ? यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो आदि से लेकर सारी बातों को आप मुझे बतलाइये॥४२॥ **व्यासजी ने कहा—** पहले स्वयं भगवान् द्वारा मधु और कैटभ के विषय में पूछे जाने पर भगवान् ने ब्रह्माजी को बतलाया उसे सुनो ॥४३॥ कल्प के अन्त में वे रुद्र रूप से सम्पूर्ण जगत् का संहार करके स्वयं अकेले माया के द्वारा सुला दिए गये ॥४४॥ योगनिद्रा के द्वारा सम्मोहित होकर भगवान् के सो जाने पर यह सम्पूर्ण पृथिवी जल समूह से भर गयी ॥४५॥ उसके बाद जगत् के स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान्

तस्मिन्काले महाघोरे विष्णोः कर्णमलाद् द्विज ! ।
जातौ महासुरौ घोरौ मधुकैटभसञ्ज्ञितौ ॥४७॥
अन्तरिक्षे भ्रमन्तौ तौ दानवावतिदारुणौ। श्रीविष्णोर्नाभिकमले ब्रह्माणं समपश्यताम् ॥४८॥
तं हन्तुमथ दैत्यौ तौ महाबलपराक्रमौ। उद्यमं चक्रतुर्विप्र ! क्रोधसंरक्तलोचनौ॥४९॥
ततो ब्रह्मा जगत्स्रष्टा विचिन्त्य तद्वधं हृदा। योगनिद्रां भागवतीं तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥५०॥
तस्य स्तवं समाकर्ण्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। उवाचेति वचःप्रीत्या किन्तेऽभिमतमुच्यताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

अत्युग्रौ दानवावेतौ हन्तुं मां कृतनिश्चयौ। मायया मोहय क्षिप्रं त्रातारमच्युतं त्यज ॥५२॥
ततो भागवती निद्रा महाविष्णुं तमत्यजत्। दानवाभ्यां ततस्ताभ्यामन्तरिक्षे कृपामयः ॥५३॥
युयुधे बाहुयुद्धेन शरणगतवत्सलः। पञ्चवर्षसहस्राणि कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥५४॥
विजयं नाऽगमत्कोऽपि न च कोऽपि पराभवम् ।
अथ तौ दानवौ तत्र महामायाविमोहितौ ॥५५॥
वरं वृण्विति चास्मत्तोऽगदतां केशवम्प्रति। ततः प्रहस्य देवेश उवाचेति वचो द्विज !॥५६॥
यदि तुष्टौ युवां दैत्यौ मद्वध्यौ भवतं द्रुतम् ।
ततस्तौ दानवौ घोरौ भगवन्तं जनार्दनम् ॥५७॥
इत्यूचतुर्महामायौ महामायाविमोहितौ। अयमेव वरो दत्तो भवते नाऽत्र संशयः ॥५८॥
मारयाऽऽवां विना वारि मही यत्र ज़नार्दन ! ।
महासुरौ ततस्तौ तु आनीय जघनम्प्रति ॥५९॥

के नाभि कमल पर उन आदि पुरुष श्रीभगवान् का ध्यान करके उनमें ही अपने मन को लगाकर स्थित रहे॥४६॥ उसी भयङ्कर समय में भगवान् के कर्णमल से हे द्विज अत्यन्त भयङ्कर मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न हो गये ॥४७॥ अन्तरिक्ष में घूमते हुए अत्यन्त भयङ्कर दोनों दानव भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर ब्रह्माजी को देखे। उसके बाद ब्रह्माजी को मारने के लिए वे दोनों दैत्य जो महाबल एवं पराक्रम से सम्पन्न थे प्रयास किए। हे विप्र ! वे क्रोध से आँखें लाल किए हुए आये ॥४८॥ उसके पश्चात् जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी उन दोनों के वध का विचार करके भगवती योग निद्रा की मधुर वाणी से स्तुति किए ॥४९-५०॥ उन परमेष्ठी ब्रह्माजी की स्तुति को सुनकर योगनिद्रा ने कहा तुमको क्या अभिप्रेत है ॥५१॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** अत्यन्त उग्र ये दोनों दानव मुझको मारने का निश्चय कर चुके हैं। आप इन दोनों को माया से मोहित कर दें और भगवान् विष्णु को त्याग दें ॥५२॥ उसके पश्चात् कृपामय भगवान् उन दोनों दानवों के साथ अन्तरिक्ष में ही ॥५३॥ बाहु युद्ध किए। पाँच हजार वर्षों तक अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करके भी ॥५४॥ न तो किसी ने वियज प्राप्त किया और न किसी ने पराजय प्राप्त किया। उसके पश्चात् महामाया ने उन दोनों दानवों को मोहित कर दिया ॥५५॥ उन दोनों ने भगवान् केशव से कहा तुम मुझसे वरदान माँगो। हे द्विज ! उसके बाद जोर से हँसकर देवेश ने कहा ॥५६॥ यदि तुम दोनों दैत्य मुझ पर प्रसन्न हो तो शीघ्र मेरा बध्य हो जाओ। उसके पश्चात् वे दोनों भयङ्कर दानव भगवान् जनार्दन से ॥५७॥ महामाया करने वाले वे दोनों महामाया से मोहित थे कहे। हम दोनों ने आपको यह वरदान

निहतौ सहसा विप्र चित्रया चक्रधारया। चक्रिणा निहतौ दृष्ट्वा दानवौ मधुकैटभौ ॥
तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा विगतसाध्वसः ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते परमेश्वराय प्रपन्नसर्वार्त्तिविनाशनाय ।
नमो नमस्ते त्रिगुणात्मकाय नारायणायाऽमितविक्रमाय ॥६१॥
त्वत्पादपाथोजयुगं प्रपन्ना जनाः क्वचिन्नो विपदं प्रपन्नाः ।
एतन्मयाज्ञातमनन्कीर्ते ! सद्यो हृतेयं महती ममाऽऽपत् ॥६२॥
योगेश्वरोऽसि सदयोऽसि जगत्त्रयेश त्वं देवदेवशरणागतपालकेश ! ।
त्वं निर्दयोऽरिनिकरस्य विनाशनेषु यद्रक्षितोऽहमसुरौ निहतौ त्वयैतौ ॥६३॥
यद्यप्यतीव कठिनौ मधुकैटभौ तौ मन्ये तथापि स्वजनाविह चेतसाऽहम् ।
यस्मात्स्वजीवनविनाशवरप्रदानैः सन्तोषितोऽखिलशुभप्रद ईश्वरस्त्वम् ॥६४॥
रम्यं जगत्त्रयमिमदं पुरुषस्य तस्य नश्यन्ति सर्वरिपवः स्वकुलैः समेताः ।
वृद्धिं व्रजन्ति सुहृदोऽखिलबान्धवाश्च यं पश्यसि त्वममरेश ! दयाभिरत्र ॥६५॥
लक्ष्मीमुखाम्बुजमधुव्रतदेवदेव ! संसारिलोकभयशोकविनाशकारिन् ।
त्वच्चारुपादकमलद्वयमाश्रयन्तं मां पाहि नाथ ! कृपया सततं नमस्ते ॥६६॥

दे दिया इसमें कोई संशय नहीं हैं ॥५८॥ हे जनार्दन ! हम दोनों को आप उस पृथिवी पर मारिये जहाँ जल न हो । उसके पश्चात् उन दोनों महाअसुर दानवों को अपनी जङ्घा पर रखकर ॥५९॥ हे विप्र ! उन दोनों को विचित्र चक्र की धारा से मार दिए । चक्रधारी भगवान् के द्वारा मारे गये उन दोनों को देखकर ब्रह्माजी निर्भय होकर श्रीभगवान् की स्तुति किए ॥६०॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— प्रसन्न जनता के सभी कष्टों को विनष्ट करने वाले परमेश्वर को बारम्बार नमस्कार है । त्रिगुणात्मक तथा निःसीम पराक्रम वाले भगवान् नारायण को नमस्कार है ॥६१॥ आपके चरणकमलों के शरण में आये हुए जीव कभी विपत्ति में नहीं पड़ते हैं । हे अनन्त कीर्ते इस बात को मैंने जान लिया है । मेरी इस विपत्ति को आपने शीघ्र विनष्ट कर दिया । हे शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले भगवान् हे देवदेवश ! हे त्रैलोक्य के स्वामिन् आप योगेश्वर तथा दया सम्पन्न हैं । आप शत्रु समूह के विनाश करने के लिए निर्दय हैं । क्योंकि आपने इन दोनों असुरों को मारकर मेरी रक्षा की है । यद्यपि वे दोनों मधु और कैटभ अत्यन्त निष्ठुर थे फिर भी मैं अपने अन्तःकरण से उन दोनों को स्वजन मानता हूँ । क्योंकि उन दोनों ने अपने जीवन के विनाश का वर प्रदान करके हे सम्पूर्ण शुभों को प्रदान करने वाले ईश्वर आपको सन्तुष्ट किए ॥६२-६४॥ उस पुरुष के मनोहर इस त्रैलोक्य में जो शत्रु होते हैं वे अपने वंश के साथ विनष्ट हो जाते हैं । हे देवताओं के स्वामिन् ! दया पूर्वक आप जिन लोगों को देखते हैं सुन्दर हृदय वाले तथा सम्पूर्ण लोकों के बान्धव वृद्धि को प्राप्त करते हैं ॥६५॥ हे लक्ष्मीजी के मुख कमल के लिए भ्रमर ! हे देव देव ! हे संसारियों के लोक में होने वाले शोक को विनष्ट करने वाले भगवन् ! आपके मनोहर चरण कमलों का आश्रय लेने वाले आप सदैव कृपा करके मेरी रक्षा करें, आपको नमस्कार है ॥६६॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे कमलादेवी के स्वामिन् ! आप प्रसन्न

प्रसीद पुण्डरीकाक्ष प्रसीद कमलेश्वर !। प्रसीद सर्वभूतेश विश्वम्भर ! नमोस्तु ते ॥६७॥
नमस्ते भक्ततुष्टाय नमस्ते भक्तिदायिने। नमस्ते ज्ञानरूपाय शरणं मे भवाऽनघ !॥६८॥
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः। परित्राहि परित्राहि परित्राहि जगन्मय !॥६९॥

व्यास उवाच

एतैरन्यैरपि स्तोत्रैर्ब्रह्मणा लोककारिणा। स्तुतः स देवो भगवान्परमां प्रीतिमाययौ॥७०॥

श्रीभगवानुवाच

स्तोत्रेणाऽनेन ते भक्तया तुष्टोऽस्मि कमलासन ! ।
किमस्त्यभिमतं ब्रूहि तत्ते दास्याम्यहं भुवि ॥७१॥

ब्रह्मोवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश करुणाब्धे जगन्मय ! ।
नापदस्तव भक्तानां भवन्त्विति वरो मम ॥७२॥

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु सुरश्रेष्ठ ! दत्तोऽयं ते मया वरः। मद्भक्तस्य कदाप्यापन्न भवेत्क्षितिमण्डले ॥७३॥
वैष्णवानां शरीरेषु सततं निवसाम्यहम्। लभन्ते नापदस्तस्मात्कदाचिद्वैष्णवा नराः॥७४॥

ब्रह्मोवाच

सर्वमेव जगन्नाथ ! त्वया दत्तं न संशयः। यदेतौ च महादैत्यौ सङ्ग्रामे विनिपातितौ ॥७५॥
कियत्कालं समासाद्य स्तोत्रेणाऽनेन वै प्रभो ! ।
स्तौति त्वां परया भक्तया तस्य त्राता भविष्यसि ॥७६॥
अहो ध्यानैरपि ध्यातुं देवैस्त्वं नहि शक्यसे ।
स त्वं वैष्णवदेहेषु भ्रमसीत्यद्भुतं महत् ॥७७॥

होएँ। हे सभी जीवों के स्वामिन् ! हे विश्वम्भर ! आप प्रसन्न हों आपको नमस्कार हैं ॥६७॥ भक्तों पर प्रसन्न रहने वाले तथा भक्ति प्रदान करने वाले श्री भगवान् को नमस्कार है, ज्ञान स्वरूप भगवान् को नमस्कार है, हे अनघ आप मेरी रक्षा करें ॥६८॥ हे जगत् स्वरूप भगवन् आपको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा करें ॥६९॥ **व्यासजी ने कहा—** ब्रह्माजी द्वारा इन स्तोत्रों तथा अन्य स्तोत्रों से स्तुति किए गये श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥७०॥ श्रीभगवान् ने कहा हे ब्रह्मन् ! मैं आपके इस स्तोत्र से प्रसन्न हूँ। आपको क्या अभिमत है, मैं उसे प्रदान करता हूँ ॥७१॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे जगत् स्वरूप करुणा सागर देवदेवेश यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं यही वरदान आपसे माँगता हूँ कि आपके भक्तों को कष्ट न हो॥७२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे सुरश्रेष्ठ ऐसा ही होगा। मैंने आपको यह वरदान दे दिया कि पृथिवी पर रहने वाले मेरे भक्तों को कष्ट न हो ॥७३॥ मैं वैष्णवों के शरीर में सदैव निवास करता हूँ। अतएव वैष्णव जन कभी भी विपत्ति में नहीं पड़ेंगे ॥७४॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे जगन्नाथ ! आपने निश्चित रूप से सब कुछ दे दिया क्योंकि आपने इन दोनों महादैत्यों को संग्राम में मार दिया ॥७५॥ हे प्रभो ! कुछ काल तक जो इस स्तोत्र से आपकी स्तुति अत्यन्त भक्ति पूर्वक करेगा उसकी आप रक्षा करेंगे ॥७६॥ आप

क्षणमात्रमपि स्वामिंस्त्वयि तुष्टेन किंभवेत्। स त्वं वैष्णवसङ्गेन भ्रमसीत्यद्भुतं महत्॥७८॥
के वैष्णवाः कैटभारे किंवा तेषां च लक्षणम् ।
कथं ज्ञेयास्तु ते सर्वे तन्मे कथय केशव ! ॥७९॥

श्रीभगवानुवाच

वैष्णवानां लक्षणानि कल्पकोटिशतैरपि ।
सम्यग्वक्तुं न शक्तोऽस्मि सङ्क्षेपाच्छृणु सत्तम ! ॥८०॥
संसारो वैष्णवाधीनो देवा वैष्णवपालिताः ।
अहं च वैष्णवाधीनस्तस्माच्छ्रेष्ठाश्च वैष्णवाः ॥८१॥
क्षणमात्रमपि ब्रह्मन्विहाय वैष्णवं जनम्। तिष्ठामि नाऽहमन्यत्र वैष्णवा मम बान्धवाः ॥८२॥
कामक्रोधविहीना ये हिंसादम्भविवर्जिताः। लोभमोहविहीनाश्च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८३॥
अमत्सरा दयायुक्ताः सर्वभूतहितैषिणः। सत्योक्तिभाषिणश्चैव विज्ञेयास्ते व वैष्णवाः ॥८४॥
धर्मोपदेशिनश्चैव धर्माचारपरास्तथा। गुरुशुश्रूषिणश्चैव विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥८५॥
समानं ये च पश्यन्ति त्वां च मां च महेश्वरम् ।
कुर्वन्ति पूजामतिथेर्ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८६॥
वेदविद्यानिरुक्ता ये विप्रभक्तिरताः सदा। नपुंसकाः परस्त्रीषु ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८७॥
एकादशीव्रतं ये च भक्तिभावेन कुर्वते। गायन्ति मम नामानि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८८॥
देवायतनकर्तारस्तुलसीमाल्यधारकाः । पद्माक्षधारिणो ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८९॥

तो ऐसे हैं कि देवता भी आपका ध्यान करने में समर्थ नहीं होते हैं, ऐसे आप वैष्णवों के शरीर में भ्रमण करते हैं यह अद्भुत बात है ॥७७॥ हे स्वामिन् ! आपके क्षणभर भी प्रसन्न हो जाने से क्या नहीं हो सकता है ? ऐसे आप वैष्णवों के सङ्ग में भ्रमण करते है यह अत्यन्त अद्भुत बात है ॥७८॥ हे कैटभारे ! वैष्णवों के क्या लक्षण हैं ? वे कौन हैं ? उन लोगों को कैसे जाना जाय हे केशव ! आप इसे मुझे बतलाइये ॥७९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** वैष्णवों का लक्षण करोड़ों सौ कल्पों में भी कहने में समर्थ नहीं हूँ। अतएव हे श्रेष्ठ ! उसे आप संक्षेप में सुनें ॥८०॥ यह संसार वैष्णव के अधीन है देवता भी वैष्णवों के द्वारा पालित हैं। मैं भी वैष्णवों के अधीन हूँ अतएव वैष्णव सबों से श्रेष्ठ हैं ॥८१॥ हे ब्रह्मन् ! मैं वैष्णवजन को क्षणभर भी छोड़कर अन्यत्र नही रहता हूँ, वैष्णव मेरे बान्धव हैं ॥८२॥ जो काम तथा क्रोध से रहित हैं हिंसा और दम्भ जिनमें रहते ही नहीं तथा जो लोभ तथा मोह से रहित हैं वै वैष्णव जन हैं॥८३॥ मत्सर आदि से रहित, सभी जीवों का कल्याण चाहने वाले, सदा सत्य बोलने वाले लोगों को वैष्णव जानना चाहिए ॥८४॥ जो धर्म का उपदेश करते हैं तथा धर्म का पालन करते हैं, जो अपने गुरु की सेवा करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ॥८५॥ जो आपको मुझको तथा महेश्वर को एक समान जानते हैं तथा जो अतिथि की पूजा करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ॥८६॥ जो वेद विद्या की व्याख्या करते हैं तथा जो ब्राह्मणों के भक्त हैं, दूसरों की स्त्रियों के विषय में नपुंसक हो जाते हैं उन लोगों को वैष्णव जानना चाहिए ॥८७॥ जो भक्ति भाव पूर्वक एकादशी व्रत को करते हैं तथा मेरे नामों का कीर्तन करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ॥८८॥ देवताओं के मन्दिर को बनाने वाले तथा तुलसी की

शङ्खचक्रगदापद्मैरङ्कितानि ममाऽऽयुधैः । ब्रह्मन्येषां शरीराणि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९०॥
धात्रीफलस्रजो येषां गलेषु कमलासन !। मां पूजयन्ति तत्पत्रैर्ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९१॥
तुलसीमूलमृद्भिश्च तिलकानि नयन्ति ये। तुलसीकाष्ठपङ्कैश्च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९२॥
गङ्गास्नानरता ये च गङ्गानामपरायणाः । गङ्गामाहात्म्यवक्तारो ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९३॥
शालग्रामशिला येषां गृहे वसति सर्वदा । शास्त्रं भागवतं चैव ज्ञेरूास्ते वैष्णवा जनाः ॥९४॥

सम्मार्जयन्ति ये नित्यं मम स्थानानि सत्तम ! ।
दीपं यच्छन्ति तत्रैव ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९५॥
शीर्णं मन्मन्दिरं ये च कुर्वन्ति नूतनं पुनः ।
तत्राऽऽयतनशोभां च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९६॥
अभयं ये च यच्छन्ति भीरुभ्यश्चतुरानन ! ।
विद्यादानं च विप्रेभ्यो ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९७॥

मत्पादसलिलैर्येषां सिक्तानि मस्तकानिच । ममनैवेद्यमश्नन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९८॥
क्षुत्तृट्प्रपीडितेभ्यश्चये यच्छन्त्यन्नममबु च । कुर्युर्ये योगशुश्रूषां ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥९९॥

आरामकारिणो ये च पिप्पलारोहिणोऽपि च ।
गोसेवां ये च कुर्वन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥१००॥

अत्यन्तभक्ता ये ब्रह्मन्पितृयज्ञं प्रकुर्वते। कुर्वन्ति दीनशुश्रूषां ज्ञेयास्ते वैष्ण्वा जनाः ॥१०१॥

माला को धारण करने वाले तथा जो पद्माक्ष की माला धारण करते हैं उन लोगों को वैष्णव समझना चाहिए।॥८९॥ जो लोग शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म इन मेरे आयुधों के चिह्न से अङ्कित हे बह्मन् ! ऐसे जिनके शरीर है उनको वैष्णव जानना चाहिए ॥९०॥ मेरी पूजा के समय गले में आँवला के फल की माला रहती है हे ब्रह्मन् ! जो मेरी पूजा आँवले के पत्तों से करते हैं उनको वैष्णव समझना चाहिए ॥९१॥ तुलसी के जड़ की मिट्टी से जो तिलक लगाते हैं तथा तुलसी के काष्ठ के चन्दन से तिलक लगाते हैं उनको वैष्णव जन जानना चाहिए ॥९२॥ जो लोग गङ्गा स्नान करते हैं तथा गङ्गा स्नान में भक्ति करने वाले तथा गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करने वाले जो लोग हैं उनको वैष्णव जन समझना चाहिए ॥९३॥ जिनके घर में सदा शालग्राम शिला रहती है तथा भागवत शास्त्र रहता हैं उनको वैष्णव समझना चाहिए।॥९४॥ हे सत्तम ! जो लोग मेरे स्थान को साफ करते हैं तथा वहीं पर दीप जलाते हैं उनको वैष्णव समझना चाहिए ॥९५॥ जो मेरे पुराने मन्दिर को नया बना देते हैं औरे मेरे गृह को सुशोभित करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ॥९६॥ हे चतुरानन ! जो लोग भयभीतों को अभय प्रदान करते हैं और ब्राह्मणों को विद्यादान देते हैं उनको वैष्णव समझना चाहिए ॥९७॥ मेरे चरणोदक से जिनके मस्तक सींचित होते हैं तथा जो मेरे नैवेद्य को खाते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ॥९८॥ भूख तथा प्यास से पीडितों को जो अन्न तथा जल प्रदान करते हैं तथा जो योग की साधना करते हैं उनको वैष्णव समझना चाहिए ॥९९॥ जो लोग पिप्पल पर चढ़ने वाले उद्यान को लगाते हैं तथा गो सेवा को करने वाले लोगों को वैष्णव समझना चाहिए ॥१००॥ हे ब्रह्मन् ! जो अत्यन्त भक्त हैं तथा पितृयज्ञ को करते हैं जो दीनों की सेवा

तडागग्रामकर्तारः कन्यादानरताश्च ये। सेवन्ते पितरौ ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥१०२॥
सेवन्ते ज्येष्ठभगिनीं ज्येष्ठभ्रातरमेव च। परनिन्दां न कुर्वन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥१०३॥
वैष्णवेषु गुणाः सर्वे दोषलेशो न विद्यते। तस्माच्चतुर्मुखत्वं च वैष्णवो भव ! साम्प्रतम्॥१०४॥

समाराधय मां नित्यं क्रियायोगैः प्रजापते ! ।
सर्वमेवाऽऽशु भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥१०५॥
देवस्वं ब्राह्मणद्रव्यं परस्वं च चतुर्मुख ! ।
पश्यन्ति विषवद् ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥१०६॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन भाषितेन पुनःपुनः ।
ममाऽर्चां ये च कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥१०७॥

भूयः पूर्वस्थितमिव सृज्यतां सकलं जगत्। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्तत्रैव परमेश्वरः ॥१०८॥
ततस्तु पूर्ववद् ब्रह्मा सृष्टवान्सकलं जगत् । क्रियायोगैर्हरिं चेष्ट्वा जगाम परमं पदम् ॥१०९॥
ये पठन्तीममध्यायं भक्त्या नारायणाग्रतः । सर्वपापविनिर्मुक्ता अन्ते यान्ति हरेर्गृहम् ॥११०॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
वैष्णवलक्षणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

करते हैं उन्हें वैष्णव समझना चाहिए ।।१०१।। सरोवरों को बनाने वाले तथा कन्यादान करते रहने वाले तथा जो माता-पिता की सेवा करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ।।१०२।। जो लोग अपनी ज्येष्ठ बहन तथा ज्येष्ठ भाई की सेवा करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ।।१०३।। हे चतुर्मुख वैष्णवों में सभी गुण होते हैं, उनमें दोष का लेश भी नहीं रहता है अतएव आप भी वैष्णव हो जायँ ।।१०४।। हे प्रजापते ! आप मेरी प्रतिदिन आराधना क्रिया योग के द्वारा करें । ऐसा करने से शीघ्र ही आपका हर प्रकार का कल्याण निश्चित रूप से होगा ।।१०५।। देवता की सम्पत्ति तथा ब्राह्मण के द्रव्य को तथा दूसरों की सम्पत्ति को हे चतुर्मुख ! जो लोग विष के समान समझते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए ।।१०६।। इस विषय में बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं हैं । जो लोग मेरी अर्चा करते हैं उनको वैष्णव जानना चाहिए।।१०७।। अब आप पहले के ही समान सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करें । इस तरह कहकर श्रीभगवान् वहीं पर अन्तर्धान हो गये ।।१०८।। उसके बाद ब्रह्माजी ने पहले के ही समान जगत् की सृष्टि की । वे क्रियायोग के द्वारा श्रीहरि की अर्चना करके परमपद में चले गये ।।१०९।। जो लोग इस अध्याय को भगवान् नारायण के समक्ष पढ़ते हैं वे सभी पापों से मुक्त होकर अन्त में परम पद में जाते हैं ।।११०।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोग सार खण्ड के अन्तर्गत वैष्णव लक्षण वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तीसरा अध्याय

जैमिनिरुवाच

क्रियायोगस्य तत्त्वं मे ब्रूहि व्यास ! महामते ! ।
क्रियायोगमहं ज्ञातुमिच्छामि भवतो मुखात् ॥१॥

व्यास उवाच

शरीरं मानुषं विप्र ! दुर्लभं चाऽत्र भूतले। धीरः शरीरमासाद्य मोक्षार्थं योगमभ्यसेत् ॥२॥
क्रियायोगध्यानयोगावुभौ योगौ प्रकीर्तितौ । तयोराद्यः क्रियायोगः कुर्वतां सर्वकामदः ॥३॥
गङ्गाश्रीविष्णुपूजां च दानानि द्विजसत्तम ! । ब्राह्मणानां तथा भक्तिर्भक्तिरेकादशीव्रते ॥४॥
धात्रीतुलस्योर्भक्तिश्च तथा चाऽतिथिपूजनम्। क्रियायोगाङ्गभूतानि प्रोक्तानीति समासतः ॥५॥
क्रियायोगादृते विप्र ! ध्यानयोगान्नसिद्ध्यति ।
क्रियायोगरतो याति तद्विष्णोःपरमं पदम् ॥६॥

जैमिनिरुवाच

क्रियायोगाङ्गभूतानि यानि प्रोक्तानि भोःप्रभो ! ।
तन्माहात्म्यानि कथय यदि भो मय्यनुग्रहः ॥७॥
गङ्गायाः के गुणा ब्रह्मन्विष्णुपूजाफलं च किम् ।
श्रेष्ठानि कानि दानानि का वा भक्तिर्द्विजन्मनाम् ॥८॥
एकादश्याः फलं किं वा धात्रीभक्तिश्च कीदृशी ।
तुलस्याः कीदृशी भक्तिः किं वा चाऽतिथिपूजनम् ॥९॥

गङ्गा माहात्म्य के साथ गृध्र द्वारा मनोभद्र राजा के दो पुत्रों के पूर्व जन्म का वर्णन तथा गृध्र दम्पत्ति की मुक्ति का वर्णन

जैमिनि महर्षि ने कहा— हे महामते व्यासजी ! आप मुझे क्रियायोग के स्वरूप को बतलायें । मैं आपके मुख से क्रियायोग को सुनना चाहता हूँ ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** हे विप्र ! इस पृथिवी पर मानव शरीर को प्राप्त करना दुर्लभ है । धीर पुरुष को चाहिए कि वह शरीर को प्राप्त करके मोक्ष की प्राप्ति के लिए योग का अभ्यास करे ॥२॥ क्रियायोग तथा ध्यान योग इन दोनों को योग कहा गया है । उन दोनों में पहले क्रियायोग करने वालों की सारी कामनाओं को श्रीभगवान् पूर्ण कर देते हैं ॥३॥ गङ्गाजी तथा श्रीविष्णु भगवान् की पूजा तथा हे द्विजश्रेष्ठ ! अनेक प्रकार के दान, ब्राह्मणों की भक्ति तथा एकादशी व्रत में भक्ति ॥४॥ आँवला और तुलसी की भक्ति एवं अतिथि पूजन ये सभी क्रियायोग के अङ्गभूत है इस तरह से इसे संक्षेप में बतलाया गया है ॥५॥ हे विप्र ! क्रियायोग के विनाध्यान योग की सिद्धि नहीं होती है। क्रियायोग को करने वाला भगवान् विष्णु के परमपद में जाता है ॥६॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा—** हे प्रभो! आपने जिन सबों को क्रियायोग बतलाया है, उन सबों का माहात्म्य मुझे बतलायें यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो ॥७॥ हे ब्रह्मन् ! गङ्गा का फल क्या है ? तथा भगवान् विष्णु की पूजा का फल क्या है ? कौन से दान श्रेष्ठ हैं ? तथा ब्राह्मणों की भक्ति क्या है ?॥८॥ एकादशी का फल क्या है ? तथा आँवला

एतत्सर्वंमुने ! ब्रूहि श्रोतुमस्ति ममाऽऽदरः ।
त्वत्तोऽन्यःकयितुं कोऽपि न शक्नोति जगत्रये ॥१०॥

व्यास उवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ ! मनस्ते विमलं ध्रुवम् ।
यतो गुह्यकथामेतां श्रोतुं श्रद्धा च कौतुकम् ॥११॥
भागीरथ्या गुणं सम्यक्कथितुं नहि शक्यते ।
तस्मात्समासतो वक्ष्ये श्रूयतामेकचेतसा ॥१२॥

गङ्गेत्यक्षरयुग्मं च जपत्यत्यन्तकोमलम् । मन्ये व्रजेत्तथाप्येनो महन्नास्त्यत्र संशयः ॥१३॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ॥१४॥
सवासवाः सुराः सर्वे गङ्गाद्वारं मनोरमम् । समागत्य प्रकुर्वन्ति स्नानदानादिकं मुने ! ॥१५॥
दैवयोगान्मुने ! तत्र ये त्यजन्ति कलेवरम्। मनुष्यपशुकीटाद्या लभन्ते परमम्पदम् ॥१६॥
अत्रेतिहासं विप्रर्षे ! कथ्यमानं मया शृणु । सम्यक्छ्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७॥
मनोभद्रोनाम राजा सोमवंशसमुद्भवः । पूर्वमासीज्जगत्यस्मिन्बलवान्सर्वधर्मवित् ॥१८॥
तस्य हेमप्रभा नाम महिषी प्रियवादिनी। पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता ॥१९॥
स राजा समरे हत्वा सकलानेव शात्रवान्। शशास पृथिवीं कृत्स्नां साब्धिद्वीपां महाबलः॥२०॥
स एकदा महीपालः समाहूय स्वमन्त्रिणः। उवाचेदं वचःप्रीत्या सभामध्ये महायशाः ॥२१॥

की भक्ति कैसी होती है ? तुलसी की भक्ति कैसी होती है ? तथा अतिथि पूजन किसको कहते हैं ?॥९॥ हे मुने ! आप इन सारी बातों को मुझे बतलाये मेरी इन सबों के प्रति आदर है । आप से भिन्न कोई भी इसे त्रैलोक्य में कहने में समर्थ नहीं है ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा—** हे साधो ! बड़ी अच्छी बात है । आपका मन विमल है क्योंकि इन गोपनीय कथा को सुनने में आपका कौतूहल है ॥११॥ भागीरथी के गुणों का अच्छी तरह से वर्णन नहीं किया जा सकता है । इसके लिए इसे संक्षेप में मैं कहता हूँ तुम सावधान मन से सुनो ॥१२॥ गङ्गा, इन दो अक्षरों को जो अत्यन्त कोमल हैं उनको जो जपता है मैं मानता हूँ कि बड़ा ही पाप विनष्ट हो जाता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१३॥ गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं किन्तु तीन स्थानों पर दुर्लभ हैं, गङ्गाद्वार में, प्रयाग में और गङ्गासागर सङ्गम में ॥१४॥ इन्द्र सहित सभी देवता मनोहर गङ्गाद्वार में आकर हे मुने ! स्नान तथा दान आदि करते हैं ॥१५॥ हे मुने ! दैव योग से यहाँ आकर अपने शरीर का त्याग कर देते हैं । वे मनुष्य, पशु तथा कीड़े भी परम पद को प्राप्त करते हैं ॥१६॥ हे मुने ! इस विषय में मेरे द्वारा कहे जाने वाले इतिहास को जो मैं कह रहा हूँ उसे आप सुनें ॥१७॥ सोमवंश में उत्पन्न मनोभद्र नामक राजा पूर्वकाल में इस संसार में बलवान और धार्मिक था ॥१८॥ उस राजा की हे मप्रभाना की रानी प्रिय बोलने वाली थी वह महाभाग पतिव्रता तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न थी ॥१९॥ बलवान् वह राजा अपने सभी शत्रुओं को मारकर समुद्र पर्यन्त की सारी पृथिवी का प्रशासन करता था ॥२०॥ वह राजा एक बार अपने मन्त्रियों को बुलाकर सभा में महायशस्वी प्रेम पूर्वक कहा ॥२१॥ **मनोभद्र ने कहा—** हे मन्त्रियों ! यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरे द्वारा पालित है । मैंने

मनोभद्र उवाच

अमात्याः ! पृथिवी सर्वा मयेयं परिपालिता ।
निहता रिपवः सर्वे सपुत्रबलवाहनाः ॥२२॥
पालितानि स्वगोत्राणि दानैर्विप्राश्च तोषिताः ।
शिष्टाश्च त्रिदशाः सर्वे सपुत्रबलवाहनाः ॥२३॥
पालितानि स्वगोत्राणि यज्ञैः सर्वैः सदक्षिणैः ।
इदानीं जरया सर्वं महत्या मे बलं हतम् ॥२४॥
कर्माणि कानिचित्कर्तुं न हि शक्नोमि दुर्बलः ।
सामर्थ्यहीने पुरुषे राजश्रीर्नहि शोभते ॥२५॥
सर्वाभरणसंयुक्ता जराजीर्णेव कामिनि। तावद्बिम्यति सर्वेऽपि शत्रवः पृथिवीतले ॥२६॥
यावद्धि गतसामर्थ्यं नेच्छन्ति चारचक्षुषा । समस्तगुणसम्पन्नमपि तद्गतमानसम् ॥२७॥
पृथ्वी त्यजेन्नृपं बृद्धं स्वैरिणी पालिता यथा ।
भक्तिलम्यागुणाःसर्वे गुणलभ्यं महद्यशः ॥२८॥
निःश्रेयसं दानलभ्यं बललभ्या तु मेदिनी । सामर्थ्यहीनः कृपणो निश्चितो रिपुशासने॥२९॥
मूर्खमात्रवचोग्राही स नृपः शत्रुनन्दनः। ततोऽहं सकलं राज्यं विभज्य वरमन्त्रिणः ॥
दातुमिच्छामि पुत्राभ्यां युष्माभिर्यदि मन्यते ॥३०॥

मन्त्रिण ऊचुः

यदेतद्वचनं प्रोक्तं त्वया नीतिविदां नृप ! । तदेव मतमस्माकं सन्देहो नाऽत्र विद्यते॥३१॥
अथाऽऽयातौ नृपादेशात्संसदं प्रति सत्तमौ । वीरभद्रयशोभद्रनामानौ तनयावुभौ ॥३२॥

अपने सभी शत्रुओं को पुत्र, बल तथा वाहन के साथ मार दिया है ॥२२। मैंने अपने गोत्र वालों का भी पालन किया है तथा दारन के द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया है । केवल देवता ही अपने पुत्र, बल तथा वाहनों के साथ बचे हुए हैं ॥२३॥ मैंने अपने गोत्र वालों को दक्षिणा रहित सभी यज्ञों के द्वारा पाला है। इस समय महती वृद्धापा के कारण मेरे बल समाप्त हो गये हैं ॥२४॥ कुछ कर्मो को करने में दुर्बल होने के कारण मैं समर्थ नहीं हूँ, समर्थ हीन पुरुष को राज्यश्री शोभा नहीं देती है ॥२५॥ सभी आभरणों से भूषित मेरी पत्नी भी जराजीर्ण हो गयी है । पृथिवी के सारे शत्रु तब तक ही डरते हैं ॥२६॥ जब तक की राजा गण अपने शत्रु को समाप्त सामर्थ वाला नहीं देखते हैं । सभी गुणों से युक्त तथा पृथिवी को चाहने वाले भी राजा को ॥२७॥ पालित स्वैरिणी के समान् पृथिवी वृद्ध राजा को त्याग देती है । भक्ति के द्वारा ही सभी गुणों की प्राप्ति होती है और गुणों से ही महान् यश की प्राप्ति होती है ॥२८॥ मुक्ति दान से प्राप्त होती है और पृथिवी की प्राप्ति बल से होती है । समर्थ्य हीन तथा कृपण राजा शत्रुओं के शासन में चला जाता है यह निश्चित है ॥२९॥ केवल मूर्खो की बात सुनने वाला राजा शत्रुओं को ही आनन्द देता है । हे श्रेष्ठ मन्त्रियों ! इसीलिए मैं अपने सम्पूर्ण राज्य को विभक्त करके यदि आपलोगों को अच्छा लगे तो अपने दोनों पुत्रों को दे देना चाहता हूँ ॥३०॥ **मन्त्रियों ने कहा—** हे नीतिज्ञों में श्रेष्ठ राजन् ! आपने यह सब कुछ जो कहा है वही हमलोगों का भी मत है इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है ॥३१॥

तौ च सर्वगुणोपेतौ कुमारौ प्रियवादिनौ । पितृभक्तौ सदा शान्तौ बलिनौर्धर्मतत्परौ ॥३३॥

ततः स भूपः सहसा राजनीतिविदाम्बरः ।
विभज्य सकलं राज्यं ददौ ताभ्यां कुतूहलात् ॥३४॥

अत्राऽन्तरे गृध्र एकः स्वकीयस्त्रीसमन्वितः ।
आगत्य तत्सभामध्ये उपविष्टो द्विजोत्तमाः ॥३५॥

तावागतौ समालोक्य पक्षिणावतिहर्षितौ । राजाऽऽह युवयोः कस्माच्छुभागमनुमुच्यताम्॥३६॥

गृध्र उवाच

गृध्रोऽहं पृथिवीपाल ! ममेयं स्त्री परन्तप ! ।
आगतोऽस्मि मुदाद्रष्टुं सम्पदं पुत्रयोस्तव ॥३७॥

एतयोर्महती दृष्टा विपत्तिः पूर्वजन्मनि । इह जन्मनि सम्पत्तिं द्रष्टुमावां समागतौ ॥३८॥

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा गृध्रस्य परमाद्भुतम् । राजोवाच पुनर्विप्र ! विस्मयाविष्टमानसः ॥३९॥

राजोवाच

अत्यद्भुतं वचो गृध्र ! त्वत्तः श्रुतमिदं मया ।
एतयोः पूर्ववृत्तान्तो भवता ज्ञायते कथम् ॥४०॥

यदि जानासि तत्त्वेन पूर्ववृत्तान्तमेतयोः । ब्रूहि तर्हि खगश्रेष्ठ ! सर्वमेतदशेषतः॥४१॥

गृध्र उवाच

नृपते विषलावेतौ युगे द्वापरसञ्ज्ञके । गरसङ्गरनामानौ सत्यघोषसुतौ स्थितौ ॥४२॥

एककाले च भूपाल ! मृतौ निजगृहान्तरे । ततो नेतुमिमौ भूप ! दंष्ट्रिणो यमकिङ्कराः॥४३॥

उसके पश्चात् राजा का आदेश प्राप्त करके उनके वीरभद्र और यशोभद्र नामक दोनों पुत्र सभा में आये॥३२॥ वे दोनों सभी गुणों से युक्त तथा प्रिय बोलने वाले कुमार, पितृभक्त, सदा शान्त रनहे वाले बलवान् तथा धर्म करने वाले थे ॥३३॥ उसके पश्चात् राजनीतिज्ञों में श्रेष्ठ वे राजा अचानक अपने सम्पूर्ण राज्य को विभक्त करके कतूहल पूर्वक अपने पुत्रों को दे दिए ॥३४॥ उसी समय एक गृध्र अपनी पत्नी के साथ उस सभा में आकर हे द्विजश्रेष्ठों बैठ गया ॥३५॥ उन दोनों अत्यन्त हर्षित पक्षियों को आये हुए देखकर राजा ने कहा आपलोगों का शुभ आगमन किसलिए हुआ है बतलाइये ॥३६॥ **गृध्र ने कहा—** हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले राजन् ! मैं गृध्र हूँ और यह मेरी पत्नी है । मैं प्रसन्नता पूर्वक आपके पुत्रों की सम्पत्ति को देखने के लिए आया हूँ ॥३७॥ पूर्वजन्म में इन दोनों की अत्यन्त विपत्ति को मैं देख चुका हूँ । इस जन्म में इन दोनों की सम्पत्ति को देखने के लिए हम दोनों आये हैं ॥३८॥ उस गृध्र के इस अद्भुत वचन को सुनकर हे विप्र ! राजा ने अत्यन्त आश्चर्यित मन से पुनः कहा ॥३९॥ **राजा ने कहा—** हे गृध्र ! मैंने तो तुम्हारी अत्यन्त अद्भुत वाणी को सुना है । आप इन दोनों के पूर्व जन्म के वृत्तान्त को कैसे जानते हैं ?॥४०॥ यदि आप जानते हैं तो इन दोनों के पूर्व वृत्तान्त को तुम हे खग श्रेष्ठ ! ठीक-ठीक बतलाओ॥४१॥ **गृध्र ने कहा—** राजन् ! ये दोनों द्वापर युग में वृषल (वेश्यगामी) थे । इन दोनों का नाम मगर और सङ्गर था तथा दोनों सत्यघोष के पुत्र थे ॥४२॥ ये दोनों घर के भीतर ही एक ही समय में मर गये हे राजन्!

पाशहस्ताः समायाताः कोटिकोटिसहस्रशः ।
वबन्धुश्चर्मपाशेन द्वावेतौ तु मदोद्धतौ ॥४४॥
निन्युश्च निलयं मृत्योरतिदुर्गमवर्त्मना । इमौ दृष्ट्वा धर्मराजश्चित्रगुप्तमुवाच ह ॥४५॥
एतयोः सकलं वृत्तं चित्रगुप्त ! विचार्यताम् ॥४६॥

गृध्र उवाच

तस्याऽऽज्ञया चित्रगुप्तः सर्वं कर्मशुभाशुभम् ।
मूलाद्विचारयामास तत इत्याह चान्तकम् ॥४७॥

चित्रगुप्त उवाच

सत्यमेतौ महाबाहो ! पुण्यव्रतमहायशौ । अस्ति चेद्दुष्कृतंकिञ्चित्सर्वंकर्मविलोकितम् ॥४८॥
स्वयं दानं समुत्सृज्य नहि दत्तं द्विजातये । तेनैव कर्मणा राजन्निमौ नरकगामिनौ ॥४९॥
दाता दानं समुत्सृज्य यो न दद्याद् द्विजातये ।
स याति नरकं घोरं सर्वभूतभयावहम् ॥५०॥
दाता हि न स्मरेद्दानं प्रतिग्राही न याचते । उभयोर्नरके वासो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५१॥
तस्मादिमौ महापापौ ब्रह्मस्वहारिणौ प्रभो ! ।
नयन्तु किङ्कराःशीघ्रं नरकम्प्रतिदारुणम् ॥५२॥
यमाज्ञया ततो दूताः सन्दष्टौपुटःक्रुधा । चिक्षिपुर्नरके घोरे तावेतौ पृथिवीपते ! ॥५३॥
तस्मिन्नेव दिने रजन्ननया भार्यया सह । यमदूतैः समागत्य नीतोऽहं यममन्दिरम् ॥५४॥
मयाऽपि यत्कृतं कर्म तदाकर्णय भूपते ! । मूलात्सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वतां विस्मयप्रदम् ॥५५॥

इन दोनों को लेने के लिए बड़े-बड़े दाँत वाले यमदूत आये ॥४३॥ वे अपने हाथ में पाश लेकर आये थे और उनकी संख्या करोड़ों की थी । इन दोनों मदमत्तों को उन सबों ने पाश में बाँध दिया ॥४४॥ इन दोनों को वे अत्यन्त दुर्गम मार्ग से यम लोक में ले गये । इन दोनों को देखकर धर्मराज ने चित्रगुप्त से कहा ॥४५॥ हे चित्रगुप्त ! इन दोनों के सम्पूर्ण वृत्तान्तों को आप अच्छी तरह से विचार करें ॥४६॥ **गृध्र ने कहा—** धर्मराज की आज्ञा से चित्रगुप्त ने इन दोनों के पुण्य तथा पाप कर्मों कों प्रारम्भ से विचार कर यमराज से कहा ॥४७॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** हे महाबाहो ! ये दोनों महाशय पुण्य व्रत वाले हैं । इन दोनों का जो भी कुछ पाप कर्म है । इन दोनों के सभी कर्मों का मैंने विचार कर लिया है ॥४८॥ इन दोनों ने अपने हाथ से कोई भी दान ब्राह्मण को नहीं दिया । हे राजन् ! इन दोनों के इसी कर्म के कारण ये नरक गामी हैं ॥४९॥ देने वाला दान को कहकर यदि किसी ब्राह्मण को नहीं देता है तो वह सभी जीवों को भयभीत करने वाले भयङ्कर नरक मे जाता है ॥५०। दानी को दान का स्मरण नहीं करना चाहिए और दान लेने वाले को माँगना भी नहीं चाहिए । नहीं तो दोनों का भयङ्कर नरक में तब तक निवास हो जाता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ॥५०॥ इसीलिए ये दोनों ब्राह्मण की सम्पत्ति का हरण करने वाले हैं अतएव यमदूत इन दोनों को शीघ्र ही नरक में ले जायँ ॥५२॥ हे राजन् ! यम की आज्ञा से उसी समय दूत इन दोनों को घोर नरक में डाल दिए । हे राजन् ! उसी दिन इस पत्नी के साथ मुझको यमदूत

पुराऽऽसं सर्वगो नाम ब्राह्मणोऽहं महाकुलः ।
सौराष्ट्रदेशवासी च वेदवेदाङ्गपारगः ॥५६॥
इयं मञ्जूकषानाम मम पत्नी यशस्विनी। पतिव्रता महाभागा पवित्रकुलसम्भवा ॥५७॥
प्रमत्तोऽहं महाभाग ! विद्यया वयसा धनैः ।
अवज्ञां मनसा पित्रोश्चकाराऽहं युवैकदा ॥५८॥
अहं भूरिसमाश्लाध्यो वनस्थः सर्वकर्मकृत् ।
धनवान्सुन्दरो ज्ञानी ज्ञातिपोषणतत्परः ॥५९॥
ममैव पुंसः पितरौ तौ च पापपरयणौ। मुखरौ दयया हीनो पाखण्डिसङ्गलोलुपौ॥६०॥
पौरुषं जीवनं चैव धनञ्चैव कुलं तथा। विद्याकीर्तिश्च सर्वस्वं पितृभ्यां विफलीकृतम्॥६१॥
एतद्विचिन्त्य मनसा मया नृप ! मुहुर्मुहुः। अवज्ञया परित्यक्ता पित्रोः सेवा शुभप्रदा ॥६२॥
अनेन कर्मणा राजन्सदारोऽहं यमाज्ञया। विक्षिप्तो नरके दूतैर्यत्र तौ पापिनाम्बरौ॥६३॥
एताभ्यां सह पापाभ्यां सदारेण मया नृप ! ।
स्थितं च नरके घोरे यावत्कालं शृणुष्व तत् ॥६४॥
युगकोटिसहस्राणि युगकोटिशतानि च। अनुभूतं महादुःखं नरकस्य नृपोत्तम ! ॥६५॥
नरकान्ते ततः सोऽहं कान्ता च मम भूपते ! ।
गृध्रपक्षिकुलेजातौ मृतमांसाशनौ तथा ॥६६॥
एतावपि च तौ राजन्नरकान्तगतैषिणौ। जातौ शलभयोर्वंशे फलं भोक्तुं स्वकर्मणः ॥६७॥

यमलोक में ले गये हे राजन् ! मैंने भी जो कर्म किया था उसे आप सुनें । मैं आदि से अन्त तक सारी बातों को सबों को विस्मित कर देने वाले सारे वृत्तान्त को सुनाता हूँ ॥५३-५५॥ मैं प्राचीन काल में सर्वग नामक महानवंश में उत्पन्न ब्राह्मण था । मैं सौराष्ट्र देश में रहने वाला वेद वेदाङ्ग पारंगत था ॥५६॥ यह मेरी यशस्विनी पत्नी मञ्जूकषा नाम वाली थीं । यह महाभागा पतिव्रता तथा पवित्र वंश में उत्पन्न थी ॥५७॥ हे महाराज ! मैं विद्या, अवस्था और धन के कारण प्रमत्त था उस समय मैंने अपने माता-पिता की आज्ञा का मन से उल्लंघन किया क्योंकि मैं युवा था ॥५८॥ मैं सभा में बहुत अधिक प्रशंसित था और वन में रहकर सभी कर्मों को करता था ॥५९॥ मेरे माता-पिता पाप परायण थे वे बहुत अधिक बोलने वाले दया रहित पाखण्डियों के साथ रहने वाले और लोभी थे ॥६०॥ पौरुष, जीवन, धन तथा वंश, विद्या तथा यश इन सबों को मेरे माता-पिता विफल बना दिए ॥६१॥ हे राजन् ! मैंने इन सारी बातों का बार-बार विचार करके अपमान पूर्वक कल्याण प्रदान करने वाली माता-पिता सेवा को करना छोड़ दिया ॥६२॥ हे राजन् ! इस कर्म के कारण मैं यम की आज्ञा से अपनी पत्नी के साथ उसी नरक में यमदूतों के द्वारा डाल दिया गया जिसमें ये पापियों में श्रेष्ठ थे ॥६३॥ हे राजन् ! इन दोनों पापियों के साथ मैं अपनी पत्नी के साथ जितने समय तक रहा उसे आप सुनें ॥६४॥ हजार करोड़ तथा सौ करोड़ युगों तक नरक में महान दुःख का अनुभव किया ॥६५॥ हे राजन् ! नरक के अन्त में मैं और मेरी पत्नी मनुष्यों के मांस को खाने वाले गृध्र पक्षी के वंश में उत्पन्न हुआ ॥६६॥ हे राजन् ! नरक के अन्त में

यदेताभ्यां कृतं कर्म राजञ्छलभजन्मनि। तदाकर्णय वक्ष्यामि श्रोतॄणां विस्मयप्रदम् ।।६८।।
एकदा सुमहान्वायुः समायातो महीपते !। उड्डीय पातितौ तेन गङ्गागर्भे सुनिर्मले।।६९।।
निपत्य गङ्गासलिले कोमलाङ्गाविमौ तथा । जग्मतुःपञ्चतां सद्यः समस्तकलुषापहम्।।७०।।
ततोनेतुमिमौदूता आयाताश्चारुचक्षुषः । आयातानि विमानानि सर्वभोगन्वितानिच ।।७१।।
विमुक्तौ सर्वपापेभ्यस्तुलसीमाल्यशोभितौ । दिव्यं विमानमारुह्य गतौ विष्णुपुरं प्रति।।७२।।
तावत्कालं स्थितौ राजन्ब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः। ब्रह्माज्ञया समायातौ तत इन्द्रपुरं प्रति ।।७३।।
भुक्तवन्तौ सुखं तत्र दुर्लभं यत्सुरैरपि। तावत्कालं स्थितौ राजन्भोक्तु कृस्नांवसुन्धराम्।।७४।।
पवित्रे भवतो वंशे जातावेतौ महायशौ। गङ्गायां त्यजतो देहं भूयो जन्म न विद्यते।।७५।।
तथापि वसुधां भोक्तुं जातौ पुण्यतमाविमौ ।
चिरं भुक्त्वा मही कृत्स्नां पुत्रपौत्रसमन्वितौ ।।७६।।
गङ्गामरणमासाद्य योगिनामपिदुर्लभम्। नारायणस्य सायुज्यमिमौ भूप ! गमिष्यतः ।।७७।।
एतत्सर्वं मया प्रोक्तं पूर्ववृत्तान्तमेतयोः । जातिस्मरप्रभावेण नृपवर्गशिरोमणी ।।७८।।
गङ्गामरणमासाद्य गतावेतौ दशामिमाम् । आवयोःकःपरित्राणं करिष्यतिदुरात्मनोः ।।७९।।
मित्रावज्ञा मनुष्याणां नरकक्लेशदायिनी। ममैव पृथिवीपाल ! दृष्टा केवलमेव तत् ।।८०।।
पित्रभक्तिर्द्विजश्रेष्ठ ! इहाऽमुत्र च दुःखदा। इह सम्पद्विनाशाय परत्र नरकाय च।।८१।।

जाने की इच्छा वाले इन दोनों कीड़ों के वंश में अपने कर्म फलों को भोगने के लिए वंश उत्पन्न हुए।।६७।। राजन् इन दोनों ने अपने कीड़े के जन्म में जिन कर्मों को किया उसको श्रोताओं को आश्चर्यित करने वाले उस कर्म को मैं बतलाता हूँ ।।६८।। एक बार अत्यधिक जोर से आँधी आयी उसके द्वारा उड़कर ये दोनों गङ्गा नदी में गिर पड़े ।।६९।। गङ्गा जल में गिरकर अङ्गों के कोमल होने के कारण समस्त पापो को दूर करने वाली गङ्गाजी में मृत्यु को प्राप्त कर लिए ।।७०।। उसके पश्चात् हम दोनों को लेने के लिए सुन्दर नेत्र वाले दूत आये तथा सभी भोगों से युक्त सुन्दर विमान आये ।।७१।। सभी पापों से रहित तथा तुलसी की माला से सुशोभित ये दोनों दिव्य विमान पर चढ़कर भगवान् विष्णु के लोक में गये।।७२।। हे राजन् ! अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी के काल पर्यन्त उस लोक में रहे । ब्रह्माजी की आज्ञा से देवलोक में आये ।।७३।। वहाँ पर देवताओं को भी दुर्लभ सुखों को ये दोनों भोगे । उतने दिन तक रहने के बाद सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करने के लिए आपके पवित्र वंश में ये जन्म प्राप्त किए । गङ्गा में अपने शरीर का त्याग करने वाले का पुनः जन्म नहीं होता है ।।७४-७५।। फिर भी पृथिवी का भोग करने के लिए ये दोनों पुण्यवान जन्म लिए । दीर्घ काल तक सम्पूर्ण पृथिवी का ये अपने पुत्रों के साथ भोग भोगकर।।७६।। गङ्गा में अपने शरीर को त्यागकर योगियों के लिए भी दुर्लभ हे राजन् ! भगवान् नारायण के सायुज्य को प्राप्त कर लेंगे ।।७७।। जन्म के इस तरह इन दोनों के पूर्व वृतान्त को पूर्ण रूप से मैंने कहा । जाति स्मर होने के कारण हे राज श्रेष्ठ !।।७८।। गङ्गा के मरण को प्राप्त करके ये दोनों इस दशा को प्राप्त किए हैं। हम दोनों दुष्टों की रक्षा कौन करेगा ?।।७९।। मित्रों का अपमान करना मनुष्यों को नरक का कष्ट प्रदान करता है । हे राजन् ! केवल मैंने ही इसे देखा है ।।८०।। हे द्विज श्रेष्ठ ! माता-पिता का अपमान इस

वरं मन्ये महीपाल ब्रह्महत्यादिपातकम् । कदाचिन्निष्कृतिस्तस्मादियं भवति शाश्वती ।।८२।।
दुःखार्जितंपुण्यवृक्षं सर्वक्लेशविनाशनम् । पित्रवज्ञाकुठारेण च्छिन्दन्ति भुवि मानवाः ।।८३।।
यत्किञ्चिद्दीयते राजन्पित्र्ये वक्त्रे परन्तप !। तदश्नाति स्वयं विष्णुः पितृरूपो हरिर्यतः ।।८४।।
प्रत्यक्षदेवौ पितरौ सेवन्ते ये त्वहर्निशम्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां प्रसादाज्जगतीपतेः ।।८५।।
पितृभक्तिविहीना ये दिनं तिष्ठन्ति मानवाः ।
तावत्कल्पसहस्त्रंतु तिष्ठन्ति नरके जनाः ।।८६।।
तस्मादिदं महादुःखं बभूव मम साम्प्रतम्। मोक्षं कदा गमिष्यामि सदारोऽहं न वेद्मि तत्।।८७।।

व्यास उवाच

एतत्तस्य वचः श्रुत्वा प्रगृह्य द्विजसत्तम !। बभूव हर्षितो राजा विस्मितश्च पुनःपुनः ।।८८।।

राजोवाच

आश्चर्यं हि वचो गृध्र ! श्रुतमेतन्मुखात्तव । मम चैषां च हृदये प्रतीतिर्नहि जायते।।८९।।
अथाऽन्तरिक्षे वागुच्चैरिति जाता नृपोत्तम ! ।
सत्यं सत्यं सत्यमिदं सन्देहो नाऽत्रविद्यते ।।९०।।
ततः स पक्षी विप्रर्षे ! सहसा भार्यया सह ।
गङ्गामाहात्म्यकथनात्पूर्वस्थित इवाऽभवत् ।।९१।।
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जगुर्गन्थर्वसत्तमाः । ननृतुश्चाप्सरोवर्गा ह्यपतत्पुष्पवर्षणम्।।९२।।
विमानमागतं दिव्यं सर्वभोगसमन्वितम्। समायाता दूतगणाः प्रेषिताः कैटभद्विषा ।।९३।।

लोक और परलोक में दुःख देता है । वह इस लोक में सम्पत्ति का विनाश कर देता है और परलोक में नरक प्रदान करता है ।।८१।। हे राजन् ! मैं ब्रह्महत्या इत्यादि पापों को अच्छा मानता हूँ । इन सबों से कभी भी तो शाश्वत मुक्ति होती है ।।८२।। दुःख से कमाये हुए पुण्य रूपी वृक्ष को जो सभी क्लेशों का विनाश करने वाला है उसको माता-पिता के अपमान रूपी कुल्हाड़ी से मनुष्य पृथिवी पर काटने का काम करते हैं ।।८३।। हे राजन् ! जो कुछ भी माता-पिता के मुख में दिया जाता है उसका भोग श्रीहरि करते हैं क्योंकि श्रीहरि स्वयं पितृस्वरूप हैं ।।८४।। जो लोग प्रत्यक्ष देवता माता-पिता की दिन-रात सेवा करते हैं उन लोगों को श्रीभगवान् की कृपा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है ।।८५।। माता-पिता की भक्ति से रहित जो लोग जितने दिन तक रहते हैं उतने हजार कल्प तक नरक में रहते हैं ।।८६।। उसी के कारण मुझको यह महादुःख प्राप्त हुआ है ।।८७।। **व्यासजी ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके इस वचन को सुनकर और उसको धारण करके राजा हर्षित हुए और बार-बार आश्चर्यित हुए ।।८८।। **राजा ने कहा—** हे गृध्र ! तुम्हारे मुख से मैंने यह आश्चर्य ही सुना है । मुझको तथा इन लोगों को इस पर विश्वास नहीं हो रहा है ।।८९।। उसके बाद वहाँ जोर से आकाशवाणी ने कहा इसने जो कहा है वह परम सत्य है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ।।९०।। हे विप्रर्षे ! उसके बाद वह पक्षी अचानक अपनी पत्नी के साथ गङ्गा का माहात्म्य वर्णन करने के कारण पहले ही समान हो गया ।।९१।। आकाश में दुन्दुभि बजने लगी और श्रेष्ठ गन्धर्वों ने गीत गाया । अप्सराओं ने नृत्य किया और पुष्पों की वर्षा हुयी ।।९२।। वहाँ सभी भोगों से युक्त दिव्य

अथाऽसौ सर्वगो विप्र ! प्रियया सह भार्यया ।
सद्योविमानमारुह्य जगाम भवनं हरेः ॥९४॥
एतच्छुत्वाऽद्भुतं कर्म स राजा द्विजसत्तम ! ।
सपुत्रदारः सेवायां गङ्गायास्तत्परोऽभवत् ॥९५॥
भागीरथ्या समं तीर्थं नास्ति वै भुवनत्रये । यन्नामोच्चारणादेव सर्वगो मोक्षमाप्तवान् ॥९६॥
गङ्गाद्वारस्य माहात्म्यं कथितं ते द्विजोत्तम ! ।
समस्तपापविध्वंसि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥९७॥
अध्यायमेतत्परमादरेण पठन्ति ये देवगृहे मनुष्याः ।
शृण्वन्ति ये च द्विजवर्गभक्ता नश्यन्ति तेषां दुरितानि सद्यः ॥९८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे गङ्गाद्वारमाहात्म्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

विमान आ गया और श्रीभगवान् के द्वारा प्रेषित दूत आ गये ॥९३॥ उसके पश्चात् हे विप्र ! वे सर्व अपनी प्रिय पत्नी के साथ शीघ्र ही विमान पर चढ़कर श्रीहरि के लोक में चले गये ॥९४॥ इस अद्भुत कर्म को सुनकर वह राजा अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ गङ्गाजी की सेवा में तत्पर हो गये ॥९५॥ गङ्गा के समान त्रैलोक्य में कोई तीर्थ नहीं है । गङ्गाजी के नाम का उच्चारण करने के कारण सर्वग ने मोक्ष प्राप्त कर लिया ॥९६॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने आपको गङ्गाद्वार का माहात्म्य सुनाया । वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है अब दूसरी कौन सी बात सुनना चाहते हो ?॥९७॥ जो मनुष्य इस अध्याय को श्रीभगवान् के मन्दिर में भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं तथा जो ब्राह्मण भक्ति पूर्वक सुनाते हैं, उनके पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं ॥९८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोग सार खण्ड के अन्तर्गत गङ्गाद्वार माहात्म्य वर्णन नामक तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हो गया ।।३।।

चौथा अध्याय

जैमिनिरुवाच

गङ्गाद्वारस्य माहात्म्यं त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं मया। प्रयागस्य च माहात्म्यमिदानीं श्रोतुमिष्यते ॥१॥
गङ्गाब्धिसङ्गमस्याऽपि माहात्म्यं कथ्यतां मुने ! ।
न सम्यक्कथितुं कोऽपि शक्नोति त्वदृते क्षितौ ॥२॥

व्यास उवाच

प्रयागस्य फलं वत्स ! गङ्गाब्धिसङ्गमस्य च ।
सम्यग्वक्तुं न शक्नोमि सङ्क्षेपाच्छ्रूयतां द्विज ! ॥३॥
कोटिब्रह्माण्डमध्येषु यानि तीर्थानि वै मुने ! ।
प्रयान्ति तानि सर्वाणि प्रयागम्प्रतिमां तु किम् ॥४॥
गङ्गाया यमुनायाश्च सरस्वत्याश्च सङ्गमम् । प्रशंसन्ति सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥५॥
मकरस्थे रवौ माघे स्नानं ये तत्र कुर्वते। तेषामागमनं नास्ति विष्णुलोकात्कदाचन॥६॥
गवां कोटिसहस्राणि वाजिमेधमुखाध्वराः । मेरुतेल्यसुवर्णानि दानान्यन्यानि च द्विज ! ॥७॥
कुरुक्षेत्रे पुष्करे च प्रभासे च गयासु च। हुत्वा दत्त्वा च विप्रेभ्यो यत्फलं प्राप्यते बुधैः॥८॥
माघे स्नात्वाप्रयागे तु तस्मात्कोटिगुणं भवेत् ।
तस्मात्समस्ततीर्थानां प्रयागःपरमःस्मृतः ॥९॥
सिंहराशिस्थिते सूर्ये गोदावर्यां द्विजोत्तम !। चिरमुग्रं तपस्त्प्त्वा स्नानदानव्रतादिभिः ॥१०॥

व्यास जैमिनि संवाद के अन्तर्गत प्रयाग माहात्म्य के वर्णन के प्रसङ्ग में प्रणिधि वैश्य की कथा का वर्णन

जैमिनि महर्षि ने कहा— आपकी कृपा से मैंने गङ्गाद्वार का माहात्म्य सुना । अब मैं प्रयाग का माहात्म्य सुनना चाःहता हूँ ॥१॥ हे मुने ! गङ्गा सागर का भी माहात्म्य आप कहें पृथिवी पर आप से भिन्न कोई भी इसे अच्छी तरह से नहीं कह सकता है ॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** हे वत्स ! प्रयाग तथा गङ्गा सागर के माहात्म्य को मैं अच्छी तरह से नहीं कह सकता हूँ । इसे तुम संक्षेप में सुनो ॥३॥ करोड़ों ब्रह्माण्डों के बीच में जितने भी तीर्थ हैं वे सबके सब प्रयाग में जाते हैं मेरे विषय में क्या कहना है ॥४॥ गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती इन तीनों के सङ्गम की प्रशंसा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि करते हैं ॥५॥ माघ के महीने में जब सूर्य मकर राशि के होते हैं उस समय जो मनुष्य वहाँ स्नान करते हैं । वे कभी भी विष्णु लोक से इस लोक में नहीं आते हैं ॥६॥ हे द्विज ! करोड़ों गायों का दान करने से, अश्वमेध आदि यज्ञों को करने से तथा सुमेरु पर्वत के समान सुवर्णों तथा दूसरे दानों को करने से पुष्कर, कुरुक्षेत्र, प्रभास क्षेत्र तथा गया में हवन करके तथा ब्राह्मणों के दान करने से विद्वानों को जिस फल की प्राप्ति होती है ॥७-८॥ माघ के महीने में प्रयाग में स्नान करने से उसके करोड़ गुणा फल प्राप्त होता है । इसलिए सभी तीर्थों में प्रयाग को श्रेष्ठ कहा गया है ॥९॥ सिंह राशि के सूर्य के होने पर हे द्विजोत्तम ! गोदावरी

वेदागमपुराणोक्तं यत्पुण्यमक्षयं भवेत्। माघे स्नात्वा प्रयागे तु तत्पुण्यं नाऽत्रसंशयः ॥११॥
फाल्गुने कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामुपोषितः। काश्यां यत्फलमाप्रोति तन्मे निगदतः शृणु ॥१२॥
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्विमुक्तः सर्वरूपधृत्। उद्धृत्य कोटिपुरुषाञ्छिवेन सह मोदते ॥१३॥
माघे मासे प्रयागे तु स्नात्वा सकृदपि द्विज !।
कल्पकोटिशतं विष्णुं सम्पूज्याऽन्यत्र यत्फलम् ॥१४॥
एकाहमपि सम्पूज्य मकरस्थे दिवाकरे। सत्यं सत्यमहं वच्मि सर्वमेवाऽक्षयं भवेत् ॥१५॥
यावद्दिनं माघमासे तत्र तिष्ठति मानवः। तावत्कल्पशतं विप्र ! मोदते विष्णुना सह॥१६॥
गङ्गायमुनयोस्तोये स्नानं येन कृतं सकृत्। सद्यस्तद्दर्शनात्पापैर्मुच्यते सर्वपातकैः ॥१७॥
तर्तुं यदीच्छन्ति जनाः संसाराब्धिं सुदुस्तरम् ।
गङ्गायमुनयोः स्नात्वा भक्त्या पश्यन्तु माधवम् ॥१८॥
त्यजन्ति मानवास्तत्र यदिच्छन्तः कलेवरम् ।
सद्यो लभन्ते विप्रर्षे ! तत्तदेव न संशयः ॥१९॥
इतिहासमिहैवाऽहं कथयामि निशामय। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥२०॥
प्रणिधिर्नाम तत्राऽऽसीद्वैश्य एको महाधनी। विप्रभक्त्येकनिरतो देवतातिथिपूजकः ॥२१॥
तस्य पद्मावती नाम धर्मपत्नी पतिव्रता। चार्वङ्गी शीलयुक्ता च कुलजा प्रियवादिनी ॥२२॥

में उक्त स्नान, दान और व्रत करके वेद, आगम तथा पुराण आदि में उक्त जो अक्षय पुण्य होता है उस पुण्य की प्राप्ति प्रयाग में स्नान करने मात्र से होती है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं ॥१०-११॥ फाल्गुन मास की चतुर्दशी तिथि को काशी में उपवास करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसको मैं कह रहा हूँ तुम सुनों ॥१२॥ वह सभी रूपों को धारण करने वाला करोड़ों जन्म में किए गये सभी पापों से मुक्त होकर अपने करोड़ों पूर्व पुरुषों का उद्धार करके शिवजी के साथ आनन्दानुभव करता है ॥१३॥ माघ मास में प्रयाग में एक दिन भी स्नान करके, करोड़ों तथा सैकड़ों कल्पों तक अन्यत्र भगवान् विष्णु की पूजा करके जिस फल की प्राप्ति होती है ॥१४॥ एक दिन भी मकरस्थ सूर्य के होने पर उनकी पूजा करके उसके द्वारा किए गया सब कुछ अक्षय हो जाता है। यह मैं परम सत्य कहता हूँ ॥१५॥ माघ के महीने में मनुष्य जितने दिन प्रयाग में रहता है, हे विप्र ! उतने सौ कल्पों तक वह भगवान् विष्णु के साथ आनन्दित होता है ॥१६॥ गङ्गा तथा यमुना के जल में जिसने एक बार भी स्नान कर लिया है उसके दर्शन मात्र से समस्त पापों से मुक्त मनुष्य हो जाता है ॥१७॥ यदि मनुष्य संसार सागर को पार करना चाहते हैं तो उनको गङ्गा तथा यमुना में स्नान करके भक्ति पूर्वक माधव भगवान् का दर्शन करना चाहिए॥१८॥ मनुष्य वहाँ पर स्नान करके जो-जो प्राप्त करना चाहते हैं उन सबों को वे शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१९॥ इस विषय में मैं एक इतिहास कहता हूँ उसे तुम सुनो। उसको सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२०॥ वहाँ पर प्रणिधि नामक एक महाधनी वैश्य रहता था। वह केवल ब्राह्मणों की सेवा में लगा रहता था तथा देवताओं और अतिथियों की पूजा करता था॥२१॥ उसकी पद्मावती नाम की पतिव्रता पत्नी थी वह सुन्दर अङ्गों वाली शील गुण युक्त सद्वंश में

स्त्रीणां योग्या गुणा ये ये सृष्टाः श्रीपरमेष्ठिना ।
तच्छरीरेगुणास्ते ते निवसन्ति द्विजोत्तम ! ॥२३॥
अथाऽसौ प्रणिधिर्वैश्यः समादाय धनं बहु ।
वाणिज्यार्थे गतो विप्र ! शुभे लग्ने शुभे तिथौ ॥२४॥
धनाद्धर्मः प्रभवति धनाच्च विपुलं यशः। धनात्कुलमवाप्नोति भवेत्किं वा धनादृते॥२५॥
धनहीनं जनं दृष्ट्वा सखाऽपि वा पलायते ।
मेघः शरद्यम्बुहीनः खण्डं खण्डं नयेन्महत् ॥२६॥
खादितुं प्राप्यते यावत्तावदेव हि बान्धवाः । धनंय स्य कुलं तस्य बुद्धिस्तस्य स पण्डितः॥२७॥
अर्थैर्विहीनः पुरुषो जीवन्नपि मृतोपमः । धर्मार्थविद्यार्जनतो मतिर्यस्य निवर्तते ॥२८॥
ज्ञेयः स मूर्खः सुतरामधिकस्याऽधिकम्फलम् ।
कर्त्तव्यः सततं धर्मश्चाऽर्जितव्यं सदा धनम् ॥२९॥
शिक्षितव्या सदा विद्या पुम्भिरेवं विचक्षणैः ।
दानाद्धनं च विद्या च वर्धते प्रतिवासरम् ॥३०॥
धर्मस्तु वर्धते दानान्नधनेन विना नृणाम्। काष्ठं तृणं तुषं वाऽपि सम्प्राप्य न परित्यजेत्॥३१॥
पुमान्सञ्चयशीलो हि कदाचिन्नाऽवसीदति । ततोऽसौ प्रणिधिर्वैश्यो नियोज्यस्त्रियमालये॥३२॥
गृहव्यापारनिष्णातो वाणिज्येन जगाम ह। अथैकदा तस्य पत्नी गृहीत्वोर्द्वर्तनादिकम्॥३३॥
सखीभिः सह विप्रर्षे ! जगाम स्नानहेतवे। ततो धनुर्ध्वजो नाम स्वयं च पातकाश्रयः॥३४॥

उत्पन्न और प्रिय वादिनी थी ॥२२॥ स्त्रियों के योग्य जिन-जिन श्रेष्ठ गुणों की सृष्टि परमेष्ठी ब्रह्माजी ने की है, हे द्विजोत्तम ! वे सभी गुण उसके शरीर में थे ॥२३॥ इसके बाद प्रणिधि वैश्य बहुत अधिक धन लेकर व्यापार करने के लिए शुभ लग्न में और शुभ तिथि में गये ॥२४॥ धन से धर्म होता है और उससे बहुत अधिक यश होता है । धन से ही कुल बढ़ता है धन के बिना कुछ भी नहीं होता है ॥२५॥ धनहीन मनुष्य को देखकर मित्र भी भाग जाते हैं जल से रहित मेघ शरद् ऋतु में अनेक टुकड़ों वाला हो जाता है ॥२६॥ जब तक खाने के लिए मिलता रहता है तब तक ही बन्धुजन साथ रहते हैं । जिसके पास धन और वही बुद्धिमान है वही पण्डित है ॥२७॥ धन से रहित मनुष्य जीवित भी रहकर मृत के सदृश हो जाता है । जिसकी बुद्धि धर्म, अर्थ और विद्या के अर्जन से हट जाती है ॥२८॥ उसको महामूर्ख समझना चाहिए और अधिक धन का तो अधिक ही फल होता है । अतएव सदा धर्म करना चाहिए और सदा धनार्जन करना चाहिए ॥२९॥ बुद्धिमान व्यक्ति को सदा विद्यार्जन करना चाहिए । दान करने से धन और विद्या प्रतिदिन बढ़ते हैं ॥३०॥ दान से ही धर्म होता है और धन से ही दान होता है । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह काष्ठ, तृण अथवा भूसी भी प्राप्त करके उसको न छोड़े ॥३१॥ सञ्चय करने वाला मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता है । उसके बाद वह प्रणिधि वैश्य स्त्री को अपने घर में रखकर ॥३२॥ गृह के व्यापार करने में चतुर वह प्रणिधि वैश्य व्यापार करने के लिए चला गया । एक बार उसकी पत्नी उद्वर्तन (उबटन) आदि लेकर ॥३३॥ हे विप्रर्षे ! अपनी सखियों के साथ स्नान करने के लिए गयी । धनुर्ध्वज नामक पापी

निजेच्छया प्रकुर्वन्तीं स्नानकर्म ददर्श ताम्। विकसत्स्वर्णपुष्पाढ्यां प्रफुल्लकमलाननाम्॥३५॥
मृगशावदृशं चारुपीनोन्नतपयोधराम्। तां वैश्यपत्नीमालोक्य श्वपचोऽसौ स्मरातुरः॥३६॥
उवाच प्रहसन्वाणीं निजमूर्तिमचिन्तयन् ॥३७॥

धनुर्ध्वज उवाच

काऽसि कल्याणि सुश्रोणि ! चारुहासिनि सुन्दरि ! ।
मनो हरसि मे कस्मात्सुयौवनरसैः प्रिये ! ॥३८॥
विशालजघने तन्वि ! मया गुणवता सह । गुणवत्या त्वया सर्वं सुखमत्यनुभूयताम् ॥३९॥
धनुर्ध्वजवचः श्रुत्वा तस्याःसख्यस्ततोद्विज ! ।
ऊचुर्वाक्यं तथा क्रुद्धाःसन्दष्टदशनच्छदाः ॥४०॥

सख्यऊचुः

अरे मूढ ! दुराचार ! दुराचारकुलोद्भव ! ।
पादनिष्प्रेक्षणमपि नैतस्यास्ते प्रदीयते ॥४१॥
इयं पतिव्रता नारी धर्मकर्मपरायणा । आत्मनः सुखमिच्छद्भिः पापदृष्ट्या न दृश्यते ॥४२॥
परस्त्रीमुखसौन्दर्यं परद्रव्यं च सर्वदा। दृष्ट्वा कामाग्निसङ्क्लिन्ना दह्यन्ते मूढमानसाः॥४३॥
याहि पापमते दूरं मा वदोक्तिं सुदुःसहाम्। वयमेव भवन्तं न स्पृशामश्चरणैरपि ॥४४॥

धनुर्ध्वज उवाच

धिगस्त्वमुं जातिशब्दं सम्पन्नोऽप्यखिलैर्गुणैः ।
सम्भावितो न युष्माभिः श्वपचत्वे यतोऽधुना ॥४५॥
सौवर्णमदिरापूर्णाभ्यन्तरं कलशं स्थितम्। सम्प्राप्य को नगृह्णाति तद्गुणग्रामवित्पुमान्॥४६॥

ने ॥३४॥ अपनी इच्छा के अनुसार स्नान करती हुयी उसको देखा । विकसित स्वर्णिम पुष्पों से परिपूर्ण विकसित कमल के समान मुख वाली उसको देखा हिरण के बच्चे के समान उसके सुन्दर नेत्र थे । सुन्दर तथा मोटे एवं उठे हुए उसके स्तन थे । वैश्य की उस पत्नी को देखकर वह चाण्डाल कामार्त हो गया॥३६॥ वह अपने शरीर को देखे बिना ही जोर से हँस कर कहा ॥३७॥ **धनुर्ध्वज बोला**— हे सुन्दर श्रोणी प्रदेश वाली, और मनोहर मुस्कान वाली सुन्दरि ! तुम कौन हो ? हे सुन्दरि ! आपने सुन्दर यौवन रस से मेरे मन को आकर्षित कर रही हो ॥३८-३९॥ हे द्विज ! धनुर्धर की वाणी सुनकर उसकी सखियाँ क्रोध से अपने ओष्ठो को काटती हुयी कहीं ॥४०॥ **सखियों ने कहा**— अरे दुराचारी वंश में उत्पन्न दुराचारी दुष्ट तुम तो इसके चरणों को भी देखने के योग्य नहीं प्रतीत हो रहे हो ॥४१॥ यह पतिव्रता नारी है और धर्म कर्मो को करती रहती है । अपने सुख को चाहने वाले पापी इसको अपनी आँखों से भी नहीं देख सकते हैं ॥४२॥ दूसरे की स्त्री के मुख के सौन्दर्य तथा दूसरे के धन को देखकर मूर्ख मनुष्य सदा कामाग्नि से दुःखी होकर जलते रहते हैं ॥४३॥ हे पापी ! तुम दूर चले जाओ असहय बातें न बोलो । हमलोग तुमको अपने चरण से भी नहीं छू सकती हैं ॥४४॥ **धनुर्ध्वज ने कहा**— इस जाति शब्द को धिक्कार है सभी गुणों से सम्पन्न भी मैं चाण्डाल होने के कारण आपलोगों से नहीं समादृत हो रहा

अतोऽहं युवतीमेनां यथा प्राप्नोमि साम्प्रतम् ।
तथा कुरुत हे सख्य:शरणं भोगतोऽस्मि यत् ।।४७।।
इति ब्रुवन्तं तं मूढं भूयो भूयो द्विजोत्तम ! ।
ऊचुर्वाक्यमिदं तास्तु जातात्यन्तकुतूहला: ।।४८।।

सख्यऊचु:

यद्येतां रमणीं नूनमिच्छसि त्वं सुदुर्मते !। गङ्गायमुनयो: शीघ्रं शरीरं सङ्गमे त्यज ।।४९।।
मिथ:कृतमुखालोका हसन्त्यस्तास्ततो द्विज ! ।
तां साधुपत्नीमादाय ययुर्निजगृहान्तरम् ।।५०।।
ततोऽसौ श्वपचो मोहाद् ब्रह्महत्यासहस्रकृत् ।
गङ्गायमुनयोस्तोये तामिच्छन्पञ्चतां गत: ।।५१।।
तत्स्वामिसदृशाकार: समस्तगुणवान्बली। स एव च श्वपाकोऽसोस्ववृत्तान्तंस्मरन्नभूत् ।।५२।।
ततोऽसौ प्रणिधिर्वैश्यस्तस्मिन्नव दिने शुभे। कृत्वा वाणिज्य मायात:स्वकीयं निलयं प्रति ।।५३।।
श्वपाकोऽपि ततो विप्रस्तस्या वासं विवेश ह ।
प्रणिधे: सदृशो रूपैर्वयोभिश्च गुणैरपि ।।५४।।
एकाकारौ समलोक्य पुर:स्थौ तौ गुणाकरौ ।
कस्याहं दयिता को वा मम भर्त्तेत्यचिन्तयत् ।।५५।।
तत: सा विस्मिता साध्वी विलोक्य तत्पतिद्वयम् ।
तुष्टाव माधवं देवं वचनै:कोमलाक्षरै: ।।५६।।

हूँ।।४५।।मदिरा से भरा हुआ भी सुवर्ण कलश भी उसके गुण समूह को जानने वाला कौन पुरुष होगा जो उसको न ले ले ।।४६।। अतएव मैं इस युवती को जैसे प्राप्त कर सकूँ हे सखियों ! तुम लोग वैसा ही कार्य करो । मैं आपलोगों के शरण में आया हूँ ।।४७।। इस तरह से बार-बार कहने वाले उस मूर्ख को हे द्विजोत्तम ! अत्यन्त कुतूहल से युक्त उन सखियों ने कहा ।।४८।। **सखियाँ बोलीं**— हे मूर्ख ! यदि तुम इस नारी को प्राप्त करना चाहते हो तो शीघ्र ही गङ्गा और यमुना नामक नदियों में जाकर अपने शरीर का त्याग कर दो ।।४९।। परस्पर में एक दूसरे के मुख को देखती हुयी तथा हँसती हुयी वे सब वैश्य की पत्नी को अपने साथ लेकर अपने घर में चली गयीं ।।५०।। उसके बाद वह हजारों ब्राह्मणों की हत्या करने वाला चाण्डाल अज्ञानवश उसको प्राप्त करने की इच्छा से गङ्गा तथा यमुना के जल में जाकर मर गया ।।५१।। उसके पति के समान आकार वाला तथा समस्त गुणों से सम्पन्न बलवान् वह चाण्डाल अपने वृत्तान्त का स्मरण करने वाला हो गया ।।५२।। उसके पश्चात् वह प्रणिधि वैश्य उसी शुभ दिन व्यापार करके अपने घर आया ।।५३।। हे विप्र ! वह चाण्डाल भी उसके घर में प्रवेश किया । प्रणिधि के ही समान रूप, अवस्था और गुणों से युक्त ।।५४।। एक समान आकार वाले सामने स्थित आकार वाले उन दोनों को देखकर वह सोचने लगी कि मैं किसकी प्रिया पत्नी हूँ ? और कौन मेरा पति है ?।।५५।। उसके पश्चात् वह साध्वी उन दोनों पतियों को देखकर भगवान् माधव की कोमल अक्षरों वाली स्तुतियों से स्तुति

पद्मावत्युवाच

नमामि गोविन्दमनन्तमूर्तिं शक्रादिदेवार्चितपादपद्मम् ।
योगेश्वरं योगविदां शरण्यं योगप्रदं योगिभिरर्चनीयम् ॥५७॥
नमोऽस्तु ते कैटभमर्दनाय नमो मधुध्वंसकराय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु कंसासुरनाशनाय नमोऽस्तु चाणूरनिपातनाय ॥५८॥
नमोऽस्तु वेदोद्धरणाय नित्यं नमोऽस्तु भूम्युद्धरणाय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु पृथ्वीधरणक्षमाय नमोऽस्तु दैत्यान्तकराय तुभ्यम् ॥५९॥
गङ्गाम्बुधौताङ्घ्रियुगाय तुभ्यं नमोऽस्तु राजन्यकुलन्तकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणवंशहन्त्रे नमोऽस्तु दैत्यान्तकराय तुभ्यम् ॥६०॥
नमोऽस्तु ते चाऽसुरनाशकाय नमोऽस्तु ते म्लेच्छकुलान्तकाय ।
नमोऽस्तु ते हृत्कमलासनाय नमोऽस्तु ते सर्वरिपुध्वजाय ॥६१॥
प्रसीद गोपीजनवल्लभ ! प्रभो धृतैकहस्ताचल ! देवदेव ! ।
प्रसीद लक्ष्मीमुखपद्मभृङ्ग ! प्रसीद विष्णो ! सततं नमस्ते ॥६२॥
प्रसीद पद्मेक्षणचक्रपाणे ! कौमोदकीहस्तगदाधर ! त्वम् ।
प्रसीद विष्णो ! धृतपाञ्चजन्य ! नमोऽस्तु ते पद्मधराय नित्यम् ॥६३॥
संसारकौतूहलमन्दिरे ते मोहान्धकारे च विवेकदीपे ।
सम्मोहिता केशवमायया हि त्वदीयया नित्यमहं भ्रमामि ॥६४॥

की ॥५६॥ **पद्मावती ने कहा—** मैं अनन्त मूर्ति जिनके चरणारविन्द इन्द्रादि देवों से वन्दित हैं उन भगवान् गोविन्द को नमस्कार करती हूँ। वे योगेश्वर योग जानने वालों के रक्षक योग प्रदान करने वाले तथा योगियों के द्वारा पूजित होने योग्य हैं उनको मैं नमस्कार करती हूँ ॥५७॥ मधु एवं कैटभ नामक दोनों असुरों का मर्दन करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। कंसासुर का वध करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है तथा चाणूर नामक दैत्य को मारने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥५८॥ वेदों का उद्धार करने वाले श्रीभगवान् को नित्य ही मेरा नमस्कार है और पृथिवी का उद्धार करने वाले आप श्रीभगवान् को नमस्कार है। पृथिवी को धारण करने में समर्थ श्रीभगवान् को नमसकार है। दैत्यों का अन्त करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥५९॥ गङ्गा के जल से जिनके चरण कमल धोये गये हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है तथा क्षत्रियों के वंश का विनाश करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। रावण के वंश का विनाश करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। तथा दैत्यों का विनाश करने वाले आपको नमस्कार है ॥६०॥ असुरों का नाश करने वाले आपको नमस्कार है तथा म्लेच्छों के वंश का विनाश करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। हृदय कमल में निवास करने वाले तथा गरुड़ध्वज भगवान् को नमस्कार है ॥६१॥ हे गोपीजन बल्लभ प्रभो ! आप प्रसन्न होइये तथा अपने एक हाथ पर पर्वत धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। लक्ष्मीजी के मुख कमल का सेवन करने वाले भृङ्ग के समान श्रीभगवान् हम पर प्रसन्न हों। हे भगवन् विष्णो ! आपको सदैव नमस्कार है ॥६२॥ कमल के समान नेत्र वाले और अपने हाथ में चक्र धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। हे भगवन् ! आप आपने हाथ में कौमोदकी नामक गदा को धारण

विरिञ्चिसेन्द्रार्कमुखाः सुरेन्द्रा मायां न जानन्ति तवाऽसुरारे ! ।
मानुष्यहं किं तव वेद्मि मायां पुरो भ्रमं मे हर सानुकम्पम् ॥६५॥

व्यास उवाच

तस्याः स्तवं समाकर्ण्य भगवान्माधवः प्रभुः ।
समालोक्य जगन्नाथश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥६६॥
आविर्बभूव सहसा सूर्यकोटिसमप्रभः । सा मूर्ध्ना भूमिमालोक्य ववन्दे तत्पदद्वयम् ॥६७॥
नमस्ते कमलाकान्त ! भुक्तिमुक्तिफलप्रद ! ।
हर मे ज्ञानहीनायाः स्वकीयमतिविभ्रमम् ॥६८॥

श्रीभगवानुवाच

भ्रमं जहीहि चार्वङ्गि ! द्वावेतौ हि पती तव ।
एकभावेन सुश्रोणि ! कुरु सेवां तयोःसदा ॥६९॥
यश्च ते प्रणिधिः स्वामी मद्भक्तस्तरुणः सुधीः ।
भोक्तुं सुखफलं साध्वि ! सोऽभवद्द्विविधः स्वयम् ॥७०॥
अनन्तरूपिणीलक्ष्मीर्यथाक्रीडन्मया सह। तथात्वमपिसुश्रोणि ! भुङ्क्ष्व ताभ्यां सुखं सदा॥७१॥

पद्मावत्युवाच

एकस्या द्वौ पती देव ! न प्रशंसन्ति मानवाः ।
मग्नां लज्जाब्धिकल्लोले मामुद्धर दयामय ! ॥७२॥

करते हैं । तथा पाञ्चजन्य शङ्ख को धारण करने वाले भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों । हे कमल धारण करने वाले भगवन् ! आपको नमस्कार है ॥६३॥ संसार रूपी कौतूहल मन्दिर जो अज्ञानान्धकार से युक्त इस संसार में तथा विवेक दीप में भगवान् केशव की माया से मोहित होकर मैं भ्रमण करती हूँ ॥६४॥ हे असुरारे प्रभो ! आपकी माया को ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवता भी नहीं जान पाते हैं । मैं तो मानुषी हूँ आपकी माया को कैसे जान सकती हूँ । आप कृपा करके मेरे भ्रम को दूर कीजिए ॥६५॥ **व्यासजी ने कहा—** उसकी स्तुति को सुनकर चारो पुरुषार्थ रूपी फल को प्रदान करने वाले भगवान् माधव ॥६६॥ करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले सहसा प्रकट हो गये । वह शिर से श्रीभगवान् को नमस्कार करके उनके दोनों चरण कमलों की वन्दना की ॥६७॥ हे भोग तथा मोक्ष रूपी फल को प्रदान को प्रदान करने वाले लक्ष्मीकान्त प्रभो ! आपको नमस्कार है । मुझ ज्ञान हीन के मति भ्रम को आप दूर कर दें ॥६८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे सुन्दरि ! तुम भ्रम को त्याग दो । ये दोनों तुम्हारे पति हैं । इन दोनों की तुम एक समान सेवा करो ॥६९॥ तुम्हारे जो तरुण और मेरे भक्त प्रणिधि हैं । वे सुख रूपी फल का उपभोग करने के लिए एक ही दो रूपों वाले हो गये हैं ॥७०॥ जिस तरह अनन्त रूपों वाली लक्ष्मी मेरे साथ क्रीडा करती हैं हे सुन्दर श्रोणी प्रदेश वाली ! तुम भी इन दोनों से सदा सुखोपभोग करो ॥७१॥ **पद्मावती ने कहा—** हे देव ! एक ही स्त्री के दो पतियों की लोग प्रशंसा नहीं करते हैं । हे दयामय ! लज्जा रूपी सागर में डूबने वाली मेरी आप उद्धार करें ॥७२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे साध्वि रूप से प्रख्यात !

श्रीभगवानुवाच

यदाप्रकीर्त्तितः साध्वि ! बिभेषि त्वं ध्रुवं भुवि ।
तदा मत्पुरमागच्छ ताभ्यां सह वरानने ! ।।७३।।
विमानमागतं सद्यस्ततो भगवदाज्ञया। तौ समादाय वैकुण्ठं स गन्तुमुपचक्रमे ।।७४।।
अथ सा पथि गच्छन्ती भर्तृभ्यां सह जैमिने ! ।
ददर्शैकं महात्मानंरथस्थं स्त्रीसमन्वितम् ।।७५।।
धृतं कमलपत्राक्षै रतसीकुसुमप्रभैः। चतुर्भुजैर्दूतगणैरासीनैर्गरुडोपरि ।।७६।।
विष्णुदूतांस्ततस्तांस्तु विष्णुरूपान्वराङ्गना। कोऽयं रथस्थः पुरुष इति पप्रच्छ सा सती ।।७७।।
के वा यूयं महात्मानः पुण्डरीकनिभेक्षणाः ।
सर्वेऽपि विष्णुसदृशाः शङ्खचक्रादिपाणयः ।।७८।।
ततस्ते भगवद्दूता विष्णुतुल्यपराक्रमाः। विहस्योचुर्मुहुः सर्वे परमामोदसंयुताः ।।७९।।

विष्णुदूता ऊचुः

विष्णुदूता वयं साध्वि ! पुण्यात्मानमिमं जनम् ।
समादाय पदं याम उदारं लोकमुत्तमम् ।।८०।।

पद्मावत्युवाच

केनपुण्यप्रभावेण गतोऽयमीदृशीं गतिम्। विष्णुदूता महात्मानः कथ्यतामित्यहो मम ।।८१।।

विष्णुदूता ऊचुः

अयं बृहदध्वजो नाम राक्षसो लोकशोककृत्। अरण्यादिनिवासी च महाबलपराक्रमः ।।८२।।
परदारपरद्रव्यहारकः प्राणिघातुकः। गोमांसाशी निष्ठुरोक्तिभाषी च देवनिन्दकः ।।८३।।

तुम इस संसार में भयभीत हो रही हो तो अपने दोनों पतियों को साथ लेकर तुम मेरे सामने आओ ।।७३। उसी समय श्रीभगवान् की आज्ञा से विमान आ गया और वह दोनों को लेकर वैकुण्ठ जाने लगी ।।७४।। हे जैमिने ! अपने दोनों पतियों के साथ जाती हुयी मार्ग में रथ पर अपनी पत्नी के साथ जाते हुए एक महात्मा को वह देखी ।।७५।। कमल दल के समान वाले तथा अतसी कुसुम के सदृश कान्ति वाले चार भुजाओं वाले तथा गरुड़ पर बैठे हुए दूतों से धारण किए गये विष्णुदूतों को उसने देखा ।।७६।। उसके पश्चात् भगवान् विष्णु के समान रूप वाले उन भगवान् विष्णु के दूतों से उस वराङ्गन्ना ने पूछा रथ पर बैठे हुए ये कौन है ?।।७७।। और कमल के समान नेत्र वाले आपलोग कौन हैं ? आप सभी भगवान् विष्णु के समान रूप वाले हैं तथा हाथ में शङ्ख, चक्र धारण किए हैं ।।७८।। उसके पश्चात् भगवान् विष्णु के समान पराक्रम वाले वे विष्णुदूत जोर से हँसकर तथा अत्यन्त आनन्द युक्त होकर कहे ।।७९।। **विष्णुदूतों ने कहा—** हमलोग इनको लेकर परम पद में जा रहे हैं । ये पुण्यात्मा हैं तथा हमलोग हे साध्वि ! भगवान् विष्णु के दूत हैं ।।८०।। **पद्मावती ने कहा—** किस पुण्य के प्रभाव से इनको इस गति की प्राप्ति हुयी है महात्मा विष्णु दूतों इस बात को आप लोग मुझे बतलाइये ।।८१।। **विष्णु दूतों ने कहा—** यह संसार को सताने वाला बृहद्ध्वज नामक राक्षस वन में रहने वाला महान् बल तथा पराक्रम से सम्पन्न

यद्यत्पापरतं कर्म तदनेन कृतं सदा। स्वप्नेऽपि तु कृतं कर्म शुभं नच पतिव्रते ! ॥८४॥
अयं रथं समारुह्य सततं कामपीडितः । परस्त्रीहरणार्थाय सुश्रोणि ! नभसि भ्रमन् ॥८५॥
यां यां सुयौवनां नारीं यत्रयत्राऽयमीक्षते । बलाच्चलिङ्गितस्तां तु तत्रतत्र स्मरातुरः ॥८६॥
अथैकदा भीमकेशनाम्नो नरपतेः प्रियाम् । ददर्श क्रीडामध्यस्थां सुन्दरीं नवयौवनाम्॥८७॥
अथाऽसौ तां समालोक्य सुवर्णकुसुमप्रभाम् ।
इत्युवाच वचः प्रेम्णा का त्वमत्र करोषि किम् ? ॥८८॥
सा चोवाच ततः कान्ता भीमकेशस्य भूपतेः ।
अहं सुरतशास्त्राज्ञा केशिनी नामभूषिता ॥८९॥
अपि सर्वगुणज्ञां मां प्रेमहृष्टां न भूपषिः । स्ववंशजां दोषहीनां पश्यति क्षणमप्यसौ ॥९०॥
स्थीयते नित्यमत्रैव भर्त्रा खण्डितचर्यया। मया स्वकर्म शोचन्त्या विरहनलतप्तया॥९१॥
कस्त्वं कथमिदं प्राप्तमुद्यानं प्रति सत्तम !। समायातोऽसि तत्सर्वं प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥९२॥
अथायमित्याहवचःपूर्णचन्द्रनिभानने ! । मायावी राक्षसोऽहं त्वामालिङ्गितुमिहाऽऽगतः॥९३॥
जहीहि रुष्टभर्त्तारं सर्वदा दोषदर्शिनम्। तन्वि मां भज सर्वं ते दास्यामि सुखमुत्तमम् ॥९४॥
ततो विहस्य साध्वीयं राक्षसेन्द्रमिमं मुदा। बबन्ध बाहुलतया विन्यस्य वदने मुखम् ॥९५॥
सतामालिङ्ग्य युवतीं विवेकोद्वेगविह्वलम् ।
अनया सह सुश्रोणि ! दिव्यमारुढवान्रथम् ॥९६॥

था॥८२॥ दूसरे जीवों को मारने वाले तथा परस्त्री तथा पर द्रव्य का अपहरण करने वाला था । गौ का मांस खाने वाला तथा निष्ठुर खोलने वाला तथा देवताओं की निन्दा करने वाला था ॥८३॥ यह सभी पाप कर्मों को ही करता था । हे पतिव्रते ! स्वप्न में भी इसने कभी शुभ कर्म नहीं किया ॥८४॥ हे सुन्दरि यह रथ पर चढ़कर सदा काम से पीडित होने के कारण दूसरे की स्त्री का अपहरण करने के लिए आकाश में भ्रमण करता था ॥८५॥ यह जहाँ-जहाँ पर सुन्दर जवान स्त्री को देखता था वहाँ-वहाँ जाकर काम से आतुर बना हुआ उसका बल पूर्वक आलिङ्गन करता था ॥८६॥ एक बार यह भीम केश नामक राजा की सुन्दरी, नवयुवती पत्नी को क्रीडा करते हुए देखा ॥८७॥ सुवर्ण पुष्प की कान्ति वाली उसको देखकर इसने प्रेम से कहा तुम कौन हो ? और यहाँ क्या कर रही हो ?॥८८॥ उसके पश्चात् भीमकेश राजा की पत्नी ने कहा मैं सुरत शास्त्र (काम शास्त्र) को जानने वाली हूँ तथा मेरा नाम केशिनी है ॥८९॥ सभी गुणों को जानने वाली प्रेम भरी तथा प्रसन्न मुझको राजा नहीं देखते हैं । अपने वंश में उत्पन्न तथा दोष रहित मुझको क्षणभर भी वे नहीं देखते हैं ॥९०॥ अपने पति के द्वारा खण्डित कर्मों वाली मैं यहाँ सदैव रहती हूँ । मैं अपने कर्म को शोचती हुयी तथा विरहाग्नि से संतप्त सदा यहीं रहती हूँ ॥९१॥ हे सत्तम ! आप कौन हैं ? इस उद्यान में कैसे आये हैं ? इन सारी बातों को आप प्रसन्नता पूर्वक कहें ॥९२॥ उसके बाद हे चन्द्रमा के समान मुख वाली उसने कहा मैं माया करने वाला राक्षस हूँ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करने के लिए यहाँ आया हूँ ॥९३॥ तुम सर्वदा दोष देखने वाले और रुष्ट अपने पति को त्याग दो । हे सुन्दरि तुम मुझको अपना लो तुम्हें मैं हर प्रकार का सुख दूँगा ॥९४॥ हे सध्वि ! उसके बाद जोर से हँसकर वह प्रसन्नता पूर्वक उस राक्षसेन्द्र को उसके मुख पर अपना मुख रखकर अपनी भुजलता में बाँध ली॥९५॥

दम्पतीभावमाश्रित्य तौ जातावतिकौतुकम्। वायुवेगरथारूढौ यातौ गगनवर्त्मनि ॥९७॥
अथैनामयमित्याह पश्य तन्वि वरानने !। त्वद्भर्तृदेशादायातौ गङ्गासागरसङ्गमे॥९८॥
ततो रथस्थनारीयमधिगङ्गाब्धिसङ्गमम् । जगामपञ्चतांसद्यः सन्दृश्याऽत्यन्तसाध्वसैः ॥९९॥

विलप्य बहुधा साध्वीं तत्राऽयमपि राक्षसः ।
गतप्राणां समालोक्य सद्यो मृत्युं जगाम ह ॥१००॥

वैनतेयध्वजादेशादिमौ गलितकल्मषौ। नयामः पुण्यकर्माणौ वैकुण्ठम्प्रति सम्प्रति ॥१०१॥

जले स्थले चान्तरिक्षे गङ्गासागरसङ्गमे ।
देहं सन्त्यज्य गच्छन्ति पापिनो हि परां गतिम् ॥१०२॥

त्रैलोक्यदुर्लभं तीर्थं गङ्गासागरसङ्गमे। माघे तपसि शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ॥१०३॥

तत्र शुद्धिमवाप्नोति ब्रह्महाऽपि न संशयः ।
गङ्गाब्धिसङ्गमे स्नात्वा हरिं दृष्ट्वा च माधवम् ॥१०४॥
कार्त्तिकेयमुखं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।
कार्त्तिकेयो हरिः साक्षादित्यभेदः कृतः सदा ॥१०५॥
ये कार्त्तिकेयं पश्यन्ति ते सर्वे मोक्षगमिनः ।
सर्वतीर्थाधिकं तीर्थं गङ्गाब्धिसङ्गमं शृणु ॥१०६॥
जले स्थले चाऽन्तरिक्षे मृतो मोक्षमवप्नुयात् ॥१०७॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाविष्णुदूतास्ते तौ समादाय जैमिने ! ।
जग्मुर्विष्णुगृहं सर्वे सहसाऽऽकाशवर्त्मनि ॥१०८॥

वह उस युवती का आलिङ्गन करके विवेक रहित होने के कारण विह्वल उसके साथ दिव्य रथ पर चढ गया॥९६॥ पति-पत्नी के भाव को अपनाकर वे दोनों अत्यन्त कौतुक से सम्पन्न हो गये । वायु के वेग वाले रथ पर बैठे हुए वे दोनों आकाश मार्ग में चले गये ॥९७॥ उसके पश्चात् इसने कहा हे सुन्दर मुख वाली सुन्दरि ! देखो तुम्हारे पति के देश से गङ्गा सागर सङ्गम पर हमलोग आ गये हैं ॥९८॥ उसके बाद रथ पर बैठी हुयी वह नारी गङ्गा सागर सङ्गम में उसे अत्यन्त भय पूर्वक देखकर सद्यः मृत्यु को प्राप्त हो गयी ॥९९॥ उस साध्वी के लिए बहुत अधिक विलाप करके यह राक्षस उसको मरी हुयी देखकर सद्यः मर गया ॥१००॥ गरुड ध्वज भगवान् के आदेश से निष्पाप तथा पुण्य कर्म वाले इन दोनो को हमलोग वैकुण्ठ ले जा रहे हैं ॥१०१॥ गङ्गा सागर सङ्गम में जल, स्थल अथवा अन्तरिक्ष में पापी व्यक्ति भी अपने शरीर का त्याग करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०२॥ त्रैलोक्य में दुर्लभ गङ्गा सागर तीर्थ में माघमास के शुक्ल पक्ष एकादशी तिथि को उपवास करके ॥१०३॥ ब्रह्मघाती मनुष्य भी शुद्ध हो जाता है । गङ्गा सागर सङ्गम स्थल में स्नान करके तथा श्रीहरि माधव भगवान् का दर्शन करके ॥१०४॥ तथा कार्तिकेय का दर्शन करके मनुष्य पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करता है । कार्तिकेय साक्षात् श्रीहरि ही हैं, उन दोनों में कोई भेद नहीं हैं ॥१०५॥ जो कार्तिकेय का दर्शन करते हैं वे सभी मोक्ष को प्राप्त करते हैं । सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है गङ्गा सागर तीर्थ ॥१०६॥ यहाँ के जल, स्थल अथवा अन्तरिक्ष में अपने शरीर का त्याग करने

या च पद्मावती साध्वी भर्तृद्वयसमन्विता। गता सा रूपतां विष्णोश्चतुर्वर्गप्रदायिनः ॥१०९॥

तत्र भुक्त्वाऽखिलान्भोगान्दुर्लभान्द्विजसत्तम ! ।

परमं ज्ञानमासाद्य ययुःसारूप्यतां हरेः ॥११०॥

सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वतीर्थमयो हरिः। गङ्गायाश्च हरेश्चैव तस्माद्भक्तिर्विधीयते॥१११॥

गङ्गाब्धिसङ्गमे पूर्वं माधवो नाम भूपतिः। तप्त्वा तपश्चिरं तत्र सदारो मोक्षमाप्तवान्॥११२॥

जैमिनिरुवाच

त्वयोक्तो माधवः कोऽसौ किं कर्म स चकार ह ।

कथं तेपे तपस्तन्मे सर्वं कथय सत्तम ! ॥११३॥

व्यास उवाच

चरितं तस्य विप्रर्षे ! माधवस्य महात्मनः। आकर्णय प्रवक्ष्यामि समासेन महामते !॥११४॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे

व्यासजैमिनिसम्वादे प्रयागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

वाले मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०७॥ **व्यासजी ने कहा**— हे जैमिने ! यह कहकर वे विष्णु भगवान् के दूत उन दोनों को लेकर सहसा भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥१०८॥ जो पद्मावती नाम की नारी थी वह अपने दोनों पतियों के साथ चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली श्रीभगवान् की सारूप्यता को प्राप्त कर ली ॥१०९॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! वहाँ पर समस्त काम्य भोगों को भोगकर परमज्ञान को प्राप्त करके वे सब श्रीहरि के सारूप्य को प्राप्त किए ॥११०॥ गङ्गाजी सर्वतीर्थ मयी हैं और श्रीहरि भी सर्वतीर्थमय हैं । इसीलिए गङ्गाजी तथा श्रीहरि की भक्ति का विधान किया जाता है ॥१११॥ पहले गङ्गा सागर में माधव नामक राजा थे । वे वहाँ पर दीर्घकाल तक तपस्या करके अपनी पत्नी के साथ मोक्ष को प्राप्त कर लिए ॥११२॥ **जैमिनि महर्षि ने कहा**— आपने जिसे माधव कहा है वे कौन हैं ? तथा उन्होंने कौन सा कर्म किया । उन्होंने क्यों तपस्या की इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥११३॥ **व्यासजी ने कहा**— उन महात्मा माधव के चरित को हे विप्रर्षे ! आप सुनें; उसे मैं संक्षेप में कह रहा हूँ ॥११४॥ **इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के जैमिनि व्यास संवाद के अन्तर्गत प्रयाग वर्णन नामक चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।**

पाँचवा अध्याय

व्यास उवाच

अस्तितालध्वजा नाम नगरी त्रिदिवोपमा। सर्वलोकेषु विख्याता प्रकीर्णा गुणिनां गणैः ॥१॥

तत्राऽऽसीद्विक्रमो नाम राजा शुद्धकुलोद्भवः।
धार्मिकः सत्यवादी च प्रजापालनन्तपरः ॥२॥
तस्य हारावती नाम वल्लभा भुवि दुर्लभा।
आसीत्स्वकीयवदनप्रभाजितशशिप्रभा ॥३॥
तस्य चैव प्रिया राज्ञः स्त्रीगणेऽपि च तिष्ठति।
गङ्गेव सरितां भर्त्तुस्तिष्ठत्यपि सरिद्गणे ॥४॥

भूदेवदेवकृपया कालेन कियता द्विज !। व्यजायत सुतस्तस्यां सर्वलक्षणसंयुतः ॥५॥

शास्त्रोक्तविधिना तस्य स राजा सर्वशास्त्रवित्।
माधवेति ततो नाम चक्रवर्ती चकारह ॥६॥
ततोऽसौ माधवो विप्र ! कालेन कियता बली।
सर्वविद्यासरित्पारं गतः सद्गुणसङ्गतः ॥७॥

अथाऽसौ यौवराज्येन राज्ये नरपतंःसुतम्। सिक्तवांस्तं महीदेव ! सर्वदेवगणार्चकम् ॥८॥
एकस्मिन्दिवसे विप्र ! चतुरङ्गबलैर्वृतः। जगाम कौतुकेनाऽसौ मृगयायै महद्वनम् ॥९॥
तत्र हत्वा बहूञ्जतून्मध्याह्ने समये ततः। कृतवान्नगरं गन्तुमुद्यमं विपिनादसौ ॥१०॥
नगरं स्वकमागच्छत्ससैन्यो माधवो मुदा। ददर्श युवतीमेकां सरसि स्नानतत्पराम् ॥११॥
स्नानार्द्रैर्द्व्यवसनैर्व्यक्तीकृतकलेवराम्। स्वकीयमुखसौन्दर्यजितपूर्णनिशाकरम् ॥१२॥

विक्रमपुत्र माधव के वृत्तान्त के प्रसङ्ग में गङ्गासागर माहात्म्य का वर्णन

व्यासजी ने कहा— तालध्वज नाम की स्वर्ग के समान नगरी थी। वह गुणी समुदाय से भरी हुयी थी ॥१॥ वहाँ पर शुद्ध वंश में उत्पन्न राजा विक्रम थे। वे धार्मिक, सत्य वक्ता तथा प्रजाओं के पालन में तत्पर रहने वाले थे। उनकी संसार में दुर्लभ पत्नी का नाम हारावती था। वह अपने मुख की कान्ति से चन्द्रमा को जीत लेने वाली थी ॥२-३॥ उस राजा की वह पत्नी स्त्री समूह में भी रहकर गङ्गा के समान समुद्र में भी नदियाँ के समान अलग थी ॥४॥ हे देव ! ब्राह्मण की कृपा से कुछ समय में उसके गर्भ से सभी लक्षणों से सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५॥ सभी शास्त्रों के ज्ञाता राजा ने शास्त्रीय विधि से उसका नाम माधव चक्रवर्ती रखा ॥६॥ हे विप्र ! उसके पश्चात् बलवान् तथा सभी सद्गुणों से सम्पन्न माधव सभी विद्याओं को प्राप्त कर लिए ॥७॥ उसके पश्चात् राजा ने अपने पुत्र को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। माधव सभी देवताओं की अर्चना करते थे ॥८॥ हे विप्र ! वह कौतुक पूर्ण होकर अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ आखेट करने के लिए महावन में गये। वहाँ पर बहुत से जन्तुओं को मारकर दोपहर के समय में वे अपने नगर में जाने के लिए प्रयास किए ॥९-१०॥ अपने नगर में प्रसन्नता पूर्वक आते हुए

सुवर्णकुण्डलद्वन्द्वविभ्राजद्गण्डमण्डलाम् । सुदीर्घकेशकैश्छन्ननितम्बां चारुहासिनीम् ॥१३॥
सुवर्णपद्मकलिकाचारून्नतपयोधराम् । मृगारिकृशमध्यां च वसन्ते कोकिलस्वराम् ॥१४॥
यूनां मनोहरा राज्ये कन्दर्पेण महात्मना। अरोपिता पताकेव सुन्दरी सा व्यराजत ॥१५॥
तादृशीं तां समालोक्य प्रान्तरे सङ्गवर्जिते ।
कः कामवशगो न स्यात्क्षितौ प्राणान्वहन्पुमान् ॥१६॥
अथ विक्रमपुत्रोऽसौ तामालोक्य वराननाम् ।
कन्दर्पबाणव्रणितहृदयश्चेत्यचिन्तयत् ॥१७॥
एतस्याःसदृशी काऽपि न दृष्टा क्षितिमण्डले ।
एतामिह समालिङ्ग्य सफलं जन्म चेष्यते ॥१८॥
श्रेष्ठोऽस्मि सर्वलोकानां वयस्तेजोगुणैरहम् ।
यद्यपीन्द्राङ्गनेयं स्यान्नेतव्याऽद्य तथापि च ॥१९॥
परस्त्रीहरणे यो वा दोषो भवति साम्प्रतम् ।
को वा शक्नोतितद्वक्तुं यतो राजा पिता मम ॥२०॥
इतिसञ्चिन्त्य मनसा दृढं कामवशंगतः । दूरे संस्थाप्य सैन्यानि ययौ सा स्नाति यत्र ह॥२१॥
ऐश्वर्यं च मदश्चैव कामश्चैव महीतले। त्रय एते विवेकस्य तेजो घ्नन्ति किमद्भुतम् ॥२२॥
पिताऽस्य दुरितध्वंसी धर्मरक्षाकरो नृणाम्। धिक्स्वयं कामदेवोऽसौ मोहयत्यखिलं जगत् ॥२३॥

माधव ने सरोवर में स्नान करती हुयी एक युवती को देखा ॥११॥ स्नान के योग्य द्रव्य और वस्त्र के कारण उसका शरीर स्पष्ट रूप से दिखायी देता था । वह अपने मुख के सौन्दर्य से पूर्ण चन्द्रमा को जित लेने वाली थी ॥१२॥ सुवर्ण के कुण्डलों से उसकी गाल सुशोभित हो रही थी । लम्बे-लम्बे केश उसके नितम्ब पर्यन्त लटक रहे थे । वह मनोहर हँसी वाली थी ॥१३॥ स्वर्णि कमल की कलि के समान उसके सुन्दर तथा उठे हुए स्तन थे । सिंह के समान उसकी कमर पतली थी और वसन्त के समय बोलने वाले कोयले के समान उसके मनोहर स्वर थे । युवकों के मनोहर राज्य में कामदेव के द्वारा स्थापित पताका के समान वह सुशोभित हो रही थी ॥१४-१५॥ उस प्रकार की उसको निर्जन प्रदेश में देखकर पृथिवी पर जीवित कौन पुरुष होगा जो मोहित न हो जाय ॥१६॥ उसके बाद वह विक्रम का पुत्र उस सुन्दरी को देखकर काम के बाणों से विद्ध हृदय वाले होकर सोचा ॥१७॥ मैंने इसके समान किसी भी नारी को नहीं देखा है इसका यहाँ पर आलिङ्गन करके मेरा जीवन सफल होना चाहता है ॥१८॥ मैं सभी लोगों से अवश्य तेज तथा गुणों में श्रेष्ठ हूँ । यह यदि इन्द्र की भी पत्नी हो तो भी मुझे इसको आज मुझे अपने घर ले जाना है ॥१९॥ इस समय परस्त्री के हरण से जो पाप होगा उसको कौन कह सकता है । क्योंकि मेरे पिता राजा हैं ॥२०॥ इस तरह से मन में विचार करके तथा अत्यन्त कामार्त होकर सेना को दूर रखकर वह जहाँ स्नान करती थी वहाँ गये ॥२१॥ पृथिवी पर ऐश्वर्य, मद तथा काम ये तीनों विवेक तथा तेज को विनष्ट कर देते हैं इसमें क्या आश्चर्य हैं ?॥२२॥ इसके पिता पाप का विध्वंस करने वाले तथा लोगों के धर्म की रक्षा करने वाले थे । कामदेव को धिक्कार है कि वह सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर देता है ॥२३॥

तमायान्तं समालोक्य वेगेन महता ततः । एकाकिनी सा रमते भृशं चिन्ताकुलाऽभवत्॥२४॥
एकाकिनीं समालोक्य कान्तारस्थां सयौवनाम् ।
अयं धावति वेगेन तन्मे मनसि वर्तते ॥२५॥
जल्पन्ति मुनयः सर्वे धर्मो रक्षति रक्षितः । न च ज्ञातव्यमत्रैव किमत्र च भविष्यति ॥२६॥
सहायहीनं यत्स्थानं पुरो धावन्ति शत्रवः। श्लाध्यं पलायनं तत्र निवासः प्राणनाशकः ॥२७॥
इत्यालोच्यवरारोहा सव्यकच्छे (क्षे) घटं ततः ।
कृत्वा पलायने भीत्या मनश्चक्रे सरोवरात् ॥२८॥
ततः स माधवश्चाऽपि जवेन महता द्विज ! ।
एवं तस्याः पुरो गत्वा प्रसारितकरः स्थितः ॥२९॥

श्रीमाधव उवाच

वराङ्गने चारुदेहे ! सुयौवनबलान्मम। पलायसे मनो हृत्वा हतोऽस्म्यहमचेतनः ॥३०॥
किं नाम चञ्चलापाङ्गि ! चार्वङ्गि ! तव कः पतिः ।
स्वर्गात्किं वाऽऽगताऽसि त्वं त्वत्तुल्या नास्ति भूतले ॥३१॥
सुन्दरि ! त्वामिह श्रेष्ठा सर्वलक्षणसंयुता । कथं वहसि पानीयं दासीव कमलानने ! ॥३२॥
पयोधरौ शातकुम्भौ सदा वहसि वक्षसि। कक्षेण जलकुम्भं च कोमलाङ्गीदमद्भुतम् ॥३३॥
दिवाकरकरात्यन्तसन्तप्ते पथि लोहिताः । पादाङ्गुल्यन्तरा भान्ति जपानां कलिका इव॥३४॥
सुश्रोणि भज मां प्रीत्या त्यज कुम्भं वरानने ! ।
तव दुःखावसानोऽभून्मम दर्शनमात्रतः ॥३५॥

उसको वेग से आते हुए देखकर वह अकेले में रमण करने वाली अत्यन्त चिन्तित हो गयी ॥२४॥ वन में उस युवती को अकेले देखकर वह जितने वेग से दौड़ रहता है, वह मेरे मन में है ॥२५॥ सभी मुनिगण कहते हैं कि जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है । लेकिन यहाँ पर क्या होगा वह ज्ञातव्य नहीं है ?॥२६॥ सहायहीन के आगे जो शत्रु दौड़ते हैं वहाँ पर भागना ही प्रशंसनीय हैं क्योंकि वहाँ पर रुकना प्राणघातक होता है ॥२७॥ इस तरह से विचार करके वह सुन्दरी अपने वायीं काख में घड़े को लेकर सरोवर से भागने का मन बनायी ॥२८॥ हे द्विज ! उसके बाद वह माधव भी अत्यन्त वेग से उसके आगे जाकर हाथ फैलाकर खड़ा हो गया ॥२९॥ **श्रीमाधव ने कहा—** अरे सुन्दर शरीर वाली सुन्दरि ! अपने यौवन के द्वारा मेरे मन को चुराकर भागी जा रही हो मैं अचेतन होकर मर ही जाऊँगा॥३०॥ हे चञ्चल कटाक्षों वाली सुन्दरि ! तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे पति कौन हैं ? अथवा तुम स्वर्ग से आयी हो ? पृथिवी पर तुम्हारे जैसी कोई भी सुन्दरि नहीं है ॥३१॥ हे सुन्दरि ! तुम सभी लक्षणों से युक्त तथा श्रेष्ठ हो । हे कमलानने दासी के समान तुम पानी क्यों ले जा रही हो ?॥३२॥ तुम तो सुवर्ण के समान स्तनों को अपने वक्षःस्थल पर ढोती ही हो अब कमर पर जल का घड़ा है । हे कोमल अङ्गों वाली यह अत्यन्त अद्भुत है ॥३३॥ सूर्य की किरणों से अत्यन्त सन्तप्त मार्ग पर लाल-लाल तुम्हारी अङ्गुलियाँ जपा कुसुम की कलियों के समान सुशोभित होती हैं ॥३४॥ हे वरानने ! तुम घड़े को छोड़ दो और मुझे अपना

श्रीमद्विक्रमभूभर्त्तुः पुत्रोऽहं माधवाह्वयः। सर्वभावैर्भविष्यामि वराङ्गस्तव सुन्दरि ! ॥३६॥
मम स्त्रीगणमध्ये तु सुभगा त्वं भविष्यसि। सुपुष्पवल्लीमध्ये तु द्विरेफस्येव मालती॥३७॥
अथवा मम वाक्यं त्वं गर्वाल्लङ्घितुमिच्छसि ।
न त्यक्ष्यामि तथापि त्वां यतोऽहं नृपतेः सुतः ॥३८॥

व्यास उवाच

तेनोक्तं वचनं श्रुत्वा पन्थानं प्रविहायसा। तस्थावधोमुखी विप्र ! प्राहेति च शनैःशनैः ॥३९॥
कदापि च परः कोऽपि न श्रृणोति वचो मम ।
तथापि लज्जां सन्त्यज्य वक्ष्याम्येव तवाऽग्रतः ॥४०॥
तथा ह्यहं महावीर ! सुबाहुक्षत्रियप्रिया। नयामि देवपूजार्थं जलं चन्द्रकला ह्यहम्॥४१॥
यद्वचो भवता प्रोक्तं न च तत्त्वत्कुलोचितम् ।
त्वद्वंशप्रभवाः सर्वे परस्त्रीषु नपुंसकाः ॥४२॥
अहमेकाकिनी नारी वीराणां प्रभवो भवान् ।
बलादलिङ्ग्यमामत्रयशःकिं ते भविष्यति ॥४३॥
परस्त्रियं समालिङ्ग्य क्षणमात्रसुखं भवेत्। इहापकीर्तिः शेषं च दुःखं कल्पशताधिकम् ॥४४॥
कर्मभूमिरियं शूर ! पुण्यमत्र विधीयताम्। परस्त्रीहरणे चित्तं कदाचिदपि मा कुरु॥४५॥
लोभात्प्रवर्त्तते कामःकामात्पापं प्रवर्त्तते। पापान्मृत्युर्मृतेऽपि स्याद्दुस्तरे नरके स्थितिः ॥४६॥
सर्वेऽपि त्वद्गुणा व्यर्थास्त्वज्जन्माऽपि च निष्फलम् ।
कामस्य वशतां गत्वा रन्तुमिच्छेः परस्त्रियम् ॥४७॥

लो। मेरे दर्शन मात्र से तुम्हारे दुःखों का अन्त हो जायेगा ॥३५॥ पृथिवी के राजा विक्रम का मैं पुत्र हूँ। मेरा नाम माधव है। हे सुन्दरि ! मैं हर प्रकार से तुम्हारा श्रेष्ठ पति होऊँगा ॥३६॥ मेरी स्त्रियों में तुम सौभाग्य सम्पन्न हो जाओगी सुन्दर पुष्पों के बीच जिस तरह मालती पुष्प भ्रमर के लिए प्रिय होता है उसी तरह ॥३७॥ यदि गर्व के कारण तुम मेरे वचन का उल्लंघन करना चाहती हो तो भी मैं तुमको नहीं छोड़ूँगा क्योंकि मैं राजा का पुत्र हूँ ?॥३८॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके द्वारा कही गयी बात को सुनकर सहसा वह मार्ग को छोड़कर हे विप्र ! नीचे मुख करके खड़ी हो गयी। और धीरे-धीरे उसने कहा ॥३९॥ कभी भी किसी दूसरे ने मेरी वाणी को नहीं सुना है फिर भी लज्जा को त्यागकर मैं कह रही हूँ। हे महावीर ! मैं सुबाहु नामक क्षत्रिय की पत्नी हूँ। मेरा नाम चन्द्रकला है देवपूजा के लिए जल ले जा रही हूँ ॥४०-४१॥ आपने जो बात कही है वह आपके वंश के लिए उचित नहीं है। आपके वंश में उत्पन्न सभी लोग परस्त्री के विषय में नपुंसक हो जाते हैं ॥४२॥ मैं अकेली नारी हूँ और आप वीरों के पुत्र हैं मेरा बल पूर्वक आलिङ्गन करके आपका यश कैसे बचेगा ?॥४३॥ परस्त्री का आलिङ्गन करके क्षणभर ही सुख होता है। इसलोक में अयश होता है और परलोक में सौ कल्पों तक दुःख भोगना पड़ता है ॥४४॥ हे वीर ! यह कर्म भूमि है, यहाँ पर पुण्य कीजिये दूसरे की स्त्री का हरण करने का मन कभी न बनाइये॥४५॥ लोभ से काम उत्पन्न होता है। काम से पाप होता है। पाप से मृत्यु होती है और मरने पर भी दुस्तर नरक में निवास होता है ॥४६॥ ऐसा करने से तुम्हारे सारे गुण व्यर्थ हो जायेंगे और जन्म

मांसमूत्रपुरीषास्थिनिर्मितं मे कलेवरम्। एतदेव समालोक्य स्मरस्य वशतां गतः ॥४८॥

भूपालवंशोत्पत्तित्वात्पौरेभ्यो न बिभेषिकम् ।
मस्तकोपरिगर्जन्तं नेक्षसे समवर्त्तिनम् ॥४९॥

ग्रसन्ते बडिशं मत्स्यास्ते सर्वे ज्ञानवर्जिताः। ज्ञानी चेत्प्राप्य बडिशं भवान्कस्माद्ग्रसिष्यसि ॥५०॥
विवेकस्त्रिषु लोकेषु सम्पदां परमं परम्। अविवेकी हि लोकानामापदां परमं पदम् ॥५१॥
तयोक्तं वचनं श्रुत्वा माधवः काममोहितः। उवाच जैमिने ! वाचं विनयावनतः पुनः ॥५२॥
तवोद्वीक्षणनाराचधाराजर्जरमानसम् । प्रिये ! मां त्राहि त्राहीति त्वामस्मि शरणं गतः॥५३॥
तावत्प्रियतमा नारी यावत्तिष्ठति यौवनम्। मृणालकोशां नलिनीं हेमभृङ्गो न गच्छति ॥५४॥

प्रसीद हरिणीनेत्रे ! रक्ष मां सेवकं स्वकम् ।
त्वद्वाचं नीरसां श्रुत्वा भिद्यते हृदयं मम ॥५५॥

चन्द्रकलोवाच

त्यज दुःखं महावीर ! शृणु मद्वचनं शुभम् ।
प्रवक्ष्यामि मनोदुःखं हन्तुं यद्भवतःक्षमाम् ॥५६॥

समुद्रपारे विख्याता पुरन्दरपुरोपमा। प्लक्षद्वीपेऽस्ति दीप्यन्ती विख्याता सञ्ज्ञया पुरी॥५७॥
गुणकराह्वयस्तत्र राजा श्रेष्ठो महायशाः। आस्ते सर्वगुणैर्युक्तः प्रतापेऽग्निसमो बली ॥५८॥
सुशीला नाम तद्भार्या सर्वलक्षणसंयुता। सेवावशीकृतस्वामिहृदया सदया जनैः॥५९॥

सुलोचनाख्या तत्कन्या वीर ! तत्कुक्षिसम्भवा ।
सद्रूहरूपैरजयत्सकलान्सुन्दरीगणान् ॥६०॥

भी निष्फल हो जायेगा । यदि आप कामार्त होकर परस्त्री के साथ रमण करना चाहें तो ऐसा ही होगा।।४७।। मेरा शरीर मांस, मूत्र, मल तथा अस्थि से निर्मित है और इसी को देखकर आप कामार्त हो गये ॥४८॥ राजा के वंश में उत्पत्ति होने के कारण आप नागरिकों से भी नहीं डरते हैं क्या ? मस्तक पर गरजते हुए काल को भी नहीं देखते हैं ?॥४९॥ ज्ञानहीन मछलियाँ वंशी को निगलती है यदि कोई ज्ञानी भी व्यक्ति उस वडिश को निगलना चाहते हैं ॥५०॥ तीनों लोकों में विवेक ही परम सम्पत्ति है, अविवेक संसारियों के लिए सबसे बड़ी विपत्ति देने वाला है ॥५१॥ उसके द्वारा कहे गये वचन को सुनकर काम मोहित माधव ने नम्रता पूर्वक झुककर कहा ॥५२॥ तुम्हारे दर्शन रूपी बाणों की धारा से हे प्रिये ! मेरा मन जर्जर हो गया है । तुम मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारे शरण में हूँ ॥५३॥ जब तक जवानी रहती है तब तक ही नारी प्रियतमा होती है । हम भृंग कमलनाल के पास कभी नहीं जाता है ॥५४॥ हे हरिणी के समान नेत्र वाली! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ । मैं तुम्हारा सेवक हूँ, तुम्हारी नीरस वाणी को सुनकर मेरा हृदय फटा जा रहा है ॥५५॥ **चन्द्रकला बोली—** हे महावीर ! तुम दुःख को त्याग दो मेरी शुभ वाणी को सुनो । मैं ऐसी बात बतला रही हूँ कि उससे आपका दुःख विनष्टा हो जायेगा । समुद्र के पार इन्द्र की नगरी के समान प्लक्ष द्वीप में देदीप्यमान पुरी नाम की विख्यात नगरी है ॥५६-५७॥ वहाँ के महायशस्वी गुणाकर नामक राजा हैं । वे सभी गुणों से युक्त हैं वे बली तथा अग्नि के समान प्रतापी हैं ॥५८॥ उनकी पत्नी का नाम

तस्या रूपं गुणौघं च वर्णितुं भुवि कः क्षमः ।
तद्रूपदर्शमालोक्यासृजदन्यां स्वयं विधिः ॥६१॥

अहमासं महावीर तस्या दासी नृपात्मज !। समागताऽस्मि दैवेन त्वद्देशं प्रति सुन्दरी ॥६२॥

तत्समा सुन्दरी नास्ति त्वत्समो नास्ति सुन्दरः ।
गृहाण तां विवाहेन स्वर्गभोगं यदीच्छसि ॥६३॥

जम्बुकीं बलवान्सिंहो विहायाऽङ्कगतामपि । हस्तिनीं नहि किं धत्ते यत्नतः प्रतिपत्तये ॥६४॥
उद्योगी पुरुषो लोके लभते परमां श्रियम् । उद्योगेन बिना ब्रूहि किं कार्यं भुवि विद्यते ॥६५॥

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो माधवार्चकः। दूरीकृत्यस्मरोद्भावं तामित्याह वराननाम्॥६६॥

माधव उवाच

केनचिह्नेन तां कन्यां ज्ञास्यामि कमलानने ! ।
तन्मे कथय सुश्रोणि ! यदि ते मय्यनुग्रहः ॥६७॥

सिन्धुपारप्रतीपाज्ञः कथं यास्यामि मानुषः । भविष्यति तया सार्धं कथं सन्दर्शनं मम ॥६८॥

चन्द्रकलोवाच

तस्यास्तु वामजघने तिलकं तिलसन्निभम् । अस्ति तद्दर्शनेनैव ज्ञास्यसि त्वं सुलोचनाम्॥६९॥
उच्चैःश्रवसूसञ्ज्ञस्य तुरगस्य महात्मनः । त्वन्मन्दुरायां पुत्रोऽस्ति सर्वगामीहयोत्तमः ॥७०॥
तमश्वश्रेष्ठमारुह्य जवेन पवनोपमम् । गमिष्यसि समुद्रान्तं सुखसाध्या मही यतः ॥७१॥

सुशीला है वे सभी लक्षणों से सम्पन्न हैं उन्होंने अपनी सेवा से अपने पति को वश में कर लिया है । तथा अपने लोगों पर दया करती हैं ॥५९॥ हे वीर ! उनकी पुत्री सुलोचना है वह उन्हीं के गर्भ से उत्पन्न हुयी हैं । वह अपने सुन्दर रूप के द्वारा सभी स्त्रियों को जीत लिया है ॥६०॥ उसके रूप तथा गुण समूह का वर्णन कौन कर सकता है । उसके रूप को देखकर ही ब्रह्माजी ने दूसरी स्त्री की सृष्टि की ॥६१॥ हे महावीर ! राजकुमार मैं उसकी दासी थी और सुन्दरी मैं भाग्यवशात् आपके देश में आयी हूँ ॥६२॥ उसके समान कोई सुन्दरी नहीं है और तुम जैसा कोई सुन्दर नहीं है । उसके साथ विवाह करके तुम यदि स्वर्ग सुख चाहते हो तो उसको ग्रहण करो ॥६३॥ बलवान् सिंह अङ्कागत भी स्यारिन को छोड़कर यत्न पूर्वक हस्तिनी को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता है क्या ?॥६४॥ संसार में उद्योगी पुरुष ही परम श्री को प्राप्त करता है । बतलाओ उद्योग के बिना कोई कार्य होता है क्या ?॥६५॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके वचन को सुनकर भगवान् माधव की अर्चना करने वाला माधव काम के भाव को दूर करके उस सुन्दरी से कहा । **माधव ने कहा—** हे कमल के समान मुख वाली ! उसको मैं किस चिह्न से जान सकूँगा। हे सुन्दरि ! यदि तुम्हारी मुझ पर कृपा हो तो तुम मुझे बतलाओ ॥६६-६७॥ मैं मनुष्य हूँ समुद्र के पार कैसे जा सकता हूँ ? मुझको उसका दर्शन कैसे होगा ?॥६८॥ **चन्द्रकला ने कहा—** उसकी वायीं जङ्घा पर तिल के समान तिलक है । उसी को देखकर तुम उसे पहचान लोगे ॥६९॥ उच्चैःश्रवा नामक अश्व का पुत्र तुम्हारे घुड़शाल में है वह अश्व श्रेष्ठ सर्वत्र जा सकता है ॥७०॥ पवन के समान वेग वाले उस अश्व पर सवार होकर आप समुद के पार जा सकते हैं । उसके द्वारा पृथिवी सुख साध्य है ॥७१॥

ततो भूपालपुत्रोऽसौ ससैन्यो गृहमागतः ।
साऽपि चन्द्रकला साध्वी सुप्रीता स्वगृहं गता ॥७२॥
विचिन्त्यवचनं तस्या माधवोऽतित्वरान्वितः। चिन्ताकुलितचितोऽसौ सहसा मन्दुरां ययौ॥७३॥
तत्र बद्धाञ्जलिर्भूत्वा वैक्रमिर्विक्रमान्वितः । तुरङ्गमानिति प्राह गुण्युक्तान्महाबलान् ॥७४॥

माधव उवाच

यूयं सर्वे महात्मानः सर्वलक्षणसंयुताः । समुद्रपारे मां नेतुं कः शक्नोति तुरङ्गमः ॥७५॥
अथ ते तुरगाः सर्वे श्रुत्वा तद्वचनं भिया । परस्परं क्षितिमुखास्तस्थुर्नो नेतुमुद्यताः ॥७६॥
अथैकस्तुरगस्तत्र समस्तैर्लक्षणैर्युतः। माधवस्य पुरो गत्वा वाचमेतामुवाच ह॥७७॥
अहं भवन्तं नेष्यामि सिन्धुपारं न संशयः । किं त्वाकर्णय दुःखानि मदीयानि नृपात्मज !॥७८॥
अन्यभुक्तावशिष्टं यत्तृणं मम भक्षणम्। ग्रन्थिकोटिप्रयुक्ताभीरज्जुभिर्मम बन्धनम्॥७९॥
स्वप्नेऽपि व्रीहयो वीर ! न दृष्टा बलिना मया ।
अन्येषामपि भोगानां का कथाऽत्र नृपात्मज ! ॥८०॥
गौरवेण बिना वीर ! न सतां विक्रमो भवेत् ।
ज्वलिष्यतिकथंवह्निर्विना काष्ठं घृतादिभिः ॥८१॥
अहमीदृगिमे सर्वे नानाभूषासमन्विताः । न तु सिंहसमाःश्वानः सर्वाभरणभूषिताः ॥८२॥
प्रदक्षिणाकारतया सशैलद्वीपसागराः । क्षणमात्रेण पृथिवीं शक्नोमि भूपते ! प्रभो !॥८३॥

माधव उवाच

क्षमस्व दोषं सकलं मत्पित्रा विहितं हय ! ।
अद्यप्रभृति मुख्योऽसि मन्दुराभ्यन्तरे मम ॥८४॥

उसके पश्चात् वह राजा का पुत्र अपनी सेना के साथ अपने गृह आया । वह साध्वी चन्द्रकला भी प्रसन्न होकर अपने घर चली गयी ॥७२॥ उसके वचन को सोचकर माधव भी अतिशीघ्रता से चिन्ता से व्याकुल चित्त वाला होकर घुड़शाल में गया ॥७३॥ वहाँ पर हाथ जोड़कर वह पराक्रमी विक्रम का पुत्र गुण सम्पन्न तथा बलवान घोड़ों से कहा ॥७४॥ **माधव ने कहा—** आप सभी लक्षणों से युक्त हैं कौन अश्व मुझे समुद्र के पार ले जाने में समर्थ हैं ?॥७५॥ उसके बाद माधव के वाक्य को सुनकर भयभीत होकर परस्पर नीचे की ओर मुख करके खड़े हो गये कोई भी उसे ले जाने के लिए तैयार नहीं हुआ ॥७६॥ उसके बाद सभी लक्षणों से युक्त एक अश्व माधव के समक्ष जाकर कहा ॥७७॥ मैं आपको समुद्र के पार ले जाऊँगा । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । किन्तु हे राजकुमार ! आप मेरे दुःखों को सुनें ॥७८॥ दूसरों के खाने से बची हुयी घास मुझको खाने के लिए मिलता है । करोड़ों ग्रन्थियों से युक्त रस्सी से मुझको बाँधा जाता है ॥७९॥ बलवान् मैंने स्वप्न में भी धान को नहीं देखा । हे राजपुत्र ! दूसरे भोगों के विषय में क्या कहा जाय ॥८०॥ हे वीर ! गौरव के बिना सज्जनों में पराक्रम नहीं होता है । काष्ठ तथा घृत आदि के बिना अग्नि कैसे प्रज्वलित हो सकती है ?॥८१॥ मैं इस प्रकार का हूँ और सभी भूषणों से भूषित सिंह के समान कुत्ते भूषण भूषित नहीं होते हैं ॥८२॥ प्रदक्षिणा के आकार वाले पर्वत, द्वीप और सागर हैं । हे राजन् प्रभो ! मैं क्षणभर में इस तरह की पृथिवी को पार कर सकता हूँ ॥८३॥ **माधव ने**

परेण दत्तः सन्तापः सदा तिष्ठति नोत्तमे। सलिलं वह्निसन्तप्तं क्षणाच्छीतलतां व्रजेत्॥८५॥
स्वमाधुर्यैर्भवेदिक्षुः क्षणमपि हि तृप्तये। इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य तुरङ्गं नृपनन्दनः॥८६॥
ततः शुभे क्षणे तस्य पृष्ठमारुह्य वाजिनः। प्रचेष्टाख्येन भृत्येन विलङ्ध्य जलधिं ययौ॥८७॥
पुरीं सर्वगुणैर्युक्तां पुरन्दरपुरोपमाम्। जगाम माधवो भ्राजन्सौधावलिभिरुज्ज्वलाम्॥८८॥
तत्रोपास्थां च युवतीं गन्धिनीं माधवो द्विजः।
दृष्ट्वा स्मितमुखो वाक्यमुवाचेति च कोमलम्॥८९॥
वृद्धे मातरहं पान्थो दिनमेकं तवालये। स्थातुमिच्छामिकाऽऽज्ञाते धनवान्माधवाह्वयः॥९०॥
अतिथेयी गन्धिनी सा तमादायाऽतिथिं ततः।
हृष्टा तु स्वगृहं तत्र जगामाऽत्यन्तभक्तितः॥९१॥
यथोक्तविधिना विप्र तया तस्यार्हणा कृता। माधवस्तांनिशांनिन्ये चिन्ताव्याकुलमानसः॥९२॥
अथ प्रभाते विमले गन्धिन्याःपुरतो द्विज!।
माधवः सकलं कार्यं कथयामास भूसुरः॥९३॥
देव्यास्सुलोचनायाश्च तस्मिन्नेव दिने शुभे। गन्धाधिवासनं कर्म रचयामासास च तत्॥९४॥
श्रुत्वाऽधिवासनं कर्मराजपुत्र्यास्ततो द्विज। शोकसागरकल्लोलनिकरो माधवोऽभवत्॥९५॥
यदर्थं राज्यवसतिर्मया त्यक्ता तदिच्छुना। यदर्थं बान्धवास्त्यक्ता लङ्घितश्च महोदधिः॥९६॥
अद्यैव तस्या दैवेन भविष्यत्यधिवासनम्। निष्फलाःसकला एव यावन्तो विहिताःश्रमाः॥९७॥

कहा— हे अश्व! मेरे पिता द्वारा प्रदत्त सभी दोषों को आप क्षमा कर दें। आज से आप ही मेरे मन्दुरा में प्रधान होंगे॥८४॥ दूसरे के द्वारा दिये गये सन्ताप को उत्तम पुरुष नहीं सोचते हैं। अग्नि के द्वारा गर्म किया गया जल क्षण भर में शीतल हो जाता है॥८५॥ अपने माधुर्य के द्वारा ईख क्षणभर में तृप्ति कारक हो जाता है। यह कहकर उस अश्व को नमस्कार करके वह राजकुमार॥८६॥ उसके बाद शुभ क्षण में उस अश्व के पृष्ठ पर चढ़कर प्रचेष्ट नामक भृत्य के साथ समुद्र के पार चला गया॥८७॥ सभी गुणों से युक्त इन्द्र की नगरी के समान तथा महल समुदाय से सुशोभित पुरी में माधव चले गये॥८८॥ वहाँ पर विद्यमान गन्धिनी नाम की युवती को माधव ने मुस्कुराते हुए देखा और उसने कोमल वाणी से कहा॥८९॥ हे वृद्धा मातः! मैं पथिक हूँ मैं एक दिन तुम्हारे घर में ठहरना चाहता हूँ आपकी क्या आज्ञा हैं? धनवान माधव का अतिथ्य सत्कार करने वाली गन्धिनी उस अतिथि को लेकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अत्यन्त भक्ति पूर्वक अपने घर गयी॥९०-९१॥ हे विप्र! उसने यथोक्त विधि से उसका समादर किया। चिन्ता से व्याकुल चित्त वाले माधव उस रात्रि को बिताये॥९२॥ हे द्विज! प्रातःकाल गन्धिनी के समक्ष माधव अपने सारे कामों को बतलाये॥९३॥ उसी शुभ दिन को सुलोचना देवी का उसने गन्धाधिवासन कर्म को बतायी॥९४॥ हे द्विज! राजकुमारी के गन्धाधिवासन कर्म को सुनकर माधव शोक सागर की लहरियों में डूब गये॥९५॥ उसको प्राप्त करने के इच्छा से मैंने जो अपने राज्य तथा नगर को छोड़ा जिसके लिए मैंने अपने बांधवों को त्याग दिया और समुद्र को पार किया॥९६॥ उसका दैववशात् आज ही गन्धाधिवासन होगा। मैंने जो परिश्रम किया वह सबके सब व्यर्थ हो गया। किन्तु माधवी के द्वारा मोहित सब कुछ चला

किन्तु लोका न जल्पन्ति माध्व्या मुग्धो गतोऽखिलम् ।
कोऽपि भग्नोद्यमो न स्यात्प्रज्ञाय कार्यनिश्चयम् ॥९८॥
एतद्विचिन्त्य मनसा माधवोऽसौ पुनःपुनः। मालापुष्पादिके कार्यं लिलेख प्रेमवर्णितम्॥९९॥
कन्ये ! माधवनामाऽहं कुमारो धरणीपतेः। तालध्वजाधिराजस्य विक्रमस्य महात्मनः ॥१००॥
त्वच्चेटी तत्र काऽप्यस्ति कन्ये चन्द्रकलाह्वया ।
तया तव गुणग्रामःकथितो मे पुरा किल ॥१०१॥
त्वद्गुणग्रामसँल्लग्नचित्तोऽहं निम्नसागरम् । विलङ्घ्य तुरगारूढः समायातः पुरीं तव ॥१०२॥
अधुना मां वरत्वेन वृणु कन्ये सुलोचने !। यतः संसारमध्येऽस्मिस्तवाऽस्मि शरणं गतः॥१०३॥
यथा गुणवतीं त्वा हि नान्यो जानाति तत्पुमान् ।
सरोजिनीगुणं वेत्ति भृङ्गएव न दर्दुरः ॥१०४॥
शुभ्रस्य जलदस्याऽपि गगनैकस्य नोदयः । तथापि न भजेदन्यं विना चन्द्रं कुमुद्वती॥१०५॥
अथ तल्लेखनं वीरो मालाकारप्रियाकरे । स्वर्णाङ्गुलीयसहितं ददौ स विनयो नृपः॥१०६॥
पुष्पमालान्तरे कृत्वा तं लेखं साङ्गुलीयकम् ।
राजपुत्रीसमीपे सा गन्थिनी तरसा ययौ ॥१०७॥
पुष्पमालां बलिं तस्यै दत्त्वासा गन्धिनी ततः ।
तस्थौ बद्धाञ्जलिर्भूत्वा दूरं गत्वा भिया कियत् ॥१०८॥
ततः सा राजतनया लिखितं साङ्गुलीयकम् ।
विलोक्य सकलं मूलात्पपाठात्यन्तपण्डिता ॥१०९॥

गया। मेरा अपने कार्य का निश्चय जानकर कोई भी भग्न प्रयास वाला नहीं होता है ॥९७-९८॥ इस बात को मन में बार-बार विचार करके माधव माला पुष्प आदि में प्रेम पूर्वक अपने कार्य को लिख दिया ॥९९॥ हे कन्ये ! मेरा नाम माधव है मैं ताल ध्वज के राजा माहात्मा विक्रम का पुत्र हूँ ॥१००॥ वहाँ पर तुम्हारी एकदासी चन्द्रकला है। उसने मेरे समक्ष तुम्हारे गुण समूह का वर्णन किया ॥१०१॥ तुम्हारे गुण समूह में लगे हुए चित्त वाला मैं समुद्र को पार करके घोड़े पर सवार होकर तुम्हारी नगरी में आया हूँ ॥१०२॥ हे सुन्दरि कन्ये ! इस समय तुम मेरा वर रूप से वरण कर लो, क्योंकि इस संसार में मैं तुम्हारे शरण में आया हूँ ॥१०३॥ जिस तरह तुम गुणवती हो उसको दूसरा कोई नहीं जानता है। कमलिनी के गुण को भ्रमर ही जानता है मेढ़क नहीं ॥१०४॥ श्वेत मेघ का ही केवल आकाश में उदय नहीं होता है फिर भी कुमुदिनी चन्द्रमा को छोड़कर किसी दूसरे को अपना नहीं बनाती है ॥१०५॥ उसके पश्चात् उस लेख को मालाकार की पत्नी के हाथ में अपनी अङ्गूठी के साथ नम्रता के साथ माधव ने दिया ॥१०६॥ पुष्प माला के भीतर रखकर अङ्गूठी के साथ उस लेख को लेकर वह गान्धिनी शीघ्रता पूर्वक राजकुमारी के पास गयी ॥१०७॥ उसके बाद पुष्प माला समूह को उसे देकर वह गन्धिनी हाथ जोड़कर तथा कुछ भयभीत होकर उससे दूर जाकर खड़ी हो गयी ॥१०८॥ उसके बाद अङ्गूठी के साथ उस लेख को देखकर आदि से अन्त तक महा पण्डिता वह पढ़ी ॥१०९॥ हे द्विज ! उसने भी उस लेख के पीछे उसके योग्य उत्तर

साऽपि तत्पृष्ठपत्रे तु तद्योग्यमुत्तरे द्विज !। अलिखद्विस्मिता कन्या यद्यच्च सर्वमुच्यते ॥११०॥
राजपुत्र महाबाहो त्वद्वाक्यमखिलं श्रुतम्। शृणु सत्तम वाक्यं मे यथोचितमिदं वचः॥१११॥
अद्याधिवासनं कर्मश्वो विवाहो मम ध्रुवम्। पितुर्यत्सम्मतं कार्यंपृथिव्यांकोऽपिनत्यजेत् ॥११२॥

कार्ये तु दुःखसाध्ये तु कार्योनाऽतिश्रमो जनैः ।
कार्येसिद्धे श्रमो न स्यादसिद्धे श्रम एव हि ॥११३॥
तथापि शृणु वक्ष्यामि येन प्राप्नोति मां भवान् ।
यदर्थो भवता चैव समुद्रोऽपि च लङ्घितः ॥११४॥
मया प्रदक्षिणीकार्यो वरो विद्याधरो ह्ययम् ।
तत्पुरोऽहं गमिष्यामि नानाभरणभूषिता ॥११५॥
वामबाहूर्ध्वं कृत्वा च वीरःस्यान्मम सम्मुखः ।
येन मां शक्यते नेतुं स मे भर्ता भविष्यति ॥११६॥
सत्यं सत्यमिदं सत्यं पत्रेऽस्मिल्लिखितं मया ।
अन्यथा सुदृढं कार्यं लङ्घितुं नहि शक्यते ॥११७॥
एतद्विलिख्य सा कन्या तस्या एव करे ददौ ।
साऽपि तत्पत्रमादाय गता माधवसन्निधिम् ॥११८॥
तया तल्लिखितं पत्रे तत्पठित्वा तु माधवः ।
भूयोऽपि लिखितं विप्र ! लिलेखाऽत्यन्तकौतुकैः ॥११९॥

त्वया यदुक्तं हे कन्ये धन्ये धन्यकुलोद्भवे। तदेवमन्मतं सर्वं कोऽपि नास्त्यत्र संशयः॥१२०॥

ततस्तु गन्धिनीभूयो गत्वा तन्निकटे द्विज ! ।
ददौ सुलोचनायै सा लेखनं सुन्दराक्षरम् ॥१२१॥

को आश्चर्यित होकर उसमें जो लिखा था उन सब बातों को लिख दिया । महाबाहो राजकुमार तुम्हारी सारी बातों को मैंने सुना । हे श्रेष्ठ ! आप मेरे इस यथोचित वाक्य को सुनें ॥११०-१११॥ आज मेरा अधिवासन कर्म है और कल विवाह होना निश्चित है । पिता के मनोऽनुकूल जो कार्य होता है उसे कोई भी नहीं त्यागता है ॥११२॥ यह कार्य दु:ख साध्य हैं किन्तु लोगों के द्वारा श्रम से असाध्य नहीं होता है । कार्य के सिद्ध हो जाने पर श्रम सफल हो जाता है और असिद्ध होने पर श्रम व्यर्थ हो जाता है ॥११३॥ फिर भी मैं बतलाती हूँ कि आप मुझे किस तरह प्राप्त कर सकते हैं । आपने जिसके लिए समुद्र को भी पार किया ॥११४॥ मुझे इस विद्याघर वर की प्रदक्षिणा करनी हैं । अनेक आभरणों से अलंकृत होकर मैं उसके सामने जाऊँगी ॥११५॥ हे वीर ! अपनी-अपनी बायी भुजा उठाकर आप मेरे सामने आयें । जो मुझे ले जा सकता है वही मेरा पति होगा ॥११६॥ यह मैंने इस सत्य को लिख दिया है । अन्यथा इस कठोर कार्य को आप नहीं पार कर सकते हैं ॥११७॥ इस बात को लिखकर वह कन्या उस गन्धिनी के ही हाथ में दे दिया । वह भी उस पत्र को लेकर माधव के समीप गयी ॥११८॥ उसके द्वारा उस पत्र को पढ़कर माधव हे विप्र ! पुन: उस लिखित पत्र का उत्तर पुन: लिखे ॥११९॥ हे धन्य कन्ये ! तुम धन्य कुल में

अथ तल्लेखनं ज्ञात्वा कुमाराङ्गी कृतं द्विज ! ।
बभूवाऽत्यन्तसंहृष्टा विस्मिता च पुनःपुनः ॥१२२॥
तस्मिन्नसंशयं कार्यं यदाऽसौ स्वीकृतं ददौ ।
तदा किं स्वयमिन्द्रो वा यन्मायामाधवः पुमान् ॥१२३॥
इह लोके परत्राऽस्ति स्नेहभूमिः पतिःसदा ।
विना सन्दर्शनेनाऽपि न वरत्वे वृतो मया ॥१२४॥
इति सञ्चिन्त्य सा साध्वी निःश्वस्य च पुनःपुनः ।
स्नानव्याजाद्गता वास गन्धिन्याश्च सहाऽलिभिः ॥१२५॥
हस्ते विधृत्य तां कन्यां गन्धिनी सा पुरन्ध्रिका ।
माधवंदर्शयामास शयानं मञ्चकोपरि ॥१२६॥
तं समालोक्य सा कन्या कन्दर्पसदृशं ततः ।
रोमाञ्चितं समस्ताङ्गमुदात्तं पश्यति क्रमात् ॥१२७॥
तन्नेत्रयुगलं तस्मिन्यत्र यत्र निमज्जति । कृष्टदृष्ट्या च नाऽन्यत्रतस्मान्नामाऽत्रगच्छति ॥१२८॥
साक्षादयं वा कन्दर्पो देवकीनन्दनोऽपि वा। शर्वो वा विषयाधीशःसाक्षाद्वापार्वतीपतिः ॥१२९॥
रूपैरेतैर्जगन्मध्ये मानुषो न हि जायते। अनेन स्वामिना जन्म सफलं हरिणीदृशः ॥१३०॥
यद्भक्तिवशगो भूत्वा विधाताऽत्यन्तयत्नतः। यदाऽहं कन्यका जाता तदैनं किं ससर्ज ह॥१३१॥
अद्यप्रभृति नाथोऽयं स्वयं नास्त्यत्र संशयः ।
इत्युक्तवा सा मतिं चक्रे गन्तुं निजगृहम्प्रति ॥१३२॥

उत्पन्न हो तुमने जो लिखा है मेरा भी यही सब अभिमत है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है॥१२०॥ हे द्विज ! गन्धिनी उसके पास पुनः गयी और सुन्दर अक्षर में लिखे गये उस पत्र को सुलोचना को उसने प्रदान कर दिया ॥१२१॥ हे द्विज ! उसके लेख को जानकर राजकुमारी ने उसे स्वीकार कर लिया । वह बार-बार विस्मित होकर अत्यन्त प्रसन्न हुयी ॥१२२॥ इसने जो स्वीकृत कर दी है उसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए । उस समय यदि इन्द्र ही क्यों नहीं हों, जिसकी माया में माधव पुरुष भी हैं ॥१२३॥ इस लोक और परलोक में सदापति ही स्नेह का पात्र होता है । उनको देखे बिना भी मैंने वरत्व को स्वीकार किया है ॥१२४॥ इस तरह से विचार करके वह साध्वी बार-बार निःश्वास ली। स्नान करने के बहाने से वह गन्धिनी के निश्वास स्थान पर अपनी सखियों के साथ गयी ॥१२५॥ उस कन्या के हाथ को पकड़कर वह सैरन्ध्री गन्धिनी, मञ्च पर सोये हुए माधव को दिखायी ॥१२६॥ उसके पश्चात् कामदेव के समान सुन्दर उनको देखकर उस कन्या के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया और सब तरह से श्रेष्ठ माधव को उसने देखा ॥१२७॥ अपने दोनों नेत्र में माधव के जिस अङ्ग को वह देखती थी वहीं उसके नेत्र गड़े रह जाते थे । कष्ट के साथ उसके दूसरे अङ्ग पर जाते थे ॥१२८॥ ये साक्षात् कामदेव हैं या भगवान् कृष्ण हैं ? या सभी विषयों के स्वामी पार्वती पति शिव हैं ॥१२९॥ संसार में इनके समान रूप वाला कोई भी पुरुष नहीं है । इस पति के द्वारा उस हरिणी के समान नेत्र वाली का जन्म सफल हो गया ॥१३०॥ उसकी भक्ति के अधीन होकर ब्रह्माजी ने बड़े प्रयास से जब मैं कन्या हुयी उसी समय

गन्धिन्युवाच

कन्ये युक्तिरियं भद्रे ! त्वयाऽपि हृदि सेव्यताम् ।
यथा सुमूर्तिःपुरुषोनतथा भाति निन्दया ॥१३३॥
उल्लासो गात्रभङ्गश्च मन्ददृष्टिश्च विस्मितम्। सर्वाणि विष्णुचिह्नानि निद्रायां मृगलोचने ॥१३४॥
सन्दष्टौष्टपुटाक्षेपात्प्रोक्तो नोत्तिष्ठति ध्रुवम्। शनैःशनैःकरं तस्य स्वकराभ्यामदर्शयत्॥१३५॥
त्वां द्रष्टुं राजकन्यायाः सन्धृत्याऽऽगमनं श्रुणु ।
श्रुत्यैतत्सोऽपि चोत्तस्थौ सम्भ्रमाक्रान्तमानसः ॥१३६॥
विनयावनतो वाक्यं माधवश्चेत्युवाच ताम् ॥१३७॥

माधव उवाच

कन्ये मज्जन्मसफलं श्रमश्च सफलो मम। त्वच्चारुवदनाम्भोजं साक्षादेव मयेक्षितम्॥१३८॥
सफलं यौवनं कन्ये त्वं वरत्वेन माम्वृणु ।
त्वद्योग्योऽस्ति वरो नान्यो मां विना भुवि सुन्दरि ॥१३९॥

सुलोचनोवाच

सुमते ! त्वं मम स्वामी भाग्येन महता भवेः ।
मया यद्वचनं प्रोक्तं तदेव सुदृढं खलु ॥
आज्ञां कुरु महाभाग ! गच्छामि निजमन्दिरम् ॥१४०॥

माधव उवाच

तिष्ठेति यदि वा वच्मि कन्ये गर्वस्तदा भवेत् ।
गच्छेति पवनं वक्तुं नायाति वदनान्मम ॥१४१॥

इनकी सृष्टि की है क्या ॥१३१॥ आज से स्वयं ये ही मेरे स्वामी होंगे । यह कहकर वह अपने घर जाने के लिए तैयार हुयी ॥१३२॥ **गन्धिनी ने कहा—** हे कन्ये ! इस युक्ति को तुम भी अपने हृदय में ही रखना । जिससे कि सुन्दर पुरुष निन्दा के द्वारा वैसा नहीं प्रतीत होता है ॥१३३॥ हे मृगनयनी ! उल्लास शरीर की रचना मन्द दृष्टि और विस्मय ये सभी भगवान् विष्णु के चिह्न निद्रा में दिखायी देते हैं ॥१३४॥ अपने ओष्ठों के सन्दष्ट होने के कारण कहने पर यह नहीं जगता है । उसने धीरे-धीरे माधव के हाथ को अपने हाथों से पकड़कर उसको दिखाया ॥१३५॥ उसने कहा कि तुमको देखेने के लिए राजकन्या धैर्य पूर्वक आयी है । यह सुनकर माधव भी शीघ्रता पूर्वक उठ गया ॥१३६॥ नम्रता पूर्वक माधव ने उससे कहा ॥१३७॥ **माधव बोले—** हे कन्ये ! आज मेरा जन्म और परिश्रम दोनों सफल हो गये । तुम्हारे सुन्दर मुख को मैंने साक्षात् देख लिया ॥१३८॥ हे कन्ये ! मेरी जवानी भी सफल हो गयी । तुम मेरा वरण पति रूप से करो । हे सुन्दरि ! मुझको छोड़कर तुम्हारे योग्य संसार में कोई भी वर नहीं है ॥१३९॥ **सुलोचना ने कहा—** हे स्वामिन् ! आप मेरे सौभाग्यवशात् मेरे पति हो जायँ । मैंने जो बात कही है, वही सुदृढ है । हे महाभाग ! आप मुझे आज्ञा दें मैं अपने घर जा रही हूँ ॥१४०॥ **माधव बोले—** हे कन्ये! यदि मैं तुम्हें बैठने के लिए कहूँ तो वह मेरा गर्व होगा और मेरे मुख से जाओ यह वचन निकलता ही

स्वयं विचार्य चार्वङ्गि यद्युक्तं तद्विधीयताम्। यदुक्तं वचनं तस्मिन्भविष्यसि सुतत्परा ॥१४२॥
इत्युक्ता तेन सा कन्या हर्षिता स्वगृहे गता ।
तत्रैव माधवस्तस्थौ वृतो बहुपरिच्छदैः ॥१४३॥
चारुविद्याधर एवं स्थितो विद्याधरो वरः। तत्रस्थाश्च जनाःसर्वे स्रक्चन्दनविभूषिताः ॥१४४॥
दिव्याम्बरपरीधाना रेजुर्देवगणा इव ।
क्वचिद्गीतं क्वचिन्नृत्यं क्वचित्कोलाहलध्वनिः ॥१४५॥
क्वचिच्चाऽपि प्रदीपालिस्तत्पुरे समवर्तत। हेषितैः सप्तिवृन्दानां हस्तिानां चैव बृंहितैः ॥१४६॥
हर्षस्वनैश्च पत्रिणां पूरिताः ककुभो दश। नानापताकानिवहैर्धवलैर्नृपसद्मभिः ॥१४७॥
समन्ताद्गगनं सर्वं व्याप्तं तत्रहि जैमिने !। केऽपि शङ्खान्समादध्मुर्ढक्काडिण्डिमझर्झरान्।१४८॥
वादयाञ्चक्रिरे केऽपि साधुकाहलकादिकम्। ततो युवतयः सर्वाः सरोजकोरकस्तनाः॥१४९॥
ललितानि सुगीतानि जगुश्चन्द्रनिभाननाः। परस्परं यौवनतो धर्षणच्युतमालया ॥१५०॥
प्रस्वेदाम्बुगलद्गन्धैर्बभौ कन्येव तत्र भूः । गम्भारीकाष्ठरचितं पीठमारुह्य सुन्दरी ॥१५१॥
ज्ञातिभिर्वेष्टिता याता वरं स्थानं सुलोचना ॥१५२॥
अत्रान्तरे विक्रमपुत्र एष शय्योपरिष्टात्किल लब्धनिद्रः ।
न वेद दैवेन विवाहकार्यं सुलोचनायाश्च सुलोचनायाः ॥१५३॥
विधातृमायाशतमोहितानां कदापि न स्याद्भुवने सुखाप्तिः ।
ततः स्वसङ्केतविधिं जनोऽयं विस्मृत्य निद्रामभजत्सुखेन ॥१५४॥

नहीं है ॥१४१॥ हे सुन्दरि ! स्वयं विचार करके जो उचित हो वह करो । तुमने जो कहा है, उस वचन पर तुम सुदृढ रहना ॥१४२॥ माधव के द्वारा इस तरह से कहने पर प्रसन्न होकर वह अपने घर चली गयी। बहुत अधिक परिच्छदों से युक्त माधव वहीं रहे । चारुविद्याधर इसी प्रकार विद्याधर रूप से वहाँ के सभी लोग माला और चन्दन से अलंकृत थे । वे दिव्य वस्त्र पहने थे और देवताओं के समान सुशोभित हो रहे थे । कहीं पर गीत तथा कहीं पर नृत्य तथा कहीं पर कोलाहल ध्वनि हो रही थी । कहीं पर उस नगर में प्रदीप जलाये गये थे घोड़ों तथा हाथियों की ध्वनि से वह ध्वनि और बढ़ गयी थी ॥१४३-१४६॥ पंत्रियों के हर्ष ध्वनि से दशो दिशा भर गयी थीं । उनके पताका समूह तथा राजा के धवल गृहों से॥१४७॥ हे जैमिने ! सारा आकाश व्याप्त हो गया था । कुछ लोगों ने शङ्ख, ढक्का, उमरु तथा झर्झरों को बजाया॥१४८॥ कुछ लोगों ने सुन्दर काहल आदि को बजाया । उसके पश्चात सभी कमल कली के समान स्तनों वाली युवतियों ने ॥१४९॥ जिनका चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख था उन सबों ने सुन्दर गीतों को गाया यौवन के परस्पर घर्षण से गिरी हुयी माला से ॥१५०॥ पसीने से चूती हुयी सुगन्धि से वहाँ की भूमि कन्या के समान सुशोभित होती थी । गम्भीरी के काष्ठ से निर्मित पीठ पर बैठकर सुन्दरी॥१५१॥ अपने लोगों के साथ उस श्रेष्ठ स्थान पर सुलोचना गयी ॥१५२॥ इसी बीच विक्रम का पुत्र शय्या पर नींद आ जाने के कारण सोया रहा । दैव वशात् वह सुन्दर नेत्र वाली सुलोचना के विवाह कार्य को नहीं जान सका ॥१५३॥ ब्रह्माजी की सैकड़ों माया से मोहित लोगों को संसार में कभी सुख नहीं मिलता है ।

वनं परित्यज्य कृशानुभीत्या जलं प्रविष्टा नलिनी सुखार्थम् ।
सन्दह्यते तत्र हिमानलेन यद्यस्य कर्म न तदन्यथा स्यात् ॥१५५॥
वेदादिशास्त्रमखिलं प्रपठन्तु लोकाः कुर्वन्तु नाम सततं क्षितिपालसेवाम् ।
उग्रं तपः प्रतिदिनं प्रतिसाधयन्तु न श्रीस्तथापि च भजत्यतिभाग्यहीनम् ॥१५६॥
मस्तकोपरि तिष्ठन्ति दुःखानि च सुखानि च ।
अन्यकाले समायान्ति हठादन्यानि सत्तम ॥१५७॥
निद्रावन्तं समालोक्य माधवं दुःखभागिनम् ।
प्रचेष्टश्चिन्तयामास जानन्सङ्केतमेतयोः ॥१५८॥
धिगस्त्वमुं राजपुत्रं दैवमायाविमोहितः। विस्मृत्य निजसङ्केतं निद्रां सम्प्राप्य सेवते ॥१५९॥
असौ दुःखगता कन्यावरस्य निकटेऽधुना। किं भवेन्नयने तादृक्सङ्केतं याति निष्फलम् ॥१६०॥
तिष्ठ त्वं वै पापकर्मन्निद्रां संसेव्य मस्तके। मया हयं समारुह्य नेतव्या सा वराङ्गना ॥१६१॥
कन्यारत्नं च रत्नं च मुदा प्राप्नोति दुर्लभम् ।
तदा किं सेवया कार्यं माधवस्याऽस्य दुर्मतेः ॥१६२॥
धनार्थं क्रियते सेवा सर्वभावेन भूभुजाम्। तच्चेन्मुदा स्वयं प्राप्तं सेवादुःखेन किं तदा॥१६३॥
प्रचेष्ट इति सञ्चिन्त्य समारुह्य तुरङ्गमम् ।
सा राजकन्या यत्राऽऽस्ते ययौ तत्र नभः पथा ॥१६४॥
वरं प्रदक्षिणीकृत्य स्मरन्ती समयं स्वकम्। वामहस्तं समुद्धृत्य तस्थौ विद्याधराग्रतः ॥१६५॥

इसीलिए वह अपने सङ्केत विधि को भूलकर सुख पूर्वक सोता रहा ॥१५४॥ अग्नि के भय से कमलिनी वन को त्यागकर जल में प्रवेश कर गयी तो वहाँ पर वह हिमाग्नि से दग्ध हो गयी । जिसका जैसा कर्म होता है, उससे भिन्न कुछ नहीं होता है ॥१५५॥ वेद आदि सभी शास्त्रों को लोग पढ़ते रहें और रात-दिन राजा की सेवा करते रहे, प्रतिदिन वे उग्र तपस्या भी करें फिर भी अत्यन्त भाग्य हीन को लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती है ॥१५६॥ दुःख और सुख मस्तक पर ही बने रहते हैं । हे जैमिनि ! दूसरे समय से दूसरे ही बलात आ जाते हैं । दुःख भागी माधव को सोते हुए देखकर उन दोनों के सङ्केत को जानने वाला प्रचेष्ट ने सोचा ॥१५८॥ इस देवमाया से मोहित राजकुमार को धिक्कार है वह अपने सङ्केत को भूलकर सो रहा है ॥१५९॥ वर के सन्निकट वह कन्या जाकर दुःखी हो गयी । उस तरह से लाने का सङ्केत तो व्यर्थ हो गया ॥१६०॥ हे पापी ! तुम ऐसे ही सोते रहो । तुम्हें घोड़े पर चढ़कर उस श्रेष्ठ नारी को ले जाना चाहिए ॥१६१॥ कन्या रत्न और रत्न को आसानी से प्राप्त करना दुर्लभ है । अतएव इस मूर्ख माधव की सेवा करने से क्या लाभ है ? ॥१६२॥ धन प्राप्त करने के ही लिए राजाओं की सेवा की जाती है। यदि वह आसानी से स्वयं प्राप्त हो जाय तो सेवा रूपी दुःख से क्या लाभ है ॥१६३॥ इस तरह से सोचकर प्रचेष्टा घोड़े पर सवार होकर जहाँ पर राजकन्या थी वहाँ पर आकाश मार्ग से चला गया ॥१६४॥ अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके वर की प्रदक्षिणा करके बायें हाथ को उठाकर वह विद्याधर के सामने उपस्थित हो गयी ॥१६५॥ वह प्रचेष्ट अत्यन्त वेग से उस कन्या के हाथ को पकड़कर उस अश्व के पृष्ठ

हस्ते विधृत्य तां कन्यां प्रचेष्टोऽतिजवेन सः ।
पृष्ठे निवेशयामास सप्तोस्तस्य महाबलः ॥१६६॥
तां राजपुत्रीमादायपुरींकाञ्चीं जगाम च ।
तामथाऽसौसमालोक्य प्रचेष्टोऽतित्वरान्वितः ॥
उवाच प्रवहन्पाणिं नष्टमानससाध्वसः ॥१६७॥

प्रचेष्ट उवाच

समुद्रान्तरतीरस्थां काञ्चीं नाम पुरीमिमाम् । पश्य सर्वत्रविख्यातां सर्वलोकसुखप्रदाम् ॥१६८॥
अत्र माधववीरस्य तस्य विद्याधरस्य वा ।
कस्यापि च भयं नास्ति पश्य चन्द्रनिभानने ! ॥१६९॥
मच्चित्तेन्धनसँल्लग्नां कामानलशिखावलिम् । कुचकुम्भकरैः सिद्धं निर्वाणं देहि सुन्दरि ! ॥१७०॥
त्वच्चारुमुखपद्मेऽस्मिन्मन्मुखभ्रमरोऽधुना । इच्छेत्पातुं मधून्यत्रकान्तेतिष्ठति प्रिये ! ॥१७१॥
त्वच्चारुगात्रसंस्पर्शाच्छरैस्तुदति मां स्मरः ।
त्राहि त्राहि प्रियेत्राहि तवाऽस्मि शरणं गतः ॥१७२॥
इतिब्रुवन्तं तं मूढमभिवीक्ष्य वराङ्गना। शोकाग्नितप्तसर्वाङ्गी चिन्तयामास चेतसा ॥१७३॥
अयं मूढो दुष्टचेष्टः प्रचेष्टो नाम वेधसा ।
लिखितः किं ललाटे मे यन्मयाहाहताऽस्म्यहम् ॥१७४॥
क्व माता क्व च मे तातः क्व च विद्याधरो वरः ।
अनेनाऽहं समानीता धिगस्तु घटनां विधेः ॥१७५॥
अलं लोकाः प्रकुर्वन्ति गर्वं जगति सर्वदा ।
वेत्तिच्छेत्तुं गर्ववृक्षं विधाता घटनासिना ॥१७६॥

पर बैठाकर वह महाबलवान् ॥१६६॥ उस राजकुमारी को लेकर काञ्चीपुरी चला गया । उसके पश्चात् उस कन्या को देखकर प्रचेष्ट अत्यन्त शीघ्रता करते हुए उसके हाथ को पकड़े हुए कहा मानसिक भय के नष्ट हो जाने के कारण वह बोला ॥१६७॥ **प्रचेष्ट ने कहा**— समुद्र के दूसरे तट पर विद्यमान यह काञ्ची नाम की नगरी है । यह सर्वत्र विख्यात तथा सभी सुखों को देने वाली है इसे देखो ॥१६८॥ यहाँ पर वीर माधव का अथवा उस विद्याधर का किसी का भी भय नहीं है । हे चन्द्रमा के सदृश मुख वाली ! इसे देखो॥१६९॥ मेरे चित्त रूपी इन्धन में लगी हुयी काम रूपी अग्नि को अपने स्तन रूपी हाथों से सिंचकर तुम मुझे शान्ति प्रदान करो ॥१७०॥ मन तुम्हारे सुन्दर मुख का इस समय भ्रमर बन गया है । वह चाहता है कि मैं इसके पराग का पान करूँ । हे प्रिये ! तुम्हारी क्या आज्ञा हैं ?॥१७१॥ तुम्हारे सुन्दर शरीर के संस्पर्श के कारण कामदेव मुझको अपने बाणों से दुःख दे रहा है । हे प्रिये ! तुम मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारे शरण में हूँ ॥१७२॥ इस तरह से कहते हुए उस मूर्ख को देखकर वह सुन्दरी जिसका सारा अङ्ग शोक से सन्तप्त था वह मन में विचार की ॥१७३॥ क्या मेरे ललाट गें ब्रह्मा ने इस दुष्ट चेष्टा वाले मूर्ख प्रचेष्ट को ही लिखा है क्या ? कि मैं इसके द्वारा मारी गयी हूँ ॥१७४॥ कहाँ तो मेरे माता-पिता और

तथापि विपदे धैर्यं निर्भयत्वं च तत्परम्। उपायाश्चेति चत्वारः प्रशस्या दीर्घदर्शिभिः॥१७७॥

इत्यालोच्य हृदा कन्या वचोभिःकोमलाक्षरैः ।
प्रचेष्टं प्रत्युवाचाऽसौ सर्वकार्यविचक्षणा ॥१७८॥

सुलोचनोवाच

दृढं कुरु मनो वीर ! कन्याऽहमविवाहिता ।
मां समालिङ्ग्य मोहेन कथं यास्यसि दुर्मते ॥१७९॥
शास्त्रोक्तविधिना वीर ! विवाहेन गृहाण माम् ।
तव सेवां करिष्यामि दासीवत्कोऽत्र संशयः ॥१८०॥
त्वं मे प्राणाश्च मित्रं च भूषणंबान्धवास्तथा ।
अनन्यगतयोनार्योभवान्नीतिमवैति किम् ॥१८१॥

विवाहयोग्यवस्तुनि विवाहार्थं समानय। मत्पाणिग्रहणं शीघ्रं कुरु जाड्यं जहीति च॥१८२॥
अन्तर्दृढं बहिःश्लक्ष्णं बदरीफलवद्वचः। आकर्ण्य तस्या मूढोऽसौ परमां प्रीतिमाययौ॥१८३॥
तुरङ्गमं च तां कन्यां संस्थाप्यैकत्र दुर्मतिः। करकङ्कणमादाय तस्यास्तत्पुरमाययौ॥१८४॥

ततः सा चिन्तयामास विधिं नूनं प्रशस्य तम् ।
यत आवां परित्यज्य मूढोऽसौ हर्षितो ययौ ॥१८५॥
किंकर्तव्यं क्व गन्तव्यं क्वस्थातवं मयाऽधुना ।
अतिसङ्कटकार्येऽस्मिन्निस्तारो मे भवेत्कथम् ॥१८६॥

विद्याधर वर और कहाँ मैं इसके द्वारा यहाँ ला दी गयी हूँ विधि की भी घटना को धिक्कार है॥१७५॥ लोग संसार में गर्व व्यर्थ ही करते हैं । ब्रह्मा घटना रूपी कृपाण के द्वारा गर्व रूपी वृक्ष को काटना जानते हैं ॥१७६॥ फिर भी विपत्ति में धैर्य, निर्भकता, तत्परता और उपाय की प्रशंसा दीर्घदर्शी मनीषीगण करते हैं ॥१७७॥ इस तरह से विचार करके वह कन्या कोमल अक्षरों में सभी कामों में निपुण उस प्रचेष्ट से कही ॥१७८॥ **सुलोचना ने कहा—** वीर आप अपना मन सुदृढ कीजिये । मैं अविवाहित कन्या हूँ । अज्ञानवशात् मेरा आलिङ्गन करके कैसे जी सकते हैं ॥१७९॥ हे वीर ! मुझको आप शास्त्रोक्त विधि से ग्रहण करें । मैं आपकी सेवा दासी के समान करूँगी इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१८०॥ आप मेरे प्राण, मित्र, भूषग तथा बान्धव हैं । नारियाँ तो अन्य गति वाली होती हैं आप नीति जानते ही हैं॥१८१॥ पहले विवाह के योग्य वस्तुओं को लाइये और शीघ्र मेरा पाणिग्रहण करें आप अपनी जड़ता का परित्याग करें ॥१८२॥ भीतर कठोर तथा बाहर मृदु बैर के फल के समान उसकी बाणी को सुनकर वह महामूर्ख अत्यन्त प्रसन्न हो गया ॥१८३॥ अश्व तथा उस कन्या को एक स्थान पर रखकर वह मूर्ख उसके हाथ के कङ्गन को लेकर उस नगर में गया ॥१८४॥ उसके बाद उसने सोचा कि ब्रह्मा निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं । क्योंकि हम दोनों को छोड़कर वह मूर्ख प्रसन्नता पूर्वक चला गया है ॥१८५॥ इस समय मुझे क्या करना चाहिए कहाँ रहना चाहिए या कहाँ जाना चाहिए । इस अत्यन्त सङ्कटमय कार्य में मेरा निस्तार कैसे हो ?॥१८६॥ यदि मैं यहाँ रहती हूँ तो ये लोग क्या कहेंगे ? दूसरे जन्म की इच्छा से पवित्र

यदाऽहमत्र तिष्ठामि किं वदिष्यन्ति ते तदा ।
पुण्यतीर्थं समासाद्य परत्र जन्मकम्यया ॥१८७॥
पञ्चतां प्रतियास्यामि सापि श्रेयस्करी यतः ।
मद्वियोगादयं मूढो नविद्याधरमाधवौ ॥१८८॥
जीविष्यन्ति त्रयोऽप्येते क्षणमात्रमपि स्मरन् ।
मयि स्थितायामेतेषां भवेज्जीवनरक्षणम् ॥१८९॥
मृतायामपि यास्यन्ति त्रयोऽप्येते तु पञ्चताम् ।
मामुद्दिश्य यदा प्राणांस्त्यक्ष्यन्ते तेऽत्र मे जनाः ॥१९०॥
भविष्यामि तदा नूनमहं तद्वधभागिनी । इदानीं पुण्यतीर्थेषु यष्टव्यो भगवान्हरिः ॥१९१॥
तस्मिन्प्रसन्ने भद्रं मे सर्वमेव भविष्यति । प्राणेषु च विनष्टेषु सर्वमेव विनश्यति॥१९२॥
तेषु स्थितेषु सकलं स्तोकस्तोकेन सिध्यति ॥१९३॥
निशावशिष्टा नलिनी हिमाकरे दूरीकृते चण्डकरेण भास्वता ।
सुगन्धपुष्पप्रकरोऽतिसुन्दरी नाप्नोति किं भृङ्गवरस्य सङ्गमम् ॥१९४॥
हृदा विचिन्त्येति वराङ्गना सा सप्तिं समारुह्य महाजवं तम् ।
तप्तुं तपः सागरविष्णुपत्न्योर्जगाम विज्ञोत्तमसङ्गमाय ॥१९५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये गङ्गासागरसङ्गमे । अभूद्राजा सुषेणाख्यः सोमवंशसमुद्भवः ॥१९६॥
गन्तुं तस्य सभां राज्ञश्चेतसा सा व्यचिन्तयत् ।
मयायुवत्या कर्तव्यं कथं भूपालदर्शनम् ॥१९७॥
अधिवासनसूत्राणि सदूर्वाणि भुजे मम । कन्याऽहं तुरगारूढा युवती सङ्गवर्जिता ॥१९८॥

तीर्थ में जाकर ॥१८७॥ इससे तो अच्छा यही होगा कि वहाँ मैं मर जाऊँ । मेरे वियोग के कारण यह मूर्ख विद्याधर और माधव ये तीनों मेरा स्मरण करके क्षण भर भी जीवित नहीं रहेंगे ॥१८८-१८९॥ मेरे मर जाने पर ये तीनों भी मर जायेंगे । जब ये तीनों मेरे लिए अपने प्राणों का परित्याग कर देंगे ॥१९०॥ तो मैं निश्चित रूप से इन सबों के वध की भागिनी हो जाऊँगी । इस समय पवित्र तीर्थ में जाकर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥१९१॥ उनके प्रसन्न हो जाने पर मेरा सब प्रकार का कल्याण होगा । प्रांणों के नष्ट हो जाने पर तो मेरा सब कुछ नष्ट हो जायेगा ॥१९२॥ उन लोगों के रहने पर मेरा सब कुछ धीरे-धीरे सिद्ध हो जायेगा ॥१९३॥ रात्रि के अन्त में चन्द्रमा के दूर हो जाने पर प्रचण्ड किरण वाले सूर्य के द्वारा सुगन्धमय पुष्प समूह वाली सुन्दरी कमलिनी श्रेष्ठ भ्रमर से सङ्ग को नहीं प्राप्त करती है क्या॥१९४॥ इस तरह से विचार कर वह श्रेष्ठ नारी महान् वेग वाले उस घोड़े पर चढ़कर गङ्गा सागर में तपस्या करने के लिए ज्ञानियों की उत्तम सङ्गति प्राप्त करने के लिए चली गयी ॥१९५॥ उस श्रेष्ठ क्षेत्र गङ्गा सागर सङ्गम में सोमवंश में उत्पन्न राजा सुषेण थे ॥१९६॥ उसने अपने मन में राजा की सभा में जाने को सोचा। मैं युवती हूँ राजा से भेंट कैसे कर सकती हूँ ॥१९७॥ मेरी भुजा में अधिवासन सूत्र तथा दूर्वा विद्यमान हैं । युवतियों के सङ्ग से रहित कन्या मैं हूँ ॥१९८॥ मेरा चरित्र निश्चत रूप से विस्मय उत्पन्न करने वाला

चरित्रं मामकं नूनं मनोविस्मयकारकम् ।
आत्मानं गोपयित्वाऽहं यास्यामि नृपतेः सभाम् ॥१९९॥
इन्द्रजालप्रभावेण सा भूत्वा पुरुषाकृतिः । प्रविवेश सभां राज्ञः सुधर्मामिव जैमिने !॥२००॥
तं सम्पन्नमिवाऽयान्तं शक्तिहस्तं हयासनम् । स्वयम्पप्रच्छभूपालः कस्त्वं कुत इहाऽऽगतः॥२०१॥
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा सा कन्या पुरुषाकृतिः । प्रणम्योवाच राजानं सुहृदं सज्जनाश्रयम्॥२०२॥
देव ! वीरवरो नाम पुत्रोऽहं पृथिवीपतेः। वर्तनाय समायातस्त्वद्राज्यं प्रति सम्प्रति ॥२०३॥
यद्यत्कार्यमसाध्यं स्यात्तदेवसाधयाम्यहम्। मयि स्थिते न मद्भर्त्तुःकुत्रापि स्यात्पराजयः॥२०४॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
वीरवरप्रदर्शो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

राजोवाच

तिष्ठाऽत्रैव महाबाहो ! मम राज्येसुशोभने। कर्तव्या ते मया वृत्तिः संशयो नाऽत्रविद्यते ॥१॥
ततो वीरवरस्तस्य सन्निधौ धरणीपतेः। उवास सततं विप्र ! तत्सेवागतमानसः॥२॥

है । मैं अपने को छिपाकर राजा की सभा में जाऊँगी ।।१९९।। इन्द्रजाल के प्रभाव से पुरुषाकार होकर वह सुधर्मा सभा के समान उस राजा की सभा में प्रवेश की ।।२००।। उसको सम्पन्न के समान हाथ में शक्ति लेकर और अश्व पर बैठे हुए देखकर राजा ने स्वयं पूछा तुम कौन हो ? और कहाँ से आये हों ?॥२०१॥ राजा के इस वचन को सुनकर पुरुषाकार वाली वह कन्या सुहृद तथा सज्जनों को आश्रय प्रदान करने वाले उस राजा को प्रणाम करके ।।२०२।। कही, देव मेरा नाम वीरवर है । मैं राजा का पुत्र हूँ रहने के लिए आपके राज्य में आया हूँ मेरे रहने से मेरे स्वामी का पराजय कहीं भी नहीं हो सकता है ।।२०३-२०४।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के वीरवर दर्श नामक पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

वीरवर के छद्मवेष में रहने वाली राजकुमारी के दारा भीमनाद का वध, परिणत हुए उसके रूप से बीच मार्ग में दिव्य रथ पर चढ़े हुए पुरुष को देखकर उसके सन्निकट उसके पूर्व जन्म के वृत्तान्त का श्रवण, पुरुष वेष वाली सुलोचना के लिए राजा का अपनी पुत्री को प्रदान किया जाना, अपने नगर में जाना, प्रचेष्ट को पाश में बन्दी बनाना, राजकुमार माधव के साथ मिलन और उन दोनों का विवाह

राजा ने कहा— हे महाबाहो ! मेरे इस सुन्दर राज्य में तुम रहो । मैं निश्चित रूप से तुम्हें वृत्ति प्रदान करूँगा ।।१।। उसके बाद वह वीर उस राजा के पास ही हे विप्र ! सदा रहता था । और उस राजा

अथैकदा तस्य पुरे जैमिने ! सकलाः प्रजाः ।
भीमनादोनामखङ्गः क्षोभयामास सन्ततम् ।।३।।
तद्वधाय ततो राजा प्रेषयामास तं रुषा। ततोऽसौ गण्डकं हन्तुं ययौ वीरवरो जनैः।।४।।
ददर्श पर्वताकारं सुप्तन्तं धरणीतले। दंष्ट्वा करालवदनं खङ्गिनं तं सशक्तिधृत् ।।५।।
नमसि भ्रामयन्सप्तिं स च वीरवरो रुषा। खङ्गिनं तमिति प्राह मेघगम्भीरया गिरा।।६।।
उपार्जितास्त्वया ये ये दुरात्मन्पापपादपाः। बभुवुःफलिनस्ते त ऋतुं प्राप्य यथा द्रुमाः ।।७।।
खादिताः प्राणिनो ये ये राज्येऽस्मिन्पापिना त्वया ।
यमालये समस्तैस्तैः सङ्गमस्ते भविष्यति ।।८।।
मुञ्च निद्रामरे दुष्ट ! मां पश्यान्तकरं स्थितम् ।
अनया निद्रया किन्ते महानिद्रा भविष्यति ।।९।।
ततःसोऽपि समुत्तस्थौ क्रोधसंरक्तलोचनः। धूलिधूसरसर्वाङ्गस्त्यक्तनिद्रो महाबलः ।।१०।।

भीमनाद उवाच

गर्वं मा कुरु दुर्बुद्धे तवायुः शेषतां गतम्। मद्दृष्टिपथमायातः पुमान्को नु विमुच्यते।।११।।
ज्वलदग्निशिखाश्रेणीं प्रविशेच्छलभो यथा। मत्कोपानलराशौ त्वं तथैव निपतिष्यसि ।।१२।।
इति ब्रुवन्तं तं शक्तया जघान शितया तया ।
स जज्वाल महाकोपात्कृत्वा हुङ्कारनिःस्वनम् ।।१३।।
स पपात महीपृष्ठे गतायुर्गण्डकस्ततः। चालयन्पृथिवीं सर्वां शोणितौघपरिप्लुतः।।१४।।

की सेवा में अपने मन को लगाये रखता था ।।२।। हे जैमिने ! एक बार उसके राज्य में सारी प्रजा को भीमनाद नामक खड्ग निरन्तर क्षुब्ध करने लगा ।।३।। क्रुद्ध होकर राजा ने उसको मारने के लिए वीरवर को भेजा । उसके बाद लोगों के साथ वीरवर उस गण्डक (गैंडा) को मारने के लिए गये ।।४।। पृथिवी पर पर्वताकार उसको सोये हुए भयङ्कर दाँत वाले उस खड्ग को देखकर शक्ति धारण किए हुए वीरवर ने।।५।। आकाश में अपेन घोड़े को घुमाते हुए क्रोध भरे उसने अपनी मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा।।६।। अरे पापी ! दुरात्मा तुमने जिन-जिन पाप रूपी वृक्षों का उपार्जन किया है वे सब जिस तरह ऋतु के आने पर वृक्ष फल देते हैं उसी तरह वे फल वाले हो गये हैं ।।७।। तुम पापी ने जिन-जिन प्रजाओं को खा लिया है, उन सबों के साथ आज तुम्हारी उन सबों से भेंट यमलोक में होगी ।।८।। अरे दुष्ट ! तुम सोना छोड़ो तुमको मारने वाले मुझको तुम देखो । तुम्हारा इस नींद में क्या होने वाला है ? आज तुम्हारी महानिद्रा होगी ।।९।। धूसरित उसके बाद वह भी क्रोध से आँखे लाल किए हुए उठा । वह महाबलवान् था उसका सारा अङ्ग धूसरित था । उसने निद्रा त्याग दी ।।१०।। **भीमनाद ने कहा—** मूर्ख गर्व न करो तुम्हारी आयु समाप्त हो गयी है । जिस पुरुष को मैं देख लेता हूँ उसे मैं छोड़ता नहीं हूँ ।।११।। जिस तरह से जलती हुयी अग्नि की शिखा में कीड़े प्रवेश करते हैं । उसी तरह मेरी क्रोधाग्नि में तुम भी गिरोगे।।१२।। इस तरह से कहने वाले उसको वीरवर ने तीक्ष्ण शक्ति से मारा । वह महाक्रोध करके हुङ्कार ध्वनि करके जल उठा और आयु समाप्त हो जाने के कारण वह गण्डक पृथिवी पर गिर पड़ा । खून से

खङ्गिनं पतितं दृष्ट्वा गङ्गाब्धिरोधसि द्विज ! ।
समीपं तस्य भूपस्य स गन्तुमुपचक्रमे ॥१५॥
स गच्छन्पथि विप्रर्षे ! ददर्शैकं महाशयम्। जाज्वल्यमानं तेजोभिर्द्वितीयमिव भास्करम्॥१६॥
विष्णुदूतगणैर्युक्तं तुलसीमाल्यभूषितम्। दिव्याम्बरधरं दिव्यं रथारूढं स्मिताननम्॥१७॥
पप्रच्छेति ततो भक्त्या स च वीरवरश्च तम् ।
कस्त्वं कुत इहाऽऽयातः क्व गच्छसि वदस्व नः ॥१८॥

पुरुष उवाच

कन्ये ! विधृतपुंवेषे मद्वृत्तान्तं निशामय। कथयामि समासेन श्रोतुमिच्छसि चेन्मुदा ॥१९॥
अहमासं पुरा राजा चौरवंशवनानलः। धर्मबुद्धिरितिख्यातः सर्वधर्मपरायणः ॥२०॥
मया यज्ञाः कृताः सर्वे दानानि सकलानि च ।
चतुर्वर्षसहस्राणि पालिता च वसुन्धरा ॥२१॥
पाखण्डजनवाक्येन मया भूमिर्द्विजन्मनः। आहृता कोपमासाद्य पुनर्दत्ता न कुत्रचित्॥२२॥
मम तेनाऽपराधेन स्वयमेव विधिस्ततः। जहार तत्क्षणादेव सर्वां राजश्रियं रुषा॥२३॥
अथाऽहं गतसम्पत्तिः शोकाग्निदग्धमानसः। कियद्भिर्दिवसैः साध्वि यमराजवशं गतः ॥२४॥
मां दृष्ट्वा चित्रगुप्तेन तत्कर्म प्रकटीकृतम्। उक्तश्च भास्करिर्देवश्चारुहासगतिः प्रभुः॥२५॥
धर्मबुद्धिरयं राजा कृतपुण्यक्रियः सदा। अस्त्यस्य दुरितं किञ्चित्तनिशामय वच्म्यहम्॥२६॥
पाखण्डैर्बोधितोऽयन्तु द्विजभूमिं जहार वै। तेनैग्र कर्मणा स्थानं नरके चाऽस्य दुस्तरे॥२७॥
वृत्तिच्छेदः सूर्यपुत्र ! यस्य येन विधीयते । स तेन वधमाप्नोति शास्त्रेष्विति सुनिश्चितम्॥२८॥

लथपथ उसने सम्पूर्ण पृथिवी को हिला दिया ॥१३-१४॥ हे द्विज ! गङ्गा सागर की धारा में उस खड्ग को गिरा हुआ देखकर वीरवर उस राजा के समीप जाने लगा ॥१५-१६॥ विष्णु भगवान् के गणों से युक्त तुलसी की माला से अलंकृत दिव्य वस्त्र धारी दिव्य रथ पर चढे हुए तथा मुस्कुराते हुए उससे वीरवर ने भक्ति पूर्वक पूछा तुम कौन हो ? कहाँ से यहाँ आये हो ? कहाँ जा रहे हो ? यह तो मुझे बतलाओ ॥१७-१८॥ **गैण्डे ने कहा—** वेष बनायी हुयी कन्ये मेरे वृत्तान्त को तुम सुनो यदि प्रसन्नता पूर्वक सुनना चाहती हो तो मैं बतलाता हूँ ॥१९॥ मैं पूर्व जन्म में चोर वंश के लिए अग्नि के समान धर्म बुद्धि के नाम से प्रख्यात राजा था और सभी धर्मों को करता था ॥२०॥ मैंने सभी यज्ञों तथा सभी दानों को भी किया । चार हजार वर्षों तक पृथिवी का पालन भी किया ॥२१॥ पाखण्डियों की बात मान कर मैंने ब्राह्मण की भूमि को क्रोध करके छिन लिया और फिर उन्हें नहीं दिया ॥२२॥ मेरे उस अपराध के कारण स्वयम् ब्रह्माजी ने रुष्ट होकर मेरी सम्पूर्ण राज्य श्री को हर लिया ॥२३॥ उसके पश्चात् सम्पत्ति रहित शोकाग्निसे दग्ध मन वाला मैं हे साध्वि कुछ ही दिनों में मर गया ॥२४॥ मुझे देखकर चित्रगुप्त ने मेरे उस कर्म को बतलाया । मनोहर हँसी और गति वाले यमराज ने कहा ॥२५॥ यह धर्म बुद्धि नामक राजा सदा पुण्य कर्म करता था । इसका कुछ अपराध है उसे मैं बतलाता हूँ आप सुनें ॥२६॥ पाखण्डियों के द्वारा समझाये जाने के कारण इसने ब्राह्मण की भूमि को ले लिया उसी के कारण इसका स्थान दुस्तर नरक

तस्मादयं पापकर्मा ब्रह्महा पृथिवीपतिः। एतस्य निरये स्थानं कल्पकोटिशतावधि ॥२९॥
आत्मदत्तां हरेद्यस्तु परदत्तां च मेदिनीम्। सकोटिकुलसंयुक्तः प्रयाति नरकं विभो ! ॥३०॥
यो हरेच्च महीं तावद्देवस्य ब्राह्मणस्य च। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा कल्पकोटिशतावधि ॥३१॥
परदत्तां क्षितिं यस्तु धरानाथोऽभिरक्षति। सकोटिगुणमाप्नोति पुण्यं दातुस्तु यद्भवेत्॥३२॥
ततोऽहं शमनादेशाद्भुक्त्वा वै पूतिमृत्तिकाम्। अनन्तजन्मसु प्राणिहिंसासदा मया कृता ॥३३॥
गावश्च ब्राह्मणाश्चैव तथैवान्येऽपि जीविनः। मया दुष्टेन निहताः कोटिकोटिसहस्रशः ॥३४॥

कालेन चाऽद्य मांसाध्वि ! सर्वप्राणिविहिंसकम्।
खड्गयोनौ समुत्पन्नं भवतीप्रजघानह ॥३५॥

गङ्गाब्धिसङ्गमं तीर्थं दुर्लभं दैवतैरपि। स्थलेऽपि मृत्युमासाद्य यत्रेयं मम सद्गतिः ॥३६॥

गच्छ सुश्रोणि ! भद्रं ते भविष्यति न संशयः।
अचिरेणैव च पत्युदर्शनं ते भविष्यति ॥३७॥

व्यास उवाच

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा सा कन्या परमाद्भुतम्। ववन्दे चरणौ तस्य धर्मबुद्धिर्महीपतिः ॥३८॥
ततो रथं समारुह्य स राजा त्रिदिवं ययौ। सोऽपि वीरवरो विप्र ! जगाम नृपतेःसभाम्॥३९॥

राजा च तं मृतं श्रुत्वा खड्गिनं भीमविक्रमम्।
तस्यै ददौ विवाहेन जयन्तींनिजकन्यकाम् ॥४०॥

में हैं ॥२७॥ हे सूर्यपुत्र ! जो जिसकी वृत्ति को छिन लेता है, उसकी उसी के हाथों मृत्यु होनी चाहिए यह शास्त्रों में निश्चित किया गया है ॥२८॥ इसीलिए यह पापी राजा ब्रह्मघाती है। यह नरक में सौ करोड़ कल्पों तक रहेगा ॥२९॥ स्वयम् अपने से दी गयी अथवा दूसरों के द्वारा दी गयी पृथिवी का जो हरण करता है हे विभो ! वह अपने करोड़ों वंशवालों के साथ नरक में जाता है ॥३०॥ जो देवता अथवा ब्राह्मण की भूमि का हरण कर लेता है उसका करोड़ों कल्पों में भी उद्धार नहीं होता है ॥३१॥ दूसरों के द्वारा दी गयी भूमि की रक्षा जो राजा करता है वह दाता की अपेक्षा सौ गुणा पुण्य को प्राप्त करता है।॥३२॥ उसके पश्चात् मैं नरकों में रहा मैं यमराज के आदेश से सड़ी हुयी मिट्टी फिर मैंने में अनेक जन्मों में प्राणियों की हिंसा की ॥३३॥ गो, ब्राह्मण तथा दूसरे भी जीवों को खड्गी मैंने आपकी प्रजाओं को मार दिया ॥३४॥ हे साध्वि ! फिर काल आ जाने के कारण खड्ग योनि में उत्पन्न दुष्ट मैंने करोड़ों सहस्र जीवों को मार दिया हे साध्वि ! प्राणियों की हिंसा करने वाले मुझको तुमने मार दिया ॥३५॥ गङ्गा सागर तीर्थ देवताओं के भी लिए दुर्लभ है। यहाँ पृथिवी पर भी मरने पर मुझे सद्गति प्राप्त हुयी ॥३६॥ हे सुन्दरि ! तुम जाओ निश्चित रूप से तुम्हारा कल्याण होगा। शीघ्र ही तुम्हें तुम्हारे पति का दर्शन होगा।॥३७॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके उस अद्भुत वचन को सुनकर वह कन्या उसके चरणों की वन्दना की ॥३८॥ उसके बाद राजा धर्म बुद्धि भी दिव्य रथ पर चढ़कर स्वर्ग चले गये। हे विप्र ! वह वीरवर भी राजा की सभा में चला गया ॥३९॥ राजा भी उस भयङ्कर पराक्रमी खड्गी की मृत्यु को सुनकर उसका विवाह जयन्ती नामक अपनी कन्या से कर दिया ॥४०॥ उस जयन्ती को लेकर पुरुषाकृति वह कन्या गङ्गा

जयन्ती तां समादाय सा कन्या पुरुषाकृतिः ।
तपस्तप्तुं मनश्चक्रे गङ्गासागरसङ्गमे ॥४१॥
गङ्गाब्धिसङ्गमे स्नात्वा प्रभाते द्विजसत्तम !। गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च यजेन्नारायणं प्रभुम् ॥४२॥
निरामिषं हविष्यं च फलाहारं द्विजोत्तम !। कदाचिदुपवासं सा कुरुते च वराङ्गना ॥४३॥
एकाकिनीं मां दृष्ट्वऽत्र धर्षयिष्यन्ति दुर्जनाः ।
दुर्बलामिति मत्वाऽसौ समारुह्य च वाजिनम् ॥४४॥
भूयएवनिजं राज्यं सा जगाम वराङ्गना। माधवस्य वियोगेन तस्य विद्याधरस्य वा॥४५॥
मृता सा राजजनया यतोऽन्यं न भजत्यपि। तस्यां मृतायां भृत्योऽसौ र्जिगाम यदृच्छया ॥४६॥
विलप्य बहुधा तत्र प्रचेष्टोऽत्यन्तशोकभाक् ।
जगाम मरणार्थाय गङ्गासागरसङ्गमम् ॥४७॥
गङ्गाब्धिसङ्गमे स्नात्वा तुलसीमृद्विभूषितः। कृताञ्जलिरिति प्राह प्रचेष्टो भीष्ममातरम् ॥४८॥
पवित्रे त्वज्जले मातस्त्यजाम्यत्रकलेवरम्। सुलोचना मे कान्तास्याद्यथातत्त्वंकरिष्यसि ॥४९॥
भूयो भूयो ब्रुवन्तं तमिति तस्याश्च किङ्कराः ।
बद्ध्वापाशेन तं निन्युर्निरुक्तां तत्सभां प्रति ॥५०॥
क्रुद्धा वीरवरादेशात्किङ्करास्ते सुदारुणाः। कारायां स्थापयामासुः प्रचेष्टमनुविह्वलम् ॥५१॥
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा तत्कार्यमद्भुतम् ।
हाहाकारो महानासीत्तद्राज्ये द्विजसत्तम ! ॥५२॥
एतच्छुत्वाऽद्भुतंकर्म स च राजा गुणाकरः ।
आयातोऽत्यन्तसन्तप्तो वदतीति द्विजोत्तम ! ॥५३॥

सागर सङ्गम में तपस्या करने का मन बनायी ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! गङ्गा सागर सङ्गम में प्रात:काल स्नान करके गीत, वाद्य और नृत्य के द्वारा भगवान् नारायण की पूजा करनी चाहिए ॥४२॥ मांस रहित हविष्य वह खाती थी और फलाहार वह करती थी और कभी-कभी उपवास भी वह सुन्दरी करती थी ॥४३॥ मुझको अकेली देखकर दुष्ट लोग मेरा अपहरण भी कर सकते हैं। दुर्बल अपने को मानकर अश्व पर सवार होकर ॥४४॥ वह वराङ्गना माधव के अथवा विद्याधर के वियोग के कारण पुन: अपने राज्य में चली गयी॥४५॥ वह राजकुमारी किसी दूसरे को नहीं अपनाती थी अतएव वह मर गयी। उसके मर जाने पर वह भृत्य अपनी इच्छानुसार वहाँ से निकल गया ॥४६॥ अनेक प्रकार से विलाप करके अत्यन्त संविग्न मरने के लिए गङ्गा सागर सङ्गम में गया ॥४७॥ गङ्गा सागर सङ्गम में स्नान करके तुलसी की मिट्टी लगाकर प्रचेष्ट गङ्गाजी को जलाञ्जलि प्रदान किया ॥४८॥ हे मात: ! तुम्हारे पवित्र जल में मैं अपने शरीर का त्याग कर रहा हूँ। मेरी पत्नी सुलोचना जैसे होगी वैसा ही करेगी ॥४९॥ बार-बार इस बात को सुनकर उसके किङ्कर उसको पाश से बाँधकर उपर्युक्त सभा में लाये ॥५०॥ क्रुद्ध वीरवर के आदेश से क्रुद्ध हुए अत्यन्त भयङ्कर किङ्कर अत्यन्त विह्वल प्रचेष्ट को वन्दी गृह में रख दिए ॥५१॥ इसी ही समय में उसके अद्भुत कार्य को देखकर हे विप्र ! उसके राज्य में महान् हाहाकार हुआ ॥५२॥ इस अद्भुत कर्म

निषङ्गिणश्च रथिनश्चर्मिणः खड्गिनस्तथा । धानुष्काश्च कौन्तकाश्च कोटिकोटिसहस्त्रशः ॥५४॥
स्थाने स्थाने पुरे तस्मिन्राजा वै शोकविह्वलः ।
नियोजयामास तदरक्षायै द्विजसत्तम ! ॥५५॥
तेनाऽऽज्ञप्तास्ततः सर्वे योद्धारोऽमितविक्रमाः ।
सत्वराः पतिरक्षासु तस्थुस्तस्मिन्पुरे रुषा ॥५६॥
गीतानि गायकैःसर्वैर्नृत्यानि नर्तकैस्तथा। वाद्यानि वादकैश्चैव तत्र त्यक्तानि साध्वसात्॥५७॥
ततः स राजा विप्रर्षे ! समाहूय स्वमन्त्रिणः ।
किमेतदिति पप्रच्छ शोकोपहतमानसः ॥५८॥

मन्त्रिणऊचुः

देवाद्भुतमिदं कर्म न दृष्टं न श्रुतं क्वचित्। एतावतां नृणां मध्ये पश्यतां क्व जगाम सा॥५९॥
कोऽपिजल्पति सा लक्ष्मीः शापेनाऽऽगत्य भूतले ।
त्वदीयं सौधमेतर्हि स्वयमन्तरधीयत ॥६०॥
मायामयी सा रमणी मायया त्वद् गृहे स्थिता ।
दर्शयित्वा तु मायां स्वां गतेत्यन्ते वदन्ति वै ॥६१॥
केचिद्वदन्ति रमणी सर्वलक्षणसंयुता। आगमिष्यति भूयोऽपि भगाङ्गो मघवा यतः॥६२॥
तन्मुखं चन्द्रवन्मत्वा विचिन्त्यात्मानमात्मना। केचिद्वदन्ति चन्द्रेण नीतासु प्रतिपत्तये॥६३॥
वदन्ति केऽपि सा कन्या सद्गुणा दीर्घवासना ।
भ्रान्त्या चन्द्रमसा ग्रस्तापूर्णचन्द्रनिभानना ॥६४॥

को सुनकर वह गुणाकर राजा, हे द्विजोत्तम ! वह राजा अत्यन्त संतप्त होकर इसी तरह से बोलता हुआ आया । निषङ्गधारी रथी, चर्मी, खड्गधारी, धनुर्धारी, कुन्त (भाला) धारियों को करोड़ों-करोड़ों हजार की संख्या में स्थान-स्थान पर राजा ने नगर की रक्षा करने के लिए नियुक्त कर दिया ॥५३-५५॥ उसकी आज्ञा प्राप्त करके वे अत्यन्त पराक्रमी योद्धा शीघ्रता पूर्वक अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए उस नगर में क्रुद्ध होकर स्थित रहे ॥५६॥ सभी गायकों से गीतों को तथा नर्तको से नृत्य को वाद्यको से वाद्यों को भय के कारण त्यागवा दिया ॥५७॥ उसके बाद वह राजा हे विप्रर्षे अपने मन्त्रियों को बुलाकर शोक संविग्न होकर पूछा कि यह क्या हो रहा है ॥५८॥ **मन्त्रियों ने कहा—** इस अद्भुत कर्म को न तो कहीं देखा गया है और न सुना गया है । इन सभी मनुष्यों के सामने ही वह कहाँ चली गयी ॥५९॥ कोई कहता है कि वह लक्ष्मी शापवशात् पृथिवी पर आकर आपके इस महल में आकर अन्तर्धान हो गयी है॥६०॥ मायामयी वह सुन्दरी माया के द्वारा आपके गृह में वह अपनी माया को दिखाकर भीतर चली गयी है यह लोग बतलाते हैं ॥६१॥ कुछ लोगों का कहना है कि वह सुन्दरी सभी लक्षणों से युक्त है । जिस तरह भगों से युक्त अङ्गों वाले इन्द्र के समान पुनः आयेगी ॥६२॥ उसके मुख को चन्द्रमा के समान मानकर तथा अपने मन में विचार करके अत्यन्त विश्वास के लिए चन्द्रमा के द्वारा वह लायी गयी है॥६३॥ कुछ लोग कहते है कि वह कन्या सद्गुणों तथा दीर्घ वासना से युक्त थी भ्रम के कारण पूर्ण चन्द्रमा के

दिग्गजैर्नलिनीभ्रान्त्या प्रफुल्लकमलानना। विषदण्डप्रहस्ता च नीरजाकलिकाकुचा ॥६५॥

केचिद्वदन्ति सृष्ट्वा तां स्रष्टुमन्यां स्त्रियं नृप ! ।
तद्रूपदर्शनार्थाय नीता रूपगुणास्थिता ॥६६॥
केचिद्वदन्ति भूपाल ! त्वया सर्वदिशो जिताः ।
रूपैर्देवाङ्गनां जेतुं गता सा त्रिदिवं प्रति ॥६७॥
अथ ते मन्त्रिणोऽन्योन्यमालोक्य विमुखश्रियः ।
स्तब्धा इवाऽभवन्सर्वे निरुत्साहाः ससाध्वसाः ॥६८॥
भूपःसुलोचने पुत्रि! क्व गताऽसि विहाय माम् ।
इत्युक्त्वा स महीपालःपृथिव्यांमूर्च्छितोऽपतत् ॥६९॥

राजानं पतितं दृष्ट्वा शोकेन महता ततः । जज्ञे हाहारवस्तस्मिन्नगरे द्विजसत्तम !॥७०॥
तत्क्रन्दनध्वनेस्तत्र दिक्षु जाता प्रतिध्वनिः। उत्प्रेक्षते तत्र लोकः क्रन्दन्ति ककुभो दश ॥७१॥
धूलिधूलसरिताङ्गं तु नृपतिं मुक्तकेशकम्। विधृत्य मन्त्रिणः सर्वे तरसा सौधमाययुः ॥७२॥
अथ विद्याधरस्तत्र श्रीविक्रमतनूद्भवः । तस्याः पीठं समालिङ्ग्य रुरोद करुणस्वनैः॥७३॥

हा प्रिये चञ्चलापाङ्गि सुवर्णकुसुमप्रभे ! ।
शोकाब्धौ पातयित्वा मां क्व गताऽसि वरानने ! ॥७४॥
मम किं दूषणं दृष्टं त्वया निर्दोषया प्रिये ! ।
न ददासि कथं भद्रे दर्शनं कमलानने ! ॥७५॥

समान मुखवाली वह भ्रम से चन्द्रमा के द्वारा ग्रस्त कर ली गयी है ॥६४॥ कुछ लोगों का कहना है कि वह विकसित कमल के समान मुख वाली है, उसके हाथ ही कमल नाल हैं और उसके स्तन कमल की कली है, उसको देखकर दिग्गजों ने उसे खा लिया है ॥६५॥ कुछ लोगों का कहना है कि उसकी सृष्टि करके उसके समान दूसरी स्त्री की सृष्टि करने के लिए उसके रूप और गुणों को देखने के लिए ब्रह्माजी के द्वारा वह लायी गयी है ॥६६॥ हे राजन् ! कुछ लोगों का कहना है कि आपने सभी दिशाओं को जीत लिया है । वह अपने रूपों से देवाङ्गनाओं को जीतने के लिए स्वर्ग लोक चली गयी है ॥६७॥ उसके पश्चात् वे मन्त्रीगण एक दूसरे को देखकर शोभा रहित होकर सबके सब स्तब्ध के समान भयभीत होकर निरुत्साह से हो गये ॥६८॥ **राजा ने कहा—** हे सुलोचने पुत्रि! मुझको छोड़कर तुम कहाँ चली गयी ? यह कहकर वे राजा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥६९॥ राजा को गिरे हुए तथा मूर्छित देखकर नगर में हाहाकार मच गया ॥७०॥ उस रुदन ध्वनि से दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गयीं । उसे सुनकर लोगों ने सोचा मानो दशो दिशायें रो रही हैं ॥७१॥ धूलि से धूसरित गङ्ग वाले तथा खुले केशों वाले राजा को पकड़कर सभी मन्त्रिगण वेग से महल में लाये ॥७२॥ उसके बाद वहाँ श्रीविद्याधर और विक्रम पुत्र माधव उसके सिंहासन का आलिङ्गन करके करुण स्वर से रोने लग ॥७३॥ हे चञ्चल कटाक्षों वाली प्रिये ! हे सुन्दर मुख वाली मुझको शोक सागर में डालकर कहाँ चली गयी ?॥७४॥ हे निर्दोष प्रिये ! तुमने मेरे क्रिस दोष को देखा है ? हे कमलानने ! तुम दर्शन क्यों नहीं दे रही हो ?॥७५॥ हे प्रिये ! तुम्हारे बिना मैं क्षणभर

न जीविष्याम्यहं भद्रे क्षणमात्रं त्वया बिना ।
अतो मे दर्शनं दत्त्वा क्रियतां प्राणरक्षणम् ॥७६॥
किं धनैः किं जनैः किं मे मित्रैः किं वा धनैर्गृहैः ।
नाऽऽप्नोमि यदि भद्रे ! त्वां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥७७॥
एतच्चान्यच्च विप्रर्षे ! स कृत्वा करुणं महत् ।
शोकान्मृत्युं विनिश्चिन्त्य (त्य) ययौ गङ्गाब्धिसङ्गमम् ॥७८॥
तत्र गङ्गाम्भसि स्नात्वा समुद्रजलमिश्रिते । निवेद्य भास्करायार्घं गङ्गां नत्वाऽऽह मातरम् ॥७९॥
गङ्गे देवि जगन्मातस्त्वज्जले विमले तनुम् ।
त्यजामि तां यथाभूयःप्राप्नोमि तत्करिष्यसि ॥८०॥
इति ब्रुवन्तं तं विप्र ! तत्किङ्करवरास्ततः । विधिं विनिन्युः सदृशं क्रुद्धा वीरवरस्य च ॥८१॥
ततो वीरवरः प्राह कस्त्वं भोः कुत आगतः ।
कथमत्र तनुत्यागं कुरुषे तद्वदस्व मे ॥८२॥
तद्वाक्यमेतदाकर्ण्यततोविद्याधरोऽखिलाम् । तां कथां कथयामास श्रृण्वतां विस्मयप्रदाम् ॥८३॥
अथ त्वं मूर्ख ! लोकानां प्रवरोऽसि न संशयः ।
गान्धर्वी राक्षसी वाऽपि पन्नगी वाऽपि किन्नरी ॥८४॥
शापागतेव सा कन्या तस्मादन्तर्हिता स्वयम् ।
सा देवरूपिणीकन्या देवानां निलयं गता ॥८५॥
कथं तया समं भूयो दर्शनं ते भविष्यति । चकोरपेयं पीयूषं गगने रोहिणीपतेः ॥८६॥
किं शक्नुवन्ति तं पापा वायसा बलिनोऽपि च ।
यदप्राप्यं न तत्प्राप्यं प्राप्यं यत्तच्च लभ्यते ॥८७॥

भी नहीं जीऊँगा । अतएव मुझको दर्शन देकर हमारे प्राणों की रक्षा करो ॥७६॥ धनी जनों, मित्रों, धनगृहों से मुझे क्या मतलब है ? यदि प्राणों से भी प्रिय तुमको नहीं पाऊँगा तो मर जाऊँगा ॥७७॥ हे विप्रर्षे! इस तरह से तथा अन्य प्रकार से करुणा करके शोक के कारण गङ्गा सागर में मर जाने का निश्चय किया॥७८॥ वहाँ पर समुद्र के जल से मिश्रित गङ्गा जल में स्नान करके सूर्य को अर्घ प्रदान करके गङ्गा माता को नमस्कार करके ॥७९॥ हे मातः! गङ्गे देवि ! तुम्हारे विमल जल में शरीर को इसलिए त्याग रहा हूँ कि मैं पुनः उसको प्राप्त करूँ ऐसा ही तुम करना ॥८०॥ इस तरह से कहने वाले उसके भृत्यों ने वीरवर के ही समान क्रुद्ध होकर दशा किए ॥८१॥ उसे बाद वीरवर ने कहा तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? तुम यहाँ पर शरीर त्याग क्यों करते हो ? यह मुझे बतलाओ ॥८२॥ उसके वाक्य को सुनकर विद्याधर ने सारी उस कथा को कहा जिसको सुनकर आश्चर्य होता है ॥८३॥ उसके बाद वीरवर ने कहा हे लोगों में श्रेष्ठ ? तुम मूर्ख हो । गान्धर्वी राक्षसी अथवा पन्नगी या किन्नरी ॥८४॥ शाप के कारण वह कहीं चली गयी । इसीलिए स्वयमन्तर्धान हो गयी वह देव कन्या देवताओं के घर चली गयी ॥८५॥ अब उसका तुम्हें पुनः दर्शन कैसे होगा ? आकाश में विद्यमान चन्द्रमा का अमृत चकोर ही पी सकता है॥८६॥

जानन्ति तज्जनं कश्चिन्मोहम्प्रति न गच्छति ।
केनाऽपि दीयते कन्या कन्या केनाऽपि गृह्यते ॥८८॥
पूर्वजन्मनि या कन्या तां कन्यां लभते पतिः ।
पुत्रप्रयोजना भार्या पुत्राःपिण्डप्रयोजनाः ॥८९॥
कुर्वन्ति दारग्रहणमतएव मनीषिणः। यथेह दीयते नार्या तथा नारी समश्नुते ॥९०॥
क्रन्दव्रजन्यामप्येष भृङ्गः कुमुदिनीं सहेत्। सद्रूपोऽपि पतिः स्त्रीणां सन्तोषाय भवेन्नहि ॥९१॥
रवौ स्थितेऽपि पद्मिन्या मधूनि भ्रमरः पिबेत् ।
नारीषु सततं चित्तं विष्णुभक्तावनादरः ॥९२॥
शोकैः कैश्चित्तनुत्यागस्तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ।
दाराः पुत्रास्तथा भ्राता देशाश्च बान्धवास्तथा ॥९३॥
पुनर्लभ्या हमे सर्वे पुनर्लभ्या न चाऽसवः। न मुक्तो विषयो धर्मो न च कर्मकृतं त्वया॥९४॥
वर्तमाने गते मूढ ! भविष्यं जन्म दुर्लभम् ।
मम माता मम पिता भार्या भ्राताधनं मम ॥९५॥
निष्फलं याति वै जन्म नृणां ममतया तया ।
एवं प्रबोधितः सम्यक्तेन धीरवरेण सः ॥९६॥
दौर्मनस्यं परित्यज्य तस्थौ तत्रैव जैमिने !। ततस्तु गन्धिनी प्रीत्या हसन्तीस्वगृहंगता ॥
गत्वा च माधवं मञ्चे स्वपन्तं सा ददर्श ह ॥९७॥

पापी कौए यदि बलवान् भी हों तो उसको पी सकते हैं क्या ? जो अप्राप्य वस्तु है, वह प्राप्य नहीं हो सकती हैं। जो वस्तु प्राप्य होती है, वह प्राप्त होती है ॥८७॥ उस जन को कुछ लोग जानकर भी मोहित नहीं होते हैं। कन्या किसी के द्वारा दी जाती है और कोई उस कन्या को ग्रहण करता है ॥८८॥ पूर्वजन्म में जो कन्या होती है उसी को पति भी प्राप्त करता है। पत्नी का प्रयोजन पुत्र की प्राप्ति से है और पुत्रों का प्रयोजन पिण्ड दान से है ॥८९॥ इसीलिए मनीषी पुरुष दारग्रहण करते हैं। इस लोक में जैसी नारी दी जाती है वैसी नारी प्राप्त भी होती है ॥९०॥ रात्रि में रोता हुआ भी भ्रमर कुमुदुनी को वर्दास्त करता है। स्त्रियों को सुन्दर रूप वाला भी पति सन्तोष कारक नहीं होता है ॥९१॥ सूर्य के रहने पर भी भँवरा कमलिनी के हो पराग का पान करता है। सदा नारियों में मन को लगाये रखना भगवान् विष्णु की भक्ति के प्रति अनादर है ॥९२॥ किसी शोक के कारण शरीर का त्याग करना यह पुरुषों की तीन प्रकार की विडम्बना है। पत्नी, पुत्र, भाई तथा देश एवं बान्धव बार-बार प्राप्त होते हैं। किन्तु प्राण की पुनः प्राप्ति नहीं हो सकती है। तुमने विषयों तथा धर्मों को नहीं त्यागा है; किन्तु तुमने कर्म नहीं किया है ॥९३-९४॥ अरे मूर्ख ! वर्तमान के बीत जाने पर भविष्य काल में जन्म होना दुर्लभ है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे भाई, मेरा धन इस प्रकार की ममता के कारण मनुष्यों का जन्म निष्फल हो जाता है। इस तरह से उस वीरवर के द्वारा अच्छी तरह से समझाये जाने पर वह विद्याधर ॥९५-९६॥ हे जैमिने ! अपने दौर्मनस्य को त्याग कर वहीं रुका रहा। उसके बाद प्रेम पूर्वक हँसती हुयी गन्धिनी अपने घर चली

गन्धिन्युवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दुर्बुद्धे ! भ्रमस्तेऽविफलोऽभवत् ।
विवाहकाले सा कन्या बभूवाऽन्तर्हिता स्वयम् ॥९८॥
एवं तस्या वचः श्रुत्वा समुत्तस्थौ समाधवः ।
विललापाऽऽकुलः शोकैर्महद्भिः क्ष्मातले लुठन् ॥९९॥
कन्याया दूषणं नास्ति नास्ति विद्याधरस्य वा ।
ममैवदूषणं सर्वं यतो हीनस्य सङ्गभाक् ॥१००॥
नीचसङ्गे कृते पुंसा सुखं यच्छति नो विधिः ।
एतदेव मया ज्ञातं यतो गतिरियं मम ॥१०१॥
न प्राप्नोति सुखं किञ्चिन्नीचसङ्गान्महानपि। प्रेतसङ्गान्महादेवो नग्नो भग्नविभूषणः ॥१०२॥
प्रविश्य निलयं नीचः स्त्रीधनादिकमीक्षते। किञ्चित्प्रसङ्गमासाद्य षड्वक्त्रः स षडाननः ॥१०३॥
स तां श्रुत्वा गुणं नीचः सद्य एव विषीदति ।
दोषं संश्रोतुमाप्नोति शतरूपो भवेत्तदा ॥१०४॥
शुभमिच्छन्निजं प्राज्ञो नीचेभ्यो नहि निश्चयेत् ।
क्षणमेकमपि प्राज्ञो नीचेभ्यो नहि निश्चयेत् ॥१०५॥
पादमेकमपि प्राज्ञो नीचैः सह न गच्छति । विश्वासवचनं नीचः सद्य एव विषीदति ॥१०६॥
दोषं सा श्रोतुमाप्नोति श्रोतुमायाति यत्नतः । ततः समयमासाद्य प्रकाशयति चोद्धसन् ॥१०७॥
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं यतात्मनाम् । मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्दुरात्मनाम् ॥१०८॥

गयी॥९७॥ वहाँ जाकर उसने खाट पर सोते हुए माधव को देखा । **गन्धिनी ने कहा**— हे मूर्ख जगो! तुम्हारा भ्रम व्यर्थ है । विवाह के समय वह कन्या स्वयं अन्तर्धान हो गयी ॥९८॥ उसकी इस तरह की वाणी सुनकर माधव उठा । वह शोक से व्याकुल होकर पृथिवी पर लोटता हुआ बहुत रोया ॥९९॥ न तो कन्या का दोष है और न विद्याधर का दोष है । मेरा ही सारा दोष है क्योंकि मेरा सङ्ग नीच के साथ हो गया था ॥१००॥ नीच की सङ्गति हो जाने पर ब्रह्मा भी सुख नहीं प्रदान करते हैं । यही मैंने जाना है क्योंकि मेरी ऐसी गति हुयी है ॥१०१॥ नीच की सङ्गति हो जाने पर महान् व्यक्ति भी सुख नहीं प्राप्त करता है । प्रेतों का सङ्ग हों जाने से शिवजी भी नग्न तथा भूषण विहीन हो गये ॥१०२॥ नीच; घर में प्रवेश करके स्त्री तथा धन आदि को ही देखता है और कुछ प्रसङ्ग प्राप्त करके वह छह मुखों वाला कार्तिकेय हो जाता है ॥१०३॥ वह नीच स्त्री के गुण को सुनकर दुःखी होता है । जब उसको दोष सुनने को मिलता है तो वह सैकड़ों रूपधारी हो जाता है ॥१०४। प्राज्ञ को चाहिए कि वह नीचों के साथ सुख प्राप्त करने का निश्चय न करे ॥१०५॥ प्राज्ञ पुरुष नीचों के साथ एक पग भी नहीं चलता है । विश्वास पूर्ण वचन सुनकर नीच शीघ्र ही दुःखी हो जाता है ॥१०६॥ वह दोष सुनने के लिए आता है । और सुनने को प्राप्त भी करता है । फिर वह समय पाकर जोर से हँसता हुआ उसे प्रकाशित कर देता है॥१०७॥ अपने को संयत रखने वाले के मन, वाणी तथा कर्म एक ही तरह के होते हैं । दुष्टों के मन

यदाऽकरिष्यत्सा कन्या विवाहं सा नृपात्मजा ।
नाऽभविष्यत्तदा शोकः स्वल्पोऽपि हृदये मम ॥१०९॥
स्वर्गंगता चेत्सा कन्या सर्वलक्षणसंयुता । नीता नीचेनशोकोऽयं हृदये दुःसहोऽभवत् ॥११०॥
लिखितामिव सर्वत्र तां पश्यामि वराननाम् ।
विस्मर्तुं नहिशक्नोमिजीवताऽनेन चाऽऽत्मना ॥१११॥
नीचक्रोडगता साध्वी न जीविष्यति सा क्षणम् ।
विद्याधरोऽपि तच्छोकैर्नजीविष्यति दारुणैः ॥११२॥
यथा मातापितात्यक्तो देशस्तत्प्राप्तये मया । तथैव सम्प्रति प्राणास्त्यक्तव्या नाऽत्रसंशयः ॥११३॥
पुनस्तत्प्राप्तये प्राणान्गङ्गासागरसङ्गमे। त्यक्ष्यामीति दृढं कृत्य सगन्तुमुपचक्रमे ॥११४॥
एतस्मिन्नेव काले तु नारदान्मुनिसत्तमात् । पादलेपं महाबुद्धिरभिगम्य स माधवः ॥११५॥
ययौ कियद्भिर्दिवसैर्गङ्गासागरसङ्गमम् ।
गङ्गाब्धितोये स्नात्वा च पूजयामास चाऽच्युतम् ॥११६॥
तुलसीपत्रमालाभिर्भूषितो माधवस्तदा। बद्धाञ्जलिरिति प्राह जह्नुकन्यां सरिद्वराम् ॥११७॥

माधव उवाच

देवि ! त्वत्सलिले देहं प्राप्तशोकस्त्यजाम्यहम् ।
भाविजन्मनि तां कन्यां मह्यं दास्यसि शोभनाम् ॥११८॥
इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य गङ्गां त्रैलोक्यमातरम् ।
ततस्तत्सलिले निम्ने प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥११९॥

में कुछ, वाणी में कुछ और कर्म में कुछ भिन्न ही होता है ॥१०८॥ जब वह राजकुमारी अपना विवाह करेगी उसी समय मेरे मन में थोड़ा सा भी शोक नहीं रहेगा ॥१०९॥ सभी लक्षणों से युक्त वह कन्या यदि स्वर्ग चली गयी तब तो नीच के द्वारा प्रदत्त शोक मेरे हृदय में दुःसह हो जायेगा ॥११०॥ मैं चित्र लिखित के समान उसको सर्वत्र देखता हूँ । इस शरीर से जीता हुआ मैं उसे भूल नहीं सकता हूँ ॥१११॥ वह साध्वी नीच के सङ्ग में जाकर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती है । विद्याधर भी उसके भयङ्कर शोक से जीवित नहीं रह सकता है ॥११२। जैसे उसको प्राप्त करने के लिए मैंने माता-पिता और देश को भी त्याग दिया उसी तरह मुझे अपने प्राणों का परित्याग भी कर देना चाहिए ॥११३॥ फिर उसको प्राप्त करने के लिए गङ्गा सागर सङ्गम में अपने प्राणों का मैं परित्याग करूँगा मेरा सुहृद कृत्य है, यह कहकर वहाँ जाने के लिए तैयार हो गया ॥११४॥ उसी समय मुनि श्रेष्ठ नारदजी से प्राप्त अपने पैर में लेप लगाये हुए महाबुद्धिमान माधव मिलकर, कुछ दिनों में गङ्गा सागर सङ्गम में चला गया । वह गङ्गा सागर के जल में स्नान करके भगवान् अच्युत की पूजा किया ॥११५-११६॥ उस समय तुलसी दल की माला से अलंकृत माधव हाथ जोड़कर नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी से कहा । **माधव ने कहा**— हे देवि ! आपके जल में शोक सन्तप्त मैं अपने शरीर का त्याग कर रहा हूँ । अगले जन्म में उसी सुन्दरी कन्या को आप मुझे देंगी ॥११७-११८॥ इस तरह से त्रैलोक्य की माता गङ्गाजी से कहकर उसके जल मे प्रवेश करना चाहा॥११९॥

अथ वीरवरः पृष्टे तं विधृत्य नृपात्मजम् ।
तत्सभां प्रति विप्रर्षे ! जवेनाऽऽगत्य तज्जनैः ॥१२०॥
ततः समालोक्य नृपात्मजं तं प्रीतिं समासाद्य अनिन्द्यशोभाम् ।
कस्त्वं त्यजस्यत्र कथं शरीरं ब्रूहीति तं वीरवरं जगाद ॥१२१॥

माधव उवाच

अहं विक्रमराजस्य पुत्रो माधवसञ्ज्ञकः। मृगयायै वनं घोरं ससैन्योऽगममेकदा॥१२२॥
अस्त्येका नगरोपान्ते सरसी पद्मशोभना । नारीमेकाकिनी रम्या पश्यं तत्र कामुकः ॥१२३॥
सा च चन्द्रकला नाम भामिनी मां स्मरातुरम् ।
सुलोचनायाः प्रस्तावं कथयामास भूतले ॥१२४॥
ततस्तुरङ्गमारूढो विलङ्घ्य सरितां पतिम्। प्रचेष्टाख्येन भृत्येन गतस्तस्याः पुरं प्रति॥१२५॥
तस्मिन्नेव दनेतस्या अधिवासनमुत्तमम् । तथाऽऽकर्ण्य मया तत्र प्रेषितं साङ्गुलीयकम्॥१२६॥
मम पत्रं समालोक्य साङ्गुलीयकमुत्तमम् । साऽपि तत्पृष्ठपत्रेषु यल्लिलेख तदुच्यते॥१२७॥
श्रीत्रिविक्रमदेवस्य पुत्रो विद्याधरह्वयः। पिता तस्मै विवाहेन मां प्रदास्यति सत्तम !॥१२८॥
अद्याऽधिवासनं कर्म श्वो विवाहो मम ध्रुवम् ।
अथाऽप्युपायं वक्ष्यामि येन प्राप्नोति मां भवान् ॥१२९॥
वामबाहुं समुद्धृत्यस्थिताऽहं वरसम्मुखी। यस्तु शक्नोति मां नेतुं स मे भर्त्ता न संशयः॥१३०॥
विलिख्य पत्रं सा कन्या गन्धिन्यास्तत्करे ददौ ।
गन्धिन्या च तया दत्तं तत्पत्रं मह्यमुत्तमम् ॥१३१॥

उसी समय वीरवर के दूत पीछे से उस राजकुमार को पकड़कर वीरवर की सभा में वेग से आकर उसकी सभा में लाये ॥१२०॥ उसके बाद उस राजकुमार को देखकर अनिंद्य शोभा वाली वह प्रसन्नता के साथ पूछी तुम कौन हो ? यहाँ अपने शरीर का त्याग क्यों कर रहे हो ? यह बतलाओ यह उसने उस श्रेष्ठ वीर से पूछा ॥१२१॥ **माधव ने कहा—** मैं राजा विक्रम का पुत्र हूँ; मेरा नाम माधव है । एक बार मैं अपनी सेना के साथ भयङ्कर वन में आखेट करने के लिए गया ॥१२२॥ वहाँ पर एक नगर के सन्निकट कमलों से सुशोभित एक सरोवर है । कामुक बना हुआ मैंने एक सुन्दरी नारी को वहाँ देखा । वह चन्द्रकला नाम की सुन्दरी ने कामुक बने हुए मुझको पृथिवी पर सुलोचना का परिचय बतलाया ॥१२३-१२४॥ उसके बाद अश्व पर सवार होकर समुद्र को पार करके अपने प्रचेष्ट नामक भृत्य के साथ मैं उस नगर में गया ॥१२५॥ उसी दिन उसका उत्तम अधिवासन हो रहा था । उसको सुनकर मैं अपनी अङ्गूठी के साथ उसके पास अपने पत्र को भेजा । उसने भी उस पत्र के पीछे जो लिखा उसे मैं बतलाता हूँ ॥१२६-१२७॥ श्रीत्रिविक्रमदेव का पुत्र विद्याधर नामक है । मेरे पिता उसके साथ मेरा विवाह निश्चित कर चुके हैं । फिर भी मैं उपाय बतलाती हूँ जिससे कि आप मुझे प्राप्त करेंगे ॥१२८-१२९॥ वायीं भुजा उठाकर मैं वर के सम्मुख रहूँगी । जो मुझे उठाकर ले जाने में समर्थ होगा वही मुझको प्राप्त करेगा ॥१३०॥ यह पत्र लिखकर उसने गन्धिनी के हाथ में दिया । गन्धिनी भी उसे लेकर मुझे दे दी ॥१३१॥ मेरे सामने प्रचेष्ट ने उस सङ्केत

तत्सङ्केतं प्रचेष्टेन संश्रुत्य मम सम्मुखे। हयमारुह्य सा नीता तत्राऽहं निद्रया जितः ॥१३२॥
अनया व्यथया तत्र पुनस्तत्प्राप्तिहेतवे। तदाद्य जागरं भद्र ! शृणुष्वाऽत्र विधानतः ॥१३३॥
इत्युक्त्वा चाऽस्यरक्षायैनियुज्यपदगान्बहून्। विहस्याऽन्तःपुरं गत्वा साकन्यापुरुषाकृतिः ॥१३४॥
ततो विधृत्य स्त्रीवेषं नानालङ्कारभूषिता। स्वदासीं प्रेषयामास तमानेतुं नृपात्मजम्॥१३५॥
तदाज्ञया समागत्य ततो नृपतिनन्दनः। ईक्षां चक्रे च तां साध्वीं लक्ष्मींमूर्तिमतीमिव॥१३६॥

सा च कन्या समुत्थाय सुवर्णासनतो द्विजः ! ।
ववन्दे चरणौतस्य पुलकाञ्चितविग्रहा ॥१३७॥

ततो गान्धर्वविधिना स राजतनयः सुधीः। अङ्गीचकार तां कन्यां तत्रैव प्राप्तकौतुकः ॥१३७॥
तत्प्रेमवारिधाराभिः संसक्तो नृपनन्दनः। तत्रैव तां निशां निन्ये कुर्वन् केलिं तया सह॥१३८॥
अथ प्रभाते विमले सा मृगीलोचना सती। आदितः सर्ववृत्तान्तं कथयामास माधवम् ॥१३९॥

ततः सुलोचना साध्वी जयन्तीं तां नृपात्मजाम् ।
माधवं च समादाय सुषेणस्य सभां ययौ ॥१४१॥
तां कन्यां स नृपः श्रुत्वा हर्षितो माधवाय वै ।
सुलोचनां जयन्तीं च विवाहेन ददौ ततः ॥१४२॥

तस्मै तु यौतुकत्वेन स राजा धर्मतत्परः। सुप्रीतो निजराज्यार्धं ददौ स्वर्णशतानि च॥१४३॥
ततो विचित्रमावासं निर्माय स नृपात्मजः। तस्मिन्पुण्यतमे तीर्थे चकार वसतिं द्विज !॥१४४॥
तत्रान्तरे प्रचेष्टं तं कारागारनिवासिनम्। सभां समानीय ततश्चिन्तयामास माधवः ॥१४५॥

को सुनकर अश्व पर चढ़कर वह कन्या को ले गया और मैं सोता रह गया ॥१३२॥ इसी दुःख के कारण मैं उसको पुनः प्राप्त करने के लिए हे भद्र ! मैं प्राण दे रहा हूँ आज मेरा जागर है उसे आप विधि पूर्वक सुनें ॥१३३॥ इस तरह कहकर उसकी रक्षा के लिए पदचारियों को नियुक्त करके जोर से हँसकर अन्तःपुर में प्रवेश करके वह पुरुषाकृति कन्या ॥१३४॥ स्त्री का वेश धारण करके अनेक अलङ्कारों से अलंकृत वह अपनी दासी को उस राजकुमार को लेने के लिए भेजी ॥१३५॥ उसकी आज्ञा से आकर राजकुमार उस साध्वी को मूर्तिमती लक्ष्मी के समान देखा ॥१३६॥ वह कन्या भी सुवर्ण सिंहासन से खड़ी होकर उसके चरणों की वन्दना की । उस समय उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया था ॥१३७॥ उसके पश्चात् वह राजकुमार गान्धर्व विधि से कौतुक वशात् उसको स्वीकार किया ॥१३८॥ उसके प्रेम रूपी जल की धाराओं से संसिक्त राजकुमार वहीं पर उस रात्रि को उसके साथ क्रीडा करते हुए बिताया ॥१३९॥ उसके बाद प्रातःकाल होने पर वह मृगनयनी प्रारम्भ से लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त को माधव को सुनायी ॥१४०॥ उसके पश्चात् सुलोचना साध्वी राजकुमारी जयन्ती को तथा माधव को लेकर सुषेण की सभा में गयी ॥१४१॥ वे राजा जब यह सुने कि वह कन्या है तो सुलोचना और जयन्ती दोनों का विवाह उन्होंने माधव से कर दिया॥१४२॥ दहेज के रूप में राजा ने अपना आधा राज्य और सौ भार सुवर्ण प्रदान किया ॥१४३॥ वे राजकुमार माधव उन दोनों पत्नियों के लिए विचित्र आवास बनाकर हे द्विज ! वहीं पर निवास किये॥१४४॥ उसी बीच उस प्रचेष्ट को जो कारागार में पड़ा था उसको सभा में बुलाकर माधव ने सोचा ॥१४५॥ यह

अयं पापमतिः क्रूरः स्वामिविश्वासघातकः। शत्रूणां प्रवरो मूढो रक्षणीयो मया नहि॥१४६॥
पालितोऽपि मुहुर्नित्यं प्रसादधनभोजनैः। शत्रुकर्म करोत्येव समयं प्राप्य निर्दयः॥१४७॥
विपत्त्यां येन हस्तेन नयेत्पादरजः खलु। शिरःकृन्तति तेनैव स्वामिनं प्राप्य सम्पदम्॥१४८॥
नूनमेव प्रभुं घ्नन्ति वशगा नृपराजयः। तप्तमप्युदकं वह्निं सद्यो निर्वाणतां नयेत्॥१४९॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा तेन क्ष्मापतिसूनुना। प्रचेष्टा नष्टचेष्टोऽसौ निरस्तो द्विजसत्तम !॥१५०॥

ताभ्यां स्त्रीभ्यां तदा विप्र सुखेन स नृपात्मजः।
किञ्चित्कालं तत्र तस्थौ शोकव्याधिविवर्जितः॥१५१॥

तस्यां सुलोचनायां तु माधवस्य महात्मनः। शतं पुत्रा जयन्त्यां च द्वेशते जज्ञिरे सुताः॥१५२॥
माधवस्य सुतास्तेऽपि शस्त्रशास्त्रविदुत्तमाः। बभूवुः सर्वलोकानां प्रीतये धर्मतत्पराः॥१५३॥

जन्मान्तरोपार्जितया विष्णुभक्तया च सङ्गतः।
एकदा चिन्तयामास मनसा च समाधवः॥१५४॥
कोऽहं कस्मात्समायातः कस्य वा केन निर्मितः।
भूयः क्व च गमिष्यमि कुत्र वा स्थास्यते मया॥१५५॥
विषयं भुञ्जतो जन्म विना पुण्येन मे गतम्।
तस्माद्विघ्नार्णवे मग्नं कोऽत्र मामुद्धरिष्यति॥१५६॥
संसारेऽस्मिञ्जनुः प्रप्य येन नाराधितो हरिः।
आत्मघती स विज्ञेयःसर्वधर्मबहिष्कृतः॥१५७॥

पापी क्रूर, स्वामी के साथ विश्वासघात करने वाला, श्रेष्ठ शत्रु और मूर्ख है मुझे इसकी रक्षा नहीं करना चाहिए ॥१४६॥ प्रतिदिन प्रसाद, धन और बार-बार भोजन से पालन करने पर भी यह निर्दय समय प्राप्त करके शत्रु का काम करता ही है ॥१४७॥ विपत्ति में जो पैर की धूलि को हाथ से हटाता है वही समय से सम्पत्ति प्राप्त करके स्वामी के शिर को काट लेता है ॥१४८॥ निश्चित रूप से इस प्रकार से राजाओं के अधीन रहने वाले वे अपने स्वामी को मार देते हैं अग्नि से तप्त भी जल अग्नि को बुझाने का ही काम करता है ॥१४९॥ इस तरह से मन में सोचकर उस राजकुमार ने निरस्त चेष्ट वाले प्रचेष्ट को मार दिया ॥१५०॥ उसके बाद हे विप्र ! अपनी उन दोनों स्त्रियों के साथ वह राजकुमार सुख पूर्वक कुछ काल तक शोक तथा व्याधि से रहित होकर वहाँ रहा ॥१५१॥ उस सुलोचन के गर्भ से माधव के सौ पुत्र उत्पन्न हुए और जयन्ती के गर्भ से दो सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५२॥ माधव के वे सभी पुत्र भी सभी शास्त्रों के उत्तम ज्ञाता थे। वे धर्म तत्पर और सभी लोगों को प्रसन्न रखने वाले थे ॥१५३॥ जन्मान्तर में अर्जित भगवान् विष्णु की भक्ति से की सङ्गति से एक दिन माधव ने सोचा ॥१५४॥ कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? किसके द्वारा किस कारण से निर्मित हूँ ? पुनः मैं कहाँ जाऊँगा ? और मैं कहाँ रहूँगा?॥१५५॥ विषयों को भोगते हुए पुण्य किए बिना मेरा जीवन बीत गया इसीलिए विघ्न सागर में डूबते हुए मुझको यह कौन उबारेगा ?॥१५६॥ इस संसार में जन्म प्राप्त करके जिसने श्रीहरि की यहाँ आराधना नहीं की उसे आत्मघाती तथा सभी धर्मों से वहिष्कृत समझना चाहिए ॥१५७॥ उसका बार-बार जन्म होता है और

भूयो भूयो भवेज्जन्म भूयोभूयोऽपि पञ्चता ।
संसारोऽयमतः सर्वः क्लेशदो भैरवो महान् ।।१५८।।
विष्णुभक्तिं विना न स्याज्जन्ममृत्युनिवारणम् ।
अतोऽद्य सकलयत्त वाकरिष्याम्यर्चनं हरैः ।।१५९।।
एतद्विचिन्त्य मनसा विश्वस्य च मुहुर्मुहुः । विश्वकर्माणमाहूय सवाक्यमिदमब्रवीत् ।।१६०।।
विश्वकर्मन्महाबाहो ! मह्यं विष्णोः शिलामयीम् ।
प्रमिमां देहि निर्माय सर्वकामफलप्रदाम् ।।१६१।।
तस्यादेशात्ततो विप्र शिल्पिना विश्वकर्मणा। प्रतिमारचिता तेन महविष्णोःशिलामयी ।।१६२।।
नवीननीरदश्यामा पुण्डरीकनिभेक्षणा। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी च चतुर्भुजा ।।१६३।।
लक्ष्मीसरस्वतीयुक्ता वनमालाविभूषिता। समस्तलक्षणैर्युक्ता भूषिता सर्वभूषणैः ।।१६४।।
विचित्रमण्डपे तां च संस्थाप्य प्रतिमा हरेः ।
स पूजां कर्तुमारेभे कामदां चक्रपाणिनीम् ।।१६५।।
तस्मिन्नेवाऽऽलयं विप्र घृतदीपं द्विजोत्तम ! ।
दीपं प्रतिदिनं यच्छेदविच्छिन्नशिखं स च ।।१६६।।
प्रातःस्नायी स्वयं भूत्वा कुर्यात्संमार्जनादिकम् ।
मार्गशोभां च विप्रर्षे ! तत्रोपलेपनम्पुनः ।।१६७।।
स्नात्वा गङ्गाब्धिसलिले कृत्वा पञ्च महाध्वरान् ।
त्रिसन्ध्यं पूजयेद्विष्णुमुपहारैरनुत्तमैः ।।१६८।।

बार-बार उसकी मृत्यु होती है । अतएव यह सम्पूर्ण संसार भयङ्कर कष्ट प्रदान करने वाला है ।।१५८।। भक्ति के बिना जन्म तथा मृत्यु से कोई बच नहीं सकता है । अतएव आज से सबकुछ त्यागकर मैं श्रीहरि की अर्चना करूँगा ।।१५९।। इस तरह से मन में विचार करके और बार-बार विश्वास करके विश्वकर्मा को बुलाकर वे कहे ।।१६०।। हे महाबाहो ! विश्वकर्मन् मेरे लिए भगवान् विष्णु की शिलामयी प्रतिमा को बनाकर आप मुझे दें जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हो ।।१६१।। हे विप्र ! उसके बाद उसके आदेश से शिल्पी विश्वकर्मा ने भगवान् विष्णु की शिलामयी प्रतिमा को बनाकर जो नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण की, कमल के समान नेत्रों वाली, शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण किए हुयी तथा चार भुजाओं वाली थी ।।१६२-१६३।। लक्ष्मी तथा सरस्वती के साथ वनमाला से अलंकृत, सभी सुन्दर लक्षणों से युक्त तथा सभी भूषणों से भूषित थी ।।१६४।। उसको विचित्र मण्डप में स्थापित करके माधव उस मूर्ति की पूजा करना प्रारम्भ किए जो कमनाओं को पूर्ण करने वाली और चक्र हाथ में लिए हुयी थी ।।१६५।। हे द्विजोत्तम उसी गृह में दीपक की स्थापना की । अविच्छिन्न शिखा वाले दीपक को श्रीभगवान् को प्रतिदिन वे देते थे । स्वयं प्रातःकाल स्नान करके मंदिर को पोंछने आदि का काम करते थे । हे विप्रर्षे ! मार्ग में शोभा बनायें और वहाँ लिपने आदि का काम करे ।।१६६-१६७।। गङ्गा सागर के जल में स्नान करके तथा पञ्च महायज्ञों को करके प्रतिदिन सर्वोत्तम उपहारों से प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में भगवान् विष्णु की

गन्धैर्धूपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैर्धूपदीपकैः । गीतवाद्यैः प्रबन्धैश्च स्ववपाठैः सुशोभनैः ॥१६९॥
प्रदक्षिणैर्नमस्कारैरध्वरैश्च सदक्षिणैः । निरामिषैर्हविष्यैश्च फलाहारैश्च सत्तम ॥१७०॥
नमोनारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् । अष्टाक्षरं महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् ॥१७१॥
एवमब्दसहस्राणि महाविष्णोः परात्मनः। चकार परया भक्तया स पूजां सर्वकामदाम्॥१७२॥
तस्य भक्तया ततस्तुष्टः सर्वदेवशिरोमणिः । आविर्बभूव भगवांस्तुलसीकुसुमप्रभः ॥१७३॥
आविर्भूतं हरिं दृष्ट्वा सदारो माधवस्ततः । शिरसा भूमिमालिङ्ग्य ववन्दे चरणौ हरेः॥१७४॥

माधव उवाच

नमस्ते देवदेवाय नमस्ते परमात्मने। परेशाय सुरेशाय नमस्ते ज्ञानदायिने॥१७५॥
नमस्ते परमानन्द पुरुषोत्तम केशव ! । नमस्ते पद्मनेत्राय कमलापतये नमः ॥१७६॥
नमस्ते बहुरूपाय नीरूपाय नमोनमः ।
विचिन्त्यायाविचिन्त्याय दृश्यादृश्याय वै नमः ॥१७७॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय लोकपित्रे नमोनमः । नमस्ते ज्ञानगम्याय नमस्ते सर्वशाखिने ॥१७८॥
कंसारये नमस्तुभ्यं नमस्ते कैटभारये । मधुहन्त्रे नमस्तुभ्यं विधात्रे च नमो नमः॥१७९॥
येन त्वयोद्धृता वेदा मीनरूपधरेण वै । गम्भीराम्भोनिधेरम्भोऽभ्यन्तरात्तमहं भजे॥१८०॥
येन त्वयोद्धृता पृथ्वी सशैलवनकानना । कूर्मरूपधरेणेयं तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥१८१॥
वाराहमूर्तिना येन धरणी धरणीपते !। उद्धृता निजदन्तेन तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥१८२॥

पूजा करें ॥१६८॥ चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, धूप, दीपक, गीतवाद्य, प्रबन्धपाठ एवं सुन्दर स्तव पाठों से ॥१६९॥ प्रदक्षिणा, नमस्कार, दक्षिणा युक्त यज्ञों, आमिष रहित हविष्य तथा फलाहारों से हे जैमिने! पूजा करके ओम् नमो नारायणाय इस सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले अष्टाक्षर मन्त्र का जप करे ॥१७०-१७१॥ इस तरह से कई हजार वर्षों तक परमात्मा महाविष्णु की परमा भक्ति से युक्त होकर माधव ने पूजा की ॥१७२॥ उनकी भक्ति से सन्तुष्ट होकर सर्वदेव शिरोमणि तुलसी के पुष्प के समान कान्ति वाले श्रीभगवान् प्रकट हो गये ॥१७३-१७४॥ प्रकट हुए श्रीहरि को देखकर पत्नी के साथ माधव भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके श्रीहरि के चरणों की वन्दना किए । **माधव बोले—** देवताओं के भी पूज्य परमात्मा परेश, देवताओं के स्वामी तथा ज्ञान देने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥१७५॥ हे परमानन्द, हे पुरुषोत्तम ! हे केशव ! आपको नमस्कार है । कमल नयन लक्ष्मीपति को नमस्कार है॥१७६॥ अनेक रूपों वाले तथा रूप रहित विचिन्त्य तथा अविचिन्त्य, दृश्य तथा अदृश्य श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कारी है ॥१७७॥ त्रैलोक्य के स्वामी, सम्पूर्ण लोकों के पिता, श्रीभगवान् को नमस्कार है । ज्ञानैक गम्य और सभी शाखाओं वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥१७८॥ कंस तथा कैटभ नामक असुरों के शत्रु श्रीभगवान् को नमस्कार है । मधु नामक दैत्य को मारने वाले तथा सम्पूर्ण जगत् के विधाता श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥१७९॥ मीन रूप धारण करके वेदों का उद्धार करने वाले तथा समुद्र के जल के भीतर प्रवेश करने वाले श्रीभगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥१८०॥ जिस आपने कूर्म रूप धारण करके पर्वत और वन से युक्त पृथिवी को ऊपर की ओर उठाया उस आपको नमस्कार है ॥१८१॥ वाराह शरीर धारण करके जिस

नृसिंहमूर्तिना येन त्वया दैत्यो विदारितः। हिरण्यकशिपुः क्रुद्धस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः॥१८३॥
बलियज्ञस्तथा ध्वस्तो येन वामनरूपिणा। तस्मै तुभ्यं नमो देव! काश्यप्यादानकारिणे॥१८४॥
पितरस्तर्पिता येन त्वया क्षत्रियशोणितैः। कार्तवीर्यो हतो येन तस्मै रामाय ते नमः॥१८५॥
रावणो निहतो येन कौसल्यासुनूना त्वया। मारीचः कुम्भकर्णश्च तस्मै रामाय ते नमः॥१८६॥
प्रलम्बो निहतो येन रेवतीपतिना त्वया। कालिन्दीभेदिने तुभ्यं तस्मै रामाय ते नमः॥१८७॥

वेदा विनिन्दिता येन विलोक्य पशुहिंसनम्।
सकृपेन त्वया येन तस्मै बुद्धाय ते नमः॥१८८॥
म्लेच्छाश्च निहता येन युगान्ते कल्किमूर्त्तिना।
सर्वलोकहितार्थाय तस्मै तुभ्यं नमो नमः॥१८९॥
हरे विष्णो दैत्यजिष्णो नारायण कृपामय!।
संसारसागरे घोरे पतितं मां समुद्धर॥१९०॥
ततो हर्षान्माधवोऽसौ प्रक्षाल्य चरणौ हरेः।
भूमौ निपात्यसर्वाङ्गं जगाद माधवो हरिम्॥१९१॥

माधव उवाच

गोविन्द परमानन्द मुकुन्द मधुसूदन!। त्राहि मां पापिनं कृष्ण! यतस्त्वं सर्वपापहा॥१९२॥

इति स्तोत्रं तस्य श्रुत्वा भगवान्भक्तवत्सलः।
परमां प्रीतिमासाद्य तमित्याह वचःस्वयम्॥१९३॥

आपने हे पृथवीपते! पृथिवी को एक दाँत पर उठा लिया ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है॥१८२॥ जिस आपने नृसिंह शरीर धारण करके क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु नामक दैत्य को फाड़ दिया उस आपको नमस्कार है॥१८३॥ वामन रूप धारण करके काश्यपी पृथिवी को लेने वाले तथा बलि एवं बलि के यज्ञ को ध्वस्त करने वाले आपको नमस्कार है॥१८४॥ जिस आपने कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन को मारकर दुष्ट क्षत्रियों के रक्त से अपने पितरों का तर्पण किया उन परशुराम रूप धारी आपको नमस्कार है॥१८५॥ जिस आपने कौसल्या देवी के पुत्र होकर रावण, कुम्भकर्ण तथा मारीच का वध किया उस आपको नमस्कार है॥१८६॥ रेवतीजी का पति बन कर जिस आपने प्रलम्बासुर का वध किया तथा यमुनाजी को अपने हल से घसीटा ऐसे आपको नमस्कार है॥१८७॥ यज्ञों में की जाने वाली हिंसा को देखकर आप कृपा पूर्ण होकर बुद्ध रूप धारण करके वेदों की निन्दा की उस आपको नमस्कार है॥१८८॥ कलियुग में कल्किरूप धारण करके जिस आपने म्लेच्छों का पूर्णरूप से वध सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने के लिए किया उस आपको बारम्बार नमस्कार है॥१८९॥ हे हरे, हे विष्णो, हे दैत्यों को जीतने वाले! कृपामय नारायण संसार सागर में पड़े हुए मेरा आप उद्धार करें॥१९०॥ उसके पश्चात् श्रीहरि के चरणों को धोकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके श्रीहरि से माधव ने कहा॥१९१॥ **माधव बोले—** हे गोविन्द! हे परमानन्द स्वरूप! हे मुकुन्द! हे मधुसूदन! मुझ पापी की आप रक्षा करें क्योंकि आप सभी पापों का विनाश करने वाले हैं॥१९२॥ उनके इस स्तोत्र को सुनकर भक्त वत्सल श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वयं माधव से

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय भो वत्स माधव ! क्षत्रियर्षभ ! ।
ब्रह्मत्वं वा शिवत्वं वा शक्रत्वं वा किमिच्छसि ॥१९४॥

माधव उवाच

सर्वमेव मया प्राप्तं जगदीश ! न संशयः। दैवतैरप्यदृश्यं त्वां पश्यामि वरदं प्रभुम्॥१९५॥
भुक्तिं मुक्तिं धनैश्वर्यं दातुं सर्वं भवान्क्षमः ।
प्रभो ! न भक्तियोग्योऽस्मि भक्तिमेव प्रयच्छ मे ॥१९६॥

श्रीभगवानुवाच

तव भक्तयाऽनया वत्स ! प्रीतोऽहं नाऽत्रसंशयः ।
किमस्ति वस्तु यद्दत्त्वा तवाऽऽनृण्यं भजाम्यहम् ॥१९७॥

सूत उवाच

इत्युक्तवा परमप्रीतः प्रसार्य्य चतुरो भुजान्। तमालिङ्गितवान्विष्णुःपितापुत्रमिव द्विज ! ॥१९८॥

श्रीभगवानुवाच

आलिङ्गनप्रभावेण तवाऽऽनृण्यं गतोऽस्म्यहम् ।
सर्वमेव शुभं भद्र ! भविष्यति न संशयः ॥१९९॥
कामिना प्रतिमा वत्स ! क्रियायोगेन सर्वदा ।
पूजिता मम तेन त्वां नेष्याम्यहं तनुम्प्रति ॥२००॥

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरं तस्मै चतुर्भिर्दीर्घबाहुभिः । भूयःप्राणैःसमालिङ्ग्य तत्रैवाऽन्तरधीयत॥२०१॥
ततस्तां प्रतिमां विष्णोः सदारोमाधवस्तदा । आराधयामास भक्तया क्रियायोगैरनुत्तमैः ॥२०२॥

कहे॥१९३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ वत्स माधव ! तुम वरदान माँगो । तुम ब्रह्मत्व या इन्द्रत्व या शिवत्व इनमें से किसको चाहते हो ॥१९४॥ **माधव बोले—** वरदान देने वाले स्वामी आपका जो मैं देवताओं को भी प्राप्त नहीं होने वाले दर्शन करता हूँ, उसी से मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया॥१९५॥ आप भोग, मोक्ष, धन, ऐश्वर्य इन सारी वस्तुओं को देने में समर्थ हैं । हे भगवन् ! मैं भक्ति के योग्य नहीं हूँ आप मुझे भक्ति ही प्रदान करें ॥१९६॥ **भगवान् ने कहा—** हे वत्स ! मैं तुम्हारी इस भक्ति से निश्चित रूप से प्रसन्न हूँ । कौन सी ऐसी वस्तु है जिसको तुम्हें देकर मैं उऋण होऊँ ॥१९७॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से कहकर अत्यन्त प्रसन्न श्रीभगवान् अपनी चारो भुजाओं को फैलाकर उस माधव का उसी तरह से आलिङ्गन किए जिस तरह कोई पिता अपने पुत्र का आलिङ्गन करता है ॥१९८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** इस आलिङ्गन के प्रभाव से मैं तुमसे उऋण हो गया । हे भद्र ! तुम्हारा हर प्रकार से कल्याण निश्चित रूप से होगा ॥१९९॥ हे वत्स ! कामना पूर्वक मेरी प्रतिमा का सदा क्रियायोग से तुमने पूजन किया है अतएव तुमको मैं अपने शरीर में प्रवेश करा लूँगा ॥२००॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से माधव को वरदान देकर अपनी चारो भुजाओं से उसके प्राणों का आलिङ्गन करके श्रीभगवान् वहीं पर

स भुक्त्वा सकलान्भोगान्पुत्रपौत्रसमन्वितः। गङ्गायां मृत्युमासाद्य सदारो मोक्षमाप्तवान् ॥२०३॥
पठति हरिचरित्रैर्युक्तमध्यायमेतं सकलदुरितराशिध्वंसिभिः सर्वभक्तया ।
इह जगति स भुक्त्वा सर्वभोगांस्ततोऽन्तेव्रजतिभगवतः श्रीवासुदेवस्य धाम ॥२०४॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे गङ्गा सागरसङ्गममाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवाँ अध्याय

श्रीव्यास उवाच

भूय एव प्रवक्ष्यामि गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा मानवाःसर्वे सर्वान्कामानवाप्नुयुः ॥१॥
येन नाचरितं स्नानं गङ्गायां लो मातरि । आलोक्य तन्मुखं सद्यः कर्त्तव्यं सूर्यदर्शनम् ॥२॥
प्रभाते यःस्मरेद्भक्तया गङ्गा इत्यक्षरद्वयम् । तस्य नश्यन्ति पापानि तमोवदरुणोदये॥३॥
न दृष्टा येन सरितां प्रवरा जह्नुकन्यका। तस्याऽग्राह्याणि सर्वाणि अन्नादि सलिलानि च ॥४॥
शरीराणि परित्यज्य गङ्गास्नानं प्रकुर्वताम् । गात्राण्यायान्ति पापानि गङ्गास्नानमकुर्वताम्॥५॥
अहोचित्रमहोचित्रमहोचित्रमिदम्पुनः । पतन्ति नरके मूढा गङ्गानाम्नि स्थिते सति॥६॥

अन्तर्धान हो गये ॥२०१॥ उसके बाद अपनी पत्नी के साथ माधव ने भगवान् विष्णु की उस प्रतिमा का सर्वोत्तम क्रियायोग के द्वारा आराधना की ॥२०२॥ वे समस्त भोगों को पुत्रों तथा पौत्रों के साथ भोग कर अपनी पत्नी के साथ गङ्गाजी में मृत्यु प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लिए ॥२०३॥ श्रीहरि के चरित्र से युक्त इस अध्याय को जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है इसको जो भक्ति पूर्वक पढ़ता है । वह इस संसार में सभी भोगों को भोगकर अन्त में भगवान् श्रीवासुदेव के धाम में जाता है ॥२०४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के गङ्गासागर माहात्म्य वर्णन नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

गङ्गाजी का माहात्म्य वर्णन

श्रीव्यासजी ने कहा— मैं पुनः गङ्गाजी का उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ । उसको सुनकर सभी मनुष्य अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेंगे ॥१॥ जिसने लोक माता गङ्गाजी में स्नान नहीं किया है उसके मुख को देखकर सद्यः सूर्य का दर्शन करना चाहिए ॥२॥ जो प्रातःकाल गङ्गा इन दो अक्षरों का स्मरण करता है उसके सभी पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होते ही सारा अन्धकार विनष्ट हो जाता है ॥३॥ जिसने नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी का दर्शन नहीं किया उसके अन्न तथा जल आदि ग्राह्य नहीं हैं।॥४॥ गङ्गा में स्नान करने वाले अपने शरीर का त्याग करता है तो उसके पाप गङ्गा स्नान नहीं करने वालों के शरीर में आ जाते हैं ॥५॥ यह अत्यन्त विचित्र बात है कि मूर्ख लोग गङ्गा इस नाम के रहने पर भी नरक

शिरसा यो वहेद्भक्त्या गङ्गाम्भःकणिकामपि ।
स मुच्यते महापापैर्ब्रह्महत्यादिभिर्द्विजः ॥७॥
ललाटे दृश्यते यस्य गङ्गासैकतमुत्तमम् । स पुण्यात्मा जगत्सर्वं पुनाति नाऽत्रसंशयः॥८॥
गङ्गातीरात्समायान्तं यः पश्येत्परमादरात् । सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥९॥
गङ्गातीरमहं यामि त्वमागच्छेति वक्ति यः । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सर्वान् कामान्प्रयच्छति॥१०॥
गङ्गेतिनाम संस्मृत्य यस्तु कूपजलेऽपि च । करोति मानवः स्नानं गङ्गास्नानफलं लभेत्॥११॥
गङ्गाम्भःशीकरं यस्तु संमितं सर्षपस्य च । प्राप्नोति मृत्युकाले तु सगच्छेत्परमं पदम्॥१२॥
अत्रैव शृणु विप्रर्षे ! इतिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण गङ्गादेवी प्रसीदति ॥१३॥
आसीत्त्रेतायुगे विप्रो धर्मस्वो नाम धार्मिकः ।
शान्तो दान्तो दयायुक्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥१४॥
सत्यवादी क्रोधहीनो हिंसाहीनो जितेन्द्रियः। सर्वभूतहितैषी च योगाभ्यासरतः सदा ॥१५॥
संसारसागरं तर्तुं स विप्रो वैष्णवो जनः। पूजयामास देवेशं क्रियायोगेन केशवम् ॥१६॥
कदाचित्प्राप्य पुण्याहं स च विप्रर्षभो द्विज ! ।
जगाम जाह्नवीतीरं मुमुक्षुः स्नानहेतवे ॥१७॥
तत्र गङ्गाम्भसि स्नात्वा कृत्वा च तर्पणादिकम् ।
गृहं गन्तुं मनश्चक्रे गङ्गाम्भःकर्करीं वहन् ॥१८॥

में चले जाते हैं ॥६॥ जो भक्ति पूर्वक गङ्गाजी के जल के कण को भी धारण करता है । हे द्विज ! वह ब्रह्महत्या आदि महापातकों से मुक्त हो जाता हे ॥७॥ जिसके ललाट पर गङ्गा की रेत सुशोभित होती है, वह पुण्यात्मा सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर देता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥८॥ गङ्गाजी के तट से आते हुए को जो आदर पूर्वक देखता है वह मनुष्य हजार अश्वमेध यागों को करने का फल प्राप्त करता है ॥९॥ जो यह कहता है कि मैं गङ्गा तट पर जा रहा हूँ तुम भी आओ; उसके ऊपर प्रसन्न होकर भगवन् विष्णु उसकी सारी कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य गङ्गाजी के नाम का स्मरण करके कूएँ के भी जल से स्नान करता है वह भी गङ्गा स्नान के फल को प्राप्त करता है॥११॥ जो मनुष्य मृत्यु के समय सरसों के बराबर भी गङ्गा जल को प्राप्त कर लेता है, वह भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥१२॥ हे विप्रर्षे ! इस विषय में आप एक इतिहास को सुनें । उसके सुनने मात्र से देवी गङ्गा प्रसन्न हो जाती हैं ॥१३॥ त्रेतायुग में धर्मस्व नामक धार्मिक ब्राह्मण थे । वे शान्त, दान्त दया से युक्त एवं वेद वेदाङ्गों में पारङ्गत थे ॥१४॥ वे सत्य बोलते थे, क्रोध रहित थे, कोई हिंसा भी नहीं करते थे और जितेन्द्रिय थे । वे सभी जीवों के हितैषी तथा सदा योगाभ्यास में रत रहते थे ॥१५॥ संसार सागर को पार करने के लिए वे वैष्णव ब्राह्मण क्रियायोग के द्वारा भगवान् केशव की पूजा करते थे ॥१६॥ हे द्विज ! एक बार पवित्र दिन प्राप्त करके वे विप्र श्रेष्ठ मुमुक्षु देने के कारण स्नान करने के लिए जाह्नवी तट पर गये ॥१७॥ वहाँ गङ्गा जल में स्नान करके तथा तर्पण आदि करके गङ्गा के जल से भरी हुयी गगरी लेकर घर जाने का मन बनाये ॥१८॥ उसी समय वहाँ पर रत्नाकर नामक वैश्य व्यापार

तस्मिनकाले ततो विप्र ! वैश्योरत्नकराह्वयः ।
कृत्वा वाणिज्यमायाति सकलैःकिङ्करैर्वृतः ॥१९॥
तस्यैकः किङ्करो विप्रः कालकल्पइतिस्मृतः ।
दण्डहस्तःसमायातो विहिताखिलपातकः ॥२०॥
अथवर्त्मश्रमश्रान्तस्तस्य रत्नाकरस्य च । सुष्वापैको बलीबर्दः पथि ब्राह्मणसत्तम ! ॥२१॥
पथि स्वपन्तं तं दृष्ट्वा कालकल्पो वृषं ततः ।
दण्डेन ताडयामास बहुधाऽत्यन्तानिर्दयः ॥२२॥
तद्दण्डाघातजनितक्रोधेन वृषभेण सः । विषाणाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां समुत्थाय विदारितः ॥२३॥
तच्छृङ्गद्वयनिर्भिन्नवक्षाः स गतलोचनः । तत्सन्निधिं दयायुक्तो धर्मस्वस्त्वरितो ययौ ॥२४॥
ततः कर्णात्समादाय तुलसीपत्रमुत्तमम् । गङ्गाम्भःशीकरैर्दिव्यैःसिक्तोऽसौ तेन धीमता ॥२५॥
गतप्राणं समालोक्य स विप्रः परमार्थवित् ।
विस्मितःस्वगृहं गन्तुं मनश्चक्रे द्विजोत्तम ! ॥२६॥
अथ गच्छन्पथि प्राज्ञो गङ्गानामानि कीर्तयन् ।
यमदूतान्ददर्शाऽग्रेकोटिकोटिसहस्त्रशः ॥२७॥
छिन्नैकपादाः केचिच्च केचिच्छिन्नैकपाणयः ।
केऽपि केऽपि च्छिन्नकर्णाः केऽप्येकनयनास्तथा ॥२८॥
केचिच्च च्छिन्ननासाश्च च्छिन्नजिह्वाश्च केचन ।
भग्नदन्ताःकेऽपि केऽपि केऽपि दन्तविवर्जिताः ॥२९॥
केऽपि शोणितधराभिर्लिप्तसर्वकलेवराः ।
विमुक्तकेशिकाःकेऽपि केऽपि वक्त्रविवर्जिताः ॥३०॥

करके अपने सभी किंकरों के साथ आया ॥१९॥ हे विप्र ! उसका एक किङ्कर कालकल्प था । वह सभी पापों को करने वाला अपने हाथ में दण्डा लेकर आया ॥२०॥ उसके पश्चात् रास्ते में थककर उस रत्नाकर का एक बैल रास्ते में सो गया ॥२१॥ रास्ते में सोए हुए उस बैल को कालकल्प ने अत्यन्त निर्दयता पूर्वक दण्ड से बहुत मारा ॥२२॥ उस दण्ड के प्रहार से क्रोध करके वह बैल अपने तीक्ष्ण दोनों सिंगों से उसको चीर दिया ॥२३॥ उसके दोनों शृङ्गों से चीरे गये वक्षःस्थल वाले को देखकर धर्मस्व दयान्वित होकर शीघ्र गये ॥२४॥ उसके बाद अपने कान से तुलसी पत्र को निकालकर गङ्गाजल के कणों से उन बुद्धिमान् ने उसको सींचा ॥२५॥ मरे हुए उसको देखकर परमार्थ वेत्ता ब्राह्मण आश्चर्यर्ति होकर अपने घर जाने का मन बनाये ॥२६॥ उसके पश्चात् रास्ते में जाते हुए वे प्राज्ञ गङ्गाजी के नामों का कीर्तन करते हुए अपने सामने यमदूतों को देखें । वे कई हज़ार करोड़ के संख्या में थे ॥२७॥ कुछ के एक पैर काट दिया गया था और कुछ के एक हाथ को ही काट दिया गया था । किसी किसी के कान काट दिए गये थे । कुछ यमदूत एक आँख वाले हो गये थे ॥२८॥ कुछ के नाक तथा कुछों की जीभ कट गयीं थी । कुछ के दाँत टूट गये थे और कुछ दन्त विहीन हो गये थे ॥२९॥ कुछों का सारा शरीर खून से लथपथ

केऽपि केऽपि तथा नग्नाः केऽपि निर्भिन्नवक्षसः ।
केऽपि जर्जरिताङ्गाश्च महातीक्ष्णैः शिलीमुखैः ॥३१॥

निबद्धाङ्गुलिहस्ताश्च दृढपाशैस्तथाऽपरे । क्रन्दन्तो व्यथया केऽपि पलायनपरायणाः ॥३२॥
एवं भूतान्यमप्रेष्यान्स विलोक्य द्विजोत्तमः । सकम्पहृदयो भीत्या ततःस्तब्ध इवाऽभवत् ॥३३॥

अवलम्ब्य ततो धैर्यं स विप्रो हरिभक्तिकृत् ।
इत्यपृच्छन्मधुरया गिरा तान्यमकिङ्करान् ॥३४॥

धर्मस्व उवाच

के यूयं विकृताकाराः पाशमुद्गरपाणयः । दंष्ट्राकरालवदना अङ्गारसदृशप्रभाः ॥३५॥
यूयं सर्वे महावीरा ज्वलत्पावकलोचनाः । कृता तथापि युष्माकमियं केनाऽपि दुर्गतिः ॥३६॥

यमदूता ऊचुः

यमदूता वयं सर्वे यमाज्ञाहारिणः सदा । सदण्डोऽयं द्विजास्माकं सुमहान्कदनोदयः ॥३७॥

धर्मस्व उवाच

अकस्मादागता यूयं महाबलपराक्रमाः । एतावत इयं केन कथं वा दुर्गतिः कृता ॥३८॥

यमदूता ऊचुः

भयं मुञ्च द्विजश्रेष्ठ ! वृत्तान्तं सकलं शृणु ।
यथाऽस्माकमिदं दुःखं बभूवाऽत्यन्तदुःसहम् ॥३९॥
योऽसौ वृषेण शृङ्गाभ्यां कालकल्पो विदारितः ।
तं नेतुं धर्मराजेनप्रेरिताः किङ्करा वयम् ॥४०॥

तेनाऽऽज्ञया वयं सर्वे समस्तायुधपाणयः । बद्ध्वा तं पापिनं श्रेष्ठं नेतुमत्र समागताः ॥४१॥

हो गया था । कुछ के केश काट दिए गये थे और कुछ मुखहीन हो गये थे ॥३०॥ कुछ नंगे हो गये थे तो कुछ की छाती फटी हुयी थीं । कुछ के अङ्ग तीक्ष्ण बाणों से जर्जर हो गये थे ॥३१॥ कुछ के हाथ और अङ्गुलि दृढ पाश से बाँध दिए गये थे । कुछ कष्ट के कारण चिल्ला रहे थे और कुछ भाग रहे थे॥३२॥ इस प्रकार के यमदूतों को देखकर वे द्विजश्रेष्ठ ! भयभीत हो गये और वे काँपने लगे । उसके पश्चात् वे स्तब्ध हो गये ॥३३॥ उसके पश्चात् धैर्य धारण करके वे श्रीहरि की भक्ति करने वाले ब्राह्मण उन यमदूतों से मधुर वाणी में पूछे ॥३४॥ **धर्मस्व ने कहा**— आप सभी विकृत आकार वाले कौन हैं ? आपलोगों के मुख में भयंकर दाँत हैं तथा आपलोगों की कान्ति अङ्गार के समान है ॥३५॥ आप सभी महावीर हैं । आप सबों के नेत्र जलती हुयी अग्नि के समान हैं । फिर भी आपलोगों की किसी ने यह दुर्गति की है । **यमदूतों ने कहा**— हम सभी यम के दूत हैं और यम की आज्ञा का पालन करते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! दण्ड पूर्वक हमलोगों को अत्यधिक काटा गया है ॥३६-३७॥ **धर्मस्व ने कहा**— महाबल और महापराक्रम वाले हैं आपलोग अकस्मात् आये हैं । किसने और क्यों ऐसी दुर्गति की है । आपलोग इतनी संख्या में हैं ॥३८॥ **यमदूतों ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ठ ! आप भयभीत न हों आप सम्पूर्ण वृतान्त को सुनें कि हमलोगों को यह दुःख और इतनी दुर्गति कैसे हुयी ? ॥३९॥ यह जो कालकल्प बैल के द्वारा सीग से चीर दिया गया उसी को लाने के लिए यमराज ने हमलोगों को भेजा ॥४०॥ उनकी आज्ञा प्राप्त करके

अथाऽसौ प्राप्तकालश्च कालकल्पोदुराशयः ।
वृषेण हेतुभूतेन विषाणाभ्यां विदारितः ॥४२॥
सदयेन त्वया तत्र गङ्गापानीयसीकरैः । सिक्तः पातकिनां श्रेष्ठो गङ्गानामानि जल्पता॥४३॥
गङ्गाम्भःकणिकासेकैर्गतकल्मषमप्यमुम् । बद्ध्वा पाशैर्दृढं नेतुमुद्यता हि यदा वयम्॥४४॥
नेतुं तमपि देवेशः शरणागतिपालकः। स्वदूतान्प्रेषयामास महाबलपराक्रमान्॥४५॥
केऽपि दूताः समागत्य ततो नारायणाज्ञया ।
सकोपाः प्राहुरित्यस्मान्पथि ब्राह्मणसत्तम ! ॥४६॥

विष्णुदूता ऊचुः

के भवन्तो महात्मानः कथमेनं महाशयम्। बद्ध्वानयथ पाशेनयूयं वा कस्य किङ्कराः ॥४७॥
विहायैनं महात्मानं पलायध्वं यथासुखम्। नचेच्छिरांसि युष्माकं छेत्स्यामश्चक्रधारया ॥४८॥
तेषामेतानि वाक्यानि गर्वितानि द्विजोत्तम ! ।
संश्रुत्याऽच्युतदूतानां तेऽस्माभिरिति जल्पिताः ॥४९॥
दण्डपाणे वयं दूताः सर्वे प्राणाधिपस्य वै। गृहीत्वा पापिनां श्रेष्ठं प्रयामः शमनालयम्॥५०॥
यूयं सर्वे महात्मानस्तुलसीमाल्यभूषिताः। स्फुटपद्मपलाशाक्षा बलिनो गरुडध्वजाः ॥५१॥
दिव्याम्बरधरा यूयं मयूरगलसुन्दराः। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणश्च चतुर्भुजाः ॥५२॥
के यूयमीदृशाः सर्वे सर्वलक्षणसंयुताः। इमं पातकिनां श्रेष्ठं कथं वा नेतुमिच्छथ ॥५३॥

उसको पाश से बाँधकर हम सभी हाथ में शस्त्र लिए हुए उस बहुत बड़े पापी को लाने के लिए आये॥४१॥ उसके बाद वह दुष्ट कालकल्प मर गया । उसकी मृत्यु के कारण बैल के जो दोनों सीङ्ग थे उससे उसने उसको चीर दिया । आपने दया करके गङ्गाजल के कणों से उसे सींच दिया । वह पापी गङ्गाजी के नामों का उच्चारण करता हुआ तथा गङ्गाजल से रिक्त होने के कारण निष्पाप हो गया । उसको सुदृढपाश से बाँधकर जब हमलोग ले जाने के लिए तैयार हुए ॥४२-४४॥ उसको लेने के लिए देवेश शरणागत जीवों को लेने के लिए । महाबली एवं महापराक्रमी अपने दूतों को भेजे ॥४५॥ उसके पश्चात् कुछ दूत भगवान् नारायण की आज्ञा से क्रोध करके रास्ते में कहे ॥४६॥ **विष्णु भगवान् के दूतों ने कहा—** आपलोग कौन है ? और इन महाशय को क्यों ले जाते हैं । इनको पाश से बाँध कर ले जा रहे हैं । आपलोग किसके किङ्कर हैं ?॥४७॥ इन महात्मा को छोड़ कर आपलोग यहाँ से भाग जायँ । अन्यथा हमलोग आपलोगों के शिरों को चक्र की धारा से काट देंगे ॥४८॥ हे द्विजोत्तम ! उन सबो के गर्व भरे इन वाक्यों को सुनकर हमलोगों ने भगवान् विष्णु के दूतों को कहा ॥४९॥ हमलोग प्राणों के स्वामी दण्डपाणि के दूत हैं । इस सबसे बड़े पापी को पकड़कर हमलोग यमलोक ले जा रहे हैं ॥५०॥ आप सभी लोग महात्मा हैं और तुलसी की माला से अलंकृत है । विकसित कमलदल के समान नेत्र वाले हैं बलवान और गरुडध्वज हैं॥५१॥ आप सभी दिव्य वस्त्र धारण किए हुए मयूर की गला के समान सुन्दर हैं । शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले तथा चार भुजाओं वाले हैं ॥५२॥ सभी लक्षणों से युक्त आपलोग इस प्रकार के कौन हैं ? इस पातकियों में श्रेष्ठ को क्यों ले जाना चाहते हैं ?॥५३॥ **विष्णु दूतों ने कहा—**

विष्णुदूता ऊचुः

वयं सर्वे विष्णुदूताः पुण्यात्मानमिमं नरम्। नेतुमत्र समायाता वैकुण्ठं प्रति सम्प्रति ॥५४॥
इमं श्रीभगवद्भक्तं स्वजनं गतकल्मषम्। मुञ्चताऽऽशु यमप्रेष्या यदि जीवितुमिच्छथ॥५५॥
भूयस्तेषामिदं वाक्यं श्रुत्वा सर्वगतं द्विज ! ।
कोपाद्यदुक्तमस्माभिस्तदाकर्णय कथ्यते ॥५६॥
अयं पापी दुराचारो ब्रह्महत्यासहस्रकृत्। कृतघ्नश्चैव गोघ्नश्च मित्रघ्नश्च दुराशयः ॥५७॥
मेरुप्रमाणहेमानि हृतानि सुबहूनि च। परदारा हृता नित्यमनेनाऽतिदुरात्मना॥५८॥
कोटिकोटिसहस्राणि जन्तूनां विष्णुकिङ्कराः ।
कृताश्चबहुधाहत्याःस्त्रीहत्या च तथैव च ॥५९॥
अयं न्यासापहरणं स्वमातृगमनं तथा। गोमांसभक्षणं चैव चकार प्रतिवासरम् ॥६०॥
परहिंसाकृताऽनेन दाहश्च परवेश्मनः। सभायां परनिन्दां च विधवागर्भपातनम् ॥६१॥
गृहमायान्तमतिथिं धनलोभेन सत्तमाः । अहनत् सुनिशितैः खड्गैर्निशायां यवनोपमः ॥६२॥
एतान्यन्यानि पापानि महान्त्यगणितानि च । चकार नीचो मूढोऽसौ नाल्पमात्रं शुभावहम्॥६३॥
तस्मादयं महापापी नीयते यातनागृहम्। ज्ञेया हि पापिनोदण्ड्या धर्मराजस्य सत्तमाः ॥६४॥
यूयं वै देवदेवस्य दूता भगवतो यदि। तदा कथमिमं नेतुं पापिनां श्रेष्ठमिच्छथ ॥६५॥

विष्णुदूता ऊचुः

भवद्भिः सत्यमेवोक्तं कोऽपिनास्त्यत्रसंशयः ।
दण्ड्याः पातकिनःसर्वे जीविताधिपतेःसदा ॥६६॥

हम सभी भगवान् विष्णु के दूत हैं इस पुण्यात्मा मनुश्य को वैकुण्ठ ले जाने के लिए इस समय आये हैं।।५४।। ये श्रीभगवान् के भक्त और उनके स्वजन हैं ये निष्पाप हैं । हे यमदूतों ! यदि तुमलोग जीवित रहना चाहते हो तो इनको शीघ्र छोड़ दो ।।५५।। हे द्विज ! उन सबों के सर्वगत वाक्य को सुनकर क्रोध पूर्वक हमलोगों ने जो कहा उसे आप सुनें ।।५६।। यह पापी दुराचारी है, हजारों ब्रह्म हत्याओं को इसने किया है । यह कृतघ्न, गोध्न, मित्रधन और दुष्ट विचार वाला है ।।५७।। इसने मेरु पर्वत के समान बहुत से सुवर्णों को चुराया है । इस अत्यन्त दुरात्मा ने नित्य ही परस्त्री का अपहरण किया है ।।५८।। हे विष्णु दूतों ! इसने कई करोड़ जीवों को बार-बार मारा है तथा स्त्री की भी हत्या इसने की है ।।५९।। इसने न्यास (धरोहर) का अपहरण किया है, अपनी माता के साथ सङ्गम किया है । यह प्रतिदिन गोमांस का भक्षण किया है ।।६०।। इसने दूसरों की हिंसा की है तथा दूसरों के घर को जलाया है । सभा में दूसरों की निन्दा किया है तथा विधवाओं के गर्भ को गिराया है ।।६१।। हे श्रेष्ठों ! घर आते हुए अतिथियों का धन के लोभ से दिन में सोते हुए उन सबों को तीक्ष्ण खड्ग से रात्रि में यवनों के समान काट दिया है ।।६२।। इन सबों के अतिरिक्त अगण्य बड़े-बड़े अपराधों को इसने किया है । इस नीच और मूर्ख ने थोड़ा सा भी पुण्य नहीं किया है ।।६३।। अतएव यह महापापी है, इसको यातना गृह में ले जाया जा रहा है । हे श्रेष्ठों यह जानना चाहिए कि जो पापी होते हैं वे धर्मराज के दण्ड के अधिकारी होते हैं ।।६४।। आपलोग यदि

अयं पापविनिर्मुक्तो गङ्गाशीकरसेचनात् । तस्मादेनं वयं सर्वे नेष्यामो हरिमन्दिरम् ॥६७॥
तावत्तिष्ठन्ति देहेषु पातकानि शरीरिणाम् । गङ्गाम्भःशीकरा यावन्नस्पृशन्ति सुदुर्लभाः ॥६८॥
चन्द्रैककलया सर्वं तिमिरं हन्यते यथा । गङ्गाम्भःशीकरेणाऽपि पातकं हन्यते तथा ॥६९॥

गङ्गानामानि संस्मृत्य पापी मुच्येत पातकात् ।
साक्षात्तत्सलिलं स्पृष्ट्वा मुच्यतेऽत्र किमद्भुतम् ॥७०॥

शीतमप्युदकं गाङ्गं वह्निवत्पापकानने। यथाग्निवत्पद्मवते शीतं तोयं च दाहकृत् ॥७१॥
तस्मादयं पुण्यकर्मा द्वितीय इव केशवः । गच्छध्वं शमनप्रेष्या यदि कल्याणमिच्छथ ॥७२॥
तेषां केशवदूतानां श्रुत्वाऽस्माभिरिदं वचः । भूय एव निरुक्तंयद्विहस्योच्चैःश्रृणुष्व तत् ॥७३॥
अहोचित्रमहोचित्रमयं कल्मषमन्दिरम् । गङ्गाम्भःसेचनादेव विमुक्तः सर्वपातकैः ॥७४॥

स्वहस्तोपार्जितंकर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
नाऽभुत्तवा मुच्यते मर्त्यःकल्पकोटिशतैरपि ॥७५॥

यमाज्ञया नेतुमिमं वयं सर्वेसमागताः । कस्याऽयं वचसाऽस्माभिस्त्यज्यते पापिनां वरः ॥७६॥

विष्णुदूता ऊचुः

यूयं पापधियो नूनं विवेकपरिवर्जिताः । युष्माभिर्जह्नुकन्याया न ज्ञायन्ते यतो गुणाः ॥७७॥
कार्यं वेदे निषिद्धं यत्तत्पातकमितिस्मृतम् । यद्वेदसम्मतं कार्यं तदेव धर्म्यमुच्यते ॥७८॥
देवो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरितिशुश्रुम । यथा विष्णुस्तथा गङ्गा गङ्गैव सर्वपापहा ॥७९॥

भगवान् देवदेव के दूत हैं तो फिर इस श्रेष्ठ पापी को क्यों ले जाना चाहते हैं ॥६५॥ **भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा—** आपलोगों ने सत्य कहा है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । सभी पापी यमराज के दण्ड के पात्र हैं । यह पाप से मुक्त है क्योंकि यह गङ्गा जल के कणों से सिक्त हैं । जब तक गङ्गा जल के कणों का शरीर से स्पर्श नहीं होता है तब तक ही पापियों के शरीर में पाप रहते हैं । इसलिए हमलोग इसको श्रीहरि के धाम में ले जायेंगे ॥६६-६८॥ जिस तरह चन्द्रमा की एक ही कला अन्धकार को विनष्ट कर देती है उसी तरह गङ्गाजल के कण से पापों का विनाश हो जाता है ॥६९॥ गङ्गाजी के नामों का स्मरण करके मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है । साक्षात् गङ्गा के जल से स्पृष्ट मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ?॥७०॥ ठंढा भी गङ्गा जल पाप के वन में अग्नि के समान हो जाता है । तथा जिस तरह कमल वन में जल उसे जला देने का काम करता है ॥१७१॥ अतएव यह पुण्यवान दूसरे भगवान् केशव के समान है । हे यमदूतों ! यदि तुम लोग कल्याण चाहते हो तो चले जाओ ॥७२॥ उन श्रीभगवान् के दूतों के इस वचन को सुनकर फिर जोर से हँसकर जो हमलोगों ने कहा उसे सुनें॥७३॥ यह तो अत्यन्त विचित्र बात है कि यह पापों का घर गङ्गाजल के कणों से सभी पापों से मुक्त हो गया है ॥७४॥ अपने हाथ से किए गये पुण्य अथवा पाप कर्म को भोगे बिना मनुष्य सैकड़ों कल्पों में भी मुक्त नहीं होता है ॥७५॥ यमराज की आज्ञा से हमलोग इसे लेने आये हैं । हमलोग किसकी आज्ञा से इस सबसे बड़े पापी को छोड़ दें ॥७६॥ **विष्णु दूतों ने कहा—** तुमलोग पाप बुद्धि वाले हो विवेक से रहित हो, तुमलोग गङ्गाजी की महिमा को इसीलिए नहीं जानते हो ॥७७॥ वेद जिसका निषेध करता है वह कार्य पाप है । जो वेदानुकूल है वह कर्म धर्म है ॥७८॥ भगवान् नारायण स्वयम्भू हैं यह वेद बतलाता है ।

हरौ प्रसन्ने पापानि कुत्र तिष्ठन्ति देहिनाम्। जन्मान्तरार्जितैःपापैर्गतयूयमिमां गतिम्॥८०॥
अद्याऽपि पापकर्माणः किमर्थं पापमिच्छथ ।
गङ्गानिन्दाकरा यूयं विष्णुनिन्दाकरास्तथा ॥८१॥
अतो युष्मान्हनिष्यामः पापिनश्चक्रधारया । इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते कोपादरुणोचनाः ॥८२॥
चक्रिरे समरारम्भमस्माभिः सह सत्तम !। जीवेशदूताहन्यन्तामिति प्रोचुश्च ते रुषा ॥८३॥
भूयो भूयो वदन्तोऽस्मान्निजन्घ्नुश्चक्रधारया। इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते सङ्ग्रामेऽत्यन्तदारुणाः॥८४॥
सर्वे शङ्खान्समादध्मुः सहसा हृष्टमानसाः । ततोऽस्माकं सिंहनादैः पयोदस्तनितैरिव॥८५॥
कोदण्डानां च विस्तारैर्व्याप्तंविप्र ! जगत्त्रयम् ।
अथ वृक्षैःशिलाभिश्च तथापर्वतवृष्टिभिः ॥८६॥
अस्माभिर्विष्णुदूतास्ते बाणैश्च विदलीकृताः। ऋष्टिभिर्भिन्दिपालैश्च बाणैश्च परिघैस्तथा॥८७॥
कुठारैश्छुरिकाभिश्च दण्डैश्च शङ्कुभिस्तथा । खड्गैश्च शक्तिभिश्चैव निशितैश्च शिलीमुखैः॥८८॥
गदाभिश्चक्रधाराभिर्नाराचैश्च सुविभीषणैः । एतैरन्यैश्च विषमैरस्त्रैस्तै विष्णुकिङ्कराः॥८९॥
निजघ्नुर्बहुधा कोपाद्वज्रकल्पैर्महार्णवे । तदास्त्रजर्जरा सर्वे वयं भीत्या पलायिताः ॥९०॥
निपेतुःकेऽपि सङ्ग्रामेगतप्राणाःसहस्रशः । ततोऽस्मांस्ते समालोक्यपलायनपरायणान् ॥९१॥
मुदाकम्बून्समादध्मुर्बलिनो विष्णुकिङ्कराः । अथच्छित्त्वा द्विजश्रेष्ठ ! कालकल्पस्य बन्धनम्॥९२॥
विमाने तं समारोप्य जग्मुर्भगवतःपुरम् । गङ्गाशीकरसेकस्य प्रभावेणैव सत्तम ! ॥९३॥

जैसे भगवान् विष्णु हैं वैसी ही गङ्गा हैं । गङ्गा ही सभी पापों को विनष्ट करने वाली हैं ॥७९॥ श्रीहरि के प्रसन्न हो जाने पर शरीरधारियों के पाप कहाँ रहते हैं ? जन्मान्तर के पापों के कारण आपलोगों की यह गति हैं ॥८०॥ आज भी पाप कर्म करने वाले आप लोग पाप करना क्यों चाहते हों । तुमलोग गङ्गा तथा भगवान् विष्णु की निन्दा करने वाले हो ॥८१॥ इसीलिए पापी तुम लोगों को चक्र की धारा से हमलोग मार रहे हैं । इस तरह से कहकर वे विष्णुदूत क्रोध से आँखें लाल करके ॥८२॥ हे श्रेष्ठ ! हमलोगों के साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिए । वे क्रोध से कहे यमराज के दूत मारे जायँ ॥८३॥ बार-बार कहते हुए वे लोग हमलोगों को चक्र की धारा से मारे । सङ्ग्राम में अत्यन्त भयङ्कर भगवान् विष्णु के दूत ॥८४॥ प्रसन्न होकर सहस्रों शङ्खों को बजाये उसके बाद हमलोगों के सिंहनादों से मेघ की गर्जना के समान ध्वनि॥८५॥ उसके बाद धनुषों के विस्तार से त्रैलोक्य व्याप्त हो गया । उसके पश्चात् वृक्षों तथा शिलाओं तथा पार्वतों की वृष्टि से ॥८६॥ ने बाणों से भगवान् विष्णु के दूतों का विदलन किया । ऋष्टियों भिन्दिपालों बाणों तथा परिघ से ॥८७॥ कुल्हाड़ियों, धुरियों, दण्डों, शङ्कुओं, खड्गों तथा शक्तियों से एवं तीक्ष्ण बाणों से ॥८८॥ गदाओं, चक्रधाराओं से एवं भयङ्कर बाणों से तथा इन सबों से अतिरिक्त अस्त्रों से वे विष्णुदूत ॥८९॥ क्रोध करके उस महायुद्ध में हमलोगों को बहुत प्रकार से मारे । उनके अस्त्रों से जर्जर होकर हमलोग भयभीत होकर वहाँ से भाग चले ॥९०॥ हजारों तो मरकर उस संग्राम में गिर पड़े । उसके पश्चात् भागने वाले हमलोगों को देखकर ॥९१॥ वे बलवान् भगवान् विष्णु के दूत अपने शङ्खों को बजाये। उसके बाद कालकल्प के बन्धन को काटकर उसको विमान पर बैठाकर वे श्रीभगवान् के लोक में ले गये।

जगाम हरिसालोक्यं कालकल्पोऽतिपातकी ।
स्थित्वा कल्पशतं तत्र भुक्त्वा भोगान्मनोहरान् ॥९४॥
ज्ञानमासाद्य तत्रैव परं मोक्षं गमिष्यति। गङ्गाप्रभावैरस्माकमेतद्दुःखं गतं प्रभो ! ॥९५॥
गच्छ ब्राह्मण ! भद्रन्ते सुप्रीतो निजमन्दिरम् ।
इत्युक्त्वा यमदूतास्ते ययुर्यमपुरं द्विज ! ॥९६॥
भूयएव स धर्मस्वः प्रीतो गङ्गातटं ययौ। गङ्गायां स्नानमाचर्य सर्वलोकस्य मातरि ॥९७॥
बद्धाञ्जलिः स विप्रस्तां तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥९८॥

धर्मस्व उवाच

गङ्गे ! समस्तजगदम्ब ! चलत्तरङ्गे नङ्गादिचारुतरमस्तकपुष्पमाले ! ।
कंसारिचारुचरणद्वयरेणुहन्त्रि ! भत्तया नमामि दुरितक्षयकारिणी त्वाम् ॥९९॥
मातः समस्तसुखदे ! प्रवरे नदीनां व्यासादिविप्रचयगीतगणे गुणाढ्ये ! ।
संसारभैरवमहार्णवमध्यनौके ! वन्दे तवाङ्घ्रियुगलं दुरितापहारि ॥१००॥
यस्यास्तवाऽम्बुकणिकामपि जह्नुकन्ये ! सौदासनामनृपतिर्द्विजकोटिहन्ता ।
सम्प्राप्य मुक्तिमगमत्त्रिसुरैरलभ्यां तां त्वां नमामि शिरसा वरदे ! प्रसीद ॥१०१॥
नारायणाच्युत जनार्दनकृष्णरामगङ्गादिनाम गदतो मम देवि ! मातः ।
संसारपातकनिवारिणि ! देहपातस्त्वद्वारिणीह भवतु त्वदनुग्रहेण ॥१०२॥

हे श्रेष्ठ ! गङ्गाजल के कणों के प्रभाव के कारण अत्यन्त पापी कालकल्प श्रीहरि के सलोक्य को प्राप्त कर लिया। वहाँ पर सौ कल्पों तक रहकर तथा मनोहर भोगों को भोगकर ॥९२-९४॥ वहीं पर वह ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त कर लेगा। हे प्रभो ! गङ्गा के ही प्रभाव से हमलोगों का यह दुःख समाप्त हो गया॥९५॥ हे ब्राह्मण आप प्रसन्नता पूर्वक अपने घर जाइये। आपका कल्याण हो। इस तरह से कहकर वे यमदूत यमलोक चले गये ॥९६॥ उसके बाद वे धर्मस्व, ब्राह्मण गङ्गातट पर गये, सम्पूर्ण लोकों की माता गङ्गा में स्नान करके वे विप्र हाथ जोड़कर उस परमेश्वरी की स्तुति किए ॥९७-९८॥ **धर्मस्व ने कहा**— हे सम्पूर्ण जगत् की मातः ! हे चञ्चल तरङ्गों वाली कामदेव आदि के शिर पर विद्यमान् सुन्दर पुष्पमाला के समान गङ्गे ! कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण के मनोहर दोनों चरणों की धूलि को धोने वाली, पापों को विनष्ट करने वाली; आपको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥९९॥ हे समस्त सुखों को देने वाली मातः ! आप नदियों में सबसे श्रेष्ठ है। व्यास आदि विप्रगण आपका गीतगान करते हैं। हे गुणों से पूर्ण मातः संसार रूपी भयङ्कर महासागर की नौका के समान समस्त पापों के सन्ताप को दूर करने वाली मातः आपके दोनों चरणों की मैं बन्दना करता हू ॥१००॥ हे जह्नुकन्ये ! जिस आपके जल की कणिका को भी प्राप्त करके करोड़ों ब्राह्मणों को मारने वाला सौदास राजा देवताओं को भी नहीं प्राप्त होने वाली मुक्ति को चिरकाल तक प्राप्त किया उस आपको मैं शिर झुकाकार प्रणाम करता हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥१०१॥ नारायण, कृष्ण, अच्युत, जनार्दन, राम तथा गङ्गा आदि नामों का उच्चारण करने वाले संसार के पातकों को दूर करने वाली हे गङ्गे मातः! आपकी कृपा से मेरा शरीरपात के आपके द्वार पर ही हो ॥१०२॥ हे

किम्बा तपोभिरखिलेश्वरि ! किं वा जपैर्वा दानैश्च किं तुरगमेधमुखैश्च किम्बा ।
त्वन्नीरशीकरमवाप्य सुरैरलभ्यां मुक्तिं व्रजन्ति मनुजा अतिपापिनोऽपि ॥१०३॥
स्वाहात्वमेव परमेश्वरि ! या स्वधा त्वां गीर्वाणवृन्दपितृलोकसुतृप्तिहेतोः ।
सत्त्वं रजस्तमइतित्रिगुणस्वरूपां सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि ! नौमि तां त्वाम् ॥१०४॥
धत्ते ललाटफलके तव सैकतं यः पुण्ड्रं च देवि ! तव तीरमृदा सदैव ।
त्वन्नामसर्वरसधाम वदेच्च भक्तया तत्पादरेणुरखिलोऽस्तु ममैव मूर्ध्नि ॥१०५॥
त्वद्रोधसि त्रिपथगे ! वसतिं विधाय पीत्वा च वारि तव पातकनाशकारि ।
स्मृत्वा च नाम तव वीचिरसं च दृष्ट्वा संसारबन्धनहरे ! मम जातु जन्म ॥१०६॥
नाकं शुभे सुमहदुल्लसिता मनुष्याः कुर्वन्ति भीतिरतिदुर्गमवर्त्म मत्वा ।
व्यर्थेव सा किल यतोऽमृतदे ! त्वदीयं सोपानभूतमुदकं त्रिदिवप्रयाणे ॥१०७॥
पापानि रोगनिकराश्च शरीरिदेहे तिष्ठन्ति तावदखिलेश्वरि ! मुक्तिदात्रि ! ।
कुर्वन्ति यावदमलेषु तवोदकेषु स्नानं नहि त्रिपथगे ! सरितां प्रधाने ! ॥१०८॥
यस्यास्तवाच्युतविरिञ्चिशिवादयोऽपि शक्रादिदेवनिकरा व्रजितुं महिम्नाम् ।
पारं परे परममोक्षपदप्रदात्रीं तां त्वां वदन्ति तटिनीमिति केऽपि मोहात् ॥१०९॥
गङ्गे ! समस्तसुखदायिनि ! किञ्चिदेव जानाति ते पशुपतिभर्गवान्महत्त्वम् ।
यस्मादसौ सुमनसां प्रवरोऽतिभक्तया धत्ते सदैव शिरसा जदीश्वरीं त्वाम् ॥११०॥
गङ्गेदेविजगन्मातः ! प्रसीद परमेश्वरि !। परिपाहि नमस्तुभ्यं रक्ष मां सेवकं स्वकम्॥१११॥

अखिलेश्वरि तपस्याओं, जपों, दानों, अश्वमेध आदि यागों से कौन सा लाभ हैं ? आपके जल के कण को प्राप्त करके अत्यन्त पापी भी मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥ हे परमेश्वरि ! आप ही स्वाहा, स्वधा रूप से देव समूह एवं पितृलोक के कारण भूता, सत्त्व, रजस एवं तमस् स्वरूप तथा सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करने वाली आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०४॥ जो मनुष्य आपकी रेत का ललाट पर तिलक लगाता है, जो आपके तीर की मिट्टी से सदा ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करता है, सभी रसों के आश्रय आपके नाम का भक्ति पूर्वक उच्चारण करता है उसके चरणों की सारी धूलि मेरे शिर पर रहे ॥१०५॥ हे त्रिपथगे ! आपके तट पर अपना निवास स्थान बनाकर तथा सभी पापों का नाश करने वाले आपके जल को पीकर, आपके नामों का स्मरण करके तथा आपकी लहरियों की शोभा को देखकर ही हे संसार के बन्धन को दूर करने वाली मेरा जीवन बिते ॥१०६॥ अत्यन्त प्रसन्न मानव स्वर्ग के शुभ मार्ग को अत्यन्त दुर्गम मानकर व्यर्थ ही अत्यन्त भयभीत होते हैं । हे मुक्ति प्रदान करने वाली मातः स्वर्ग में प्रयाण करने में आपका जल सोपान (सीढी) का काम करता है ॥१०७॥ पाप तथा रोग समूह हे सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनि तथा मुक्ति देने वाली शरीर में तब ही रहते हैं, जब तक लोग नदियों में प्रधान आपकी जल में स्नान नहीं करते हैं ॥१०८॥ जिस आपकी महिमा का पार पाने में, अच्युत, शिव आदि तथा इन्द्र आदि देवता भी असमर्थ हैं उस पर भी मोक्ष प्रदान करने वाली कुछ लोग अज्ञानवशात् नदी कहते हैं ॥१०९॥ हे समस्त सुखों को देने वाली गङ्गे ! भगवान् शिव भी तुम्हारी महिमा को कुछ ही जानते हैं इसीलिए देवताओं में श्रेष्ठ वे अत्यन्त भक्ति पूर्वक जगदीश्वरी आपको अपने शिर पर सदैव धारण करते हैं ॥११०॥

परब्रह्मस्वरूपां त्वां सर्वलोकैकमातरम् ।
शक्नोमिकिमहं स्तोतुं भ्रान्तचित्तोऽत्र मोक्षदे ! ॥११२॥

व्यास उवाच

इति स्तुता जगद्धात्रीं तेन विप्रेण धीमता। आविर्बभूव सहसा गङ्गामूर्तिमती द्विज !॥११३॥
ददर्श पुरतो गङ्गां द्विभुजां मकरासनाम्। कुन्देन्दुशङ्खधवलां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥११४॥
तां दृष्ट्वा पुरतो गङ्गां गङ्गा गङ्गेति कीर्तयन् ।
ववन्दे चरणौ तस्याः शिरसाऽऽलिङ्ग्य मेदिनीम् ॥११५॥
मोहयन्ती स्मिता लोकैः सुप्रीता परमेश्वरी। तमुवाच ततो विप्र ! बरंवृण्विति जैमिने !॥११६॥

धर्मस्व उवाच

मातस्त्वत्सलिलस्पर्शाद्ब्रह्महाऽपि च मोक्षभाक् ।
मया त्वं दृश्यते साक्षात्साध्यंकिमपरं मम ॥११७॥
तथाऽप्येकं वरं याचे त्वन्नीरे परमेश्वरि !। मृत्युर्भवतु मे देवि ! त्वन्नाम स्मरतो मम॥११८॥
मया कृतेन स्तोत्रेण यस्त्वां स्तौति सदेश्वरि ! ।
सोऽपि भुक्त्वाऽखिलान्कामानन्ते यास्यति सद्गतिम ॥११९॥

गङ्गोवाच

अनयाभवतो भक्तया सन्तुष्टाऽस्मि द्विजोत्तम ! ।
शीघ्रं ते कुशलं सर्वं भविष्यति न संशयः ॥१२०॥
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यंःपठेन्नरः। तस्यऽहमपि सन्तुष्टा दास्यामि मुक्तिमुत्तमाम्॥१२१॥

हे जगत् की माँ गङ्गे देवि ! परमेश्वरि ! आप प्रसन्न होएँ आप मेरी रक्षा करें, आपको नमस्कार है । आपके सेवक मेरी आप रक्षा करें ॥१११॥ परब्रह्म स्वरूपा तथा सम्पूर्ण लोकों की एकमात्र माता ! हे मोक्ष प्रदान करने वाली ! आप की भ्रान्तचित्त वाला मैं क्या स्तुति कर सकता हूँ ?॥११२॥ **व्यासजी ने कहा—** उस बुद्धिमान् विप्र के द्वारा इस प्रकार से स्तुति की गयी । जगन्माता गङ्गाजी आविर्भूत हो गयीं ॥११३॥ उन्होंने घड़ियाल पर बैठी हुयी दो भुजाओं वाली जो सभी अलङ्कारों से अलंकृत थीं तथा कुन्द, इन्द्रु या शङ्ख के समान श्वेत वर्ण की थीं, उनका ब्राह्मण ने दर्शन किया ॥११४॥ उन गङ्गाजी को अपने सामने देखकर गङ्गा-गङ्गा इस प्रकार से कीर्तन करते हुए साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनके चरणों की उन्होंने वन्दना की॥११५॥ मुस्कान युक्त दृष्टि से मोहित करती हुयी अत्यन्त प्रसन्न वे परमेश्वरी उससे कहीं हे विप्र ! तुम वरदान माँगो ॥११६॥ **धर्मस्व ने कहा—** हे मातः ! आपके जल का स्पर्श हो जाने से ब्रह्मघाती भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है । आपका मैंने अपने नेत्रों से दर्शन भी कर लिया अब मेरे लिए दूसरी कौन सी वस्तु प्राप्त हो सकती है ?॥११७॥ फिर भी मैं एक वरदान माँगता हूँ कि हे परमेश्वरी ! मेरी मृत्यु आपके नामों का स्मरण करते हुए ही हो ॥११८॥ मेरे द्वारा किए गये स्तोत्र के द्वारा हे सर्वेश्वरि ! जो स्तुति करे वह भी अपनी सभी कामनाओं का भोग करके अन्त में सद्गति को प्राप्त करे ॥११९॥ **गङ्गाजी ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! आपकी इस भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ शीघ्र ही तुम्हारा सारा कुशल निश्चित रूप से होगा ॥१२०॥

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरं तस्मै सा देवी भक्तवत्सला ।
धर्मस्वनाम्ने विप्रेन्द्र ! तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥१२२॥
स च विप्रो वरम्प्राप्य कृतकृत्यइवाऽभवत् ।
गङ्गारोधसि तत्रैव तस्थौ विप्र ! मनोरमे ॥१२३॥
ततः कालेन महता विमले जाह्नवीजले। सुखमृत्युं समासाद्य जगाम पदमुत्तमम् ॥१२४॥
कालकल्पोऽपि पापात्मा सिक्तोगङ्गाम्बुशीकरैः ।
प्राप्तवानुत्तमं मोक्षमन्येषां का कथा द्विज ! ॥१२५॥
अनिच्छयाऽपि गाङ्गेयं जलं स्पृष्ट्वा फलं भजेत् ।
स्पृशतां भक्तिभावेन किंभवेन्नहिवेद्मितत् ॥१२६॥
गङ्गासमं नास्ति तीर्थं भूयो भूयो मयोच्यते ।
यदम्बुकणिकां स्पृष्ट्वा परमं धाम लभ्यते ॥१२७॥
ये भक्तिभावेन सरिद्वरायाः स्पृशन्ति पाथः कणिकामपीह ।
ते यान्ति नूनं पदमच्युतस्य पापैर्विमुक्ताः सकलैर्महोग्रैः ॥१२८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
गङ्गाशीकरमाहात्म्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

तुम्हारे द्वारा किए गये इस स्तोत्र को तीनों सन्ध्याओं में जो पढ़े उससे मैं सन्तुष्ट होकर उत्तम मुक्ति प्रदान करूँगी ॥१२१॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से भक्त वत्सला वे देवी धर्मस्व नामक ब्राह्मण को वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥१२२॥ वे भी ब्राह्मण वर को प्राप्त करके कृत कृत्य से हो गये । वे विप्र वहीं पर गङ्गाजी के मनोहर तट पर निवास किए ॥१२३॥ उसके बाद बहुत समय बाद गङ्गाजी के विमल जल में सुख पूर्वक मृत्यु को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त किए । पापी कालकल्प भी गङ्गा जल के कणों से सींचित होकर उत्तम मोक्ष को प्राप्त किए दूसरों की क्या बात हैं ?॥१२४-१२५॥ बिना इच्छा के भी गङ्गाजी के जल का स्पर्श करके मनुष्य फल को प्राप्त करता है, जो भक्ति भाव पूर्वक उसका स्पर्श करता है, वह क्या होगा इस बात को मैं नहीं जानता हूँ ॥१२६॥ मैं बार-बार कहता हूँ कि गङ्गाजी के समान कोई भी तीर्थ नहीं है । उनके जलकण को भी प्राप्त करके परमपद की प्राप्ति होती हैं ॥१२७॥ जो लोग भक्तिभाव से नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी के जल के कण का भी स्पर्श करते हैं वे सभी अत्यन्त उग्र पापों से मुक्त होकर निश्चित रूप से भगवान् अच्युत के धाम में जाते हैं ॥१२८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के गङ्गाजल के कण का माहात्म्य वर्णन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

आठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

पुनर्वक्ष्यामि विप्रेन्द्र ! गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। गङ्गाकथासुधापानं कुरु मुक्तिं यदीच्छसि ॥१॥
दानं दत्तं तेनसर्वं तेन सर्वं मखाः कृताः। तेन प्रपूजितो विष्णुर्यद्भक्तिभीष्ममातरि ॥२॥
गङ्गायां धर्मकर्माणि क्रियन्ते यानि कानि च ।
अक्षयानि भवन्त्यस्य तानि सर्वाणि जैमिने ! ॥३॥
वहन्तंजनमालोक्य गाङ्गेयानि जलानि यः । भक्तया गच्छेत्समुत्थाय सोऽश्वमेधसहस्त्रकृत् ॥४॥
गङ्गाजलेष्वागतेषु यो नोत्तिष्ठति भक्तितः। पशुता शाश्वती तस्य जन्मजन्मनि जैमिने ! ॥५॥
गाङ्गेयं जलमासाद्य यो न गृह्णाति भक्तितः ।
जन्मकोट्यिर्जितं पुण्यं क्षणादेव तु नश्यति ॥६॥
गङ्गातीरं जिगमिषुं यस्तु वारयते द्विज !। सकोटिकुलसंयुक्तो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥७॥
मूत्रं वाऽथ पुरीषं वा गङ्गातीरे करोति यः ।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥८॥
श्लेष्माणं वाऽपि निष्ठीवं दूषिकाम्बाऽश्रु वा मलम् ।
गङ्गातीरे त्यजेद्यस्तु स नूनं नारकी भवेत् ॥९॥
उच्छिष्टं कफकञ्चैव गङ्गागर्भे च यस्त्यजेत् ।
स यत्तीनरकं घोरं ब्रह्महत्यां च विन्दति ॥१०॥

गङ्गा माहात्म्य वर्णन- २

व्यासजी ने कहा— हे विप्रेन्द्र ! मैं पुनः गङ्गाजी का उत्तम महात्म्य बतलाता हूँ। यदि तुम मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो गङ्गाजी की कथा रूपी अमृत का पान करो ॥१॥ जिस व्यक्ति की भक्ति भीष्मजी की माता गङ्गाजी में है, उसको सभी दानों को देने का, सभी यज्ञों के करने का, तथा भगवान् विष्णु की पूजा करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥२॥ जो कोई धर्म-कर्म गङ्गाजी में किए जाते हैं, हे जैमिने ! वे सभी कर्म अक्षय हो जाते हैं ॥३॥ गङ्गाजी के जल को ले जाते हुए जल को ले जाने वाले मनुष्य को देखकर भक्ति पूर्वक खड़ा हो जाने वाला व्यक्ति हजारों अश्वमेधों को करने का फल प्राप्त करता है ॥४॥ गङ्गा जल के सामने आ जाने पर जो भक्ति पूर्वक खड़ा नहीं हो जाता है उसको हे जैमिने ! सदा-सदा के लिए पशुत्व योनि में जन्म प्राप्त होतें हैं ॥५॥ गङ्गा जल को प्राप्त करके भक्ति पूर्वक जो नहीं ग्रहण करता है, उसके करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्य क्षण भर में ही नष्ट हो जाते हैं ॥६॥ हे द्विज ! गङ्गा तट पर जाने वाले मनुष्य को जो रोकता है वह अपने करोड़ों वंश के लोगों के साथ रौरव नरक में जाता है॥७॥ जो गङ्गाजी के तट पर मल अथवा मूत्र का त्याग करता है उसका करोड़ों सौ कल्पों तक उद्धार नहीं होता है ॥८॥ जो कफ अथवा थूक या दूषित अश्रुजल या मल, गङ्गाजी के तट में त्यागता है वह निश्चित रूप से नारकी होता है ॥९॥ जो गङ्गाजी के भीतर जूठा अथवा कफ फेंकता है वह ब्रह्महत्या को

गङ्गारोधसि यः पापं कुरुते मूढधीर्नरः। तदक्षयं भवेन्नूनं नान्यत्तीर्थेषु शाम्यति ॥११॥
अन्यतीर्थे कृतं पापं गङ्गायां च विनश्यति। गङ्गायां यत्कृतं पापं तत्कुत्राऽपि न शाम्यति ॥१२॥
तस्मात्पापं न कर्तव्यं गङ्गाया शास्त्रकोविदैः ।
कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः ॥१३॥
न ते देशा न ते शैला न च तानि वनानि च ।
पापविध्वंसिनी यत्र न तिष्ठेत्सुरनिम्नगा ॥१४॥
गङ्गातीरं परित्यज्य मुहूर्तमपि जैमिने !। न च स्थातव्यमन्यत्र यदि कार्यशतान्यपि॥१५॥
भिक्षान्नमपि भुत्तवा च स्थातव्यं जाह्नवीतटे ।
नचाऽन्यत्र क्षणमपि प्राप्य भूपालतामपि ॥१६॥
सन्त्यज्य देहं गङ्गायां ब्रह्महाऽपि विमुच्यते। अन्यत्र मुक्तये न स्यादश्वमेधसहस्रकृत्॥१७॥
गङ्गातीरे वसन्यस्तु हरिपूजापरोभवेत् । जन्मजन्मान्तरे येन कदाचिन्नार्चितो हरिः ॥१८॥
भक्तिर्भवति नैतस्य गङ्गायां लोकमातरि । श्रूयतां मानवाः सर्वे भूयो भूयो ब्रवीम्यहम् ॥१९॥
स्नानं विधाय गङ्गायां गम्यतां परमं पदम्। मृत्युकाले वदेद्यस्तु गङ्गागङ्गेति मानवः ॥२०॥
विमुक्तःपातकैः सर्वै र्दिवि देवयुगान्वसेत्। यस्य गङ्गाकथारम्भो मृत्युकाले भवेद्द्विज ! ॥२१॥
सगच्छेद्विष्णुभवनं गलिताखिलकल्मषः । यस्तु स्मरति वै प्राज्ञो मृत्युकाले द्विजोत्तम॥२२॥
गङ्गेति मुक्तिदं नाम तस्य तुष्टो भवेद्धरिः । मृत्युकाले भवेद्यस्तु गङ्गामृत्पुण्ड्रधारकः ॥२३॥
गङ्गास्नायिनमालोक्य त्यजेद्यस्तु कलेवरम् । श्मशानेऽपि द्विजश्रेष्ठ ! स गङ्गामरणं लभेत्॥२४॥

प्राप्त करके घोर नरक में जाता है ॥१०॥ जो मूर्ख मनुष्य गङ्गाजी के तट में पाप करता है, उसका पाप अक्षय हो जाता है वह दूसरे तीर्थों में भी शान्त नहीं होता है ॥११॥ दूसरे तीर्थों में किया गया पाप गङ्गाजी में विनष्ट हो जाता है किन्तु गङ्गाजी में जो पाप किया जाता है वह कहीं भी विनष्ट नहीं होता है॥१२॥ अतएव शास्त्रों को जानने वाले लोगों को कभी गङ्गा में पाप नहीं करना चाहिए । वहाँ पर मन वाणी तथा कर्म के द्वारा पुण्य ही करना चाहिए ॥१३॥ वे देश, पर्वत तथा बन ठीक नहीं हैं जहाँ पर पापों का विनाश करने वाली देवनदी गङ्गाजी नहीं हैं ॥१४॥ हे जैमिने ! यदि हजारों भी काम हों तो भी गङ्गा तट को छोड़कर अन्यत्र नहीं रहना चाहिए ॥१५॥ भिक्षान्न को भी खाकर गङ्गा तट में निवास करना चाहिए अन्यत्र राजा भी होकर क्षणभर भी नहीं रहना चाहिए ॥१६॥ गङ्गा तट में शरीर का त्याग करके ब्रह्मघाती भी मुक्त हो जाता है; किन्तु अन्यत्र वह हजारों अश्वमेधों को भी कराके मुक्त नहीं होता है ॥१७॥ गङ्गा तीर में रहते हुए श्रीहरि की पूजा करने में लगे रहना चाहिये । जो मनुष्य जन्म जन्मान्तरों में श्रीहरि की पूजा नहीं किए रहता है, उसकी लोकमाता गङ्गाजी में भक्ति नहीं होती हैं । हे मनुष्यों ! आप सभी लोग सुनें मैं बार-बार कहता हूँ ॥१८-१९॥ गङ्गाजी में स्नान करके आपलोग परम्पद को प्राप्त करें । जो मनुष्य मृत्यु के समय गङ्गाजी के नाम का उच्चारण करता है ॥२०॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर कई युगों तक स्वर्ग में निवास करता है ॥२१॥ सभी पापों को विनष्ट हो जाने से वह विष्णुलोक में निवास करता है । हे द्विजोत्तम ! जो पापी पुरुष मृत्यु के समय गङ्गाजी के नाम का स्मरण करता है ॥२२॥ जो मृत्यु के

तिष्ठन्त्यस्थीनिगङ्गायां यावत्कालंशरीरिणः। तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥२५॥

यस्य मज्जन्ति गङ्गायां भस्मास्थीनि नखानि च ।

शिरोरुहाण्यपि प्राज्ञः स विष्णोर्भवने वसेत् ॥२६॥

स्थितेष्वस्थिषु गङ्गायां यत्फलं लभते नरः। ब्रवीमि तत्फलं सर्वं शृणु नान्यमना द्विज !॥२७॥

एकदा भगवाञ्छक्रो नानालङ्कारभूषितः। क्रीडागृहं ययौ कामी युवत्या पद्मगन्धया ॥२८॥

पद्मगन्धा रसज्ञा सा सम्प्राप्तनवयौवना। नानारसप्रदानेन चकार सुरसम्प्रति ॥२९॥

सपत्न्याः स्वर्णपर्यङ्के तस्याः शिशुमृगीदृशः ।

प्रीतः पादतले जिष्णुरुवास स्मरमोहितः ॥३०॥

अथ तस्यै स्वयं शक्रोनिर्माय स्वर्णवीटिकाम् ।

ददाति परमप्रीतस्तद्गुणाकृष्टमानसः ॥३१॥

एतस्मिन्नेव काले तु पौलोमी वरसुन्दरी। भूषणैर्भूषिता सर्वैः स्वयं तद्गृहमाययौ॥३२॥

दृष्ट्वा तथाविधं शक्रं सर्वदेवाधिपं प्रभुम्। भृशं चुकोप पौलोमी प्रोहेति च सुलक्षणा ॥३३॥

शच्युवाच

देव किं कुरुषे कान्त ! त्वं समस्तसुराधिप ! ।

मम दासीस्वरूपायै ददासि स्वर्णवीटिकाम् ॥३४॥

स्पृशन्ति त्रिदशाःसर्वे शिरसा चरणौ तव। त्वं कथं पद्मगन्धाया दास्याःपादतले प्रभो ! ॥३५॥

समय गङ्गाजी की मिट्टी का पुण्ड्र लगाये रहता है, उसके ऊपर श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं गङ्गा यह नाम मुक्ति देने वाला है ॥२३॥ गङ्गाजी में स्नान करने वाले मनुष्य का दर्शन करके जो मनुष्य शमशान में भी अपने शरीर का त्याग करता है हे द्विजश्रेष्ठ ! वह गङ्गाजी में मरण का फल प्राप्त करता है ॥२४॥ शरीरधारी की हड्डियाँ जब तक गङ्गाजी में पड़ी रहती हैं वह उतने हजार कल्पों तक विष्णु लोक में निवास करता है ॥२५॥ जिसके शरीर के भस्म, अस्थियाँ तथा नख गङ्गाजी में पड़े रहती हैं अथवा केश भी, वह प्राज्ञ भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ॥२६॥ गङ्गाजी में अस्थियों के पड़े रहने से मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है हे द्विज ! उसे एकाग्रमना होकर सुनो मैं बतला रहा हूँ ॥२७॥ एक बार इन्द्र अनेक अलङ्कारों से अलंकृत होकर कामी होकर पद्मगन्धा युवती के साथ क्रीड़ागृह में गये ॥२८॥ वह पद्मगन्धा युवती एवं रस को जानने वाली पयी उसने अनेक प्रकार के आनन्दों को प्रदान करके इन्द्र को प्रसन्न की ॥२९॥ शिशु मृगी के समान नेत्रों वाली अपनी सौत के स्वर्ण पर्यङ्क पर काम मोहित विजयेक्षु इन्द्र प्रसन्न होकर उसके चरणों के नीचे रहते थे ॥३०॥ उसके गुणों से आकृष्ट मन वाले इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न होकर उसको स्वर्ण बीड़ा बनाकर उसको देते थे ॥३१॥ उसी समय श्रेष्ठ सुन्दरी शर्ची सभी भूषणों से भूषित होकर स्वयं उसके घर आयी ॥३२॥ सभी देवताओं के स्वामी इन्द्र को उस प्रकार से देखकर सुन्दर नेत्रों वाली शची अत्यन्त क्रुद्ध होकर कही ॥३३॥ **शची बोली—** हे कान्त ! हे देव ! हे सभी देवताओं के स्वामिन् ! मेरी दासी के समान इसको आप स्वर्ण वीटिका प्रदान करते हैं ?॥३४॥ सभी देवता आपके चरणों का स्पर्श शिर झुकाकर करते हैं । हे प्रभो ! आप इस दासी पद्मगन्धा के चरणों के

सुन्दरीकोटिभर्त्ता त्वं समस्तरसवित्प्रभो !। कथमेवंविधं कर्म करोष्यत्यन्तकुत्सितम्॥३६॥

निर्गुणे पद्मगन्धे ! हे दासि ! दूरं परिव्रज ।
त्वमीश्वरी च पर्यङ्के शक्रः पादतले तव ॥३७॥

व्यास उवाच

तया निर्भर्त्सिता साध्वी पौलोम्या बहुधा ततः ।
उवाच पद्मगन्धा सा क्रोधादितिवराङ्गना ॥३८॥

पद्मगन्धोवाच

गुणं च मम दोषं च स्वयं स्वाम्येव वेत्ति वै ।
केनाऽधिकारेणाऽऽगत्य त्वं मांनिन्दसि निर्गुणे !॥३९॥

अन्ये नेत्रद्वयेनाऽपि पश्यन्ति गुणदोषकौ । सहस्रनेत्रैरप्येष न पश्येत्किं दुराशये ! ॥४०॥

यथा दोषो हि लोकानां प्रचरेन्न गुणं तथा ।
आदौ कलङ्कश्चन्द्रस्य दृश्यते गुणवज्जनैः ॥४१॥

अनार्यभाषिणी क्रुरा कुमूर्तिर्गुणवर्जिता । यदाऽहं नास्मि गुणिनी भजतु त्वां तदा पतिः॥४२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा पद्मगन्या सा क्रोधात्कोकनदेक्षणा ।
उत्तस्थौ स्वर्णपर्यङ्कात्कुर्वन्ती करुणं महत् ॥४३॥

इन्द्र उवाच

प्रिये प्राणेश्वरि ! श्रेष्ठे ! मां विहाय क्व गच्छसि ।
मया किमपराद्धं ते मम तद्वद सुन्दरि ! ॥४४॥

नीचे हैं ॥३५॥ हे प्रभो ! आप करोड़ों सुन्दरियों के पति हैं तथा समस्त पापों को जानते हैं । आप इस अत्यन्त निन्दित कर्म को इस तरह से करते हैं ॥३६॥ हे निगुर्ण पद्मगन्धे ! हे दासि ! तुम दूर चली जाओ। शय्या पर तुम स्वामिनी हो और इन्द्र तुम्हारे चरणों के नीचे हैं ॥३७॥ **व्यासजी ने कहा—** वह साध्वी उस शची के द्वारा बहुत डाँटी गयी तदनतंर पद्मगन्धा भी क्रोध करके कही ॥३८॥ **पद्मगन्धा ने कहा—** मेरे गुणों तथा दोषों को स्वामी स्वयं जानते हैं हे निगुणे ! किस अधिकार के कारण मेरे घर में आकर मेरी निन्दा करती हो ?॥३९॥ दूसरे लोग दोनों नेत्रों से गुण तथा दोष को देखते हैं हे दुष्टे ! ये अपने हजार नेत्रों से भी उसे नहीं देखते हैं क्या ?॥४०॥ लोगों के दोष तथा गुण का जिस तरह से प्रसार न हो वैसे ही लोग चन्द्रमा के कलङ्क को गुण के समान देखते हैं ॥४१॥ अनर्थ बोलने वाली, क्रूर, कुत्सित शरीर वाली तथा गुण रहित शची यदि मैं गुणवती नहीं होती तो तुम्हारे पति तुम्हारे पास नहीं रहते?॥४२॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह कमल के समान नेत्रों वाली पद्मगन्धा इस तरह से क्रोध पूर्वक कहकर बहुत अधिक दुःखी होकर उस स्वर्ण पर्यङ्क पर से उठ गयी ॥४३॥ **इन्द्र ने कहा—** हे प्राणेश्वरि! हे प्रिये ! मुझको छोड़कर तुम कहाँ जा रही हो ? हे सुन्दरि ! मुझे तुम बतलाओं कि मैंने तुम्हारा कौन सा अपराध किया है ?॥४४॥ हे कान्ते ! मैं दास हूँ और मैं तुम्हारा दास कर्म करता हूँ । दास की पत्नी

कान्ते ! दासोऽस्म्यहं नूनं दासकर्म करोमि ते ।
दासपत्नी भवेद्दासी वाक्यं त्वं न शृणोषि किम् ॥४५॥
समुत्थाय ततः शक्रस्तन्मोहाकुलमानसः । अङ्के निवेशयामास भूयस्तां वरसुन्दरीम् ॥४६॥

शच्युवाच

क्रौञ्चि! त्वज्जीवनं धन्यं व्यर्थं मज्जीवनं ध्रुवम् ।
त्वं स्वामिसुभगा नित्यं दुर्भगाऽहं वराङ्गने ! ॥४७॥
यावत्पुण्यक्षयं क्रौञ्चि ! तत्पुण्यं यास्यते क्षयम् ।
क्रौञ्चिवंशसमुत्पन्ना दुःखं भूयोऽपि भोक्ष्यसि ॥४८॥
देवेन्द्रेण समं तावत्कुरु केलिं यथासुखम् । कियद्भिर्दिवसैः क्रौञ्चि ! न भवेत्तव निर्गुणे !॥४९॥
अत्यद्भुतं वचस्तस्याः पद्मगन्धा निशम्य सा ।
द्वन्द्वभाावम्परित्यज्य प्रणम्योवाच तां सतीम् ॥५०॥

पद्मगन्धोवाच

पुलोमजे ! वरारोहे ! चित्रमेतत्त्वयोदितम् । क्रौञ्ची कथमहं ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥५१॥
काऽहं कुत्र स्थिता चाऽपि कथमत्राऽऽगता सती ।
कालैः कियद्भिर्मत्पुण्यं क्षीणत्वं प्रतियास्यति ॥५२॥

शच्युवाच

पद्मगन्धे ! पुरा त्वं हि क्रौञ्चीपक्षिसमुद्भवा ।
अमेध्यमामिषं कीटान्भक्षयन्ती क्षितौ स्थिता ॥५३॥
न्यग्रोधतरुरेकोऽस्ति गङ्गातीरे मनोरमे । तत्र नीडं विनिर्माय भवत्या वसतिः कृता ॥५४॥
एकदा कृष्णसर्पेण तस्मिन्न्यग्रोधपादपे। नीडं प्रविश्य दष्टा त्वं सहसा पञ्चतां गता ॥५५॥

तो दासी ही होती है, इस मेरी बात को तुम नहीं सुनती हो क्या ?॥४५॥ उसके मोह से व्याकुल इन्द्र उठकर उस श्रेष्ठ सुन्दरी को अपनी गोद में बैठा लिए ॥४६॥ **शची ने कहा—** हे क्रौञ्ची ! तुम्हारा जीवन धन्य है और मेरा जीवन व्यर्थ है । हे वराङ्गने ! तुम मेरे स्वामी की सदा सुभगा हो और मैं दुर्भगा हूँ । हे क्रौञ्ची जब तक तुम्हारे पुण्य का क्षय नहीं होता है तब तक तुम हो । उसके बाद तुम क्रौञ्च वंश में उत्पन्न होकर दुःख ही भोगोगी ॥४७-४८॥ तब तक तुम इन्द्र के साथ सुखपूर्वक केलि करो । हे क्रौञ्चि! हे निर्गुणे ! कुछ ही दिनों तक तुम्हारा पुण्य रहेगा ॥४९॥ उसके अत्यन्त अद्भुत वाणी को सुनकर पद्मगन्धा झगड़े के भाव को त्यागकर उस सती शची को प्रणाम करके कही ॥५०॥ हे सती ! मैं कौन हूँ ? तथा कहाँ पर थी और मैं कैसे यहाँ आयी ? कितने दिनों में मेरे पुण्य का क्षय होयेगा ?॥५१-५२॥ **शची बोली—** हे पद्मगन्धे ! पूर्व जन्म में तुम क्रौञ्च पक्षी के वंश में उत्पन्न थी । अपवित्र मांस तथा कीड़ों को खाती हुयी पृथिवी पर स्थित थी ॥५३॥ गङ्गा के मनोहर तट पर एक वट वृक्ष था वहीं पर अपनी घोसला बनाकर तुम वहाँ पर निवास करती थी ॥५४॥ एक बार काला सर्प उस बट वृक्ष पर चढ़कर तुम्हारी घोसला में प्रवेश करके तुम्हें काट लिया और तुम मर गयी ॥५५॥ हे कल्याणि ! क्रुद्ध होकर उस

क्रव्याणि तव सर्वाणि स सर्पोऽभक्षयत्क्रुधा ।
स्थितानि तत्र वाऽस्थीनि निर्मांसानि वरानने ! ॥५६॥
कदाचित्पवनैर्भद्र ! महद्भिः स च पातितः ।
भग्नः पपात गङ्गायां समूलोऽपि वराङ्गने ! ॥५७॥
गङ्गायां पतिते तस्मिन्न्यग्रोधे धरणीरुहे। गङ्गाजलैःप्लावितानि तान्यस्थीनि तवोत्तमे !॥५८॥
यावदस्थीनि गङ्गायां तव तिष्ठन्ति तानि च ।
तावत्त्वं स्वामिसुभगा भविष्यसि सदैव हि ॥५९॥
इति ते कथितं सर्वं पद्मगन्धे ! मयाऽधुना ।
येन पुण्यप्रभावेण शक्रोऽपि वशगस्तव ॥६०॥
धन्या तु जाह्नवी देवी क्रौञ्ची यस्याः प्रसादतः ।
त्वमस्पृश्याऽपि चाण्डालैरङ्के स्वपिषि वज्रिणः ॥६१॥
तेनाऽपमानिता साध्वी शक्रेणाऽपि पुलोमजा ।
परिम्लानमुखाम्भोजा सा जगाम यथाऽऽगता ॥६२॥
शक्राङ्कएव सा तस्थौ पद्मगन्धा वराङ्गना। तद्वाक्यं हृदये तस्या जागरूकमिव स्थितम् ॥६३॥
अथैकदा सुराधीशः सुप्रीतस्तद्गुणैर्द्विज !। वरं वरय सुश्रोणि ! स्वयं तामित्युवाच ह ॥६४॥

पद्मगन्धोवाच

त्वं सर्वदेवताधीशो नारीकोटिपतिस्तथा। तथाऽप्यसि ममाधीनः स्वामिन्किमपरैर्वरैः ॥६५॥
तथापि त्वं वरं दित्सुर्दया नूनं सुरोत्तम !। कर्मणा मनसा वाचा प्रतिज्ञां कुरु मत्पुरः ॥६६॥

इन्द्र उवाच

जीवितञ्च धनञ्चैव राज्यञ्चैव परिच्छदम्। आज्ञापय किमेतद्वै तुभ्यं दास्यामि सुन्दरि !॥६७॥

सर्प ने तुम्हारा सब कुछ खा लिया । हे वरानने ! केवल मांस रहित तुम्हारी अस्थियाँ वहाँ पड़ी रहीं ॥५६॥ एक बार बहुत जोर से आँधी आयी और वह वट वृक्ष टूटकर मूल सहित गङ्गा में गिर पड़ा ॥५७॥ उस न्यग्रोध वृक्ष के गङ्गा में गिर जाने पर हे उत्तमे ! तुम्हारी अस्थियाँ गङ्गा में डूब गयीं ॥५८॥ जब तक तुम्हारी अस्थियाँ वहाँ पर रहेंगी तब तक तुम स्वामी की प्रियतमा बनी रहोगी ॥५९॥ हे पद्मगन्धे ! इस तरह से तुमको मैने सबकुछ बता दिया । उसी पुण्य के प्रभाव से इन्द्र भी तुम्हारे वशवर्ती हैं ॥६०॥ गङ्गा देवी धन्य हैं जिनके कृपा से क्रौञ्ची चाण्डालों के लिए भी अस्पृश्य होकर इन्द्र की गोद में सोती हो॥६१॥ इन्द्र के द्वारा भी अपमानित इन्द्राणी देवी मलिन मुख कमल वाली होकर जैसे आयी थीं वैसे ही चली गयी॥६२॥ वह वराङ्गना पद्मगन्धा इन्द्र की ही गोद में बैठी रही । किन्तु शची के वाक्य उसके हृदय में बने रहे ॥६३॥ हे द्विज ! उसके गुणों से प्रसन्न होकर एक बार उससे स्वयं इन्द्र कहे हे सुन्दरि ! तुम मुझसे वरदान माँगो ॥६४॥ **पद्मगन्धा ने कहा—** आप सभी देवताओं के स्वामी हैं तथा करोड़ों नारियों के पति भी हैं । तथापि हे स्वामिन् ! आप मेरे अधीन हैं दूसरे वरों से मुझे क्या मतलब है ॥६५॥ हे सुरोत्तम ! फिर भी यदि आप वरदान देना ही चाहते हैं तो आप मेरे सामने मन, वाणी और कर्म से प्रतिज्ञा

सत्यं सत्यं पुनःसत्यं सन्देहो नाऽत्रविद्यते । यद्दिच्छसि मृगीनेत्रे ! तत्तेदास्याम्यहं ध्रुवम् ॥६८॥

पद्मगन्धोवाच

नूनमेव प्रसन्नोऽसि यदि त्वं त्रिदशेश्वर !। जन्म मे हस्तियोनौ च भूयो देहीति मे वराम्॥६९॥

इन्द्र उवाच

कृतप्रतिज्ञः सुश्रोणि ! वरं तेऽहं ददामि वै ।
किन्तु दुःखानि यातानि बहूनि हृदये मम ॥७०॥

त्वामदृष्ट्वा वरारोहे प्रीतिर्न प्राप्यते क्षणम्। कथन्ते चिरविच्छेदं सोढुं शक्नोमि दुःसहम् ॥७१॥
यदामय्यनुकम्पाऽस्ति तव पीनपयोधरे ! । तदा कियद्दिनं तिष्ठ मया सह वराङ्गने ! ॥७२॥
तता` देवाधिराजस्य वदन्ती बहुसम्पदम् । वर्षाणामयुतं तस्थौ सा देवनिलये सती॥७३॥

पद्मगन्धोवाच

आज्ञां देहि सुराधीश ! साधितुं सुमनोरथम् ।
व्रजाम्यहं कर्मभूमिं वन्दे पादद्वयं तव ॥७४॥

इन्द्र उवाच

त्वत्प्रेमसिन्धुमानेन मया चन्द्रनिभानने !। स्थित्वा कतिदिनं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम्॥७५॥
ततस्तु कौतुकागारे तेन सार्धमहर्निशम् । क्रीडन्ती पद्मगन्धा सा तस्थौ वर्षायुतत्रयम्॥७६॥
सुराधीशं ततः सेति तदा प्राह मुदान्विता । आदेशं कुरु गच्छामि पृथिवीं प्रति सम्प्रति ॥७७॥

इन्द्र उवाच

जाड्यं जहीहि सुश्रोणि ! तिष्ठाऽत्रैव मया सह ।
त्वां त्यक्तुं नहि शक्नोमि प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥७८॥

करें ॥६६॥ **इन्द्र ने कहा—** मैं जीवन, धन, राज्य तथा परिच्छदों को भी दे दूँगा हे सुन्दरि ! तुम आज्ञा करो ॥६७॥ यह पूर्ण रूप से सत्य है, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । तुम इनमें से जो चाहो मैं दूँगा ॥६८॥ **पद्मगन्धा ने कहा—** हे त्रिदशेश्वर ! यदि आप निश्चित रूप से प्रसन्न हैं तो आप मेरा जन्म आप हाथी की योनि में दें ॥६९॥ **इन्द्र ने कहा—** हे सुन्दरि ! मैंने प्रतिज्ञा की है अतएव तुम्हें मैं यह वरदान दे रहा हूँ । फिर भी मेरे हृदय में बहुत दुःख हो गया है ॥७०॥ हे सुन्दरि ! तुम्हें देखे बिना क्षणभर भी मेरा मन नहीं लगता है । मैं तुम्हारा दीर्घकालिक वियोग कैसे वर्दास्त करूँगा ?॥७१॥ हे पीन पयोधरों वाली! यदि तुम्हारी मेरे ऊपर अनुकम्पा है तो हे वराङ्गने! तुम मेरे साथ कुछ दिनों तक रहो ॥७२॥ उसके बाद देवराज के बहुत सम्पत्ति का वर्णन करती हुयी वह देवी स्वर्ग में दश हजार वर्षों तक रही॥७३॥ **पद्मगन्धा ने कहा—** हे सुराधीश ! आप मेरे मनोरथ को सिद्ध करने के लिए मुझे आज्ञा दें । मैं कर्म भूमि में जा रही हूँ मैं आपके दोनों चरणों की वन्दना करती हूँ ॥७४॥ **इन्द्र ने कहा—** तुम्हारे प्रेम सागर में मग्न मेरे साथ हे चन्द्र मुखी ! तुम कुछ दिन तक रहकर अपनी इच्छानुसार चली जाना ॥७५॥ उसके बाद कौतुक गृह में इन्द्र के साथ रात-दिन क्रीड़ा करती हुयी वह पद्मगन्धा तीस हजार वर्ष तक रही ॥७६॥ उसके बाद प्रसन्न होकर वह इन्द्र से कही । आप आदेश दें इस समय मैं पृथिवी पर जा रही हूँ ॥७७॥

पद्मगन्धोवाच

पुण्यक्षये सुराधीश ! यदा यास्याम्यहं भुवम् ।
तदाचिरन्तो विच्छेदो भविष्यति मया सह ॥७९॥
इच्छाम्यहं गन्तुमद्य पुण्योपार्जनहेतवे। कर्मभूमिमहं गत्वा येनोपायेन वासव !॥८०॥
तत्करिष्यामि विच्छेदः कदाचित्स्यात्त्वया न मे ॥८१॥

इन्द्र उवाच

भद्रे ! त्वया यदा नूनं कर्मेदं कर्त्तुमिच्छितम् ।
तदागच्छ पुनःशीघ्रमागमिष्यसि सुन्दरि ! ॥८२॥
सहस्रनेत्रविगलद्‌बाष्पसिक्ततनुस्ततः ।
दोर्भ्यामालिङ्ग्य तां शक्रो गच्छेत्याह प्रिये ! वदन् ॥८३॥
तदादेशात्ततः साध्वी कर्मभूमिं समागता । जाता चहस्तिनी योनौभूत्वाजातिस्मरा द्विज ! ॥८४॥
स्मरन्ती निजवृत्तान्तं सा कियद्भिर्दिनैस्ततः । जगाम जाह्नवीतीरंहस्तियोनिसुसम्भवा ॥८५॥
गङ्गायां स्नानमासाद्य गङ्गाकर्दमभूषिता। गङ्गागङ्गेति जल्पन्ती ह्रदं निम्नं विवेश सा ॥८६॥
तस्मिन्गङ्गाह्रदे गत्वा स्तिनीपर्वताकृतिः । निजां जातिंस्मरन्ती सा जगाम पञ्चतांपुनः ॥८७॥
तस्याः साहसमालोक्य हस्तिनीं सर्वदेवताः ।
ववर्षुः पारिजाताद्यैः कुसुमैरुत्तमैर्मुदा ॥८८॥
तामानेतुं ततः शक्रः सर्वदेवगणैर्वृतः । वेगात्तच्चिरविच्छेदात्कृष्णाङ्गी सुमना ययौ ॥८९॥
पुष्पके तां समालोक्य दिव्यदेहां सुराधिपः ।
कथयन्निजदुःखानि निजावासं जगाम ह ॥९०॥

इन्द्र ने कहा— तुम अपनी जड़ता छोड़ दो और यहीं मेरे साथ रहो । प्राणों से भी प्रिय तुमको मैं नहीं छोड़ सकता हूँ । **पद्मगन्धा ने कहा—** हे सुराधीश ! पुण्य का क्षय हो जाने पर जब मैं पृथिवी पर जाऊँगी तो आपका दीर्घकालिक वियोग होगा ॥७८-७९॥ आज मैं पुण्योपार्जन के लिए जाना चाहती हूँ । हे इन्द्र! कर्म भूमि में जाकर जिस उपाय से ॥८०॥ आपका मुझे कभी वियोग न हो इस तरह का कार्य करूँगी ॥८१॥ **इन्द्र ने कहा—** हे भद्रे ! यदि तुम इस कार्य को निश्चित रूप से करना चाहती हो तो तुम पुनः शीघ्र ही आना ॥८२॥ हजारो आँखों से निकलते हुए आँसुओं की विन्दु से सारा शरीर भिंगे हुए इन्द्र अपनी दोनों भुजाओं से उसका आलिङ्गन करके कहे हे प्रिये ! तुम जाओ ॥८३॥ इन्द्र के आदेश से वह साध्वी कर्म भूमि में आयी । हे द्विज ! वह जातिस्मरा होकर पुनः हाथी के योनि में उत्पन्न हुयी ॥८४॥ अपने वृत्तान्त का स्मरण करती हुयी वह कुछ दिनों में हाथी की योनि में उत्पन्न वह गङ्गा तट पर चली गयी ॥८५॥ गङ्गाजी में स्नान करके गङ्गा के कीचड़ से अलंकृत वह गङ्गा गङ्गा इस तरह से स्मरण करती हुयी गहरे ह्रद में प्रवेश कर गयी ॥८६॥ गङ्गा के उस ह्रद में जाकर पर्वत के समान आकार वाली वह हस्तिनी अपने पूर्व जन्म का स्मरण करती हुयी मर गयी ॥८७॥ उस हस्तिनी के साहस को देखकर सभी देवता प्रसन्न होकर उसके उपर पुष्पों की वर्षा किए ॥८८॥ उसको लाने के लिए देव समूह के साथ इन्द्र के दीर्घ कालिक वियोग के बाद इन्द्र गये और वह यह काले शरीर वाली प्रसन्नता पूर्वक गयी ॥८९॥ उसको पुष्पक विमन पर देखकर उस

पुलोमजा च रम्भा च प्रम्लोचा चोर्वशी तथा ।
सुन्दर्योऽन्याश्च युवतीस्तस्यास्त्यक्त्वा मुदा गताः ॥९१॥
शक्रस्य हृदयोत्साहं तन्वन्ती सा वराङ्गना । पुरन्दरपुरे तस्थौ सुभगा प्रीतिवल्लभा॥९२॥
यस्यास्तिष्ठन्ति गङ्गायां यावदस्थीनिजैमिने ! ।
कुलकोटिशतं तावत्तस्यावासस्सुरालये ॥९३॥
राजानो दिवि राज्येषु ये ये भूतास्तपोबलात् ।
तेषां तेषां स्नेहभूमिर्भवत्यमरसुन्दरी ॥९४॥
गङ्गास्थिमज्जनादेव जैमिने ! फलमीदृशम् । गङ्गायां त्यजतो देहं फलं वक्तुं न शक्यते ॥९५॥
मृतं शरीरं गङ्गायां यावदस्थीनि जैमिने ! । कल्पकोटिशतं तावत्तस्यावासः सुरालये ॥९६॥
मृतं शरीरं गङ्गायां स्रोतोभिश्चलितं द्विज ! ।
दृश्यते देहिनस्तस्य तत्फलं श्रृणु जैमिने ! ॥९७॥
स्वर्गे देवाङ्गनात्रस्तचारुचामरवायुभिः । वीजितः स्वर्णपर्यङ्के सुप्तस्तिष्ठति कौतुकी ॥९८॥
जाह्नवीसैकते यस्य शरीरं दृश्यते मृतम् । दिवाकरकरैस्तप्तं फलं तस्य वदाम्यहम्॥९९।
सुगन्धैश्चन्दनैर्दिव्यैर्लिप्तसर्वकलेवरः । दिव्याङ्गनाभिः सहितो दिवि क्रीडति सर्वदा॥१००॥
काकैर्गृध्रैश्च कङ्कैश्च शकुन्तैर्भीष्ममातरि । वपुर्विदलितं यस्य दृश्यते तत्फलं श्रृणु ॥१०१॥
दिवि दिव्याङ्गनापीनप्रोत्तुङ्गरुचिरस्तनैः। श्लिष्टवक्षाश्च पर्यङ्के निद्राति नित्यमेव सः॥१०२॥
पिपीलिकावेष्टितानि माक्षिकाभिश्च कीटकैः ।
गङ्गायां यस्य दृश्यन्ते अस्थीनि पतितानि च ॥१०३॥

दिव्य शरीर वाली को इन्द्र ने अपना दुःख बतलाते हुए अपने आवास पर गये ॥९०॥ शची, रम्भा, प्रम्लोचा, उर्वशी, तथा दूसरी सुन्दरियाँ उसको छोड़कर प्रसन्नता पूर्वक चली गयों ॥९१॥ इन्द्र के हृदय के उत्साह को बढ़ाती हुयी वह श्रेष्ठ सुन्दरी प्रेम पूर्वक इन्द्र के नगर में निवास की ॥९२॥ हे जैमिने ! जिसकी अस्थियाँ जितने समय तक गङ्गा में रहती हैं वह अपने वंश के करोड़ों लोगों के साथ स्वर्ग में निवास करता है ॥९३॥ जो राजा अपनी तपस्या के बल से स्वर्ग में गये उन सबों के स्नेह का पात्र वह देव सुन्दरी हो गयी ॥९४॥ हे जैमिने ! गङ्गा में अस्थियों के डुबाने का यह फल है । गङ्गा में अपने शरीर का त्याग करने वालों को प्राप्त होने वाले फल का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥९५॥ शरीर की अस्थियाँ जब तक गङ्गा में रहती हैं । उतने करोड़ कल्पों तक उसका स्वर्ग में निवास होता है ॥९६॥ हे द्विज अपना शरीर धाराओं से बहते हुए देखने वाले को होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ । हे जैमिने! उसे तुम सुनो ॥९७॥ स्वर्ग में देवस्त्रियों के सुन्दर चामरों की वायु से हवा किया गया वह कौतुकी सुवर्ण पलङ्ग पर सोता है ॥९८॥ जिसका मृत शरीर बालू में पड़ा हुआ दिखायी देता हैं तथा जो सूर्य की किरणों से तप्त होता है ॥९९॥ सुगन्धित दिव्य चन्दन से लिप्त सम्पूर्ण शरीर वाला वह स्वर्ग में दिव्याङ्गनाओं के साथ क्रीडा करता है ॥१००॥ गङ्गाजी में कौए गृध्र तथा कङ्क नामक पक्षियों के द्वारा नोचा गया शरीर जिसका दिखायी पड़ता है, उसको प्राप्त होने वाले फल को सुनो ॥१०१॥ स्वर्ग में पीन तथा उन्नत

तस्याऽक्षयं फलं विप्र ! वदतो मे निशामय ।
प्रणमत्त्रिदशव्यूहशिरोमुकुटभूषणैः ॥१०४॥
हतपादरजाः स्वर्गे स च शक्रायते चिरम्। अनिच्छयाऽपि गङ्गायां यद्देहपतनं भवेत् ॥१०५॥
स विमुक्तोऽखिलैःपापैर्नरो नारायणो भवेत् ।
यस्याङ्गाराश्चदृश्यन्ते गङ्गायां चलिता जलैः ॥१०६॥
अङ्गारसङ्ख्यया स्वर्गे तिष्ठेत्कल्पशताधिकम् ।
सर्वेषामेव पुण्यानां कदाचित्क्षयईक्ष्यते ॥१०७॥
गङ्गायां पतिते देहे भवेत्पुण्यक्षयो नहि। बहुनाऽत्र किमुक्तेन निश्चितं कथ्यतेऽधुना ॥१०८॥
गङ्गायां त्यक्तदेहस्य महिमा ज्ञायते नहि ॥१०९॥
विषमदुरितराशिनाशि गाङ्गं स्पृशति नरो भुवि भक्तितो जलं यः ।
जगदुदधिजलं विलङ्घ्य घोरं व्रजति स पारमपारतुष्टिनावा ॥११०॥
इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
गङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

पयोधरों वाली दिव्य अङ्गनाओं से सटे हुए वक्षःस्थल वाला वह सदा उन सबों के साथ सोता है ॥१०२॥ जिसमें चीटिंयाँ लग गयी हों तथा मखियों से तथा कीड़ों से व्याप्त जिसका मृत शरीर गङ्गा में दिखता है तथा उसकी अस्थियाँ गङ्गा में पड़ी रहती हैं ॥१०३॥ हे विप्र ! उसको प्राप्त होने वाले अक्षय फल को मैं बतलता हूँ सुनो । देवतागण अपने मुकुट के भूषणों से उसको प्रणाम करते हैं ॥१०४॥ उसके चरणों से उड़ी हुयी धूलि वाला वह दीर्घ काल तक स्वर्ग में इन्द्र बना रहता है । बिना इच्छा के भी जिसका शरीर गङ्गा में छूट जाता है । जिसके अङ्गार गङ्गा में बहते हुए दिखते हैं ॥१०५-१०६॥ जितने अङ्गारों की संख्या होती है, उतने सौ कल्पों तक वह स्वर्ग में रहता है । सभी पुण्यों का कभी न कभी क्षय होता ही है किन्तु॥१०७॥ गङ्गा में जिसका शरीरपात हो जाता है, उसके पुण्य का क्षय नहीं होता है बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है मैं निश्चित करके कहता हूँ ॥१०८॥ जो गङ्गाजी में शरीर का त्याग करता है उसकी महिमा नहीं ज्ञात होती है ॥१०९॥ जो मनुष्य संसार में भक्ति पूर्वक विषम पापों का नाश करने वाले गङ्गा के जल का स्पर्श करता है वह भयङ्कर संसार सागर के जल को पार करके अपार तुष्टि रूपी नाव के द्वारा संसार के पार चला जाता है ॥११०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के क्रियायोग सार खण्ड के गङ्गा महात्म्य वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

नवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच

भूय एव गुरो ! ब्रूहि गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। गङ्गाकथामृतं पातुं माधुर्यात्पुनरिष्यते ॥१॥

व्यास उवाच

तदप्यहं ब्रवीमित्वागङ्गाभक्तो यतो भवान्। तौ पादौसफलौ नृणां जाह्नवीतटगामिनौ॥२॥
गङ्गाकल्लोलनिनदश्राविणौ श्रवणौ च तौ। सा जिह्वा या च जानातिखादुभेदंतदम्भसः॥३॥
ते नेत्रे जाह्नवीचारुतरङ्गदर्शने च ये। तल्ललाटमिति प्रोक्तं गङ्गामृत्पुण्ड्रधारि यत्॥४॥
तौ हस्तौ जाह्नवीतीरे हरिपूजापरायणौ। शरीरं सफलं तच्च विमले जाह्नवीजले॥५॥
पतितं यद्द्विजश्रेष्ठ ! चतुर्वर्गफलप्रदे। स्वर्गस्थाः पितरः सर्वे गच्छन्तो जाह्नवीतटे ॥६॥
सन्दृश्य हृष्टाः शंसन्ति वदन्तइतिजैमिने !। तत्पुण्यं कृतमस्माभिः सद्गतिप्राप्तये पुरा॥७॥
भविष्यत्यक्षयं तच्च यतःपुत्रोऽयमीदृशः। अनेन गाङ्गैः सलिलैर्वयं सम्प्रति तर्पिताः ॥८॥
यास्यामः परमं धाम दुर्लभं यत्सुरैरपि। गङ्गायां यानि द्रव्याणि दास्यत्यस्माकमात्मजः ॥९॥

अस्मभ्यं तानि सर्वाणि भविष्यन्त्यक्षयाणि वै।
नरकस्थाश्चपितरःसर्वदुःखसमन्विताः ॥१०॥

वदन्तीति सुतं दृष्ट्वा गच्छन्तं जाह्नवीतटम्। कृतानि यानि पापानि नरकक्लेशदानि वै ॥११॥

यास्यन्ति संक्षयं तानि पुत्रस्याऽपि प्रसादतः।
विमुक्ता नरकक्लेशैर्वयं सर्वे सुदुःसहैः ॥१२॥

गङ्गा माहात्म्य- ३

जैमिनि महर्षि ने कहा— हे गुरो ! आप पुनः गङ्गा माहात्म्य का वर्णन करें। गङ्गा की कथा रूपी अमृत का पान करने के लिए मेरा पुनः चाहता है ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** चूकि आप गङ्गाजी के भक्त हैं अतएव उसे भी मैं कह रहा हूँ। गङ्गा तट पर जाने वाले ही मनुष्यों के चरण सफल हैं ॥२॥ गङ्गाजी की लहरियों की ध्वनि को सुनने वाले कान धन्य हैं। वही जिह्वा सफल हैं जो गङ्गा जल में होने ाली स्वाद की भिन्नता को जानती हैं ॥३॥ गङ्गाजी के तरङ्ग का दर्शन करने वाले नेत्र सफल हैं। वही ललाट सफल हैं जिस पर गङ्गाजी की मिट्टी का पुण्ड्र लगा रहता है ॥४॥ वे ही हाथ सफल हैं जो सदा श्रीहरि की पूजा करने में लगे रहते हैं। वह शरीर भी सफल है जो गङ्गाजी के विमल जल में ॥५॥ व्यक्त होता है। क्योंकि वह जल चारो प्रकार के पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है। स्वर्ग में रहने वाले पितृगण जाते हुए मनुष्य को देखकर प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। इसके द्वारा किया गया पुण्य हमलोगों की सद्गति का कारण हुआ ॥६-७॥ वह पुण्य अक्षय इसलिए हो जायेगा कि यह पुत्र इस प्रकार का है। इसने गङ्गाजी के स्वच्छ जल से हमलोगों का तपर्ण किया है ॥८॥ हमलोग देवताओं को भी दुर्लभ परम धाम में जायेंगे। हमलोगों का आत्मज गङ्गाजी में जिन द्रव्यों का दान करेगा ॥९॥ वे सब हमसबों के लिए अक्षय हो जायेंगे ॥१०॥ जाह्नवी तट पर जाते हुए पुत्र को देखकर इसी तरह से वे कहते हैं। नरक का क्लेश देने वाले जो पाप किए गये हैं ॥११॥ वे सबके सब पुत्र की कृपा से विनष्ट हो जायेंगे। हमलोग

अथ पुत्रप्रसादेन यास्यामः परमां गतिम् । यात्रां विधाय यो मर्त्यो गृहं मोहान्निवर्तते ॥१३॥
निराशाः पितरस्तस्य यान्ति सर्वे यथागताः ।
आमिषं मैथुनं चैव दोलामश्वं गजन्तथा ॥१४॥
उपानहं चाऽऽतपत्रं गङ्गायात्रासु वर्जयेत् । अध्वश्रमोद्भवं दुःखं दुष्करं नहि मन्यते ॥१५॥
गृहे पद्मसुखं तत्र गङ्गास्नाने स्मरेन्न च । असत्यभाषणं चैव पाखण्डसङ्गमेव च॥१६॥
द्विर्भोजनं च कलहं गङ्गायात्रासु वर्जयेत् । परनिन्दां च लोभं च गर्वं च क्रोधमत्सरौ॥१७॥
अत्यन्तहास्यं शोकं च गङ्गायात्रासु वर्जयेत् ।
मञ्चसुप्तमिवाऽऽत्मानं चिन्त्येद्भूमिशायिनम् ॥१८॥
गङ्गानामसुनामानि वदेद्गच्छञ्जनः पथि । माहात्म्यं जाह्नवीदेव्याः सर्वपापप्रणाशनम् ॥१९॥
सुखदं मोक्षदं चैव कथयन्पथि गच्छति। गङ्गे देवि ! जगन्मातर्देहि सन्दर्शनं मम ॥२०॥
वचोभिः कोमलैरेभिः कुर्याच्छ्रमनिवारणम् ।
हा कथं सदनं त्यक्तमागतम्वाकथं मया ॥२१॥
श्रमैरितिवदेद्यस्तु सम्पूर्णं तत्फलं नहि ।
क्व पर्यङ्कः क्व मे पत्नी क्व च मे च सुहृदगृहम् ॥२२॥
स्वपिमि प्रान्तरे भूमौ कथं वाऽहं समागतः ।
धनधान्यादिवस्तूनां का गतिर्वा गृहे मम ॥२३॥
कियद्भिर्दिवसैर्भूयो गमिष्यम्यहमालयम् । इतिचिन्ताकुला ये च पथि गच्छन्ति मानवाः॥२४॥

असह्य नरक के क्लेश से छूट कर ॥१२॥ पुत्र की कृपा से परमा गति को प्राप्त कर लेंगे । जो मनुष्य गङ्गा तट की यात्रा से लौटकर अज्ञानवशात् अपने घर चला जाता है ॥१३॥ उसके सभी पितृगण निराश होकर जैसे आते हैं उसी तरह से लौट जाते हैं । मांस, मैथुन, दोला, अश्व, हाथी जूता तथा छाता का प्रयोग गङ्गाजी की यात्रा में न करे ॥ उसे मार्ग से उत्पन्न श्रम को दुष्कर दुःख नहीं मानना चाहिए ॥१४-१५॥ घर में होने वाले परम सुख को वह गङ्गा स्नान के समय नहीं स्मरण करे । उसे असत्य भाषण करने वाले तथा पाखण्डियों की सङ्गति को भी त्याग देना चाहिए ॥१६॥ गङ्गाजी की यात्रा में दो बार भोजन तथा कलह को त्याग देना चाहिए । दूसरे की निन्दा, लोभ, गर्व, क्रोध तथा इर्ष्या को भी त्याग दे ॥१७॥ गङ्गाजी की यात्रा में अत्यन्त हँसी तथा शोक को भी छोड़ देना चाहिए । भूमि पर सोते हुए उसे अपने को खाट पर सोये हुए के समान अनुभव करना चाहिए ॥१८॥ चलते हुए मनुष्य को गङ्गाजी के नामों का कीर्तन करना चाहिए । गङ्गा देवी का माहात्म्य सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥१९॥ वह सुख तथा मोक्ष प्रदान करने वाले माहात्म्य को रास्ते में कहते हुए जाना चाहिए । हे गङ्गे देवि ! जगन्मातः आप मुझे दर्शन दें ॥२०॥ इन कोमल वचनों से ही श्रम को दूर करें । अरे मैंने क्यों घर त्याग दिया ? और मैं क्यों आया ?॥२१॥ इस तरह से कहने वाले को यात्रा का सम्पूर्ण फल नहीं मिलता है । कहाँ पलङ्ग है, कहाँ मेरी पत्नी हैं ? कहाँ मेरे मित्र का घर है ?॥२२॥ मैं प्रान्तर भूमि पर कैसे सोऊँ ? मैं क्यों चला आया ? । मेरे घर में धन धान्य आदि वस्तुओं की कौन सी गति होगी ?॥२३॥ मैं पुनः कितने

गङ्गास्नानफलं तेषां सम्पूर्णं न भवेद्द्विज ! ॥२५॥
गङ्गे गन्तुं प्रतीतीरे यात्रेयं विहिता तव । निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोमि त्वत्प्रसादात्सरिद्वरे ! ॥२६॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य यात्राकाले विशेषतः । हर्षितो निलयाद्गच्छेद्वैष्णवैः सह जैमिने ! ॥२७॥
नाऽतिवेगेन गन्तव्यं न तथा च शनैःशनैः । गङ्गायात्रासु कर्त्तव्यं नान्यत्कर्मविचक्षणैः ॥२८॥
गङ्गातीरे प्रयागे तु वाणिज्यप्रमुखानि च । कार्याणि कुरुते यस्तु तत्पुण्यार्धंविनश्यति ॥२९॥
जन्मजन्मार्जितं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
गङ्गादेवीप्रसादेन सर्वं मे यास्यति क्षयम् ॥३०॥
इत्युक्त्वा परमप्रीतः प्राज्ञो गङ्गातटं व्रजेत् । दृष्ट्वा च मातरं गङ्गामिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥३१॥
अद्यमे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपां त्वांपश्यमितिचक्षुषा ॥३२॥
देवि ! त्वद्दर्शनादेव महापातकिनो मम । विनष्टमभवत्पापं जन्मकोटिसमुद्भवम् ॥३३॥
इत्युक्त्वा सकलं देहं निपात्य पृथिवीतले । प्रणमेज्जाह्नवीं देवीं भक्तिभावसमन्वितः ॥३४॥
ततः स्रोतःसमीपे च बद्धाञ्जलिरिमं पुनः । पठेन्मन्त्रं भक्तिभावैः सुप्रीतो द्विजसत्तम ! ॥३५॥
गङ्गेदेवि जगद्धात्रि ! पादाभ्यां सलिलन्तव ।
स्पृशामीत्यपराधं मे प्रसन्ना क्षन्तुमर्हसि ॥३६॥
स्वर्गारोहणसोपानं त्वदीयमुदकंशुभे ! । अतः स्पृशामि पादाभ्यां गङ्गेदेवि ! नमो नमः॥३७॥

दिनों में अपने घर जाऊँगा ? इस प्रकार की चिन्ता से व्याकुल होकर जो लोग रास्ते में जाते हैं ॥२४॥ हे द्विज उन लोगों को गङ्गा स्नान का सम्पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता है ॥२५॥ हे गङ्गे! तुम्हारे तीर में जाने के लिए यह यात्रा मैंने की है । हे सरिताओं में श्रेष्ठ ! तुम्हारी ही कृपा से मैं निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त करूँगा ॥२६॥ यात्रा के समय विशेष रूप से इस मन्त्र का उच्चारण करके हे जैमिने ! घर से प्रसन्न होकर वैष्णवों के साथ जाना चाहिए ॥२७॥ न तो अत्यन्त वेग से जाना चाहिए और न तो अत्यन्त धीरे-धीरे जाना चाहिए । निपुण मनुष्यों को गङ्गाजी की यात्रा में कोई दूसरा काम नहीं करना चाहिए ॥२८॥ प्रयाग में जाकर गङ्गाजी के तट पर वाणिज्य आदि कर्मों को जो करता है उसका आधा पुण्य विनष्ट हो जाता है ॥२९॥ जन्म जन्मान्तरों में अर्जित पाप चाहें अन्यन्त थोड़ा हो या अधिक हो । वह गङ्गा देवी की कृपा से सबके सब विनष्ट हो जाता है ॥३०॥ इस तरह से कहकर प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह अत्यन्त प्रेम के साथ गङ्गा तट पर जाय । गङ्गा माता को वह इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥३१॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया और जीवन भी सुजीवन हो गया । क्योंकि स्वयं मैं अपने नेत्रों से ब्रह्म स्वरूपा आपका दर्शन कर रहा हूँ ॥३२॥ हे देवि ! महापातकी मेरा आपके दर्शन से ही मेरे करोड़ों जन्म के पाप विनष्ट हो गये ॥३३॥ इस तरह से कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे और भक्ति भाव से जाह्नवी देवी को प्रणाम करे॥३४॥ फिर धारा के समीप जाकर इस मन्त्र का उच्चारण हाथ जोड़कर करे । हे द्विज श्रेष्ठ ! वह मन्त्र को भक्ति भाव से परान्त्रता पूर्वक पढ़े ॥३५॥ हे जगन्मातः गङ्गे देवि ! अपने दोनों चरणों से जो स्पर्श करता हूँ इस अपराध को आप प्रसन्न होकर क्षमा करें ॥३६॥ हे शुभे ! आपका जल स्वर्गारोहण के लिए सोपान है । अतएव ही मैं उसका स्पर्श अपने चरणों से कर रहा हूँ हे गङ्गे देवि ! आपको बारम्बार

ततस्तु मस्तके धृत्वा गाङ्गेयं वारि भक्तितः ।
स्नानार्थं प्रविशेत्स्रोतः प्राज्ञो गङ्गेति कीर्तयन् ॥३८॥
त्वत्कर्दमैरतिस्निग्धैः सर्वपापप्रणाशनैः। मया संलिप्यते गात्रं मातर्मे हर पातकम्॥३९॥
गङ्गाकर्दमलिप्ताङ्गो गङ्गागङ्गेति कीर्तयन्। सर्वकल्मषनाशिन्यां गङ्गायां स्नानमाचरेत्॥४०॥
भूयःपूर्वोक्तमन्त्रेण गृहीत्वा मृत्तिकां ततः। वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण गृहीत्वामृत्तिकांपुनः ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण भक्तितः स्नानमाचरेत् ॥४१॥
ब्रह्मस्वरूपे हे गङ्गे ! स्नानमाचर्यते मया। त्वदीये निर्मले तोये यथोक्तफलदा भव ॥४२॥
ततो निजेच्छया विप्र ! गङ्गायां लोकमातरि ।
स्नानं समाचरेत्प्राज्ञो गङ्गां नारायणं स्मरन् ॥४३॥
एवं स्नात्वा तु गङ्गायां गात्रं वस्त्रेण मार्जयेत् ।
परिधेयाम्बराम्बूनि गङ्गास्त्रोतसि न त्यजेत् ॥४४॥
न दन्तधावनं कुर्यादृङ्गागर्भे विचक्षणः। कुर्याच्चेन्मोहतः पुण्यं न गङ्गास्नानजं लभेत् ॥४५॥
प्रभातेऽन्यत्र तां कृत्वादन्तकाष्ठादिकक्रियाम्। रात्रिवासं परित्यज्य गङ्गायां स्नानमाचरेत् ॥४६॥
बाह्यभूमिमगत्वा यो गङ्गायां स्नानमाचरेत्। गङ्गास्नानफलं सोऽपि सम्पूर्णंच लभेन्नहि ॥४७॥
स्नात्वा च गङ्गामृत्पुण्ड्रं स्थाने स्थाने नयेद्बुधः ।
ततः स्थिरमनाः कुर्याद्विधिना तर्पणादिकम् ॥४८॥
गाङ्गेयैरुदकैर्यस्तु कुरुते पितृतर्पणम्। पितरस्तस्य तृप्यन्ति वर्षकोटिशतावधि॥४९॥

नमस्कार है ॥३७॥ उसके बाद भक्ति पूर्वक गङ्गा जल को भक्ति पूर्वक अपने मस्तक पर धारण करके प्राज्ञ पुरुष स्रोत में स्नान करने के लिए गङ्गे-गङ्गे इस नाम को बोलते हुए प्रवेश करे ॥३८॥ फिर कहे अपके अत्यन्त चिकनी मिट्टी को मैं अपने शरीर में लगा रहा हूँ आप मेरे पापों को हर लें ॥३९॥ इस मन्त्र से गङ्गाजी की मिट्टी को शरीर में लगाये हुए गङ्गे-गङ्गे इस तरह से बोलते हुए सभी पापों का नाश करने वाली गङ्गाजी में स्नान करें ॥४०॥ उसके बाद फिर कहे जाने वाले मन्त्र से मिट्टी को लेकर कहे जाने वाले मन्त्र से भक्ति पूर्वक स्नान करे ॥४१॥ हे ब्रह्म स्वरूपिणि गङ्गे मैं तुम्हारे निर्मल जल में स्नान करता हूँ मुझे यथोक्त फल प्रदान करें ॥४२॥ हे विप्र ! उसके पश्चात् अपनी इच्छा से प्राज्ञ लोकमाता गङ्गाजी में स्नान करे गङ्गाजी तथा भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए स्नान करे ॥४३॥ इस तरह गङ्गाजी में स्नान करके वस्त्र से अपने शरीर को पोंछे । वस्त्र धारण करके तथा जल लेकर उसे गङ्गाजी में न छोड़े ॥४४॥ वह गङ्गाजी के भीतर दतौन न करे यदि अज्ञान वशात् ऐसा कर दे तो उसको स्नान का फल नहीं मिलता है ॥४५॥ प्रातः काल अन्यत्र दन्तधावन क्रिया को करके रात के वस्त्र को छोड़कर गङ्गा में स्नान करे ॥४६॥ बाहर की भूमि में गये बिना जो गङ्गाजी में स्नान करता है वह भी गङ्गा स्नान के सम्पूर्ण फल को नहीं प्राप्त करता है ॥४७॥ स्नान करके गङ्गाजी की मिट्टी में स्थान-स्थान पर मिट्टी का पुण्ड्र लगाये । उसके पश्चात् स्थिर मन वाला होकर तर्पण आदि करे ॥४८॥ जो गङ्गाजी के जल से पितरों का तर्पण करता है उसके पितृगण करोड़ सो वर्ष तक तृप्त रहते हैं ॥४९॥ हे द्विजोत्तम ! जो

गङ्गायां कुरुते यस्तु पितृश्राद्धं द्विजोतम !। पितरस्तस्य तिष्ठन्ति सन्तुष्टास्त्रिदशालये ॥५०॥
समाप्य स्नानकर्माणि गङ्गायां समुपोषितः। दानं देवार्चनं चैव जपोऽन्याश्चक्रियास्तथा ॥५१॥
कृतास्तुयास्तु गङ्गायां क्षयस्तासां न विद्यते। समाप्यस्नानकर्माणि गङ्गायां समुपोषितः ॥५२॥
कृतपञ्चमहायज्ञो गङ्गापूजां समाचरेत्। गङ्गायाःप्रतिमां देव्याः श्रीविष्णोःप्रतिमां तथा॥५३॥
नालिकेरोदकैर्दिव्यैः स्नापयेद्भक्तितो बुधः। जाह्नवीप्रतिमाभावे नालिकेरोदकानि वै ॥५४॥
निक्षिपेज्जाह्नवीतोये जाह्नवीं हृदि संस्मरन्। दिव्यैर्गन्धैश्च दीपैश्च घृतपूर्णसमुज्ज्वलैः ॥५५॥
धूपैः सुवासितैश्चैव नानापुष्पैर्मनोहरैः। नानाफलैः सुपक्वैश्च नैवेद्यैरुत्तमैस्तथा॥५६॥
पाद्यार्घाचमनीयैश्च ताम्बूलैः खादिरान्वितैः। अन्यैरत्युपहारैश्च विशिष्टैर्निजभक्तितः ॥५७॥
स्तवैर्नानाविधैश्चैव गङ्गां विष्णुं च पूजयेत्। ततः सम्पूजितां देवीं विष्णुं च पमेश्वरम्॥५८॥
अङ्गप्रदक्षिणं कुर्याद्भक्त्या वारत्रयं बुधः। अथ स्थित्वा निराहारोऽपरेऽहनि सरिद्वरे॥५९॥
भोक्ष्यामि जह्नुतनये ! शरणं मे भवाऽघने ! ।
एवं सङ्कल्प्यमतिमान्कर्मणा मनसा गिरा ॥६०॥
रात्रौ जागरणं कुर्याज्जितनिद्रोऽतिहर्षितः। अशक्त्या च द्विजश्रेष्ठ ! फलहारो भवेदथः॥६१॥
अन्नमात्रं न भुञ्जीत न च कुर्याद्द्वि भोजनम् ।
प्रातर्गङ्गां च विष्णुं च पुनरभ्यर्च्यजैमिने ! ॥६२॥
विप्राय दक्षिणां दद्याद्विभवस्याऽनुरूपतः। अर्चनं जागरं चैव यत्कृतं पुरतस्तव॥६३॥
अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं त्वत्प्रसादात्सरिद्वरे !। इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य कृतनित्यक्रियो द्विजः॥६४॥

गङ्गाजी में पितरों का श्राद्ध करता है उसके पितृगण संतुष्ट होकर स्वर्ग लोक में निवास करते हैं ॥५०॥ गङ्गाजी में स्नान आदि कर्मों को करके जो उपवास करता है । दान देवार्चन, जप तथा अन्य जिन कर्मों को गङ्गाजी में करता है, उसका क्षय नहीं होता है । गङ्गाजी में स्नान कर्मों को पूरा करके जो वहाँ उपवास करता है ॥५१-५२॥ पञ्चमहायज्ञों को करके गङ्गाजी की पूजा करे । गङ्गा देवी की प्रतिमा तथा भगवान् विष्णु की प्रतिमा को ॥५३॥ नारियल के दिव्य जल से भक्ति पूर्वक स्नान कराये । गङ्गाजी की प्रतिमा के अभाव में नारियल के जल को ॥५४॥ हृदय में गङ्गाजी का स्मरण करते हुए गङ्गाजी के जल में डाल दे । दिव्य दीप जो घी से भरे हुए जलाये ॥५५॥ सुगन्धित धूपों तथा अनेक प्रकार के मनोहर पुष्पों से अच्छी तरह से पके हुए अनेक प्रकार के फलों तथा उत्तम नैवेद्यों से ॥५६॥ पाद्य, अर्घ, आचमन तथा खैर युक्त ताम्बूलों से तथा अन्य उपहारों से भक्ति पूर्वक ॥५७॥ अनेक प्रकार की स्तुतियों से गङ्गाजी तथा भगवान् विष्णु की पूजा करे । उसके पश्चात् पूजा की गयी गङ्गा देवी तथा भगवान् विष्णु के ॥५८॥ हे अङ्ग ! तीन बार प्रदक्षिणा करे । उसके पश्चात् निराहार रहकर दूसरे दिन ॥५९॥ हे जह्नुतनये मैं भोजन करूँगा आप मेरी रक्षा करें । बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार से मन, वाणी और कर्म से सङ्कल्प करके ॥६०॥ नींद को जीतकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक रात्रि में जागरण करे । यदि शक्ति न हो तो हे द्विजश्रेष्ठ केवल फलाहार करे ॥६१॥ वह केवल अन्न न खाय और न भोजन करे । हे जैमिने ! पुन: प्रात: काल गङ्गाजी और भगवान् विष्णु की पूजा करके ॥६२॥ अपने ऐश्वर्य के अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा दें, हे श्रेष्ठ सरिते ! मैंने जो आपके

ततः स बन्धुभिः सार्धं पारणं स्वयमाचरेत् ।
तीर्थोपवासमेवं यः कुरुते जाह्नवीतटे ॥६५॥
तस्य पुण्यफलं वत्स ! वदतो मे निशामय ।
जन्मान्तरार्जितैः पापैर्विमुक्तो विष्णुरूपधृत् ॥६६॥
विष्णोःपुरं समासाद्य विष्णुना सह मोदते । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥६७॥
स्थित्वा विष्णुपुरे सर्वं सुखंभुङ्क्ते सुदुर्लभम् ।
ततो नारायणादेशाद्ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥६८॥
ब्रह्मलोके सुखं भुङ्क्ते दुर्लभं यत्सुरैरपि । तावत्कालं ब्रह्मलोके स्थित्वा ब्रह्मक्षयात्ततः ॥६९॥
महादेवं ततोगच्छेद्रथमारुह्य शोभनम्। सुखं नानाविधं तत्र भुङ्क्तेऽत्यन्तसुदुर्लभम्॥७०॥
गाणपत्यमवाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः । तावत्कालं शिवपुरे स्थित्वा वै पुण्यवान्नरः ॥७१॥
इन्द्रलोकं ततो गच्छेद्द्वितीय इव वासवः । तेन पुण्यात्मना सार्धं वसेदेकासने ततः ॥७२॥
तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामान्कल्पकोटिशतावधि ।
सूर्यलोकं ततो गच्छेद् द्वितीय इव भास्करः ॥७३॥
उषित्वा तत्र सुचिरं चन्द्रलोकं ततो व्रजेत् । तत्राऽमृतानि भुक्त्वा वै चिरं चन्द्रस्य सन्निधौ ॥७४॥
पुनरागत्य पृथिवीं चक्रवर्ती नृपोभवेत्। पालयित्वा चिरं पृथ्वीं जित्वा वैसकलान्रिपून्॥७५॥
आयुषोऽन्ते च गङ्गायां सुखं मृत्युमवाप्नुयात् ।
भूयःस एवमारुह्यविमाने सुमहायशाः ॥७६॥

सामने अर्चन और पूजन किया है वह सबकुछ आपकी कृपा से पूर्ण हो जाय । इस तरह से कहकर नित्य क्रिया को करके ब्राह्मण गङ्गाजी को नमस्कार करे ॥६३-६४॥ उसके पश्चात् अपने बन्धुओं के साथ स्वयं पारण करे । जो व्यक्ति इस प्रकार से गङ्गा तट पर तीर्थोपवास करता है ॥६५॥ हे वत्स ! उसके पुण्य रूपी फल को मैं कह रहा हूँ उसे तुम सुनो । वह जन्मान्तर में किए हुए पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु का रूप धारण करके ॥६६॥ भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करके भगवान् विष्णु के साथ आनन्दानुभव करता है । हजारों करोड़ तथा सैकड़ों करोड़ कल्पों तक ॥६७॥ भगवान् विष्णु के लोक में रहकर अत्यन्त दुर्लभ सभी भोगों को भोगता है । उसके बाद भगवान् नारायण के आदेश से वह ब्रह्मलोक में जाता है॥६८॥ देवताओं के भी लिए दुर्लभ सुख को ब्रह्म लोक में भोगता है । उतने समय तक ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी का क्षय हो जाने पर ॥६९॥ सुन्दर रथ पर चढ़कर वह महादेवजी के लोक में जाता है । वहाँ पर अत्यन्त दुर्लभ सुखों को वह भोगता है ॥७०॥ बहुत कहने से कोई लाभ नहीं है वह गाणपत्य को प्राप्त कर लेता है । वह पुण्यवान् मनुष्य उतने दिन तक शिवलोक में रहकर ॥७१॥ दूसरे इन्द्र के समान इन्द्र लोक में जाता है और वह पुण्यमात्मा इन्द्र के साथ एक ही आसन पर निवास करता है ॥७२॥ वहाँ पर सौ करोड़ वर्षों तक सभी काम्य पदार्थों का भोग करके वह वहाँ से सूर्यलोक में दूसरे सूर्य के समान जाता है ॥७३॥ वहाँ पर दीर्घ काल तक निवास करके वह उसके बाद चन्द्र लोक में जाता है । वहाँ पर दीर्घकाल तक चन्द्रमा के सन्निकट अमृतों का उपभोग करके वह फिर पृथिवी पर आकर चक्रवर्ती राजा होता है और दीर्घकाल तक पृथिवी का पालन करके तथा सभी शत्रुओं को जीतकर ॥७४-७५॥ आयु के

पुरं भगवतो याति दैवतैरपि दुर्लभम् । तत्र भुक्त्वाऽखिलान्भोगान्मन्वन्तरचतुष्टयम् ।।७७।।
परमं ज्ञानमासाद्य दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात् । जाह्नवीतीरयात्रायां दैवाद्यस्य भवेत्पथि ।।७८।।
पञ्चतां सोऽपि परमं धाम गच्छेन्नसंशयः । सत्यधर्मो नामराजा धार्मिकश्चप्रियम्वदः ।।७९।।
त्रेता द्वापरसन्धौ च बभूव क्षितिमण्डले । विजयानाम महिषी तस्य भूमिपतेरभूत् ।।८०।।
सुन्दरी शीलयुक्ता सा पतिसेवापरायणा । सप्तवर्षसहस्राणि भुक्त्वावसुमतीमिमाम् ।।८१।।
कदाचित्प्राप्तकालोऽसौ सदारः पञ्चतां गतः ।
ततो यमभटैर्बद्धौ दम्पती तौ भयङ्करैः ।।८२।।
दुःखप्रदेन मार्गेण जग्मतुर्यममन्दिरम् । तौ दृष्ट्वा धर्मराजोऽपि चित्रगुप्तमुवाच ह ।।८३।।
एतयोः सर्वकर्माणि चित्रगुप्त ! विचारय । तेनाऽऽज्ञप्तश्चित्रगुप्तस्तयोः कर्माणि जैमिने !।।
मूलाद्विचारयामास प्राह चेति कृताञ्जलिः ।।८४।।

चित्रगुप्त उवाच

एतयोः सकलं कर्म शृणु राजन्वदाम्यहम् । शुभं वाऽप्यशुभं कर्म यदेताभ्यां कृतं भुवि ।।८५।।
किञ्चिदस्यानयोपायं वदामि यदहंशृणु । एकदा त्रासितो व्याघ्रैः कश्चिदेको मृगःप्रभो !।।८६।।
वनाज्जीवनरक्षार्थमागतोऽस्य सभाम्प्रति । तमायान्तं समालोक्यभूपोऽयं प्राप्तकौतुकः ।।८७।।
जघान स्वयमुत्थाय खड्गेन तरसा मृगम् । जघान ह मृगं राजा शरणागतमच्युमुम् ।।८८।।

समाप्त हो जाने पर गङ्गाजी में जाकर वह सुख पूर्वक अपने शरीर का परित्याग करता है । फिर इसी तरह विमान पर चढ़कर वह महायशस्वी ।।७६।। श्रीभगवान् के लोक में जाता है जो देवताओं के लिए दुर्लभ है । वहाँ पर चार मन्वन्तर पर्यन्त समस्त भोगों को भोगकर परम ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । गङ्गा तट की यात्रा में भाग्यवशात् जिसकी मृत्यु हो जाती है । वह भी मृत्यु को प्राप्त करके परम धाम में जाता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । त्रेतायुग और द्वापर युग के सन्धिकाल में सत्यधर्म नामक एक धार्मिक राजा हुआ । उस राजा की रानी का नाम विजया था ।।७७-७८।। वह सुन्दरी शीलगुण सम्पन्न और पति की सेवा में लगी रहने वाली थी । सात हजार वर्षों तक इस पृथिवी का भोग करके ।।७९-८१।। एक बार काल का समय हो जाने से अपनी पत्नी के साथ उसकी मृत्यु हो गयी उसके बाद भयङ्कर यम के दूतों ने आकर उन दोनों को सुदृढ पाशों से बाँध दिया ।।८२।। दुखद मार्ग से दोनों को वे सब यमलोक में ले गये । उन दोनों को देखकर यमराज ने भी चित्रगुप्त से कहा ।।८३।। हे चित्रगुप्त! तुम इन दोनों के सभी कर्मों का विचार करो । हे जैमिने ! यमराज की आज्ञा प्राप्त करके चित्रगुप्त उन दोनों के कर्मों को प्रारम्भ से लेकर विचार किया और फिर हाथ जोड़कर कहा ।।८४।। **चित्रगुप्त ने कहा—** हे राजन् ! मैं इन दोनों के समस्त कर्मों को शुभ तथा अशुभ सभी कर्मों को कहता हूँ ।।८५।। इन दोनों को कुछ अनर्थ कर्म को कहता हूँ । उसे आप सुनें । हे प्रभो ! एक बार बाघ से डरकर एक-एक मृग।।८६।। वन से डरकर इस राजा की सभा में आया । आते हुए उसको देखकर यह राजा कुतूहल पूर्वक।।८७।। स्वयं उठकर उसको खड्ग से मार दिया । उस शरणागत भी मृग को राजा ने मार दिया।।८८।। अतएव हे राजन् ! इसीलिए यह राजा आपके द्वारा दण्डनीय है । उस मृग के शरीर में जितने भी रोम हैं उतने ।।८९।। हजारों एवं सैकड़ों मन्वन्तरों तक इसे करोड़ों करोड़ वंशों के साथ वह

तस्मात्सदारो भूपोऽयं दण्डनीयस्त्वया प्रभो ! ।
यावन्ति तस्यरोमाणि संस्थितानि कलेवरे ॥८९॥
मन्वन्तरसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च। कोटिकोटिकुलैर्युक्तो नारकी स्यान्न संशयः ॥९०॥
शरणागतरक्षां यः प्राणैरपि धनैरपि। कुरुते यो नरो ज्ञानी तस्य पुण्यं निशामय ॥९१॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो ब्रह्महत्यामुखैरपि। आयुषोऽन्ते व्रजेन्मोक्षं योगिनामपि दुर्लभम् ॥९२॥
यमाज्ञया ततो दूतैः सदारोऽसौ महीपतिः। असिपत्रवने घोरे स्थापितोऽत्यन्तदुःखदे॥९३॥
असितुल्यानि पत्राणि यतस्तेषां च शाखिनाम् ।
असिपत्रवनं प्राहुरतस्तद्वै मनीषिणः ॥९४॥
स्थित्वाऽसिपत्रविपिने युगकोटिशतानि च । सदारो नरकं भेजे व्याघ्रभक्ष्याह्वयं ततः ॥९५॥
निरयं तं प्रविशति सर्वोपद्रवसंयुतम्। भवेच्च भक्ष्यो व्याघ्रेण व्याघ्रभक्ष्यस्ततःस्मृतः॥९६॥
युगकोटिसहस्राणि स्थित्वा तत्र स भूपतिः ।
सदारोऽजनिपापान्तेभेकयोनिं गतःक्षितौ ॥९७॥
जातिस्मरौ ततस्तौ तु भेकीभेकौ सुदुःखितौ ।
तीरे तस्थतुरेकस्मिन्सततं कीटभोजिनौ ॥९८॥
अथैकदा तेन पथा पुण्याहं प्राप्य मानवाः। गच्छन्ति जाह्नवीतीरं तांस्तौ ददृशतुर्द्विज !॥९९॥

भेक उवाच

वर्षाम्वि ! मोहाद्यत्सर्वं पापं कर्मकृतं मया। अद्याऽपिकर्मणा तेन दुःखमावां न मुञ्चति ॥१००॥
त्यक्त्वा शरीरं गङ्गायां मुक्ताःस्युःपापिनोऽपि च ।
तथाप्यांवंविधं दुःखमनुभूयावहे कथम् ॥१०१॥

नरक में जाता है ॥९०॥ अपने प्राणों तथा धनों का भी व्यय करके शरणागत की जो रक्षा करता है उस ज्ञानी को होने वाले पुण्य को मैं बतलाता हूँ सुनो ॥९१॥ वह ब्रह्महत्या इत्यादि पापों से मुक्त होकर आयु के समाप्त होने पर योगियों के लिए भी दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करता है ॥९२॥ उसके पश्चात् यम की आज्ञा से पत्नी के साथ उस राजा को यमदूतों ने अत्यन्त दुःख देने वाले अत्यन्त भयङ्कर असिपत्र वन में रख दिया ॥९३॥ क्योंकि उस वन के वृक्षों के पत्ते कृपाण के समान है । इसीलिए मनीषियों ने उसको असिपद्म वन कहा है ॥९४॥ उस असिपत्र वन में सौ करोड़ युगों तक रहकर वह राजा व्याघ्र भक्ष्य नामक नरक में गया ॥९५॥ जो उस नरक में जाता है वह व्याघ्र का भक्ष्य हो जाता है । इसीलिए उस नरक को व्याघ्र भक्ष्य कहते हैं ॥९६॥ वहाँ पर हजारों करोड़ युगों तक वह राजा रहा पाप का अन्त हो जाने पर अपनी पत्नी के साथ पृथिवी पर मेढ़क की योनि में वह चला गया ॥९७॥ वे दोनों अत्यन्त दुःखी थे और जाति स्मर हुए । वे कीड़ों को खाते थे और एक तट पर रहते थे ॥९८॥ उसके बाद उस मार्ग से लोग पवित्र दिन को गङ्गाजी के तट पर जा रहे थे । वे दोनों उन लोगों को देखे ॥९९॥ **मेढ़क ने कहा—** हे मेढ़की ! अज्ञान वशात् मैंने जो पाप किया उस पाप कर्म के कारण हम दोनों का दुःख दूर नहीं होता है ॥१००॥ गङ्गाजी में शरीर त्याग करके पापी भी मुक्त हो जाता है । फिर भी हम दोनों इस

गङ्गायां त्यक्तुमिच्छामि सम्प्रत्येतत्कलेवरम्। का युक्तिर्ब्रूहि तांकान्ते ! तितीर्षुर्दुःखसागरम् ॥
वर्षाम्भ्वी तद्वचः श्रुत्वा प्राहेति विनयान्विता ॥१०२॥

वर्षाभ्व्युवाच

दुःखं न शक्यते सोढुं स्वामिन्नेतदद्रुतं कुरु ।
ततस्तौ दम्पतीविप्र ! स्मृत्वागङ्गांशुभप्रदाम् ॥१०३॥

सहसा चक्रतुर्यात्रां मरणायोपहर्षितौ। अथैतौ पथि गच्छन्तौ चिरकालं बुभुक्षितौ॥१०४॥
अपश्यत्पापकृत्क्ष्वेडः कालसर्पो भयङ्करः ॥१०५॥

कालसर्प्प उवाच

दर्दुरौ पापिनौ चाऽपि प्राप्तकालौ युवां ततः ।
अथ नूनं भक्षितव्यौ क्षुधितेन मया युवाम् ॥१०६॥

ततस्तावतिसन्त्रस्तौ दम्पती दुःखभागिनौ। इत्यूचतुर्वचो भक्त्या कालसर्पं पुरोगतम् ॥१०७॥

नास्ति मृत्युभयं सर्प ! स्वल्पमप्यावयोर्हृदि ।
अहमासं पुरा राजा सत्यधर्माह्वयःक्षितौ ॥१०८॥

इयं च विजया नाम महिषी संस्थिता मम। मया दुरात्मना मोहान्निहतः शरणं गतः ॥१०९॥
तेनैव कर्मणा भुक्तं चिरं दुःखं यमालये । भोक्तुं स्वकर्मणः शेषं भेकयोनौ स्त्रिया सह॥११०॥

सोऽहं जातोऽस्मि पापेन कृतं कर्म न मुञ्चति ।
सत्यमावांजिगमिषू परमं धाम पन्नग ! ॥१११॥

व्रजावो जाह्नवीतीरं शरीरत्यागहेतवे। त्यजाऽविवेकितां सर्प नरकक्लेशदायिनीम् ॥११२॥

प्रकार के दुःखों को क्यों भोगते हैं ॥१०१॥ मैं चाहता हूँ कि मैं गङ्गाजी में अपने शरीर का त्याग करूँ। हे कान्ते ! मैं दुःख सागर को पार करना चाहता हूँ। बतलाओ इसका क्या उपाय है ? उसके इस वचन को सुनकर मेढ़की ने नम्रता पूर्वक कहा ॥१०२॥ **मेढ़की ने कहा—** हे स्वामिन् ! यह दुःख नहीं सहा जा रहा है आप शीघ्रता कीजिये। हे विप्रर्षे ! उसके पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी कल्याण प्रदान करने वाली गङ्गाजी का स्मरण करके ॥१०३॥ सहसा वे दोनों प्रसन्न होकर मरने के लिए यात्रा किए। इसके बाद ये दोनों रास्ते में देर से जाते हुए भूख से व्याकुल हो गये। कुण्डली मारकर पापी भयङ्कर काले सर्प को देखे ॥१०४-१०५॥ **उस काले सर्प ने कहा—** तुम दोनों पापी हो काल के आ जाने के कारण आये हो। मैं भूखा हूँ अतएव तुम दोनों मेरे भक्षणीय हो ॥१०६॥ उसके बाद अत्यन्त डरे हुए पति-पत्नी जो दुःख भोगने वाले थे सामने आये हुए उस काले सर्प से भक्ति पूर्वक कहे ॥१०७॥ हे सर्प ! हमदोनों के हृदय में मृत्यु का थोड़ा सा भी भय नहीं है। मैं पूर्व जन्म में पृथिवी पर सत्यधर्मा नामक राजा था॥१०८॥ मेरी विजया नाम की पत्नी थी। दुष्ट मैंने शरणागत का वध कर दिया ॥१०९॥ उस कर्म के कारण हम दोनों ने यमलोक में बहुत समय तक दुःख भोगा। अपने कर्म के शेष भाग को भोगने के लिए हम दोनों मेढुक की योनि में आये ॥११०॥ मैं अपने पाप के कारण ही इस योनि में आया हूँ; किन्तु पाप कर्म मुझे नहीं छोड़ता है। हे पन्नग यह सत्य है कि हमदोनों परम धाम में जाना चाहते हैं ॥१११॥ हम

आवां सद्भाग्यभवतो भविष्यति सुखं कियत् ।
आवयोर्हृदये विष्णुस्तवाऽपिहृदयेहरिः ॥११३॥
अतएव त्वया सार्द्धं शत्रुता का भुजङ्गम ! ।
प्राणिहिंसा न कर्तव्या कदाचिदपि च विचक्षणैः ॥११४॥
क्रियतेऽपि च तद्धिंसां विदधातिस्वयंविधिः ।
आयुः पुत्राश्च दाराश्च सम्पदश्च यशांसि च ॥११५॥
हिंसां दत्त्वा मनुष्याणां हरेद्दुष्टो विधिः स्वयम् ।
किं जपैः किं तपोभिर्वा किं दानैः किमुचाऽध्वरैः ॥११६॥
हिंसेतिवर्णद्वितयं यस्याऽस्ति हृदये सदा ।
यः प्राणिहिंसको मर्त्यः स एव हरिहिंसकः ॥११७॥
सर्वप्राणिशरीरस्थो भगवान्कमलापतिः । आत्मानं बहुधा सृष्ट्वा भगवान्भूतभावनः ॥११८॥
संसारकौतुकागारे क्रीडेच्छिशुरिव स्वयम् । शरीरिणः शरीरं हि निलयःपरमात्मनः ॥११९॥
परमात्मा स्वयं विष्णुरतो हिंसां विवर्जयेत्। परप्राणविनाशेन चात्मतुष्टिर्विधीयते ॥१२०॥
क्षणं स्यादात्मनस्तुष्टिरन्यस्य प्राणसङ्क्षयः । चरित्रमेतल्लोकानामत्यद्भुतमिव क्षितौ ॥१२१॥
आत्मतृप्तिं प्रकुर्वन्ति परं हत्वाऽतियत्नतः । धीमान्नात्मपरिज्ञानं कदाचित्कुरुते नहि ॥१२२॥
अहं विष्णुरसौ विष्णुरिति चेतसि भावयेत् ।
परदुःखेन यो दुःखी सुखी यश्च परश्रिया ॥१२३॥

दोनों गङ्गा तट में शरीर त्याग करने के लिए जा रहे हैं । हे सर्प ! आप अपने अज्ञान को त्याग दें क्योंकि अज्ञान नरक का क्लेश प्रदान करने वाला होता है ॥११२॥ हम दोनों आपके भक्ष्य हैं । उससे आपको कितना सुख मिलेगा । हम दोनों के हृदय में भगवान् विष्णु का निवास है और आपके भी हृदय में श्रीहरि का निवास है ॥११३॥ अतएव हे सर्प ! आपके साथ मेरी कौन सी शत्रुता है ? निपुण व्यक्ति को भी प्राणि हिंसा नहीं करना चाहिए ॥११४॥ यदि हिंसा हो भी जाती है तो वह विधिवशात् हो जाती हैं । आयु, पुत्र, पत्नी, सम्पत्ति तथा यश ये सब भाग्यवशात् ही हो जाते हैं ॥११५॥ भाग्य हिंसा प्रदान करके मनुष्यों के उपर्युक्त वस्तुओं को छिन लेता है । जिसके हृदय में सदा हिंसा ये दो अक्षर बने रहते हैं उसको जप, तपस्या, दान तथा यज्ञ करने से कोई लाभ नहीं है । जो मनुष्य प्राणियों का हिंसक है वह श्रीहरि का हिंसक हैं ॥११६-११७॥ लक्ष्मीपति श्रीभगवान् सभी शरीरों में विद्यमान हैं । भूतभावन भगवान् अपनी अनेक प्रकार से सृष्टि करके ॥११८॥ संसार रूपी कौतुक गृह में बच्चे के समान क्रीडा करते हैं । शरीर धारी का शरीर ही परमात्मा का गृह है ॥११९॥ स्वयं भगवान् विष्णु ही परमात्मा हैं अतएव हिंसा से बचना चाहिए । दूसरे के प्राण का विनाश कर के अपनी तुष्टि की जाती है ॥१२०॥ दूसरे के प्राण का विनाश करने से क्षणभर आत्मतुष्टि होती हैं । पृथिवी पर संसारियों का यह चरित्र अत्यन्त अद्भुत हैं।॥१२१॥ अत्यन्त प्रयत्न से दूसरे को मार कर वे आत्म तृप्ति करते हैं । बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी आत्म परिज्ञान नहीं करता है ॥१२२॥ मैं विष्णु हूँ और यह भी विष्णु हैं, यही अन्तःकरण में भाव सदा रखनी चाहिए। जो दूसरे के दुःख से दुःखी और दूसरे की सम्पत्ति से सुखी होता है ॥१२३॥ उसको इस संसार में स्वयं

संसारेऽस्मिन्सविज्ञेयः साक्षादेव हरिः स्वयम् ।
धिगस्तु तत्सुखं नृणां मोहवञ्चितचेतसाम् ॥१२४॥
परहिंसाविधानेन सुखं यत्स्याद्भुजङ्गम !। सुखानि वाऽपिदुःखानि दीयन्ते यानि जन्तवे॥१२५॥
अचिरेणैव तानि स्म लभन्ते भुवि मानवाः ।
तस्माद्धिंसांपत्यिज्यभुजङ्गम ! सुखीभव ॥१२६॥
त्वयि प्रसन्ने गच्छावः पारं दुःखमहोदधेः ॥१२७॥

सर्प उवाच

यदि स्यात्परिहिंसायां नूनं मे नाऽतिपातकम् ।
तदाकथमहोसृष्टौ वेधसा भक्ष्यभक्षकौ ॥१२८॥
परहिंसा न कर्तव्या सत्यमेतत्त्वयोदितम्। किन्तु सर्वेषु भक्ष्येषु हिंसा सम्भाव्यते नहि॥१२९॥
नारायणो विश्वरूपः सत्यमेतन्न संशयः। भक्ष्यभक्षकभावेन स्वयमेव ससर्ज ह॥१३०॥
सृजति स्वयमात्मानमात्मानं रक्षतिस्वयम्। आत्मानं स्वयमेवाऽत्ति सृष्टिरेवंविधा हरेः॥१३१॥
शक्तोऽहं किं युवां हन्तुं कालरूपी स्वयं विधिः ।
सम्प्रति प्रेषयामास कार्येऽस्मिन्मां स्वयं हरिः ॥१३२॥
युवां ससर्ज यो देवो यश्च रक्षतिवांसदा ।
कालरूपी स एवाऽद्यहन्ति हेतुं विधायमाम् ॥१३३॥

व्यास उवाच

ततस्तेन भुजङ्गेन भक्षितौ तौ च दम्पती। गङ्गागङ्गेति जल्पन्तौ महत्या क्षुधया पथि॥१३४॥
जाह्नवीतीरयात्रायां पादे पादे च ताविमौ। अश्वमेधाख्ययज्ञानां प्राप्तवन्तौ महाफलम्॥१३५॥

श्रीहरि समझना चाहिए। मोह से ठगे गये अन्तःकरण के द्वारा जिस सुख की प्राप्ति होती है उस सुख को धिक्कार है ॥१२४॥ हे भुजङ्गम दूसरे की हिंसा करने से जिस सुख की प्राप्ति होती है किसी जीव को सुख अथवा दुःख जो कुछ भी दिया जाता है ॥१२५॥ उन सबों का फल मनुष्य शीघ्र ही प्राप्त करता है। अतएव हे सर्प ! आप हिंसा को त्यागकर सुखी हो जायँ ॥१२६॥ तुम्हारे प्रसन्न हो जाने पर हम दोनों दुःख सागर को पार कर जायेंगे ॥१२७॥ **सर्प ने कहा—** यदि हिंसा करने से मुझको अत्यन्त पाप लगे है तो ब्रह्माजी ने सृष्टि में भक्ष्य और भक्षक को क्यों बनाया ?॥१२८॥ तुमने सत्य कहा है कि दूसरे की हिंसा नहीं करनी चाहिए, किन्तु सभी भक्ष्य पदार्थों से हिंसा होती ही नहीं है ॥१२९॥ भगवान् नारायण विश्वरूप हैं यह भी तुमने सत्य ही कहा है। किन्तु उन्होंने स्वयं ही भक्ष्य भक्षक भाव से जगत् की सृष्टि की है। वे स्वयं ही अपनी आत्मा की सृष्टि करते है और अपने से ही वे स्वयं रक्षा करते हैं और वे स्वयं ही आत्म स्वरूप जगत् को खा जाते हैं। अतः श्रीहरि की सृष्टि ही ऐसी हैं ॥१३०-१३१॥ मैं आप दोनों को क्या मार सकता हूँ ? श्रीहरि ने स्वयं इस कार्य को करने के लिए मुझे भेज दिया है ॥१३२॥ जिस ब्रह्माजी ने आप दोनों को बनाया और आप दोनों की अब तक रक्षा की वे ही आज मुझे काल रूपी बनाकर आप दोनों को मार रहे हैं ॥१३३॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके पश्चात् उस सर्प ने उन दोनों को

तस्मादेनौ महात्मानौ बह्वश्वमेधधारिणौ। एतयोः सदृशो नास्ति शतक्रतुरहं यतः ॥१३६॥
निजाधिकारेणैवाऽन्यमवलम्ब्य पुरन्दरः। अर्घ्यहस्तः पादचारी वृतो देवैः समाययौ ॥१३७॥

अथरम्भोर्वशी चैव सुन्दर्योऽन्याश्च हर्षिताः ।
अन्योन्यं कथयामासुर्निजयौवनगर्विताः ॥१३८॥
अयं पुण्यात्मनां श्रेष्ठो रसज्ञोऽत्यन्तसुन्दरः ।
आयातोऽमुं करिष्यामि स्ववशं सेवितैः स्वकैः ॥१३९॥
काचित्काञ्चिद्वदत्येतज्जानामि सकलां कलाम् ।
अतएवभविष्यामि कान्ताहमस्यभूपतेः ॥१४०॥
काचित्काञ्चिदितिब्रूयात्ते शक्रोऽपि वशो मम ।
किमत्रचित्रंवशगोभूपालोऽयंभविष्यति ॥१४१॥
भर्त्ता ममाऽयं च पतिर्ममाऽयं स्वामी ममाऽयं मम नाथ एषः ।
इतीव सर्वाः परमप्रमोदैर्वदन्ति नार्योऽखिलसद्गुणज्ञाः ॥१४२॥
उच्चावचं विप्र ! निशम्य तासां जगाद काचिद्गुणिनी रसज्ञा ।
सौदास्यकान्तां नृपतिः स्वयं यां भजत्ययं किं कलहेन नार्यः ॥१४३॥
सुन्दर्यस्तास्ततः सर्वाः सन्त्यज्य कलहं द्विज ! ।
आजग्मुर्हृदयोत्साहैःसर्वाभरणभूषिताः ॥१४४॥

अथ तं नृपतिश्रेष्ठं सदारं गतकल्मषम्। पाद्याद्यैः पूजयामासुःप्राहेति च पुरन्दरः ॥१४५॥

खा लिया। रास्ते में अत्यन्त भूखे हुए वे दोनों गङ्गे-गङ्गे कहते हुए मारे गये ॥१३४॥ गङ्गा तट पर वे दोनों जाते हुए पग-पग पर अश्वमेध यज्ञों के महान् फल प्राप्त कर लिए थे ॥१३५॥ अतएव वे दोनों महात्मा बहुत से अश्वमेधों के फल को धारण किए थे। इन दोनों के समान भी चूकि शतक्रतु थे नहीं था॥१३६॥ इन्द्र अपने हाथ से ही इनको पकड़कर पैदल तथा अर्घ्य हाथ में लिए हुए देवताओं के साथ आये ॥१३७॥ उसके पश्चात् रम्भा, उर्वशी तथा अन्य अपनी जवानी से युक्त सुन्दरियाँ प्रसन्न होकर परस्पर में कहने लगीं ॥१३८॥ ये पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हैं रस को जानने वाले तथा सुन्दर हैं। उनकी सेवा करके मैं इनको अपने अधीन बना लूँगी ॥१३९॥ कोई किसी से कहती थी मैं सभी कलाओं को जानती हूँ। अतएव इस राजा की मैं कान्ता होऊँगी ॥१४०॥ कोई किसी से कहती थी इन्द्र भी मेरे वशवर्ती हैं अतएव यह राजा भी मेरे वश में हो जायेंगे तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ॥१४१॥ ये मेरे पति, स्वामी तथा नाथ हैं। इस तरह से वे अत्यन्त आनन्द पूर्वक सभी गुणज्ञ नारियाँ कह रही थीं ॥१४२॥ हे विप्र ! इस तरह छोटी-बड़ी बातें करती हुयी उन सबों को देखकर रसों को जानने वाली गुणवती ने कहा हे नारियों ! यह राजा सौदास की कान्ता को अपना बनाये हैं, कलह करने से कौन सा लाभ है ?॥१४३॥ हे द्विज! वे सुन्दरियाँ उसके बाद कलह का परित्याग करके सभी आभूषणों से अलंकृत होकर उत्साह पूर्वक आयीं ॥१४४॥ उसके पश्चात् पत्नी सहित निष्पाप राजा की इन्द्र ने पाद्य अर्घ्य आदि के द्वारा पूजन किया ॥१४५॥ पत्नी के साथ पुष्पक विमान पर बैठाया। भेरी, मृदङ्ग, मधुर डिण्डिम तथा

रथे निवेशयामास पुष्पके स्त्रीसमन्वितम् । भेरीमृदङ्गमधुरीडिण्डिमानकनिस्वनैः ॥१४६॥
करकङ्कणनादैश्च करतालस्वनैस्तथा । जयशब्दैश्च देवानां नाकःशब्दमयोऽभवत् ॥१४७॥
देवाङ्गनाचारुहस्तश्वेतचामरमारुतैः । वीजितः सरथारूढः सदारास्त्रिदिवं ययौ ॥१४८॥
ततः शक्रःस्वयं तस्मै सत्यधर्माय भूभुजे । दत्तावान्निजासनार्धं शुभोवैक्षयशङ्कया ॥१४९॥
शक्रेण सह भूपोऽसौ वसन्नेकासने सदा। शक्रत्वमकरोत्स्वर्गे केशवस्यानुकम्पया ॥१५०॥
युगकोटिसहस्राणि दिवि भुक्त्वाखिलं सुखम् ।
रथमारुह्य वैकुण्ठं ययौ भगवदाज्ञया ॥१५१॥
तत्र मन्वन्तरं भुक्त्वा सर्वभोगं मनोरमम्। परमं ज्ञानमासाद्य सदारो मोक्षमाप्तवान् ॥१५२॥
जाह्नवीतीरयात्रायां शरीरं त्यजतः पथि। फलमेवं विधं विप्र ! मया सर्वं प्रकीर्तितम्॥१५३॥
जाह्नवीतीरगमने मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । न कालनियमः प्रोक्तो नारदाद्यैर्महर्षिभिः ॥१५४॥
यदा यदा द्विजश्रेष्ठ ! गङ्गायां स्नानमाचरेत् ।
तदातदाऽक्षयं पुण्यं लभते मानवो ध्रुवम् ॥१५५॥
गङ्गासर्वाणि पापानि नाशयेदितिनिश्चयः। कुर्यात्पुनःपुनःपापं न च गङ्गापुनाति तम् ॥१५६॥
पापबुद्धिं परित्यज्य गङ्गायां लोकमातरि । स्नानं कुरुत हे लोका यदि सद्गतिमिच्छथ ॥१५७॥
यत्पुण्यं गङ्गास्नानात्तुमानवानां भवेद् द्विज ! ।
तत्पुण्यंप्राप्यते विप्र कर्मभिःकैःसुदुस्तरैः ॥१५८॥

आनक दुन्दुभी के मधुर ध्वनि से ॥१४६॥ देवताओं के हाथों के कङ्गन की ध्वनि से तथा करताल ध्वनि से तथा जयकार शब्द से स्वर्ग गूंज गया ॥१४७॥ अपनी पत्नी के साथ रथ पर बैठे हुए देवस्त्रियों के मनोहर हाथों में विद्यमान मनोहर चामर से हवा किए जाते हुए, वे राजा स्वर्ग लोक में चले गये ॥१४८॥ उसके पश्चात् उस सत्यधर्मा राजा को इन्द्र ने अपने सिंहासन के आधा भाग को प्रदान किए । उनको भय था कि कहीं उनके पुण्य का क्षय न हो जाय ॥१४९॥ वे राजा स्वर्ग में रहते इन्द्र के साथ शक्रत्व को श्रीभगवान् की कृपा से किए ॥१५०॥ स्वर्ग में हजारों युगों तक सभी प्रकार के सुखों को भोगकर वे श्रीभगवान् की आज्ञा से रथ पर बैठकर बैकुण्ठ चले गये ॥१५१॥ वहाँ पर मन्वन्तर पर्यन्त सभी मनोहर भोगों को भोगकर परमज्ञान प्राप्त करके अपनी पत्नी के साथ वे मोक्ष प्राप्त कर लिए ॥१५२॥ गङ्गातट की यात्रा में रास्ते में ही शरीर का त्याग करने वाले को इस प्रकार का फल प्राप्त होता है । हे विप्र ! मैंने सम्पूर्ण गङ्गाजी के माहात्म्य को आपको बतला दिया ॥१५३॥ गङ्गाजी के तीर से जाते समय तत्त्वज्ञ मुनियों तथा नारद आदि के द्वारा कोई भी नियम नहीं बतलाया गया है ॥१५४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जब-जब गङ्गाजी में स्नान करे मनुष्य उतने ही बार अक्षय फल को प्राप्त करता है ॥१५५॥ यह निश्चय है कि गङ्गाजी सभी पापों को विनष्ट कर देती हैं । जो बार-बार पाप करता है उसको गङ्गाजी नहीं पवित्र करती हैं ॥१५६॥ पाप बुद्धि का परित्याग करके लोक माता गङ्गाजी में नहाओ यदि आपलोग सद्गति चाहते हैं तो स्नान करें ॥१५७॥ हे द्विज ! गङ्गाजी में स्नान करने से जिन पुण्यों की प्राप्ति मनुष्यों को होती है हे विप्र ! उन पुण्यों को दुष्कर कर्मों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है क्या ?॥१५८॥ पृथिवी के धूलि

आसाराणां भूमिरेणोः सङ्ख्यां कर्तुं तु शक्यते ।
भागीरथीगुणास्तेन शक्या वक्तुं न च द्विज ! ॥१५९॥
विचार्य सर्वशास्त्राणि त्वदीयानि मयोच्यते । गङ्गाम्भसि सकृत्स्नात्वा मोक्षमाप्नोति मानवः॥१६०॥
स्नानं कूपजलेऽपि यस्तु कुरुते गङ्गांविचिन्त्य प्रभुं ।
देवानां सकलार्तिशोकदुरितत्रासौघविध्वंसिनीम् ।
मुक्तःसोऽपि समस्तपातकचयैर्गोविप्रहत्यादिभि-
र्गच्छेद्विष्णुपुरं समस्तसुखदं गङ्गाप्रसादाद् द्विज ! ॥१६१॥
इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
गङ्गामाहात्म्यं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

दसवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच
माहात्म्यमेतद्गङ्गायास्त्वत्प्रासादाच्छ्रुतं मया। इदानीं श्रोतुमिच्छामि विष्णुपूजाफलं गुरो ! ॥१॥
व्यास उवाच
श्रृणु लक्ष्मीपतेर्वत्स ! सपर्याफलमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा मानवाः सर्वे लभन्ते ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
विप्र द्वादशमासेषु माघादिषु सनातनः । पूजितव्यो विधानैर्यैः श्रृणु तानि वदाम्यहम् ॥३॥

कणों को और वर्षाओं की विन्दुओं को तो गिना जा सकता है । किन्तु हे द्विज ! किन्तु गङ्गाजी के गुणों की गणना नहीं की जा सकती है ॥१५९॥ सभी शास्त्रों का विचार करके मैंने आपको बतलाया है । मनुष्य एक बार भी गङ्गाजी के जल में स्नान करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥१६०॥ जो व्यक्ति देवताओं के सम्पूर्ण शोक तथा भय का विनाश करने वाली गङ्गाजी तथा श्रीभगवान् का स्मरण के कूप जल से भी स्नान करता है तो वह भी गौ तथा विप्रों का हत्याजन्य समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त सुखों को प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु के लोक में गङ्गाजी की कृपा में चला जाता है ॥१६१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के गङ्गा माहात्म्य वर्णन नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

माघ आदि महिनों में भगवान् विष्णु की पूजा से अनन्त फल की प्राप्ति का वर्णन

महर्षि जैमिनि ने कहा— आपकी कृपा से मैंने इस गङ्गाजी के माहात्म्य को सुना । हे गुरो ! आपकी कृपा से इस समय मैं विष्णु पूजा के फल को सुनना चाहता हूँ ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** हे वत्स! भगवान् लक्ष्मीपति की पूजा का फल अब सुनो । ब्राह्मण को माघ इत्यादि सभी महीनों में भगवान् विष्णु की पूजा जिस विधि से करना चाहिए उसे मैं कहता हूँ सुनो ॥२-३॥ सभी मासों में उत्तम तथा शुभ

माघेमासि समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे । अमिषं मैथुनं चैव सन्त्यजेद्वैष्णवोत्तमः ॥४॥
प्रातः स्नायी भवेन्नित्यं तैलान्यपि च वर्जयेत् ।
द्विर्भोजनं परान्नं च माघे मासि परित्यजेत् ॥५॥
प्रातः शुक्लाम्बरधरः कृतपञ्चमहाध्वरः। सपर्यामारभेद्विष्णोःस्थिरचित्तो हि मानवः ॥६॥
ईषदुष्णजलैः शुद्धैः स्नापयेद्विष्णुमव्ययम्। अतिश्लथैश्चन्दनैश्चविष्णोरङ्गानि लेपयेत् ॥७॥
पूजयेज्ज्गदीशस्य देवेदेवस्य चक्रिणः । प्रक्षालितानि पात्राणि जलहीनानि कारयेत् ॥८॥
स्नापयित्वा जगन्नाथमीषदुष्णेन वारिणा। प्रोक्षितव्यं तच्छरीरं दिव्यवस्त्रेण यत्नतः ॥९॥
सलिलैरीषदुष्णैश्च प्रस्नापयति केशवम् । माघे मासि द्विजश्रेष्ठ ! फलं तस्य मयोच्यते॥१०॥
विमुक्तः पातकैः सर्वैर्जन्मजन्मान्तरार्जितैः। इह भुङ्क्ते सुखं सर्वं शेषे याति हरेर्गृहम्॥११॥
यत्नात्प्रक्षाल्य पात्राणि कृत्वा शुद्धानि वारिभिः ।
यःपूजयेज्ज्गन्नाथं तस्यपुण्यं निशामय ॥१२॥
इह भुक्त्वाऽखिलान्कामान्सर्वव्याधिविवर्जितः ।
अन्ते युगसहस्राणि तिष्ठेत्वेकशवमन्दिरे ॥१३॥
प्रभाते विश्वसन्ध्यायां पुरतश्चक्रपाणिनः । ज्वलन्तं स्थापयेद्वह्निं निर्द्धूमं वैष्णवो जनः ॥१४॥
शीतस्य वारणार्थाय सायं प्रातश्च वैष्णवः। माघे विष्णवग्रतो वह्निंज्वालयेत्तत्फलंश्रृणु ॥१५॥
इह भुत्तवाऽखिलकामान्पुत्रपौत्रसमन्वितः । अन्ते विष्णुपुरं याति दैवतैरपि दुर्लभम्॥१६॥
यथैवाऽत्मा तथा विष्णुः सन्देहो नाऽऽत्र विद्यते ।
स्वपेच्च देवदेवस्य पर्यङ्के केशवस्यनु ॥१७॥

माघ मास के आने पर वैष्णव को चाहिए कि वह मांस तथा मैथुन का त्याग कर दे ॥४॥ नित्य ही प्रातः स्नान करे तथा तेल का भी त्याग कर दे । माघ के महीने में दो बार भोजन करना तथा परान्न का भी त्याग करे ॥५॥ प्रातःकाल श्वेत वस्त्र धारण करके तथा पञ्च महायज्ञ करके स्थिर चित्त वाला होकर भगवान् विष्णु की पूजा प्रारम्भ करे ॥६॥ थोड़े गर्म तथा शुद्ध जल से अव्यय भगवान् को स्नान कराये । अत्यन्त गीले चन्दनों को भगवान् विष्णु के अङ्गों में लगाये ॥७॥ इस तरह से जगत् के स्वामी चक्रधारी श्रीभगवान् की पूजा करे । धोए हुए पात्रों को पहले पोंछ दे ॥८॥ फिर थोड़े गर्म जल से श्रीभगवान् को स्नान कराकर उनके शरीर को दिव्य वस्त्र से पोंछे ॥९॥ माघ मास में जो ब्राह्मण थोड़े गर्म जल से श्रीभगवान् को स्नान कराता है उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ ॥१०॥ वह जन्म जन्मान्तर के पापों से रहित होकर इस लोक में सभी सुखों को प्राप्त करके अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥११॥ शुद्ध जलों से पात्रों को शुद्ध करके जो श्रीभगवान् की पूजा करता है उसको प्राप्त होने वाले फल को बतला रहा हूँ ॥१२॥ वह इस लोक में व्याधि रहित होकर तथा अपने सभी काम्य पदार्थों को भोगकर अन्त में श्रीभगवान् के लोक में हजारों युगों तक निवास करता है ॥१३॥ प्रातःकाल विश्व सन्ध्या होने पर वैष्णव को चाहिए कि वह जलती हुयी अग्नि को भगवान् के समक्ष रखे । उस अग्नि को निर्धूम होना चाहिए।॥१४॥ वैष्णव को चाहिए कि वह प्रातःकाल ठण्ढी को दूर करने के लिए भगवान् विष्णु के सामने आग को

यथात्मनस्तथा मर्त्यः कुर्याच्छीतनिवारणम्। क्षीरेणस्नापयेद्यस्तु माघे मासि जनार्दनम् ॥१८॥
तस्मैदेवोत्तमोविष्णुः सन्तुष्टो न ददाति किम् ।
तथाशीतक्षयं कुर्याद्दिव्यवस्त्रेण चक्रिणः ॥१९॥
यः पूजयेत्सकृन्माघेस्नापयित्वा चतुर्भुजम्। नालिकेरोदकैर्दुग्धैः फलं तस्य वदाम्यहम् ॥२०॥
नरकाब्धौ मज्जमानान्दुस्तरे स्वेन कर्मणा। उद्धृत्य कोटिपुरुषान्स याति चक्रिणःपदम् ॥२१॥
माघे मासे च शुक्लायां पञ्चम्यां द्विजसत्तम ! ।
एकादश्यां च सप्तम्यां हरिपूजाविशेषतः ॥२२॥
दातव्यो देवदेवाय सपद्माय मुरारये। पायसो धूपसहितो माघे मासि दिने दिने ॥२३॥
सधूपपायसं यस्तु माघे यच्छति चक्रिणे । तस्य पुण्यफलं वच्मि शृणु वैष्णव जैमिने ! ॥२४॥
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा मन्वन्तरचतुष्टयम् । भुङ्क्तेमनोरमान्भोगान्प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥२५॥
पुनरागत्य धरणीं चकवर्त्ती नृपोभवेत्। भुङ्क्ते च भोगं सुचिरं मृतो याति हरेर्गृहम् ॥२६॥
पञ्चम्यां वाऽपि सप्तम्यामेकादश्यां च जैमिने ! ।
अशक्तो वैष्णवो दद्यात्परमान्नं मुरारये ॥२७॥
कृष्णपक्षाद्द्विजश्रेष्ठ ! शुक्लपक्षे विशेषतः ।
शुक्लपक्षे तिथिष्वेषु दद्यादन्नं मुरारये ॥२८॥

जलाये । उससे प्राप्त होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ सुनो ॥१५॥ वह इस लोक में अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ सभी काम्य वस्तुओं को भोगकर अन्त में देवताओं के लिए भी दुर्लभ भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१६॥ जैसी अपनी आत्मा है उसी तरह के भगवान् विष्णु हैं, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । देवदेव श्रीभगवान् के पलङ्ग पर सो जाने के पश्चात् वह सोए ॥१७॥ मनुष्य अपने ही समान श्रीभगवान् को ठण्डी से बचाये । जो माघ के महीने में श्रीभगवान् को दुग्ध से स्नान कराता है॥१८॥ उस पर सन्तुष्ट होकर श्रीभगवान् उसको सबकुछ प्रदान कर देते हैं । श्रीभगवान् की ठण्डी को दिव्य वस्त्र से दूर करे ॥१९॥ जो माघ के महीने में भगवान् चतुर्भुज को एक बार नारियल के जल से तथा दुग्ध से स्नान कराकर उनकी फल आदि से पूजा करता है, उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं बतला रहा हूँ ॥२०॥ दुस्तर संसार सागर में अपने कर्मों के कारण डूबते हुए अपने करोड़ों पूर्वजों का उद्धार करके वह स्वयं भगवान् के लोक में जाता है ॥२१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को, एकादशी तथा सप्तमी तिथि को श्रीहरि की विशेष रूप से ॥२२॥ लक्ष्मीजी के साथ श्रीभगवान् को पायस तथा धूप प्रतिदिन समर्पित करना चाहिए ॥२३॥ जो व्यक्ति माघ के महीने में घूप के साथ पायस श्रीभगवान् को प्रदान करता है । हे वैष्णव जैमिने ! मैं उसका पुण्य फल बतलाता हूँ ॥२४॥ अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में जाकर चार मन्वन्तरों तक भगवान् की कृपा से मनोहर काम्य भोगों को भोगता है ॥२५॥ फिर पृथिवी पर आकर वह चक्रवर्ती राजा हो जाता है और दीर्घ काल तक भोगों को भोगता है और मृत्यु के बाद वह श्रीहरि के लोक में जाता है ॥२६॥ हे जैमिने ! पञ्चमी एकादशी तथा सप्तमी के दिन अशक्त वैष्णव को श्रीभगवान् को पायस प्रदान करना चाहिए ॥२७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! कृष्ण

एकाहमपि यो माघे विष्णवे दैत्यजिष्णवे । सापूपं पायसं दद्यान्न तस्य दुर्लभो हरिः ॥२९॥
यत्किञ्चिद्विजतुष्ट्यर्थं माघे मासि प्रदीयते । तदक्षयंभवेत्पुंसः कोऽपि नास्त्यत्र संशयः ॥३०॥
माघे मासि कृतं कर्म शुभं वाऽशुभामेव वा ।
तस्य नास्ति क्षयं विप्र ! मन्वन्तरशतैरपि ॥३१॥
माघे चम्पकपुष्पेण योऽर्चयेत्कमलापतिम् । सगच्छेत्परमं धाम विमुक्तः सर्वपातकैः ॥३२॥
यावन्ति स्वर्गपुष्पाणि दीयन्ते चक्रपाणये । तावद्युगसहस्राणि स्थीयते विष्णुमन्दिरे ॥३३॥
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्त्वा भवति यत्फलम् । एकेनस्वर्णपुष्पेण हरिं संपूज्य तत्फलम् ॥३४॥
सुवर्णपुष्पं विप्रेन्द्र ! सर्वदा केशवप्रियम् । माघे मासि विशेषेण पवित्रं केशवप्रियम् ॥३५॥
सुवर्णकुसुमैर्दिव्यैर्येन नाऽऽराधितो हरिः । रत्नैर्हीनः सुवर्णाद्यैः स भवेज्जन्मजन्मनि ॥३६॥
फलंचम्पकपुष्पस्य ब्रवीम्यहं विशेषतः । आकर्णय द्विजश्रेष्ठ ! सेतिहासमनुत्तमम् ॥३७॥
सुवर्णो नाम भूपालो बलवान्सर्वशास्त्रवित् । आर्यावर्तेषु सर्वेषु बभूव विप्रवर्चसा ॥३८॥
राजश्रिया विद्यया च वयसा च स भूपतिः ।
अतिप्रमत्तो विप्रर्षे ! सदापापरतोऽभवत् ॥३९॥
पाखण्डमन्त्रिणां वाक्यैर्विना दोषैरपि द्विज ! ।
धनलोभात्तेन राज्ञा दण्ड्यन्ते साधवो जनाः ॥४०॥
अन्यायोपार्जितं वित्तं गीतवाद्यादिभिर्वृतः । समस्तं नाशयामास यज्ञदानविवर्जितः ॥४१॥
न ज्ञातिपोषणं चक्रे न देवद्विजभोजनम् । न च याचकसन्तुष्टिं सर्वदा पापमोहितः ॥४२॥

पक्ष की अपेक्षा शुक्ल पक्ष में विशेष रूप से इन तिथियों में अन्न प्रदान करना चाहिए ॥२८॥ दैत्यों पर विजय प्राप्त करने वाले भगवान् विष्णु को माघ के महीने में एक दिन भी पूए के साथ जो श्रीभगवान् को पायस समर्पित करता है, उसको श्रीहरि दुर्लभ नहीं होते हैं ॥२९॥ ब्राह्मण की तुष्टि के लिए माघ के महीने में जो कुछ भी दान दिया जाता है वह कर्म अक्षय हो जाता है इस विषय में कोई भी संशय नहीं है॥३०॥ माघ के महीने में किया गया पुण्य अथवा पाप कर्म सौ मन्वन्तरों में भी कभी क्षय नहीं होता है ॥३१॥ माघ के महीने में जो चम्पा के पुष्प से श्रीहरि की पूजा करता है वह सभी पापों से छूटकर परम धाम में चला जाता है ॥३२॥ श्रीभगवान् को जितने स्वर्ण पुष्प समर्पित किये जाते हैं उतने हजार युग तक वह भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ॥३३॥ सुमेरु पर्वत के समान सुवर्ण का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति एक स्वर्ण चम्पा के पुष्प को समर्पित करने से भी हो जाती है ॥३४॥ श्रीभगवान् को स्वर्ण पुष्प सदा प्रिय होता हैं किन्तु माघ के महीने में वह विशेष रूप से पवित्र और प्रिय होता है ॥३५॥ जो स्वर्ण चम्पा के पुष्पों से श्रीहरि की पूजा नहीं करता है वह अनेक जन्मों तक रत्नों तथा सुवर्ण से हीन होता है ॥३६॥ मैं विशेष रूप से चम्पा के पुष्प का फल बतलाता हूँ । हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम इस सर्वोत्तम इतिहास को सुनो ॥३७॥ हे विप्र ! सभी शास्त्रों का ज्ञाता तथा बलवान् सुवर्ण नाम का राजा सम्पूर्ण आर्यावर्त का राजा हुआ ॥३८॥ वह राजा श्री, विद्या, और अवस्था से अत्यन्त प्रमत्त होकर सदा पाप कर्मों को करता रहता था ॥३९॥ हे द्विज ! पाखण्डी मन्त्रियों की बात को मानकर वह निरपराध सज्जनों को धन के लोभ से दण्डित करता था ॥४०॥ अन्याय पूर्वक उपार्जित धन को वह सदा गीत तथा वाद्य आदि से घिरा हुआ यज्ञ दान आदि

न चकाराऽतिथेः पूजां सदापापपरायणः। ययौ च मन्दिरान्नित्यं स भूपः पापमन्दिरः ॥४३॥
कृतानि तेन पापानि यान्यन्यान्यविवेकिनाम् ।
अपिवर्षशतैःशक्तःसङ्ख्यातुंजनितानिकिम् ॥४४॥
एकदा स महीपालः कामेन परिमोहितः। जगाम वेश्यानिलयं निशीथे दुरिताशयः ॥४५॥
तमायातं ततो दृष्ट्वा भूपालमुज्ज्वलाह्वया । सहसोत्थाय पर्यङ्काच्चक्रे तत्पादवन्दनम् ॥४६॥
प्रक्षाल्यतत्पादयुगं भृङ्गारसलिलैश्च सा। मञ्चे निवेशयामास दोर्भ्यामालिङ्ग्य तं नृपम् ॥४७॥
तत्प्रेमामृतधाराभिः सिक्तोऽसौ पृथिवीपतिः ।
तस्मिन्नुवास पर्यङ्के तया सह कुतूहली ॥४८॥
ततः सा गणिका प्रीत्या हसन्ती नवयौवना ।
ददौ चम्पकपुष्पाणि तस्मै भूमिभुजे स्वयम् ॥४९॥
पुष्मालापुष्पमेकं तस्माद्भूपतिहस्ततः। पपात धरणीपृष्ठे गन्धव्याप्तदिगन्तरम्॥५०॥
तच्चयुतं कुसुमं दृष्ट्वा स राजाऽत्यन्तसम्भ्रमात् ।
नमोनारायणायेति जगादोङ्कारपूर्वकम् ॥५१॥
नारायणायेति वाक्यात्सर्वाणि पातकानि च ।
स्वर्णपुपप्रदानेन तस्य नष्टानिभूभुजः ॥५२॥
ग्रामीणा अथ सर्वेऽपि समागत्याऽति दुर्जये ।
तस्यामेवनिशायां तं जघ्नुर्वेश्यागृहेस्थितम् ॥५३॥
नेतुं तमथ भूपालं सर्वपातकिनां वरम्। किङ्करान्प्रेषयामास क्रुद्धो वैवस्वतो भृशम् ॥५४॥

को किए बिना ही नष्ट कर दिया ॥४१॥ उसने न तो अपने दायादों का पोषण किया और न ब्राह्मणों को भोजन कराया । वह सदा पाप से अज्ञानी बना हुआ याचकों को भी कभी सन्तुष्ट नहीं किया ॥४२॥ सदा पाप में लगा रहने वाले उसने अतिथि की भी कभी पूजा नहीं की । पाप के आश्रय स्वरूप वह अपने घर से प्रतिदिन जाता था ॥४३॥ वह अज्ञानियों के द्वारा किए जाने वाले सभी पापों को किया । उसके पापों को सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता है ॥४४॥ एक दिन वह पापी राजा काम मोहित होकर आधी रात को वेश्या के घर गया ॥४५॥ उसको आते हुए देखकर उज्ज्वला नाम की वेश्या अचानक अपने पलङ्ग से उठकर उसके चरणों की वन्दना की ॥४६॥ उसने भृङ्गार के जल से उसके दोनों चरणों को धोया और उस राजा का दोनों हाथों से आलिङ्गन करके अपने पलङ्ग पर बैठाया ॥४७॥ उसके प्रेमामृत से सिक्त वह कुतूहली राजा उसके साथ उस पलङ्ग पर सोया ॥४८॥ उसके पश्चात् हँसती हुयी तथा नवीन यौवन वाली वह वेश्या उस राजा को अपने हाथों से स्वयं चम्पा के पुष्पों की माला को प्रदान की ॥४९॥ पुष्प माला का एक पुष्प राजा के हाथ से पृथिवी पर गिर पड़ा और उसकी सुगन्धि से दिशाएँ व्याप्त हो गयीं ॥५०॥ उस गिरे हुए फूल को गिरा हुआ शीघ्रता से देखकर राजा ने ओम नमो नारायणाय कहा॥५१॥ नारायण इस वाक्य से तथा स्वर्ण पुष्प को समपर्ण से उस राजा के सभी पाप विनष्ट हो गये ॥५२॥ उसके पश्चात् सभी ग्रामवासी आकर उस अत्यन्त दुर्जय राजा को उसी रात को उस वेश्या के घर में मार

तेनाऽऽज्ञप्तास्ततो दूताः पाशमुद्गरपाणयः। अतिवेगात्समायाताः क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥५५॥
उद्यमं चक्रिरे नेतुं यमदूताः स्वमालयम्। ततो नारायणप्रेष्याः शङ्खचक्रगदाधराः ॥५६॥
आयाता गरुडारूढास्तं नेतुं पृथिवीपतिम्। पाशेन यन्त्रितं दृष्ट्वा तं भूपं विष्णुकिङ्कराः ॥५७॥
जघ्नुश्चक्रैर्गदाभिश्च यमदूतान्महाबलाः। समारोप्य रथे दिव्ये शङ्खान्दध्मुरनुत्तमान् ॥५८॥
तथा राजा रथारूढस्तुलसीमाल्यभूषितः। पीतकौशेयवासाश्च स्वर्णालङ्कारभूषितः ॥५९॥
स्तूयमानो मुनिगणैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। विष्णुदूतैः परिवृतो हरेः सालोक्यमाययौ ॥६०॥
अथोत्थाय स्वयं विष्णुश्चतुर्भिर्दीर्घबाहुभिः। तमालिङ्गितवान्भूपं प्रोक्तवांश्चद्विजोत्तम !॥६१॥

श्रीभगवानुवाच

नृपते ! कुशलं ब्रूहि सर्वपुण्यात्मनाम्बर !। किमस्ति साध्यं भवतस्तदाज्ञापय सम्प्रति॥६२॥
नमोनारायणायेति वारैकमपि यो वदेत्। नित्यं तस्यानुपाल्योऽहं स मे भ्राता स मे पिता॥६३॥
नारायणेतिमन्नाम कदाचिद्यः स्मरेन्नरः। साधयाम्यखिलं तस्य पितुःपुत्रइवेप्सितम् ॥६४॥
भक्तोऽसि नृपतिश्रेष्ठ ! तस्मान्निजमनोरथम्।
प्रकाशयाऽद्भुतं तात किन्ते दास्यामि चाधुना ॥६५॥

राजोवाच

सर्वमेव दयासिन्धो ! त्वया दत्तं न संशयः।
पापिनाऽपि मया प्राप्तं तव स्थानं सुदुर्लभम् ॥६६॥
तस्याऽनेन तु वाक्येन प्रसन्नः कमलापतिः।
स्नेहान्निवेशयामास भूपालं तन्निशामय ॥६७॥

दिए ॥५३॥ उसके पश्चात् उस पापियों में श्रेष्ठ उस राजा को लेने के लिए अत्यन्त क्रुद्ध यमराज अपने दूतों को भेजे ॥५४॥ यमराज की आज्ञा से अपने हाथ में मुद्गर लिए हुए और पाश लिए हुए वे दूत अत्यन्त क्रोध करते हुए आखें लाल करके अत्यन्त वेग पूर्वक आये ॥५५॥ यमदूत उसको अपने लोक में ले जाने का प्रयास किए। उसी समय भगवान् नारायण के दूत शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए गरुड पर सवार होकर उस राजा को लेने के लिए आये। उस राजा को पाश से बँधे हुए देखकर भगवान् विष्णु के दूत महाबलवान यमदूतों को चक्रों तथा गदाओं से मारे। और उस राजा को रथ पर बैठाकर अपने दिव्य शङ्खों को बजाये ॥५६-५८॥ रथ पर बैठा हुआ तथा तुलसी की माला से अलंकृत एवं पीताम्बर धारण किए हुए वह सुवर्ण के अलंकारों से अलंकृत उस राजा की स्तुति वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत मुनिगण स्तुति कर रहे थे। इस प्रकार से राजा ने भगवान् विष्णु के सालोक्य को प्राप्त किया ॥५९-६०॥ उसके बाद भगवान् विष्णु उसका अपनी चार भुजाओं से आलिङ्गन करके उससे कहे॥६१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** सभी पुण्यवानों में श्रेष्ठ राजन् आप अपना कुशल बतलाइये। आपको प्राप्य क्या है उसे आप शीघ्र बतलायें ॥६२॥ जो एक बार भी **नमो नारायणाय** इस मन्त्र का उच्चारण कर लेता है मैं उसका सदा अनुपाल्य हो जाता हूँ। वहीं मेरा भाई तथा पिता है ॥६३॥ जो मेरे नारायण इस नाम का स्मरण करता है, मैं उसके समस्त काम्य पदार्थों को उसी प्रकार प्रदान कर देता हूँ जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की कामनाओं को पूरा करता है ॥६४॥ हे राजश्रेष्ठ ! तुम मेरे भक्त हो अतएव अपने मनोरथ को तुम बतलाओ। इस समय आपको मैं किस वस्तु को प्रदान करूँ ॥६५॥ **राजा ने कहा—** हे दयासागर ! आपने मुझे सब कुछ प्रदान किया है। मैं पापी हूँ फिर भी आपके दुर्लभ लोक को प्राप्त किया हूँ ॥६६॥ उस राजा के इस वाक्य से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उस राजा को प्रेम पूर्वक बैठाये। उसके

ततः सुवर्णालङ्कारैर्विश्वकर्मविनिर्मितैः। चकार मण्डनं तस्य स्वमेव दयामयः ॥६८॥
अथ नानाविधैर्भक्ष्यैर्दिव्यैरपिसुदुर्लभैः । तोषितः स महीपालो विष्णुनाऽतिसहिष्णुना ॥६९॥
एवं प्रतिदिनं तस्थौ स राजा विष्णुमन्दिरे। मन्वन्तरसहस्राणि नववर्षशतानि च ॥७०॥
प्रजानां पालनं चक्रे स राजा धर्मतत्परः। पूजयामास सततं भक्तया परमया हरिः ॥७१॥
चारुचम्पकपुष्पैश्च नैवेद्यैर्विविधैश्च सः। आयुःशेषे स भूपालो मरणं जाह्नवीजले ॥७२॥
समासाद्य ययौ मोक्षं प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥७३॥

व्यास उवाच

विप्र ! चम्पकपुष्पस्य प्रभावोऽयंप्रकीर्तितः। चम्पकैर्हरिमभ्यर्च्य मुक्ताःस्युःपापिनो जनाः ॥७४॥
स्फुटचम्पकपुष्पेण पूजितो भगवान्हरिः। अचिरेणैव विप्रर्षे ! ददाति परमं पदम् ॥७५॥
ये यजन्ति परात्मानमिच्छया वाप्यनिच्छया। तेऽपि यान्ति परंधाम विमुक्ताःसर्वपातकैः ॥७६॥

हरौ प्रसन्ने दुरितानि कोऽपियतः स राजा कृतपातकोऽपि ।
जगाम मोक्षं कृपया मुरारेर्विश्वार्णवं निम्नमिमं वितीर्य ॥७७॥
दिव्यैः सुगन्धैः कनकप्रसूनैर्नारायणं पद्मदलायताक्षम् ।
भक्त्या यजेद्यः परमादरेण मर्त्यो व्रजेत्तं तु विहाय पापम् ॥७८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे चम्पकपुष्पमहिमा नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

विषय में आप सुनें । उसके बाद विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित सुवर्णालङ्कारों से स्वयं भगवान् ने उसे अलंकृत किया ॥६८॥ उसके बाद अनेक प्रकार के अत्यन्त दुर्लभ तथा दिव्य भोजन के द्वारा उस राजा को संतुष्ट किए; क्योंकि श्रीभगवान् अत्यन्त सहिष्णु हैं ॥६९॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु के भवन में राजा प्रतिदिन रहते थे । वे वहाँ हजारों मन्वन्तर तथा नव सौ वर्षों तक रहे ॥७०॥ और धर्म में तत्पर रहकर प्रजाओं का पालन किए । अत्यन्त भक्ति पूर्वक श्रीहरि का पूजन किए ॥७१॥ वे सुन्दर चम्पा के पुष्प से तथा अनेक प्रकार के नैवेद्यों के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा करते थे । आयु के अन्त में वह राजा गङ्गा के जल में मृत्यु प्राप्त करके भगवान् चक्रपाणि की कृपा से मोक्ष को प्राप्त कर लिए ॥७२-७३॥ **व्यासजी ने कहा—** हे विप्र ! स्वर्ण चम्पा का यह प्रभाव मैंने बतलाया है चम्पा के फूल से श्रीहरि की पूजा करके पापी भी जीव मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥७४॥ विकसित चम्पा के पुष्प से पूजित होकर श्रीहरि हे विप्रर्षे! शीघ्र ही परमपद को प्रदान कर देते हैं ॥७५॥ जो लोग इच्छा पूर्वक अथवा अनिच्छा पूर्वक श्रीहरि की पूजा करते हैं वे भी सभी पापों से मुक्त होकर परम धाम में जाते हैं ॥७६॥ वह पापी राजा भी चूकि मोक्ष को प्राप्त कर लिया । अतएव श्रीहरि के प्रसन्न हो जाने पर सब पाप विनष्ट हो जाते हैं । उसने श्रीहरि की कृपा से इस संसार सागर को पार कर लिया ॥७७॥ दिव्य सुगन्धित स्वर्ण चम्पा के फूलों से जो कमलनयन श्रीभगवान् नारायण की अत्यन्त आदर पूर्वक एवं भक्ति पूर्वक पूजन करता है वह अपने समस्त पापों का परित्याग करके श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है ॥७८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोग सार नामक खण्ड के स्वर्ण चम्पा की महिमा वर्णन नामक दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

व्यास उवाच

जैमिने ! विधिना येन पूजितव्यो हरिः सदा ।
तमहं वच्मि विप्रर्षे ! शृणु वत्स समाहितः ॥१॥

कल्यउत्थाय पर्यङ्काद् गृहीत्वापात्रमम्भसाम्। बहिर्देशंव्रजेत्प्राज्ञःशीर्षमाच्छाद्यवाससा ॥२॥
तत्रोदीच्यां दिशि मौनीयज्ञसूत्राणि कर्णयोः। कृत्वोपविष्टःप्राज्ञस्तु मलमूत्रं विसर्जयेत् ॥३॥
देवतायतने मार्गे गोष्ठेषु चत्वरेषु च। रथ्यायां कृष्टभूमौ च दर्भमूले तथाऽङ्गणे॥४॥
तटिनीपुलिने चैत्यवृक्षमूले तथावने। तडागवापीगर्भेषु मलं मूत्रं च न त्यजेत्॥५॥

रविं चन्द्रमसं चैव द्विजान् गाश्च दिशो दश ।
मलं मूत्रं त्यजेद्यावत्तावत्प्राज्ञो न पश्यति ॥६॥

खनितां मूषिकाद्यैश्चबिलाभ्यन्तरवर्तिनीम्। फालकृष्टां मृदश्चैव न गृह्णीयाच्छौचहेतवे ॥७॥
जलाज्जलं समानीय शौचं कुर्याद्विचक्षणः। पादं जलेषु वै दत्त्वा न शौचं कुरुते बुधः॥८॥

दक्षिणाभिमुखो रात्रौ कुर्यात्प्राज्ञो बहिःक्रियाम् ।
शिरः प्रावृत्त्य वस्त्रेण ततः शौचं समाचरेत् ॥९॥

मृत्तिकैका प्रदातव्या लिङ्गे तिस्रस्तु वै गुदे। सप्त सव्ये करे प्राज्ञैर्हस्तयोरुभयोर्दश॥१०॥

पादयोः षट्प्रदातव्या मृत्तिका च विचक्षणैः ।
कृतशौचक्रियःप्राज्ञः कुर्याद्दन्तस्य धावनम् ॥११॥

श्रीहरि की पूजा की विधि का वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे जैमिने ! जिस विधि से श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए हे विप्रर्षे ! उसे तुम सावधान होकर सुनो ॥१॥ प्रातः काल शय्या से उठकर जल का पात्र लेकर प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि कपड़े से शिर को ढंककर बाहर जाय ॥२॥ उसके बाद मौन होकर उत्तर दिशा में जाकर कानों पर यज्ञोपवीत को चढ़ाकर उसे मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए ॥३॥ मन्दिर में या मार्ग पर, या गोशाला में, या चौराहे पर, या गली में, या जोती गयी भूमि पर, या कुश की जड़ में या आँगन में ॥४॥ या नदी के तट पर, या चैत्य वृक्ष के नीचे, या जल में, या वन में, या सरोवर में, या बावली में मल-मूत्र का त्याग न करें ॥५॥ सूर्य, चन्द्रमा, ब्राह्मण, गौ तथा दशो दिशाओं में जब तक मल-मूत्र का त्याग करे तब तक न देखें ॥६॥ चूहे आदि से खनी गयी, या बिल के भीतर विद्यमान, या फाल से जोती गयी मिट्टी को शौच के लिए न ले ॥७॥ बुद्धिमान को चाहिए कि वह जल से जल निकालकर शौच करे । विद्वान् जल में पैर रखकर शौच नहीं करते हैं ॥८॥ प्राज्ञ पुरुष रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके तथा वस्त्र से शिर को ढंककर शौच किया करें ॥९॥ लिङ्ग में एक बार मिट्टी लगाये, तीन बार मल स्थान में मिट्टी लगाये । बायें हाथ में सात बार दोनों हाथों में दश बार मिट्टी लगाये ॥१०॥ विचक्षण पुरुष दोनों पैरों में छह-छह बार मिट्टी लगाये शौच क्रिया करने के बाद दातौन करे ॥११॥ जीभ तथा ओष्ठों को भी

जिह्वापामार्जनञ्चैव दशनाच्छादनादिभिः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पश्चिमाभिमुखस्तथा ॥१२॥
न दन्तधावनं कुर्यात्कुर्याच्चेन्नारकीभवेत्। मध्यमानामिकाभ्यां च वृद्धाङ्गुष्ठेन च द्विज ! ॥१३॥
दन्तस्य धावनं कुर्यान्न तर्जन्या कदाचन। अश्वत्थवटवृक्षाणां धात्र्या कैथिकया बुधः ॥१४॥
न दन्तधावनं कुर्यात्तथेन्द्रस्य सुरस्य च । नित्यं कियाफलं तस्य सर्वमेव विनश्यति ॥१५॥
यः स्नानसमये कुर्याज्जैमिने ! दन्तधावनम् ।
निराशाः पितरो यान्ति तस्य देवाःसुरर्षयः ॥१६॥
दन्तस्य धावनं कुर्याद्यो मध्यह्नापराह्नयोः । तस्य पूजां न गृह्णन्ति देवताः पितरो जलम् ॥१७॥
स्नानकाले पुष्करिण्यां यः कुर्याद्दन्तधावनम् ।
ततो ज्ञेयः स चाण्डालो यावद्गङ्गां न पश्यति ॥१८॥
भगवत्युदिते सूर्ये यः कुर्याद्दन्तधावनम् । तद्दन्तकाष्ठं पितरो भुक्त्वा गच्छन्ति दुःखिनः॥१९॥
उपवासदिने विप्र ! पितृश्राद्धदिने तथा । न तत्फलमवाप्नोति दन्तधावनकृन्नरः ॥२०॥
प्रभाते मार्जयेद्दन्तान्वाससा रसनां तथा । कुर्याद्द्वादश विप्रेन्द्र ! कल्लोलानि जलैर्बुधः॥२१॥
उपवासे पितृश्राद्धे विधिनाऽनेन जैमिने !। दन्तधावनकृन्मर्त्यः सम्पूर्णं लभते फलम्॥२२॥
अनेन विधिना कृत्वा दीर्घदर्शीबहिष्क्रियाम्। ततो निजगृहं गत्वा रात्रिवस्त्रं परित्यजेत् ॥२३॥
ततो देवगृहद्वारे चोपविष्टो बुधः शुचिः। स्मरेन्नारायणं देवमनन्तं परमेश्वरम्॥२४॥
राम ! श्यामतनो ! विष्णो नारायण दयामय ! ।
जनार्दन जगद्धाम पापं मे हर केशव ! ॥२५॥

पानी से धोए । दक्षिणाभिमुख और पश्चिमाभिमुख होकर दतौन न करे ॥१२॥ जो दतौन नहीं करता है वह नारकी जीव होता है । ब्राह्मण मध्यमा, अनामिका तथा अङ्गुष्ठा से पकड़कर दतौन करे ॥१३॥ कभी भी तर्जनी अङ्गुलि से दतौन न करे । ज्ञानी कभी भी पिप्पल, बड़, आँवला तथा कैंथ की लकड़ी से ॥१४॥ तथा इन्द्र देवता के वृक्ष का दतौन न करे । ऐसा करने से उसकी समस्त क्रियाओं का फल विनष्ट हो जाता है ॥१५॥ हे जैमिने ! जो स्नान के समय दतौन करता है, उसके पितृगण, देवतागण और ऋषिगण निराश होकर चले जाते हैं ॥१६॥ जो मध्याह्न अथवा अपराह्न में दतौन करता है उसकी पूजा को देवता और जल को पितृगण नहीं स्वीकार करते हैं ॥१७॥ स्नान के समय पुष्करिणी में जो दतौन करता है, उसको तब तक चाण्डाल मानना चाहिए जब तक कि वह गङ्गाजी का दर्शन नहीं कर लेता है ॥१८॥ सूर्योदय के हो जाने पर जो दतौन करता है उसके दाँत की लकड़ी को ही पितृगण खाकर तथा दुःखी होकर चले जाते हैं ॥१९॥ जो मनुष्य उपवास अथवा श्राद्ध के दिन दतौन करता है वह उपवास तथा श्राद्ध करने के फल को नहीं प्राप्त करता है ॥२०॥ प्रातःकाल ही दतौन करे तथा वस्त्र से जीभ को साफ करें और जल से बाहर कुल्ला करे ॥२१॥ हे जैमिने ! ऐसा करने वाला उपवास तथा श्राद्ध के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है ॥२२॥ दीर्घदर्शी पुरुष इस तरह से बाहर ही क्रियाओं को करके उसके पश्चात् घर जाये और रात्रि के वस्त्रों को खोल दें ॥२३॥ उसके बाद मन्दिर के द्वार पर बैठा हुआ विज्ञ पुरुष अनन्त पुरुषोत्तम श्रीभगवान् का स्मरण करे ॥२४॥ इसके पश्चात् श्रीहरि का निम्नांकित प्रकार से स्मरण करे हे श्रीराम ! हे

पीताम्बरधरानन्तपद्मनाभ जगन्मय ! । वामन ! प्रणतस्येश ! विभो ! त्वं शरणं भव॥२६॥
दामोदर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण करुणार्णव !। कमलेक्षण देवेन्द्र ! वासुदेव कृपां कुरु ॥२७॥
गरुडध्वज गोविन्द विश्वम्भर गदाधर ! । शङ्खपाणे चक्रपाणे पद्महस्त हराऽऽपदः ॥२८॥
लक्ष्मीविलास वैकुण्ठ हृषीकेश सुरोत्तम ! ।
पुरुषोत्तम ! कंसारे कैटभारे ! भयं हर ॥२९॥
श्रीपते श्रीधर विभो श्रीद श्रीकर माधव ! ।
परं ब्रह्म परं धाम शरणं मे भवाऽव्यय ! ॥३०॥
इत्थं कृत्वा द्विजश्रेष्ठ ! श्रीविष्णुस्मरणं बुधः ।
बद्धाञ्जलिरिति ब्रूते प्रविश्य निलयं गतः ॥३१॥
ईश्वर श्रीपते कृष्ण देवकीनन्दनप्रभो ! । निद्रां मुञ्च जगन्नाथ प्रभातसमयोऽभवत् ॥३२॥
अथोस्थितमिवप्राज्ञः पर्यङ्के देवकीसुतम् । निद्रां त्यक्त्वा सलक्ष्मीकं चिन्तयेन्निजचेतसा॥३३॥
ततः कृतच्छदं दिव्यं पात्रं च जलपूरितम् । मुखप्रक्षालनार्थाय दद्यात्कृष्णाय वैष्णवः ॥३४॥
ईश्वरं वर्तनार्थाय सेवन्ते सेवका यथा । तथैव मतिमन्तोऽपि सेवन्ते परमेश्वरम्॥३५॥
यस्तु सेवकरूपेण सेवते जगदीश्वरम् । अचिरेणैव विप्रर्षे ! तस्य सिध्यति वाञ्छितम्॥३६॥
यथेश्वरस्य सभयाः सेवां कुर्वन्ति चेटकाः । प्राज्ञास्तथैव सेवन्ते सर्वदैव हरिं प्रभुम् ॥३७॥

श्याम शरीर वाले ! हे विष्णो ! हे नारायण ! हे दयामय, हे जनार्दन ! जगत् के आश्रय आप मेरे पापों को हर लें । हे केशव ! ॥२५॥ हे पीताम्बर ! हे अनन्त ! हे पद्मनाभ ! हे जगत् स्वरूप ! हे वामन! हे शरणागतजीवों के स्वामिन् ! हे विभो ! आप मेरी रक्षा करें ॥२६॥ हे दामोदर ! हे यदुश्रेष्ठ ! हे करुणासागर ! हे कमलनयन ! हे देवों के स्वामिन् ! हे वासुदेव ! आप मुझ पर कृपा करें ॥२७॥ हे गरुडध्वज ! हे गोविन्द ! हे विश्वम्भर ! हे गदाधर ! हे चक्रपाणे ! हे शङ्खपाणे ! हे हाथ में कमल धारण करने वाले आप मेरी विपत्ति को दूर करें ॥२८॥ हे लक्ष्मीविलास ! हे वैकुण्ठ ! हे हृषीकेश ! हे सुरोत्तम! हे पुरुषोत्तम ! हे कंसारे ! हे कैटभारे ! आप मेरे भय को दूर करें ॥२९॥ हे श्रीपते ! हे श्रीधर ! हे विभो! हे ऐश्वर्य प्रदान करने वाले ! हे श्रीकर ! हे माधव ! हे परंधाम ! हे परं प्राप्य ! हे अव्यय ! आप मेरी रक्षा करें ॥३०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह से भगवान् विष्णु का स्मरण करके श्रीभगवान् के मन्दिर में प्रवेश करके हाथ जोड़कर कहे ॥३१॥ हे ईश्वर ! हे श्रीपते ! हे कृष्ण ! हे देवकी नन्दन ! आप लक्ष्मीजी के साथ नींद का परित्याग करें । हे जगत् स्वामिन् ! आप अपनी निद्रा का परित्याग करे प्रात:काल की बेला हो गयी हैं ॥३२॥ उसके पश्चात् प्राज्ञ पुरुष इस प्रकार का चिन्तन अपने मन में करे कि श्रीभगवान् निद्रा का परित्याग करके श्रीलक्ष्मीजी के साथ शय्या पर बैठ गये हैं ॥३३॥ उसके बाद दिव्य पर्दा लगाकर दिव्य पात्र को जल से भरकर बैष्णव पुरुष श्रीभगवान् को मुखधोने के लिए प्रदान करे॥३४॥ जिस तरह अपने स्वामी के कार्यों को करने के लिए उसके सेवक उसकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार से बुद्धिमान पुरुष श्रीभगवान् की सेवा करते हैं ॥३५॥ हे विप्रर्षे ! जो श्रीभगवान् की सेवा सेवक रूप से करते हैं उनके सारे मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं ॥३६॥ जिस तरह सेवक राजा की सेवा

निजेच्छयाऽनयाविष्णुं निर्भयः पूजयेन्नरः । कुसेवकः स एवास्ति तदा नहि भवेद् द्विज !॥३८॥
अतएव द्विजश्रेष्ठ ! त्वरया कमलापतेः । कर्त्तव्या सर्वदा सेवा पुंसा कैवल्यमिच्छता ॥३९॥
निर्माल्यं रात्रिवस्त्रं च गन्धं पर्युषितं तथा । हरेरुत्तारयेदङ्गात्प्रभाते वैष्णवो जनः ॥४०॥
ततो देवालये तस्मिन्स्वयमेव हि मार्जयेत् ।
कुर्याच्छनैः शनैः प्राज्ञः सम्मार्जन्या परिष्क्रियाम् ॥४१॥
यावन्तो निलयात्तस्माद्गच्छन्ति रेणवो बहिः । तावन्मन्वन्तरशतं तिष्ठेद्विष्णुगृहे नरः॥४२॥
यस्तु सम्मार्जनं कुर्याद् ब्रह्महाऽपि हरेर्गृहे । सोऽपि याति परं धाम किमन्यैर्बहुभाषितैः॥४३॥
तथोपलेपनं कुर्यादूर्णकैर्गोमयैर्द्विज !। तस्मिन्विष्णुगृहे प्राज्ञः स्मरेन्नारायणं प्रभुम् ॥४४॥
यस्तूपलेपनं कुर्यात्केशवस्य च मन्दिरे । तस्य पुण्यमहं वच्मि संक्षेपाच्छृणु जैमिने ॥४५॥
रजांसि तत्र यावन्ति विनश्यन्ति द्विजोत्तम ! ।
तावत्कल्पसहस्राणि तिष्ठेद्विष्णुगृहे सुखी ॥४६॥
सम्मार्जनं विष्णुगृहे जनः कृत्वोपलेपनम् । लभते परमं धाम किं पूजाफलवित्प्रभो !॥४७॥
देशकालविरोधेन न शक्नोति यदा स्वयम् । तदा विष्णुगृहेचाऽपि धर्मपत्नींनियोजयेत् ॥४८॥
अथवा तनयं भक्तं सुचरित्रं तथाऽऽत्मनः । भ्रातरं भागिनीं वाऽपि देवागारे नियोजयेत् ॥४९॥
हरेः सपर्यावस्तूनि सप्तधा शुद्धवारिभिः । प्रक्षालयेत्त्रधा वाऽपि स्वयमेवाऽतियत्नतः ॥५०॥

सदा भयभीत होकर करते हैं उसी तरह से प्राज्ञ पुरुष सर्वदा श्रीहरि की सेवा करते हैं ॥३७॥ जो अपनी इच्छा के अनुसार श्रीभगवान् की सेवा करते हैं वे हे द्विज ! वे कुसेवक हैं, वैसा नहीं होना चाहिए ॥३८॥ अतएव हे द्विजश्रेष्ठ ! कैवल्य चाहने वाले को चाहिए कि वह शीघ्र ही श्रीलक्ष्मीपति की पूजा सर्वदा करता रहे ॥३९॥ वैष्णव को चाहिए कि वह प्रात:काल श्रीहरि के शरीर से निर्माल्य, रात्रि के वस्त्र, चन्दन तथा वसिया वस्तुओं को उतार दे ॥४०॥ उसके बाद उस मन्दिर में स्वयम् ही सफाई का काम करें । प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह झाड़ू से धीरे-धीरे झाड़ू लगाने का काम करे ॥४१॥ उस मन्दिर से जितनी धूल बाहर निकलती हैं, वह उतने ही मन्वन्तर पर्यन्त श्रीभगवान् विष्णु के धाम में निवास करता है ॥४२॥ यदि कोई ब्रह्मघाती भी श्रीहरि के मन्दिर में सफाई करने का काम करता है तो वह भी श्रीहरि के धाम में जाता है दूसरों के विषय में क्या कहना है ॥४३॥ हे द्विज ! उसके बाद लिपने का काम उर्णक और तथा गोबर से करे, प्राज्ञ उसी तरह श्रीहरि श्रीभगवान् नारायण का स्मरण करे ॥४४॥ जो भगवान् केशव के मन्दिर में लिपने का काम करता है, हे जैमिने ! उसको प्राप्त होने वाले पुण्य को मै संक्षेप में बतलाता हूँ उसे सुनो। हे द्विजोत्तम ! लिपने पर जितने धूलिकण समाप्त होते हैं, वह उतने हजार कल्प पर्यन्त भगवान् विष्णु के धाम में सुखी होकर निवास करता है ॥४५-४६॥ जो मनुष्य भगवान् विष्णु के मन्दिर में सफाई तथा लिपने के काम को करता है । वह भी श्रीभगवान् के धाम को प्राप्त करता है तो पूजा के फल को जानने वाले के विषय में क्या कहना है ?॥४७॥ यदि देश और काल के प्रतिकूल होने के कारण वह स्वयम् इस कार्य को नहीं कर सके तो उस कार्य में अपनी पत्नी को लगा दे ॥४८॥ अथवा अपने सुन्दर चरित्र तथा भक्त पुत्र को तथा अपने भाई या बहन को मन्दिर में लगा दे ॥४९॥ वह श्रीहरि की पूजा के पात्रों को सात बार या तीन बार शुद्ध जल से स्वयं सावधानी पूर्वक शुद्ध करे ॥५०॥ ताम्बे के पात्र की आँवले से तथा

अम्लेन ताम्रपात्राणि कांस्यपात्राणि भस्मना ।
वह्निना लोहपात्राणि शुध्यन्ति नाऽत्रसंशयः ॥५१॥
धनाढ्यो लोहपात्रस्थैर्यः स्नापयति वारिभिः ।
नारायणं जगन्नाथं तस्य तुष्टो न केशवः ॥५२॥
अज्ञानाद्वाऽपि चेत्तर्हि गङ्गास्नानेन शुद्ध्यति। सम्पदि ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कर्त्तव्यो नियमःसदा ॥५३॥
विपत्त्यां नियमो नास्ति शास्त्रेष्विति विनिश्चयः ।
यत्नात्प्रक्षालितः शङ्खो यदा भूमिं स्पृशेत्पुनः ॥५४॥
तदा सा शङ्खो विप्रेन्द्र ! शतधौतेन शुध्यति ।
इत्थं प्रक्षाल्य यत्नेन पूजाद्रव्याणि चक्रिणः ॥५५॥
गृहीत्वा स्नानवस्तूनि स्नानार्थं सरसीं व्रजेत् ।
अकृत्वास्नानकर्माणिगृहमायातियः पुनः ॥५६॥
तस्मिन्दिने पितृगणस्तस्य नाप्नोति तर्पणम् । स्नानार्थं भोजनार्थं वागच्छतोविघ्नकृद्भवेत् ॥५७॥
यस्तु मोहाद्द्विजश्रेष्ठ ! स नूनं नारकीभवेत् ।
स्नानार्थं सरसीं गत्वा मलमूत्रंकरोति यः ॥५८॥
पितरस्तस्य विण्मूत्रभोजिनः स्युर्न संशयः । ततः कृत्वा विधानेन स्नानं च तर्पणादिकम् ॥५९॥
स्वकीयं गृहमागच्छेत्स्मरन्नारायणं बुधः । ततश्च प्राङ्गणे विप्र ! प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥६०॥
प्रविशेद्देवगतागारं शुचिर्ब्राह्मणसत्तम !। अप्रक्षालितपादो यः प्रविशेन्निलयं जनः ॥६१॥
सम्वत्सरकृतं पुण्यं तस्य नश्यति तत्क्षणात् ।
स्नानं कृत्वा समागत्य प्राङ्गणेषु विचक्षणः ॥६२॥

कांसे के पात्रों की भस्म से, लोहे के पात्रों की अग्नि से शुद्धि होती है ॥५१॥ यदि धनिक भी व्यक्ति लोहे पात्र के जल से श्रीहरि को स्नान कराता है तो भगवान् नारायण उससे सन्तुष्ट नहीं रहते हैं ॥५२॥ यदि वह अज्ञान वशात् भी ऐसा करता है तो वह गङ्गाजी में स्नान करके ही शुद्ध होता है । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! सम्पत्ति में भी नियमों का पालन करना चाहिए ॥५३॥ विपत्तिकाल में कोई भी नियम नहीं हो पाता है यह शास्त्रों का निर्णय है । अच्छी तरह से धोए गये शङ्ख का यदि पुनः पृथिवी का स्पर्श हो जाता है तो॥५४॥ हे विप्रेन्द्र ! वह शङ्ख सौ बार धोने से शुद्ध हो जाता है । इस तरह श्रीभगवान् की पूजा के द्रव्यों को सावधानी पूर्वक धोकर स्नान की वस्तुओं को लेकर स्नान करने के लिए सरोवर में जाय । जो मनुष्य स्नान किए बिना ही फिर यदि घर आ जाता है ॥५५-५६॥ तो उस दिन उसके पितृगण तर्पण के जल को नहीं ग्रहण करते हैं । हे द्विज श्रेष्ठ ! स्नान करने के लिए अथवा भोजन करने के लिए जाते हुए को जो विघ्न करता है वह निश्चित रूप से नारकी होता है । जो स्नान करने के लिए सरोवर पर जाकर मल-मूत्र का त्याग करता है ॥५७-५८॥ तो उसके पितृगण मल-मूत्र का ही भोजन करने वाले हो जाते हैं । उसके बाद विधि पूर्वक स्नान तथा तर्पण करके ॥५९॥ अपने घर भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए आना चाहिए। हे विप्र ! उसके बाद आङ्गन में दोनों पैरों को धोकर ॥६०॥ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! देवगृह में पवित्र ब्राह्मण

तस्मात्प्रक्षाल्य चरणौ प्रविशेद्देवतागृहम् । उपविश्य पादयुग्मं बुधः सव्येन पाणिना ॥६३॥
यत्नात्प्रक्षालयेद्विप्र ! तथा पाणिद्वयम्पुनः । पादेन पादं विप्रेन्द्र ! तथा दक्षिणपाणिना ॥६४॥
यश्च प्रक्षालयेन्मूढस्तं लक्ष्मीस्त्यजति ध्रुवम् । अथोपविष्टो मतिमान्केशवार्चनमारभेत् ॥६५॥
अनन्यमानसो भूत्वा सर्वकामफलप्रदम् । मृगचर्मासने शुद्धे व्याघ्रचर्मासनेऽपि वा ॥६६॥
वस्त्रासने केवले च तथा कुशमयासने । पुष्पासने चोपविष्टः पूजयेत्कमलापतिम् ॥६७॥

काष्ठासने द्विजो विद्वान्न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
विष्णुना त्वं धृता पृथ्वि ! सर्वे लोकास्त्वया धृताः ॥६८॥
अतः सर्वं सहे देवि वस्तुं मे स्थानमुत्तमम् ।
इत्युक्त्वासनमास्तीर्य वसेन्नारायणार्चकः ॥६९॥

दक्षिणाभिमुखोभूत्वा न कुर्याद्विष्णुपूजनम् । शङ्खे कृत्वा तुपानीयं मन्त्रपूतं सुवासितम् ॥७०॥
स्नापयेत्कमलाकान्तं कमलासहितं प्रभुम् । शङ्खेन स्नापयेद्यस्तु भगवन्तं जनार्दनम् ॥७१॥

तत्फलं तस्य वक्ष्यामि श्रृणु विप्रेन्द्र जैमिने ! ।
विप्रगोस्त्रीभ्रूणहत्यासुरापानादिपातकैः ॥७२॥
विमुक्तो याति वैकुण्ठं भुङ्क्ते हि सकलं सुखम् ।
यदि दृष्ट्वा हृषीकेशं पूजयेन्मानवो द्विज ! ॥७३॥

को ही प्रवेश करना चाहिए जो मनुष्य पैर धोए बिना मन्दिर में प्रवेश करता है ॥६१॥ उसका एक वर्ष में किया गया पुण्य उसी क्षण विनष्ट हो जाता है । निपुण व्यक्ति को चाहिए कि वह स्नान करके आकर आङ्गन में ही ॥६२॥ अपने दोनों चरणों को धोकर देवगृह में प्रवेश करे । ज्ञानी व्यक्ति बैठ कर अपने बायें हाथ से ॥६३॥ सावधानी पूर्वक पैर धोए और दोनों हाथों से कभी न धोए । हे विप्रेन्द्र! जो पैर से पैर को अथवा दाहिने हाथ से ॥६४॥ पैर धोता है उसको लक्ष्मीजी निश्चित रूप से त्याग देती हैं । उसके बाद बुद्धिमान व्यक्ति बैठकर भगवान् केशव की पूजा प्रारम्भ करे ॥६५॥ शुद्ध मृगचर्मपर अथवा व्याघ्र चर्म पर बैठकर अथवा केवल वस्त्र के आसन पर या जिसके ऊपर कुशासन हो ऐसे आसन पर अथवा पुष्पमय आसन पर बैठकर अनन्यमना होकर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले लक्ष्मीपति की पूजा करे ॥६६-६७॥ विद्वान् ब्राह्मण काष्ठ के आसन पर बैठकर भगवान् विष्णु की पूजा न करे । भगवान् नारायण का पूजन करने वाला हे देवि तुमको भगवान् विष्णु ने धारण किया है और सभी लोकों को तुमने धारण किया है। अतएव सबकुछ वर्दास्त करने वाली देवि मुझको बैठने के लिए उत्तम स्थान दें । यह कहकर आसन बिछाकर उस पर बैठे ॥६८-६९॥ दक्षिणाभिमुख होकर भगवान् विष्णु की पूजा न करे । मन्त्र से पवित्र किए गये तथा सुगन्धित जल को शङ्ख में रखकर ॥७०॥ लक्ष्मीजी के साथ विद्यमान भगवान् विष्णु को स्नान कराये जो लक्ष्मीपति श्रीभगवान् को शङ्ख के जल से स्नान कराता है ॥७१॥ उससे उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ उसे हे जैमिने ! आप सुनें ! यह ब्रह्महत्या, स्त्री हत्या, गोवध, भ्रूण हत्या, मदिरा पान आदि पापों से ॥७२॥ छूटकर वैकुण्ठ में चला जाता है और वहाँ सभी सुखों को भोगता है। हे द्विज ! यदि श्रीभगवान् का दर्शन करके मनुष्य उनकी पूजा करता है तो वह लक्ष्मीपति की कृपा से अपनी सारी अभिप्रेत वस्तुओं को प्राप्त कर लेता हैं । शङ्ख के अभाव में विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह

लभते तत्तदेवाऽऽशु प्रसादात्कमलापतेः। शङ्खाभावे तु विप्रेन्द्र ! सुगन्धितोयकं बुधः ॥७४॥
कृत्वा च तुलसी पात्रे स्नापयेत्केशवं बुधः ।
ततो देवं स्नापयित्वा संस्थाप्यच वरासने ॥७५॥
सुगन्धैश्चन्दनैस्तस्य कुर्यात्सर्वाङ्गलेपनम्। तुलसीकाष्ठपङ्केन चक्रिणो देहलेपनम् ॥७६॥
यः करोति जनस्तस्य प्रसन्नः सततं हरिः। तुलसीपत्रमालेयं निजगन्धसुखप्रदा ॥७७॥
दीयते ते जगन्नाथ ! सुप्रीतो भव सर्वदा । मन्त्रेणाऽनेन विप्रेन्द्र तुलसीपत्रमालया॥७८॥
अलङ्कृतो महाविष्णुः प्रसन्नो न ददाति किम् ।
ततस्तुवैदिवैर्मन्त्रैः कर्तव्यं स्वस्तिवाचनम् ॥७९॥
दिग्बन्धनञ्चकर्तव्यं मन्त्रैःपौराणिकैर्बुधैः । कृष्णो रक्षतु पूर्वस्यामाग्नेय्यां देवकीसुतः ॥८०॥
याम्यां रक्षतु दैत्यारिर्नैर्ऋत्यां मधुसूदनः। विदिक्षु रक्षतु श्रीमानूर्ध्व च श्रीधरः प्रभुः ॥८१॥
अधो रक्षतु विश्वात्माकूर्ममूर्तिःकृपामयः। ये विघ्नकारकाःसर्वेपूजाकाले भवन्ति ह॥८२॥
दूरं गच्छन्तु ते सर्वे हरिनामास्त्रताडिताः। इत्थं दिग्बन्धनं कृत्वा ततः प्रह्वः कृताञ्जलिः॥८३॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण संकल्पं कुरुते दृढम्। मयाऽऽरब्धामिमां पूजां देवदेव जनार्दन॥८४॥
सिद्धिं प्रापय निर्विघ्नां प्रसीद परमेश्वर !। ततस्तु कृतसङ्कल्पो वैष्णवः सर्वतत्त्ववित्॥८५॥
अङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेन्नारायणं हृदा। नवीनमेघसङ्काशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥८६॥
पीताम्बरधरं देवं स्मितचारुतराननम्। कदम्बपुष्पमालाभिर्भूषितं सुमहाभुजम् ॥८७॥
बर्हिबर्हश्रेणिबद्धशिखण्डधृतकुण्डलम् । वंशीमधुरनादेन मोहयन्तं दिशो दश ॥८८॥

पात्र में तुलसी डालकर सुगन्धित जल से श्रीभगवान् को स्नान कराये । उसके बाद भगवान् को श्रेष्ठ आसन पर स्थापित करके ॥७३-७५॥ फिर सुगन्धित चन्दन को श्रीभगवान् के सम्पूर्ण अङ्ग में लगाये । तुलसी के काष्ठ का चन्दन बनाकर श्रीभगवान् के अङ्गों में लगाने वाले मनुष्य पर श्रीहरि सदा प्रसन्न रहते हैं । तुलसी पत्र की माला श्रीभगवान् को अपनी सुगन्धि से सुख प्रदान करती हैं ॥७६-७७॥ हे जगन्नाथ ! इसे मैं आपको प्रदान करता हूँ आप सदा प्रसन्न रहें । इस मन्त्र से हे विप्रेन्द्र ! तुलसी पत्र की माला से ॥७८॥ अलंकृत भगवान् विष्णु सभी अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करते हैं । उसके बाद वैदिक मन्त्रों से श्रीभगवान् का स्वस्ति वाचन करे ॥७९॥ विद्वानों को पौराणिक मन्त्रों से दिगबन्धन करना चाहिए । भगवान् पूर्व दिशा में रक्षा करें अग्निकोण में देवकीपुत्र रक्षा करें । दक्षिण दिशा में भगवान् दैत्यारि रक्षा करें, नैऋत्य कोण में मधुसूदन भगवान् रक्षा करें, सभी कोणों में लक्ष्मी सम्पन्न श्रीभगवान् रक्षा करें । ऊपर की ओर श्रीधर भगवान् रक्षा करें ॥८०-८१॥ नीचे की ओर दयामय विश्वात्मा कूर्म भगवान् रक्षा करें । पूजा के समय जो विघ्न करने वाले हैं ॥८२॥ वे सभी श्रीहरि के नाम रूपी अस्त्र से प्रताड़ित होकर दूर चले जायँ । उसके बाद दिग्बन्धन करके झुककर हाथ जोड़े ॥८३॥ हे देवदेव ! मेरे द्वारा प्रारम्भ की गयी पूजा को आप निर्विघ्न पूर्ण करें तथा प्रसन्न हों इस तरह से सङ्कल्प करके सभी तत्वों को जानने वाले वैष्णव, अङ्गन्यास आदि करके नवीन मेघ के समान शरीर वाले, कमल दल के समान नेत्र वाले, पीताम्बर धारण किए हुए, मुस्कान से अत्यन्त सुन्दर मुख वाले कदम्ब पुष्पों की माला से अलंकृत, विशाल भुजाओं वाले, जो मुकुट

आवृतं गोपनारीभिश्चारुवृन्दावने स्थितम् । एवं सञ्चिन्त्य देवेशं गोविन्दं सर्वकामदम् ।।८९।।
ततश्चाऽऽवाहनं कुर्याद्भक्तिभावेन वैष्णवः । आवाहिताय कृष्णाय चतुर्वर्गप्रदायिने ।।९०।।
पाद्यार्घ्याचमनीयानि तत्र दद्याद्विचक्षणः। कोमलैस्तुलसीपत्रैरम्यैर्वा कुसुमैर्बुधः ।।९१।।
पूजयेत्सर्वदेवेशं श्रीकृष्णं देवकीसुतम्। नमो मत्स्याय कूमार्य वराहाय नमोनमः ।।९२।।
नमोऽस्तु हरये तुभ्यं वामनाय नमोनमः। नमो रामाय रामाय रामाय बलिने नमः ।।९३।।
नमो बुद्धाय शुद्धाय सकृपाय नमोनमः। नमोऽस्तु कल्किने तुभ्यं नमस्ते बहुमूर्तये।।९४।।
नारायणाय कृष्णाय गोविन्दाय च शार्ङ्गिणे ।
दामोदराय देवाय देवदेवाय ते नमः ।।९५।।
हृषीकेशाय शान्ताय व्योमपादाय वै नमः । नमोऽस्तु पद्मापतये नमस्ते पद्मचक्षुषे ।।९६।।
अनन्ताय नमस्तुभ्यं गदाहस्ताय वै नमः । ताक्ष्यर्ध्वजाय वै तुभ्यं नमस्ते चक्रपाणये।।९७।।
पद्महस्ताय वै तुभ्यमच्युताय नमोनमः। नमो दैत्यारये तुभ्यं सर्वकामप्रदायिने ।।९८।।
माधवाय सुरेशाय विष्णवे परमात्मे। किरीटिने कुण्डलिने नमोऽस्तु हरये सदा ।।९९।।
नमो भगवते तुभ्यं वाहनं गरुडाह्वयम्। ॐनमोगरुडायेति मन्त्रैणैव विचक्षणः ।।१००।।
नमः शङ्खाय चक्राय गदायै च नमोनमः। नमः पद्माय खड्गाय नन्दकाय नमोनमः ।।१०१।।

में मयूर का पङ्ख धारण किए हुए, कुण्डल धारण किए हुए, मनोहर वृन्दावन में स्थित तथा गोपियों से घिरे हुए हृदय में भगवान् नारायण का ध्यान करे । इस तरह सभी कामनाओं का देवेश भगवान् गोविन्द का चिन्तन करके ।।८४-८९।। फिर वैष्णव को श्रीभगवान् का भक्ति पूर्वक आवाहन करना चाहिए । चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले आवाहित भगवान् कृष्ण को निपुण व्यक्ति पाद्य, अर्घ्य, आचमन प्रदान करे। वह कोमल तुलसी पत्र अथवा सुगन्धित पुष्पों की माला से ।।९०-९१।। देवेश, देवकी पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करें । और प्रार्थना करे मत्स्य, कूर्म वाराह रूपधारी भगवान् को नमस्कार है ।।९२।। श्रीहरि, वामन, श्रीरामचन्द्र स्वरूप बलराम स्वरूप तथा बलवान श्रीपरशुराम रूपधारी श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।९३।। कृपा से युक्त तथा शुद्ध बुद्ध रूपधारी, कल्की रूपधारी तथा अनेक रूपों को धारण करने वाले भगवान् को बारम्बार नमस्कार है ।।९४।। नारायण भगवान् को कृष्ण भगवान् को, गोविन्द भगवान् को तथा शार्ङ्गधारी भगवान् को नमस्कार है । दामोदर देव को, तथा देवों के आराध्य श्रीभगवान् को नमस्कार है।।९५।। हृषीकेश, शान्त तथा व्योम-पाद भागवान् को नमस्कार है । लक्ष्मीपति भगवान् को नमस्कार है। कमलनयन भगवान् को नमस्कार है ।।९६।। हे अनन्त ! आपको नमस्कार है । गदाधारी भगवान् को नमस्कार है । गरुड़ध्वज भगवान् को तथा चक्रपाणि भगवान् को नमस्कार है ।।९७।। कमल हाथ में धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार है । अच्युत भगवान् को नमस्कार है । दैत्यारी भगवान् को तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।९८।। माधव, सुरेश, विष्णु तथा परमात्मा को नमस्कार है । किरीट तथा कुण्डल धारण करने वाले श्रीहरि को सदा नमस्कार है ।।९९।। **ओम् गरुणाय नमः** इस मन्त्र से हे भगवन्! आपको नमस्कार है । यह आपका गरुडत्र नामक वाहन है । यह कहकर गरुड़ को समर्पित करे ।।१००।। **शङ्खाय नमः, चक्राय नमः, गदायै नमः, पद्माय नमः, खड्गाय नमः, नन्दकाय**

इति सम्पूज्य देवेशं सदारं च सवाहनम्। सायुधं च ततो मन्त्रं जपेदष्टाक्षरं बुधः ॥१०२॥

निजभक्त्या ततो जप्त्वा मन्त्रमष्टाक्षरं बुधः।
गोविन्दाय ततो दद्यान्नानानैवेद्यमुत्तमम् ॥१०३॥

धूपं दीपं च ताम्बूलं देवदेवाय विष्णवे। अन्यान्यप्युपहाराणि प्रदद्याद्वैष्णवो जनः ॥१०४॥

यस्तु धूपं द्विजश्रेष्ठ ! चन्दनागरुवासितम्। दद्यान्मुरारये तस्य द्रुतं सिध्यति वाञ्छितम् ॥१०५॥

धूपं यच्छति यो विप्र ! हरये घृतवासितम्।
सगच्छेद्विष्णुभवनं विमुक्तः पापकोटिभिः ॥१०६॥

नारायणाय यो धूपं दद्याद्गुग्गुलुवासितम्। स याति परमं धाम दुर्लभं यत्सुरैरपि ॥१०७॥

घृतेन दीपं यो दद्यात्तिलतैलेन वा पुनः। निमेषात्सकलं तस्य पापं हरति केशवः ॥१०८॥

कर्पूरवासितं यस्तु ताम्बूलं चक्रपाणये। दद्यात्तस्य द्विजश्रेष्ठ ! मुक्तिर्भवति जैमिने ! ॥१०९॥

यस्तु यच्छति ताम्बूलं खदिरेण समन्वितम्। इह भुक्त्वाऽखिलान्भोगानन्तेयाति हरेःपदम् ॥११०॥

षष्ठीधुरिकायुक्तं तथा जातिफलादिभिः। ताम्बूलं हरये दत्त्वा स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥१११॥

शङ्खे कृत्वा तु पानीयं कुर्याद्विष्णुप्रदक्षिणम्।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणजैमिनेवैष्णवो जनः ॥११२॥

जनार्दन जगद्बन्धो शरणागतपालक !। त्वद्दासदासदासत्त्वं दासस्य देहि मे प्रभो ! ॥११३॥

मन्त्रेणाऽनेन यः कुर्यान्नारायणप्रदक्षिणम्। तस्य पुण्यफलं वाच्मि संक्षेपाच्छृणु जैमिने ॥११४॥

नमः इन मन्त्रों से पूजा करके पत्नी, वाहन तथा आयुध धारण किए हुए भगवान् को इन वस्तुओं को समर्पित करे ॥१०१-१०२॥ अपनी भक्ति के अनुसार अष्टाक्षर मन्त्र का जप करके, विद्वान् को चाहिये कि वह भगवान् गोविन्द को अनेक प्रकार का नैवेद्य समर्पित करे ॥१०३॥ धूप, दीप तथा ताम्बूल देवाधिदेव भगवान् विष्णु को समर्पित करके वैष्णवों को चाहिए कि वे दूसरे भी उपहारों को श्रीभगवान् को समर्पित करें ॥१०४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो चन्दन तथा अगरु से सुगन्धित धूप समर्पित करता है, उसको सभी वांछित वस्तुओ की प्राप्ति शीघ्र ही होती है ॥१०५॥ हे द्विज ! जो घृत मिश्रित धूप श्रीहरि को देता है, वह करोड़ों पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१०६॥ जो गुग्गुल से सुगन्धित धूप भगवान् विष्णु को समर्पित करता है। वह देवताओं लिए भी दुर्लभ परम धाम में जाता है ॥१०७॥ जो श्रीभगवान् को घी अथवा तिल के तेल का दीपक समर्पित करता है, उसके सभी पापों को भगवान् केशव एक ही निमेष में दूर कर देते हैं ॥१०८॥ जो भगवान् चक्रपाणि को कर्पूर से सुगन्धित ताम्बूल प्रदान करता है हे जैमिने ! उसकी मुक्ति हो जाती है ॥१०९॥ जो खैर से युक्त ताम्बूल श्रीभगवान् को प्रदान करता है वह इस लोक में समस भोगों को भोगकर अन्त में श्रीहरि के धाम में जाता है ॥११०॥ जेठी मधु के साथ जाति फल से युक्त ताम्बूल श्रीहरि को समर्पित करके मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है॥१११॥ शङ्ख में पानी रखकर भगवान् विष्णु की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। हे जैमिने ! वैष्णव को आगे के मन्त्र से प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥११२॥ हे जनार्दन ! हे जगद्बन्धो ! हे शरणागत पालक मुझ दास को अपने दासों के दासों को दासता प्रदान करें ॥११३॥ इस मन्त्र से जो भगवान् नारायण की प्रदक्षिणा करता है,

ब्रह्महत्यादिपापानि यानि यानि महान्ति च। तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥११५॥
यावत्पादं नरो भक्त्या गच्छेद्विष्णुप्रदक्षिणे। तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुना सह मोदते॥११६॥
हरिप्रदक्षिणे यावत्पदं गच्छेच्छनैः शनैः। पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥११७॥
प्रदक्षिणाकृत्वा सर्वं संसारे यत्फलंभवेत्। हरिं प्रदक्षिणीकृत्य तस्मात्कोटिगुणंफलम्॥११८॥
अङ्गप्रदक्षिणं कुर्याद्यस्तु नारायणाग्रतः। सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः॥११९॥
न लङ्घयेत्सोमसूत्रं धीमाञ्शम्भुप्रदक्षिणे। लङ्घितं यदि तद्विप्र!सा पूजा निष्फला भवेत्॥१२०॥
प्रदक्षिणाकारतया वारैकं यो हरिंव्रजेत्। जन्मजन्मनि विप्रेन्द्र ! सार्वभौमो भवेद्धुवम्॥१२१॥
यस्तु वारद्वयं विप्र ! कुर्याद्विष्णुप्रदक्षिणम्। ऐन्द्रं पदमवाप्नोति त्रिदिनेनाऽत्रसंशयः॥१२२॥
विष्णुप्रदक्षिणं यस्तु कुर्याद्वारद्वयं जनः। विमुक्तः सकलैः पापैः प्रविशेन्माधवीं तनुम् ॥१२३॥
भ्रामयेत्सोदकं शङ्खं केशवोपरि जैमिने। अन्ते देवालयं गत्वा स भवेत्सुरवन्दितः॥१२४॥
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ सप्तधा यस्तु केशवम्। पातकंतच्छरीरस्थं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥१२५॥
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रणमेद्यो जनार्दनम्। तस्मै लक्ष्मीपतिर्विष्णुर्ददाति परमं पदम् ॥१२६॥
भूमौ निपात्य सर्वाङ्गं हरिं प्रणमतां नृणाम्। पुण्यप्रभावं विप्रर्षे ! वदतो मे निशामय ॥१२७॥
यावद्धूरेणुभिर्नृणां भषितं स्यात्कलेवरम्। तावत्कल्पसहस्राणि तिष्ठन्ति हरिसंनिधौ॥१२८॥
ततः केशवनिर्माल्यं वैष्णवेभ्यः प्रदीयते। वैष्णवांस्तान्प्रवक्ष्यामि शृणु सत्तमजैमिने !॥१२९॥

उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ ॥११४॥ ब्रह्महत्या आदि जितने भी बड़े पाप हैं वे सबके सब प्रदक्षिणा के पग-पग पर विनष्ट हो जाते हैं ॥११५॥ मनुष्य भक्ति पूर्वक जितने डग प्रदक्षिणा में चलता है, वह उतने हजार कल्पों तक भगवान् विष्णु के साथ आनन्दानुभव करता है ॥११६॥ श्रीहरि की प्रदक्षिणा में जब तक धीरे-धीरे वह चलता है, वह प्रदक्षिणा के पग-पग पर अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है ॥११७॥ सम्पूर्ण संसार की प्रदक्षिणा करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके करोड़ गुणा फल श्रीहरि की प्रदक्षिणा करके मनुष्य प्राप्त करता है ॥११८॥ हे अङ्ग ! श्रीभगवान् नारायण के समक्ष प्रदक्षिणा करने वाला भी उसी फल को प्राप्त करता है। बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है ॥११९॥ बुद्धिमान को शङ्करजी की प्रदक्षिणा करने में सोमसूत्र को नहीं लाँघना चाहिए। हे विप्र ! यदि वह लाँघ जाय तो उस पूजा का कोई फल नहीं होता है ॥१२०॥ जो श्रीभगवान् को दाहिनी ओर करके एक बार जाता है हे विप्रेन्द्र वह सभी जन्मों तक सार्वभौम राजा होता है ॥१२१॥ हे विप्र ! जो भगवान् विष्णु की दो बार प्रदक्षिणा करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर श्रीभगवान् के शरीर में प्रवेश कर जाता है॥१२३॥ हे जैमिने ! श्रीभगवान् को ऊपर उस जल भरे शङ्ख को घुमाये। ऐसा करने वाला अन्त में श्रीभगवान् के लोक में जाकर देवताओं से वन्दित होता है ॥१२४॥ जो भगवान् केशव को दण्डे के समान पृथिवी पर गिरकर सात बार प्रणाम करता है, उसके शरीर में विद्यमान पाप भस्म हो जाता है ॥१२५॥ जो शिर पर अञ्जलि बनाकर भगवान् जनार्दन को प्रणाम करता है उसको लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु परमपद प्रदान करते हैं ॥१२६॥ पृथिवी पर अपने सभी अङ्गों को गिराकर श्रीहरि का प्रणाम करने वाले मनुष्यों के पुण्य प्रभाव को मैं बतलाता हूँ उसे सुनो ॥१२७॥ मनुष्यों का शरीर भूमि की जितनी धूलि के कणों से अलंकृत होता है उतने हजार कल्पों तक वे श्रीहरि के सन्निकट निवास करते हैं ॥१२८॥ उसके बाद श्रीहरि के प्रसाद

शुकः सूतस्तथा व्यासो नारदः कपिलोमुनिः ।
प्रह्लादश्चाम्बरीषश्च तथाऽक्रूरोद्धवावपि ॥१३०॥
विभीषणे हनूमांश्च तथैवान्येऽपि वैष्णवाः । निर्माल्यं वासुदेवस्यगृह्णन्तुसर्वकामदम् ॥१३१॥
इत्युक्त्वा विष्णुनिर्माल्यं निक्षिपेद्भुवि वैष्णवः ।
ततस्तु हरिनिर्माल्यं स्वयं गृह्णाति भक्तितः ॥१३२॥
मस्तके दृश्यते यस्य हरिनिर्माल्यमुत्तमम् ।
स विज्ञेयो द्विजश्रेष्ठ ! साक्षादेव हरिः स्वयम् ॥१३३॥
दुर्लभं विष्णुनैवेद्यं निर्माल्यं पापनाशनम् । गृह्णन्ति त्रिदशाःसर्वे मनुष्याणां च का कथा॥१३४॥
जैमिने तुलसीपत्रं यस्तु जिघ्रति वैष्णवः । तस्य देहान्तरस्थं हि सर्वंपापं विनश्यति ॥१३५॥
तुलसीपत्रगन्धस्तु प्रविशेद्यस्यनासिकाम् । आपदस्तच्छरीरस्थाःसद्योगच्छन्ति संक्षयम् ॥१३६॥
तुलसीदलगन्धं यस्समाघ्रायाऽभिनन्दति । तस्यालये भवेन्नित्यमानन्दो द्विजसत्तम ! ॥१३७॥
स्तवैः स्तुत्वा जगन्नाथं कमलाप्रियमच्युतम्। कृताञ्जलिस्ततःप्राज्ञ इमं मन्त्र मुदीरयेत् ॥१३८॥
नारायण जगद्रूप ! गच्छ धाम जगत्पते !। गच्छ देव ! निजस्थानं प्रसन्नो भव सर्वदा॥१३९॥
येयं स्वशक्त्या देवेन्द्र ! तव पूजा कृता मया ।
अच्छिद्रास्तु जगन्नाथ ! त्वत्प्रसादाज्जगन्मय ! ॥१४०॥
ततः पादोदकं प्राज्ञो महाविष्णोः परात्मनः ।
समस्तपातकध्वंसि गृह्णीयाद्भक्तिभावतः ॥१४१॥

को वैष्णवों को देना चाहिए । हे श्रेष्ठ जैमिने ! मैं जिन लोगों को वैष्णव कहता हूँ उनको तुम सुनो॥१२९॥ सूत, शुक, व्यास, नारद, कपिल मुनि, प्रह्लाद, अम्बरीष, अक्रूर, उद्धव, विभीषण, हनुमान तथा दूसरे वैष्णवों को मैं वैष्णव कहता हूँ । ये सभी भगवान् वासुदेव के सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले निर्माल्य को स्वीकार करें ॥१३०-१३१॥ इस तरह से कहकर वैष्णव भगवान् के प्रसाद को पृथिवी पर डाल दे। उसके बाद वह स्वयं श्रीभगवान् के निर्माल्य को ग्रहण करे ॥१३२॥ जिसके मस्तक पर श्रीहरि का निर्माल्य दिखायी देता है, हे द्विजोत्तम ! उसको साक्षात् श्रीहरि समझना चाहिए ॥१३३॥ भगवान् का नैवेद्य दुर्लभ है और निर्माल्य पाप विनाशक है । उसको सभी देवता स्वीकार करते हैं मनुष्यों की क्या बात हैं?॥१३४॥ हे जैमिने ! जो वैष्णव तुलसीपत्र को सूंघता है उसके शरीर के भीतर विद्यमान सारा पाप विनष्ट हो जाता है ॥१३५॥ तुलसी पत्र की सुगन्धि जिसकी नाक में प्रवेश करती है, उसके शरीर में विद्यमान सभी विपत्तियाँ शीघ्र ही विनष्ट हो जाती हैं ॥१३६॥ जो तुलसीदल की सुगन्धि को सूंघकर उसकी प्रशंसा करता है हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके घर में नित्य ही आनन्द होता है ॥१३७॥ जो लक्ष्मीपति जगत् के स्वामी भगवान् अच्युत की स्तुतियाँ करता है, वह हाथ जोड़कर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥१३८॥ हे जगत् स्वरूप भगवान् आप अपने धाम में जायँ । हे देव ! आप अपने स्थान पर जायँ और सर्वदा प्रसन्न रहें ॥१३९॥ हे देवेन्द्र ! अपनी शक्ति के अनुसार आपकी यह जो पूजा मैंने की है हे जगत् स्वरूप ! जगत् के स्वामिन् ! आपकी कृपा से परिपूर्ण हो जाय ॥१४०॥ उसके बाद वह पुरुष भगवान् विष्णु के

कणमात्रं वहेद्यस्तु विष्णोःपादोदकं शुभम्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु जैमिने ! सत्यमुच्यते ॥१४२॥
स्पृशेत्पादोदकं विष्णोर्गङ्गास्नानफलं भवेत्। गाङ्गेयं सलिलं विप्र ! विष्णुपादोदकं यतः॥१४३॥
अकालमरणं नास्ति नास्ति व्याधिभयन्तथा ।
यःस्पृशेत्पादसलिलं केशवस्यमहात्मनः ॥१४४॥
पापव्याधिविनाशार्थं विष्णुपादोदकौषधम्। पापिनोऽपि नरास्ते च पिबन्तु प्रतिवासरम् ॥१४५॥
विष्णुपादोदकं विप्र ! यः पिबेद्वैष्णवो जनः ।
पातकं तच्छरीरस्थं क्षणादेव तु नश्यति ॥१४६॥
यथौषधेन रोगास्तु हन्यन्ते देहिनो भृशम्। तथैव पातकं सर्वं विष्णुपादोदकेन च ॥१४७॥
विष्णुपादोदकं शुद्धं तुलसीपत्रसंयुतम्। यो वहेच्छिरसा विप्र ! तस्य पुण्यं वदाम्यहम्॥१४८॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तो विष्णुरूपधृत्। अन्ते विष्णुपुरं गत्वा विष्णुना सह मोदते॥१४९॥
मेरुप्रमाणहेमानि दत्त्वा भवति यत्फलम्। विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा तद्भवेदधिकं फलम्॥१५०॥
अश्वकोटिप्रदानेन तत्फलं प्राप्यते जनैः। सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा द्विजेभ्यो यत्फलं लभेत्॥१५१॥
तत्फलं लभते मर्त्यो विष्णुपादोदकं स्पृशन् ।
अश्वमेधसहस्राणि कृत्वा भवति यत्फलम् ॥१५२॥
विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा तद्भवेदधिकं फलम् ।
दीर्धिकाशतदानेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम् ॥१५३॥

पादोदक को जो सभी पापों को विनष्ट करने वाला है, उसको भक्ति पूर्वक स्वीकार करे ॥१४१॥ जो भगवान् विष्णु के शुभ चरणोदक को एक कण को भी धारण करता है हे जैमिने ! मैं सत्य कहता हूँ कि वह सभी तीर्थों में स्नान करने के फल को प्राप्त करता है ॥१४२॥ जो भगवान् विष्णु के चरणोदक का स्पर्श करता है, उसको गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है । हे विप्र ! चूकि गङ्गाजी का जल विष्णु पादोदक ही है ॥१४३॥ उसको पीता है उसकी न तो अकाल मृत्यु होती है और न उसको व्याधि का भय होता है । जो भगवान् केशव के चरणोदक का स्पर्श करता है ॥१४४॥ वह पापों तथा व्याधियों के विनाश के लिए विष्णु पादोदक रूपी औषध है । अतएव पापी मनुष्यों को भी उसे प्रतिदिन पीना चाहिए॥१४५॥ हे विप्र ! जो वैष्णव भगवान् विष्णु के पादोदक को पीता है उसके शरीर में विद्यमान पाप क्षणभर में विनष्ट हो जाते हैं ॥१४६॥ जिस तरह से शरीरधारियों के शरीर में विद्यमान रोगों को पथ्य तथा औषधियाँ विनष्ट कर देती हैं ? उसी तरह से भगवान् विष्णु का पादोदक सभी पापों को विनष्ट कर देता है । हे विप्र ! तुलसी दल मिश्रित भगवान् विष्णु के पादोदक को जो अपने शिर पर धारण करता है उसको प्राप्त होने वाले पुण्यों को मैं कह रहा हूँ ॥१४७-१४८॥ वह ब्रह्महत्यादि दोषों से रहित होकर भगवान् विष्णु के रूप को धारण करके मृत्यु के पश्चात् भगवान् विष्णु के लोक में जाकर भगवान् विष्णु के साथ आनन्दित होता है ॥१४९॥ सुमेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण का दान करके जिस फल को मनुष्य प्राप्त करता है, उससे अधिक फल भगवान् विष्णु के पादोदक को पीने से होता है ॥१५०॥ मनुष्य करोड़ों अश्वों का दान करके जिस फल को प्राप्त करता है तथा ब्राह्मणों को सप्त द्वीपा पृथिवी को दान देकर जिस फल को मनुष्य प्राप्त करता है ॥१५१॥ उससे अधिक फल भगवान् विष्णु के पादोदक का स्पर्श करने मात्र से होता है । इस

तस्मादप्यधिकं पुण्यं लभेत्पादोदकं स्पृशन् ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपादुच्यते मया ॥१५४॥
विष्णुपादोदकस्पर्शान्मुक्तो भवति मानवः । भूयोभूयोऽपि विप्रेन्द्र ! सुदृढं कथ्यते मया॥१५५॥
पुनर्न लभते जन्म स्पृशन्पादोदकं हरेः । विष्णुनैवेद्यशेषं यः सर्वपापविनाशनम् ॥१५६॥
अश्नाति भक्तिभावेन स गच्छेत्परमं पदम् । दुर्लभं विष्णुनैवेद्यं भुञ्जतो द्विजसत्तम ! ॥१५७॥
देहं त्यजन्ति पापानि ब्रह्महत्यामुखान्यपि । भुञ्जतो हरिनैवेद्यं दासीव वशगा भवेत् ॥१५८॥
मुक्तिभूमिः सुरश्रेष्ठ ! दैवतैरपि दुर्लभा । सम्पूज्य कमलाकान्तं योऽद्यान्नैवेद्यमत्यजन् ॥१५९॥
अचिरेणैव तं विष्णुर्नयति स्वां तनुम्प्रति । नैवेद्यस्य महाविष्णोर्गुणंकिंकथयाम्यहम् ॥१६०॥
यद्भुञ्जतः केशवोऽपि स्यादधीनो द्विज ! प्रभो ! ।
यजेदनेन विधिना प्रतिमासं जनार्दनम् ॥१६१॥
विधिहीनामपि श्रेष्ठां पूजां श्रीकमलापतेः ।
यः कुर्याद्भक्तिभावेन सोऽपि स्यात्केशवप्रियः ॥१६२॥
विधिज्ञो विधिना विष्णुमभ्यर्च्य लभते फलम् ।
यथोक्तविधिना विप्र नैवेद्यैर्बहुभिःप्रभो ! ॥१६३॥
पूजितोऽपि न तुष्टः स्याद्यदि भक्तिर्न तिष्ठति ।
यस्य वै यावती भक्तिर्देवदेवे जनार्दने ॥१६४॥
तावदेव फलावाप्तिस्तस्य नास्त्यत्र संशयः । अभक्त्या या हरेःपूजा क्रियते भुवि मानवैः॥१६५॥

विषय में बहुत बाते करने से कोई लाभ नहीं हैं अतएव मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥१५२-१५४॥ भगवान् विष्णु के पादोदक स्पर्श करके मनुष्य मुक्त हो जाते हैं हे विप्र ! इस बात को मैं सुदृढ रूप से कहता हूँ कि भगवान् के चरणोदक को पीकर मनुष्य फिर जन्म नहीं प्राप्त करता है । भगवान् विष्णु के नैवेद्य का शेष भाग जो सभी पापों को विनष्ट करने वाला होता हैं ॥१५५-१५६॥ उसको भक्ति पूर्वक जो खाता हैं वह परमपद को प्राप्त करता है । हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् विष्णु का नैवेद्य दुर्लभ है । उसको खाकर जो अपने शरीर का त्याग कर देता है उसके ब्रह्महत्या इत्यादि पाप दासी के समान वश में हो जाते हैं ॥१५७-१५८॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मोक्ष स्थान देवताओं के भी लिए दुर्लभ है । भगवान् लक्ष्मीपति की अच्छी तरह पूजा करके नैवेद्य को पूर्ण रूप से जो खा लेता है ॥१५९॥ उसको श्रीभगवान् शीघ्र ही अपने शरीर में मिला लेते हैं । भगवान् महाविष्णु के नैवेद्य के गुणों को मैं क्या बतलाऊँ ॥१६०॥ हे द्विज ! हे प्रभो ! उसको खाने वाले के अधीन श्रीभगवान् भी हो जाते हैं । इस विधि से प्रत्येक महीने में श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥१६१॥ जो विधि विधान से रहित भी श्रीहरि की श्रेष्ठ पूजा को करता है और भक्तिभाव से उस पूजा को जो करता है, वह भी श्रीभगवान् का प्रिय हो जाता है ॥१६२॥ विधि को जानने वाला विधि पूर्वक श्रीहरि की पूजा करके फल को प्राप्त करता है । उपर्युक्त विधि से जो ब्राह्मण अनेक प्रकार के नैवेद्यों से ॥१६३॥ बिना भक्ति के पूजा करने पर श्रीभगवान् सन्तुष्ट नहीं होते हैं । जिसकी देवाराध्य श्रीजनार्दन भगवान् में जितनी भक्ति होती है ॥१६४॥ उसको उतनी ही मात्रा में फल की प्राप्ति

सा पूजा ब्राह्मणश्रेष्ठ ! पूजाकाले भवेत्किल ।
ज्ञानमूलं हरेर्भक्तिर्भक्तिमूलं जगत्पतेः ॥१६६॥
पूजामोक्षद्रुमोत्पत्तौ मूलमाराधनं हरेः । अल्पमात्रमपि प्राज्ञ ! श्रद्धया कुरुते हि यत्॥१६७॥
तदक्षयं भवेत्सर्वं श्रद्धायुक्ताखिला क्रिया । भक्त्या यः पूजयेद्विष्णुमपि वा वारिमात्रतः॥१६८॥
संस्थानं लभते विष्णोर्यतो भक्तवशो हरिः ॥१६९॥
असारमेतद्भुवनं समस्तं सारं हरेः पूजनमेव विप्र ! ।
तस्मान्मनुष्यो निजमङ्गलैषी भक्त्या यजेत्कृष्णमनन्तमूर्तिम् ॥१७०॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
हरिपूजाविधिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

व्यास उवाच

फाल्गुने ब्राह्मणश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णं सुरवन्दितम् ।
पूजयेद्भक्तिभावेन प्रत्यहं वैष्णवो जनः ॥१॥
फाल्गुने स्नापयेद्यस्तु सर्पिषादेवकीसुतम् । फलं तस्य प्रवक्ष्यामि यतःसम्यङ् निशामय ॥२॥

होती है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । श्रीभगवान् की भक्ति के बिना ही जो पूजा की जाती हैं ॥१६५॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह पूजाकाल पर्यन्त तक ही रहती है । श्रीभगवान् की भक्ति ज्ञान मूलक होती है और ज्ञान भी भक्ति पूर्वक ही होता है ॥१६६॥ मोक्षरूपी वृक्ष की उत्पत्ति में श्रीहरि की आराधना ही मूल है । प्राज्ञ पुरुष जो श्रद्धा पूर्वक थोड़ा भी पुण्य कर्म करता है । उसकी श्रद्धा युक्त सारी क्रियाएँ अक्षय हो जाती है । जो केवल जल से भी भगवान् की पूजा श्रद्धा पूर्वक करता है ॥१६७-१६८॥ उससे वह श्रीभगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है क्योंकि श्रीहरि तो भक्त के वश में रहने वाले हैं॥१६९॥ हे विप्र ! यह सारा संसार सारहीन है और श्रीहरि की पूजा ही सार है । अतएव अपना मङ्गल चाहने वाला मनुष्य अनन्त मूर्ति श्रीभगवान् की भक्ति पूर्वक पूजा करे ॥१७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियाविधिसारयोग के श्रीहरि पूजा विधि का वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

श्रीभगवान् विष्णु की अर्चना के प्रकार पुरस्सर अश्वत्थ पूजन और विष्णु भगवान् के पूजन में होने वाले अभेद का वर्णन तथा धनञ्जय ब्राह्मण की कथा

व्यासजी ने कहा— हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! फाल्गुन के महीने में देवताओं द्वारा वन्दित भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा वैष्णवों को प्रतिदिन भक्ति भाव पूर्वक करनी चाहिए ॥१॥ जो फाल्गुन के महीने में देवकी पुत्र

सर्वयज्ञफलं प्राप्य सर्वदानफलं तथा। अन्ते याति हरेः स्थानं सर्वपापविवर्जितः॥३॥
युगकोटिसहस्राणि भुक्त्वा भोगं हरेर्गृहे। तत्रैव मोक्षमाप्नोति सम्प्राप्य ज्ञानमुत्तमम् ॥४॥
यस्तु यच्छति कृष्णाय शिशिरे गोपमूर्तये। तिलानां मोदकं दिव्यं स गच्छेद्धरिमन्दिरम् ॥५॥
यो दुग्धलड्डुकान्दद्यात्केशवाय महात्मने। स पिबेदमृतं स्वर्गे मन्वन्तरशतावधि ॥६॥

हरये ललितं खण्डं यस्तु यच्छति जैमिने ! ।
तस्य विष्णुःप्रसन्नात्मा छिनत्ति भवबन्धनम् ॥७॥

विचित्रं फलितं दिव्यं दद्याद्भगवते द्विज !। अन्ते शक्रपुरं गत्वा स भवेत्सुरवन्दितः॥८॥

निर्मलं शर्करा यच्छेद्यस्तु कृष्णाय भक्तिमान् ।
स किं न लभते विप्र ! वासुदेवप्रसादतः ॥९॥

सुपक्वं फाल्गुने मासि मधुरं बदरीफलम्। यस्तु यच्छति कृष्णाय फलं तस्य निशामय ॥१०॥
इह भुङ्क्ते सुखं सर्वं पुत्रपौत्रसमन्वितः। अन्ते हरेर्गृहं याति रथमारुह्य शोभनम्॥११॥
न दद्याद्गुडसंयुक्तं हरये बदरीफलम्। अज्ञानाद् ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दद्याच्चेन्नारकी भवेत्॥१२॥

फाल्गुने मासि यो दद्याद्धरये दाडिमीफलम् ।
सुपक्वं तत्फलं विप्र ! वदतो मे निशामय ॥१३॥

तत्रयावन्ति बीजानि तिष्ठन्ति दाडिमीफले। तावन्मन्वन्तरं विष्णोर्गृहेतिष्ठति भाग्यवान् ॥१४॥
फाल्गुने मासि यो दद्याद्धरये गुडपिष्टकम्। स विज्ञेयो द्विजश्रेष्ठ ! वाजिमेघसहस्रकृत्॥१५॥

श्रीभगवान् को घी से स्नान कराता है उसके फल को कहता हूँ उसे तुम सावधानी पूर्वक सुनो ॥२॥ वह सभी यज्ञों के फल को तथा सभी दानों के फल को प्राप्त करके सभी पापों से रहित होकर अन्त में श्रीहरि के लोक में जाता है ॥३॥ हजार करोड़ युगों तक श्रीहरि के लोक में भोगों को भोगकर वह वहीं पर उत्तम ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥४॥ जो शिशिर ऋतु में गोपमूर्ति श्रीकृष्ण भगवान् को तिल के लड्डू का भोग लगाता है वह श्रीहरि के लोक में जाता है ॥५॥ जो भगवान् केशव को दुग्ध के लड्डू का भोग लगाता है वह स्वर्ग में सौ मन्वन्तरों तक स्वर्ग के अमृत का पान करता है ॥६॥ हे जैमिने ! जो श्रीहरि को विचित्र खांड का भोग लगाता है, उस पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उसके संसार के बन्धन को काट देते हैं ॥७॥ हे द्विज ! श्रीभगवान् को जो अद्भुत फणित का भोग लगाता है, वह मृत्यु के पश्चात् इन्द्र के लोक में जाकर देवताओं द्वारा वन्दित होता है ॥८॥ जो भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् को अद्भुत चीनी का भोग लगाता है, हे विप्र ! वह श्रीभगवान् वासुदेव की कृपा से किस वस्तु को नहीं प्राप्त करता हैं?॥९॥ फाल्गुन के महीने में जो अच्छी तरह से पके हुए बैर के फल का भोग लगाता है उसके फल को तुम सुनो ॥१०॥ वह इस लोक में अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ सभी सुखों को प्राप्त करके अन्त में सुन्दर रथ पर सवार होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥११॥ श्रीहरि को गुड़ के साथ बैर के फल का भोग न लगाये। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! यदि वह अज्ञान वशात् उसका भोग लगा भी देता है तो वह निश्चित रूप से नारकी होता है ॥१२॥ जो फाल्गुन के महीनों में श्रीहरि को अनार का भोग लगाता है तो हे विप्र! उसको जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बतला रहा हूँ सुनो ॥१३॥ उस अनार के फल में जितने बीज होतें हैं वह पुरुष उतने मन्वन्तरों तक श्रीहरि के लोक में निवास करता है ॥१४॥ फाल्गुन के महीने

चैत्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! मधुना मधुसूदनम् । स्नापयेल्लभते मर्त्यस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१६॥
मधुना स्नापयेद्यस्तु नारायणमनामयम् । न चर्चा क्रियते तस्य कदाचिद्रविसूनुना ॥१७॥
चैत्रे किंशुकपुष्पेण योऽर्चयेत्कमलापतिम् । तन्नामचित्रगुप्तेन पञ्जिकायां न लिख्यते॥१८॥
चैत्रके जगतामीशं कृष्णं तिलकपुष्पकैः । अर्चितो नास्ति वै जन्म पुनरास्मिन्महीतले ॥१९॥
कृष्णं वञ्जुलपुष्पेण सर्वदेवशिरोमणिम् । पूजयन्मनुजो विप्र ! लभते नापदं क्वचित् ॥२०॥
वासन्तीभिः सुगन्धीभिर्वसन्ते यस्तु पूजयेत् ।
भगवन्तं प्रसन्नात्मा स देवैरपि पूज्यते ॥२१॥
तया किसलयैर्दिव्यैरखण्डैर्योऽर्चयेद्धरिम् । तं वदन्त समुत्थाय स्वयं पीठासनोऽपिच ॥२२॥
धात्रीपत्रैर्नवैर्यस्तु कोमलैर्हरिमर्चयेत् । अचिरेणैव लभते सकलं वाञ्छितं जनः ॥२३॥
शाण्डिल्याखण्डपत्रैश्चधत्तूरैश्चाऽर्कपुष्पकैः । योऽर्चयेद्विष्णुमीशंच स संसाराब्धिपारगः॥२४॥
यो दद्याद्विष्णवे विप्र ! कदलीफलमुत्तमम् । शक्राद्यास्त्रिदशाः सर्वे वन्दन्ते तमहर्निशम् ॥२५॥
यो दद्याच्चैत्रके मासि भक्तया गोपालरूपिणे ।
गोधूमपिष्टकं विप्र ! सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥२६॥
आयाते माधवे मासि पवित्रे माधवप्रिये ! । आमिषं मैथुनं तैलं विष्णुभक्तःपरित्यजेत्॥२७॥
प्राप्तः समाचरेत्स्नानं माधवे मासि वैष्णवः ।
परित्यजेत्परान्नं च न कुर्याच्च द्विभोजनम् ॥२८॥

में श्रीहरि को जो गुड़ की पिण्डी का भोग लगाता है उस ब्राह्मण को हजारों अश्वमेध याग करने वाला समझना चाहिए ॥१५॥ चैत्र के महीने में हे द्विजश्रेष्ठ ! मधु के द्वारा भगवान् मधुसूदन को स्नान कराने वाला भगवान् विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है ॥१६॥ श्रीभगवान् को जो मधु से स्नान कराता है उसकी चर्चा कभी भी यमराज नहीं करते हैं ॥१७॥ जो चैत्र के महीने में पलाश के पुष्प से भगवान् लक्ष्मीपति की पूजा करता है उसका नाम चित्रगुप्त अपनी बही में नहीं लिखते हैं ॥१८॥ चैत्र के महीने में तिलक के पुष्प से जो पूजा भगवान् विष्णु की करता है उसका फिर भूलोक में जन्म नहीं होता है॥१९॥ हे विप्र ! जो श्याम बञ्जुल के द्वारा सभी देवों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् की पूजा करता है वह कभी भी विपत्ति में नहीं पड़ता है ॥२०॥ जो वसन्त ऋतु में वासन्ती सुगन्धियों से भगवान् विष्णु की पूजा करता है वह सदा प्रसन्न रहने वाला देवताओं के द्वारा भी पूजित होता है ॥२१॥ जो बिना कटे हुए नवीन कोमल पल्लवों से श्रीहरि की पूजा करता है उसकी बन्दना स्वयं सिंहासन पर बैठे हुए भी वे करते हैं ॥२२॥ जो नवीन तथा कोमल आँवले के पत्तों से श्रीहरि की पूजा करता है वह शीघ्र ही अपने समस्त वाञ्छित फलों को प्राप्त कर लेता है ॥२३॥ शाण्डिल्य के अखण्ड पत्रों, धतूर तथा आक पत्तों से भगवान् विष्णु तथा शङ्करजी की पूजा करता है वह संसार सागर को पार कर जाता है ॥२४॥ हे विप्र ! जो भगवान् विष्णु को उत्तम केले के फल को चढ़ाता है उसकी इन्द्र आदि सभी देवता रात-दिन वन्दना करते हैं॥२५॥ हे विप्र ! चैत्रमास में जो गेहूँ की पन्जीरी बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण को भोग लगाता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२६॥ भगवान् माधव को प्रिय वैशाख के महीने के आने पर विष्णु भक्त को मांस, मैथुन तथा तेल का परित्याग कर देना चाहिए ॥२७॥ वैष्णव को चाहिए कि वह वैशाख के महीने के आने पर

प्रभाते पूजयेद्विष्णुं पूर्वोक्तविधिना द्विज ! । वैशाखे स्नापयेद्विष्णुं पुष्पवासितवारिणा ॥२९॥
स्नापयेच्छीततोयेषु सन्ध्यापर्यन्तमच्युतम् । त्रिसन्ध्यं पूजयेद्भक्त्या नैवेद्यै र्विविधैःप्रभुम् ॥३०॥
वैशाखे दमनस्त्रग्भिर्लक्ष्मीपतिरलङ्कृतः । न किं ददाति विप्रर्षे ! प्रसन्नः परमेश्वरः ॥३१॥
वैशाखे मासि यो दद्याद्यवान्नं चक्रपाणये ।
तस्य पुण्यानि सङ्ख्यातुं कः समर्थोऽस्ति पण्डितः ॥३२॥
यत्किञ्चिन्माधवे मासि माधवप्रीतिहेतवे । दीयते माधवायैव तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥३३॥
यदन्यत्सुकृतं कर्म क्रियते मासि माधवे। माधवप्रतये विप्र ! क्षयस्तस्य न विद्यते ॥३४॥
वैशाखे मासि यः कुर्यात्प्रपां माधवतुष्टये । दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥३५॥
वैशाखो दुर्लभो मासः सर्वकमफलप्रदः । पूजितव्यो हरिस्तत्र हित्वा कर्मशतान्यपि ॥३६॥
एकाहमपि यः पूजां वैशाखे कुरुते हरेः । षड्वर्षं हरिं पूजयित्वा यत्फलं लभते स तत्॥३७॥
वैशाखे मासि यो नित्यं विष्णुमश्वत्थरूपिणम् ।
चतुर्वर्गफलप्राप्तिहेतवे वैष्णवो जनः ॥३८॥
गण्डूषमात्रतोयेन कुर्याद्योऽश्वत्थसेवनम्। सोऽपियाति परं स्थानं विमुक्तःकोटिपातकैः ॥३९॥
अश्वत्थमूलं विप्रर्षे ! यो बध्नातिशिलादिभिः ।
अश्वत्थरूपी भगवान्किंकिंतस्मै न यच्छति ॥४०॥

प्रातःकाल स्नान करे और परान्न का परित्याग कर दे और दो बार भोजन भी न करे ॥२८॥ हे द्विज ! पूर्वोक्त विधि से प्रातःकाल भगवान् विष्णु की पूजा करे । वैशाख के महीने में पुष्प की सुगन्धि से युक्त जल से भगवान् विष्णु के स्नान कराये ॥२९॥ सायंकाल पर्यन्त ठंढे जल से भगवान् विष्णु को स्नान कराये । अनेक प्रकार के नैवेद्यों से भगवान् विष्णु की तीनों सन्ध्याओं में पूजा करे ॥३०॥ वैशाख के महीने में दावना की माला से अलंकृत किए जाने पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर सब कुछ प्रदान कर देते हैं ॥३१॥ जो वैशाख के महीने में भगवान् विष्णु को यवान्न का भोग लगाता है उसको प्राप्त होने वाले पुण्यों को कौन गिन सकता है ॥३२॥ वैशाख के महीने में भगवान् माधव की प्रसन्नता के लिए भगवान् माधव को जो कुछ भी प्रदान किया जाता है वह अक्षय हो जाता है ॥३३॥ वैशाख के महीने में जो कोई भी पुण्य कर्म भगवान् माधव की प्रसन्नता के लिए किया जाता है उसका क्षय नहीं होता है ॥३४॥ वैशाख के महीने में जो भगवान् माधव की प्रसन्नता के लिए प्याऊ स्थापित किया जाता है उससे मनुष्य को प्रतिदिन अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है ॥३५॥ सभी कर्मों का फल प्रदान करने वाला वैशाख का महीना दुर्लभ है, इस महीने में सैकड़ों कामों को त्याग कर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥३६॥ वैशाख के महीने में जो एक दिन भी श्रीहरि की पूजा करता है उसको छह वर्षों तक श्रीहरि की पूजा करने का जो फल प्राप्त होता है वही फल प्राप्त होता है ॥३७॥ जो वैष्णव वैशाख के महीने में चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए अश्वत्थ वृक्ष रूपी विष्णु की पूजा करता है तथा कुल्ले भर पानी से अश्वत्थ को यदि सींचता है वह भी करोड़ों पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है ॥३८-३९॥ विप्रर्षे जो अश्वत्थ के मूल को शिला इत्यादि से बाँधवा देता है उसको आश्वत्थ रूपी भगवान् क्या-क्या नहीं प्रदान करते हैं॥४०॥ जो अश्वत्थ वृक्ष को देखकर उसको प्रणाम करता है वह परम पद को प्राप्त करता है और उसकी

अश्वत्थद्रुममालोक्य प्रणामं कुरुते यदि। सोऽपि याति परं स्थानमायुर्वृद्धिर्नसंशयः ॥४१॥
यदश्वत्थतले विप्र ! धर्मकर्म करोति यः। न्यूनातिरिक्तता नस्यात्तस्मिन्कर्मणि जैमिने ! ॥४२॥
तत्रतीर्थानि सर्वाणि त्रिस्रोतःप्रभृतीनि च। यत्राऽश्वत्थतरुस्तिश्ठेदेकोऽपि शाखिनाम्बरः ॥४३॥
अश्वत्थं पूजयेद्यस्तु स एव विष्णुपूजकः। अश्वत्थमूर्तिर्भगवान्स्वयमेव यतो द्विज ! ॥४४॥
अवज्ञानाद् द्विजश्रेष्ठ ! योऽश्वत्थं हन्ति मूढधीः ।
संसारेनास्ति तत्कर्म यत्कृत्वा स च शुध्यति ॥४५॥
अश्वत्थोवृक्षराजोऽयंहरिमूर्त्तिः प्रकीर्त्तितः। तस्मादश्वत्थहन्तॄणां त्राता कोऽपि न विद्यते ॥४६॥
अश्वत्थं पश्यतो विप्र ! स्पृशतः परतस्तथा ।
देहस्थं पातकं सर्वं हरेत्प्रणमतो हरिः ॥४७॥
विलोक्याऽश्वत्थहन्तारं यः शक्तो न निवारयेत् ।
तन्नेत्रयुग्मं वडिशैर्यमेनोत्पाट्यते स्वयम् ॥४८॥
अश्वत्थच्छेदनं मूढो मा कुर्विति वदेन्न यः। तस्य जिह्वां छुरिकया स्वयं कृन्तति प्रेतराट्॥४९॥
आश्वथशाखामेकां यः स्वल्पामपि निहन्ति वै ।
सकोटिब्रह्महत्यानां फलमाप्नोति मानवः ॥५०॥
यत्पापं ब्रह्महत्यायां गुरुस्त्रीगमनेन च। सुरापाने तथा स्तेये न्यासापहरणेऽपि च॥५१॥
यत्पापं भ्रूणहत्यायां गोहत्यायां द्विजोत्तम ! ।
स्त्रीहत्यायां च यत्पापं परस्त्रीगमनेतया ॥५२॥
शरणागतहत्यायां हत्यायां सुहृदस्तथा। विश्वासवाक्यकथने पतिहिंसाविधौ च यत्॥५३॥

आयु की वृद्धि होती है ॥४१॥ अश्वत्थ वृक्ष के नीचे जो मनुष्य जो भी धार्मिक कर्मों को करता है हे जैमिने! उसमें न्यूनातिरिक्तता का दोष नहीं होता है ॥४२॥ वहीं पर गङ्गा आदि सभी तीर्थ रहते हैं जहाँ पर वृक्षों में श्रेष्ठ एक भी अश्वत्थ वृक्ष रहता है ॥४३॥ जो अश्वत्थ की पूजा करता है वही भगवान् विष्णु का पूजक है क्योंकि हे द्विज ! स्वयं भगवान् विष्णु अश्वत्थ शरीरक हैं ॥४४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अपमान पूर्वक जो अश्वत्थ वृक्ष को काटता है उसको पवित्र करने वाला संसार में कोई भी कर्म नहीं है ॥४५॥ अश्वत्थ वृक्षराज है, इसको श्रीहरि की मूर्ति बतलाया गया है । अतएव अश्वत्थ वृक्ष को काटने वाले का कोई भी रक्षक नहीं है ॥४६॥ हे विप्र ! अश्वत्थ वृक्ष को देखने तथा स्पर्श करने से एवं प्रणाम करने से श्रीहरि शरीर के समस्त पापों को विनष्ट कर देते हैं ॥४७॥ अश्वत्थ वृक्ष को काटने वाले को देखकर यदि कोई समर्थ व्यक्ति उसको नहीं रोकता है उसके दोनों नेत्रों को यमराज बनशी से स्वयं ही निकाल लेते हैं॥४८॥ जो यह नहीं कहे कि अरे मूर्ख अश्वत्थ को न काटो उसकी जीभ को स्वयं यमराज छूरी से काट लेते हैं ॥४९॥ जो अश्वत्थ की एक छोटी सी भी शाखा को काटता है वह मनुष्य करोड़ों ब्रह्म हत्याओं के पाप को प्राप्त करता है ॥५०॥ ब्रह्महत्या करने से गुरु की पत्नी के साथ सहगमन करने से, मदिरा पीने से, चोरी करने से दूसरे की धरोहर को हड़पने से ॥५१॥ भ्रूण हत्या करने से, गो हत्या करने से, स्त्री हत्या करने से, परस्त्री गमन करने से ॥५२॥ शरणागत की हत्या करने से, मित्र की हत्या करने,

यत्पापं परनिन्दायां हरिवासरभोजने । अश्वत्थच्छेदनाद्धोरं तत्पापं प्राप्यते जनैः ॥५४॥
विष्णुमूर्त्तेर्जनो मोहादश्वत्थस्य निहन्ति यः । तत्तुल्यः पातकी कोऽपि न श्रुतः क्षितिमण्डले॥५५॥
वदाम्यश्वत्थमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् । सेतिहासं द्विजश्रेष्ठ ! शृणु वत्स समाहितः ॥५६॥
पूर्वं धनञ्जयो नाम ब्राह्मणो हरिभक्तिकृत् । आसीत्त्रेतायुगे विप्र ! सर्वप्राणिहिते रतः ॥५७॥
ज्ञातिपूजारतो नित्यं दीपदाने रतः सदा । सत्यवादी जितक्रोधो हिंसादम्भविवर्जितः ॥५८॥
मुमुक्षुः स द्विजश्रेष्ठ ! सर्वदा परमेश्वरम् । पूजयामास परया भक्त्या नारायणं प्रभुम् ॥५९॥

तस्य भक्तिं ततो ज्ञात्वा महतीं सुदृढां प्रभुः ।
जहार सकलं वित्तं हेतुमात्रेण केनचित् ॥६०॥

तथापि स द्विजश्रेष्ठः केशवस्य महात्मनः । पूजामनुदिनं चक्रे भक्त्या परमया सुधीः ॥६१॥

दुःखेनोपार्जितं वित्तं विनष्टं सकलं द्विज ! ।
दृष्ट्वाऽपि तस्य विप्रस्य न दुःखोनाऽचलं मनः ॥६२॥

भुजेस्तुमर्जनं चक्रे स विप्रः परमार्थवित् । महाविष्णुसपर्यायां दृढं बद्ध्वा मनो निजम् ॥६३॥

भूयोऽपि तस्य विप्रस्य भक्तिं ज्ञात्वा जनार्दनः ।
चकारबन्धुविच्छेदं सुदृढः शमदस्ततः ॥६४॥
बान्धवास्तस्य विप्रस्य विष्णुमायाविमोहिताः ।
हिंसामारेभिरेकर्तुं सर्वदैवद्विजोत्तम ! ॥६५॥

ततो विप्रो हि निर्वृत्तो निर्बन्धैःपुरुषोत्तमम् । पूजयामास सततं प्रीतः प्रचुरभक्तितः ॥६६॥

विश्वास वाक्य कहने से, पति की हिंसा करने से ॥५३॥ दूसरे की निन्दा करने से द्वादशी के दिन भोजन करने से जो पाप होता है पिप्पल के वृक्ष को काटने से भी वही भयङ्कर पाप होता है ॥५४॥ जो मनुष्य अज्ञानवशात् भगवान् विष्णु की मूर्तिरूप पिप्पल के वृक्ष को काटता है । उसके समान पृथिवी पर कोई भी पापी नहीं सुना गया है ॥५५॥ सभी पापों का विनाश करने वाले अश्वत्थ का माहात्म्य हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं इतिहास पूर्वक बतलाता हूँ उसे आप सावधानी पूर्वक सुनें ॥५६॥ पूर्व समय में श्रीहरि की भक्ति करने वाला धनञ्जय नामक ब्राह्मण त्रेतायुग में था, वह सभी प्राणियों का कल्याण करता है ॥५७॥ वह सदा अपने दायादों की पूजा करता था तथा सदा दीपदान करता था । वह सत्यवादी तथा अपने क्रोध को वश में रखने वाला, तथा हिंसा तथा दम्भ से रहित था ॥५८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मुमुक्षु वह था और सदा भक्ति द्वारा परमेश्वर नारायण की पूजा करता था ॥५९॥ उसकी महान् तथा सुदृढ भक्ति को जानकर श्रीभगवान् किसी कारण वश उसके सम्पूर्ण वित्त को हर लिया ॥६०॥ फिर भी वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पराभक्ति से श्रीभगवान् की पूजा प्रतिदिन करता था ॥६१॥ हे द्विज ! दुःख पूर्वक कमाये हुए सम्पूर्ण धन को विनष्ट हुए देखकर उसका मन विचलित नहीं हुआ ॥६२॥ परमार्थ वेत्ता वह विप्र अपनी भुजाओं से धनार्जन करता था और भगवान् महाविष्णु की पूजा में अपना सुदृढ मन लगाये रहता था ॥६३॥ फिर भी उस ब्राह्मण की भक्ति को जानकर भगवान् जनार्दन ने सुदृढ शान्ति प्रदान करने के लिए उसके बन्धुओं का विच्छेद कर दिया॥६४॥ हे द्विजोत्तम ! उसके बान्धव भगवान् विष्णु की माया से मोहित होकर सदैव हिंसा करना प्रारम्भ कर

परिकल्प्य च भूदेवो धनं केशवपूजने । माधवं च जगन्नाथं स बन्धुशुचमत्यजत् ॥६७॥
भूय एव महाविष्णुः कौतुकी तस्य जैमिने ! ।
जहार सानुकम्पोऽपि पुत्रानपि दिनेदिने ॥६८॥
तथापि स द्विजश्रेष्ठः केशवं क्लेशनाशनम् ।
पूर्वद्विगुणया भक्तया नित्यं विष्णुमपूजयत् ॥६९॥
तस्य पत्नी ततो विप्र ! दुःखशोकाऽतिदुःखिता ।
पितृगेहं गता विष्णोर्मायया परिमोहिता ॥७०॥
अथैकाकी स भूदेवो विष्णुभक्तिपरायणः । विपदं चिन्तयामास न कदापि तु चेतसा ॥७१॥
एकदा स द्विजश्रेष्ठ ! विष्णुभक्तिमताम्वरः ।
स्कन्धेपरशुमादाय काष्ठार्थं विपिनं ययौ ॥७२॥
वनात्काष्ठं समादाय नित्यमेव च स द्विजः ।
हिमागमे वस्त्रहीनः कुरुते शीतवारणम् ॥७३॥
कदाचिद्विपिनं गन्तुं नाऽशक्नोद् द्विजसमत्तमः ।
जघान प्राङ्गणस्थस्य शाखामश्वत्थशाखिनः ॥७४॥
अत्रान्तरे महाविष्णुस्तस्मादश्वत्थपादपात् । निश्चक्राम सुरश्रेष्ठो व्यथाव्यथितमानसः ॥७५॥
ददर्श विष्णुं पुरतः सविप्रश्चतुर्भुजं पद्मदलायताक्षम् ।
पीताम्बरं कुण्डलिनंसुकेशं दधानमब्जादिनिजायुधानि ॥७६॥
परिस्रवद्विस्तररक्तधारासन्ध्यासुशोणीकृतनव्यमेघम् ।
विभावसुं चैव सुखं परेशं संदृश्य तं देवगणैरदृश्यम् ।
हर्षाश्रुधारारुचिराक्षियुग्मस्तुष्टाव विप्रोमृदुलैर्वचोभिः ॥७७॥

दिए॥६५॥ उसके पश्चात् सभी प्रकार के बन्धनों से छूटकर वे ब्राह्मण अत्यन्त भक्ति पूर्वक प्रसन्न होकर निरन्तर भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा करने लगे ॥६६॥ भगवान् के पूजन को धन मानकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए बन्धु के शोक को वह त्याग दिया ॥६७॥ हे जैमिने ! कौतुक करने वाले भगवान् महाविष्णु कृपायुक्त होने पर भी उसके पुत्रों का बारी-बारी से हरण कर लिए ॥६८॥ फिर भी वे द्विजश्रेष्ठ क्लेशों को विनष्ट करने वाले भगवान् केशव की दो गुनी भक्ति पूर्वक प्रतिदिन पूजा करते रहे ॥६९॥ हे विप्र ! उसकी पत्नी दुःख तथा क्लेश से दुःखी होकर भगवान् विष्णु की माया से मोहित होकर अपने पिता के घर चली गयी ॥७०॥ अकेले वे ब्राह्मण सदा विष्णु भगवान् की भक्ति में लगे रहकर कभी भी इस विपत्ति की अपने मन में चिन्ता नहीं करते थे ॥७१॥ भगवान् विष्णु की भक्ति में लगे रहने वाले वे ब्राह्मण अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर लकड़ी के लिए वन में गये ॥७२॥ वन से काष्ठ लाकर वे ब्राह्मण प्रतिदिन जाड़े में वस्त्र रहित होकर अपनी ठंढी को मिटाते थे ॥७३॥ एक दिन वे द्विजश्रेष्ठ ! वन में नहीं जा सके अपने आङ्गन में विद्यमान पिप्पल के वृक्ष की शाखा काट लिए ॥७४॥ उसी समय भगवान् विष्णु उस पिप्पल के पेंड़ की व्यथा से व्यथित मन वाले होकर निकले ॥७५॥ वे ब्राह्मण अपने सामने चतुर्भुज विष्णु को देखे उनके कमल दल के समान नेत्र थे । वे पीताम्बर, कुण्डल, सुन्दर केश तथा

ब्राह्मण उवाच

हरे मुरारे जगदेकनाथ गोविन्द दामोदरमाधवेति ।
लक्ष्मीपते ! केशव ! केशिशत्रो ! नारायणानन्त ! विभो ! प्रसीद ॥७८॥
तवाऽवतारं किमहं ब्रवीमि त्वया विना नास्ति भुवीह कोऽपि ।
किम्बा गुणव्याप्तसमस्तलोकं किम्बा दयां मित्रपरैकतुल्याम् ॥७९॥
दत्त्वा स्वीयां कस्यचिदीशविष्णो ! भक्तिं हरस्य च्युतदेहसंस्थाम् ।
श्रियं समादाय मुदं प्रदास्ये भक्तिः प्रदत्ता महतःसुधन्या ॥८०॥
मन्ये महात्मानमनन्तमूर्ते ! पापात्मनां श्रेष्ठमिवाऽनिशं यत् ।
तदर्थमेवाङ्घ्रियुगं त्वदीयं न पातकी पश्यति दैवचिन्त्यम् ॥८१॥
यद्यप्यहं दुःखवतां वरिष्ठो मन्ये तथापीन्द्रमिवाऽद्य विष्णो ! ।
आत्मानमात्मा जगतां भवन्तं साक्षात्समीक्षेत ईक्षणाभ्याम् ॥८२॥
पुजां तवाऽल्यामपि वेद्मि नाऽहं द्रव्यं कदापि न ददामि तुभ्यम् ।
तथापि चाऽग्रे मम मूर्तिमांस्त्वं दृष्टोऽसि मे केशव एकपूज्यः ॥८३॥
दत्तस्त्वयाऽयं ममभक्तिवृक्षोधर्मार्थकामत्रयएवसोऽयम् ।
त्वद्दर्शनाम्भोमयवृष्टिसिक्तः प्रभोऽद्य कैवल्यफलं दधार ॥८४॥
मूर्धा मदीयोऽखिललोकमूर्ध्नां श्रेष्ठो भवेत्केशव विश्वमूर्ते ! ।
त्वत्पादापाथोजयुगे मनो मे संयाति वै सम्प्रति देवदेव ! ॥८५॥

कमल आदि अपने आयुधों को धारण किए थे ॥७६॥ उनके अङ्गों से खून की धारा निकल रही थी सन्ध्या काल में नवीन मेघ के समान वे लाल-लाल हो गये थे । वैसे परमात्मा को देखकर अग्नि के समान देवगणों से अदृश्य रहकर श्रीभगवान् की स्तुति किए । उस समय उनके दोनों नेत्रों से हर्ष जन्य आँसू की धारा निकल रही थी । वे ब्राह्मण अपने कोमल शब्दों से श्रीभगवान् की स्तुति किए ॥७७॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे हरे, हे मुरारे ! हे संसार के एक मात्र स्वामिन् भगवन् गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! हे लक्ष्मीपते ! हे केशव ! हे केशिशत्रो ! हे नारायण ! हे अनन्त ! हे विभो ! आप प्रसन्न होइये ॥७८॥ आपके अवतार को मैं क्या कहूँ । संसार में कोई भी वस्तु आपके बिना नहीं है आप अपने गुणों से समस्त लोक में व्याप्त हैं तथा आपकी परम मित्रतामयी दया के विषय में मैं क्या कहूँ ॥७९॥ हे भगवन् ! विष्णों हे अच्युत ! आप अपनी भक्ति किसी को देकर उसके शरीर में रहने वाली भक्ति को हर लेते हैं । आप संपत्ति को हरकर महापुरुषों की अत्यन्त धन्य भक्ति को रह हर लेते हैं ॥८०॥ हे अनन्त मूर्ते ! पापियों में श्रेष्ठ मैं निरन्तर अपने को महात्मा मानता हूँ इसीलिए पापी मैं देवताओं के द्वारा चिन्त्य आपके चरण युगल को नहीं देखता हूँ ॥८१॥ यद्यपि मैं दुःखियों में श्रेष्ठ हूँ फिर भी मैं अपने को इन्द्र के समान मानता हूँ । जगत् की आत्मा स्वरूप मैं आपको अपने दोनों नेत्र से देख रहा हूँ ॥८२॥ आपकी पूजा को मैं थोड़ी सी भी नहीं जानता हूँ और न कभी मैं आपको द्रव्य समर्पित करता हूँ । फिर भी हे केशव एक मात्र पूज्य आपको मूर्तिमान रूप से देख रहा हूँ ॥८३॥ आपने जो मुझे भक्ति रूपी वृक्ष प्रदान किया है, यही मेरे लिए धर्म, अर्थ और काम तीनों है । आपके दर्शन रूपी जल से सिक्त मैं आज मैं हे प्रभो ! कैवल्य रूपी

व्यास उवाच

इत्थंस्तुत्वा जगन्नाथं नारायणमनामयम् । कृताञ्जलिःपुनः प्राह भक्त्या तमिति स द्विजः॥८६॥

ब्राह्मण उवाच

देवदेव जगन्नाथ ! लोकानुग्रहकारक !। कशाप्रहरणैरेतन्मात्रं ते रुधिरोक्षितम् ॥८७॥
सर्वेषामेवदैत्यानां युधि वंशास्त्वया हताः । त्वां हन्तुं कःक्षमःपृथ्व्यां प्रभोऽद्भुतमिदं महत्॥८८॥

भगवानुवाच

वत्स ! सत्यमिदं प्रोक्तं त्वया नास्त्यत्र संशयः ।
दानवो राक्षसो वाऽपि मां हन्तुं कोऽपि न क्षमः ॥८९॥
अश्वत्थमूर्तिरिवाऽहं कुठारेण हतस्त्वया। अतोऽजनि शरीरे मे रक्तपातोऽधुना द्विज ! ॥९०॥

व्यास उवाच

तस्य वाक्यमिदं श्रुत्वा सविप्रोभयविह्वलः । निनिन्द स्वयमात्मानमात्मना बहुधा द्विजः॥९१॥
धिगस्तु तत्त्वतोऽभाग्यं सर्वपातकिनाम्वरम् । त्रैलोक्याधिपतेर्दाताहृदये महतीं व्यथाम् ॥९२॥
सर्वपापहरो विष्णुः स मया व्यथितः कृतः ।
एतत्पापं मया पारं कर्तुं नैकेन शक्यते ॥९३॥
यस्मिंस्तुष्टे पापिनोऽपि भवन्ति सुरवन्दिताः ।
मद्दत्तया सव्यथया व्यथितो हा ! हतोऽस्म्यहम् ॥९४॥
प्रसादयन्ति यं देवा ब्रह्माद्या अतिभक्तितः । अहो मया पापवता तस्य दत्ता हृदि व्यथा ॥९५॥

फल को धारण करूँ । हे विश्वमूर्ते केशव ! मेरा शिर आज सम्पूर्ण संसार के शिरों से श्रेष्ठ हो गया है हे देवाराध्य भगवन् ! आपके चरण कमलों में इस समय मेरा मन प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ **व्यासजी ने कहा—** इस प्रकार से जगत् स्वामी अनामय भगवान् विष्णु की स्तुति करके हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक भगवान् से वे ब्राह्मण पुनः कहे ॥८६॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे देव देव ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे संसार पर कृपा करने वाले भगवन् ! कोड़ों के प्रहार से आपका यह शरीर रक्त से भर गया है ॥८७॥ युद्ध में आपने सभी दैत्यों के वंश का विनाश कर दिया । हे प्रभो ! आपको पृथिवी पर मारने वाला कौन हो सकता है ? यह तो अत्यन्त अद्भुत बात है ॥८८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे वत्स ! तुमने जो कहा है, वह सत्य है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । दानव अथवा राक्षस कोई भी मुझे मारने में समर्थ नहीं है ॥८९॥ अश्वत्थ शरीरक मैं हूँ और तुमने कुल्हाड़ी से मुझे मारा है । हे द्विज ! इसी कारण मेरे शरीर से रक्तपात हुआ है ॥९०॥ **व्यासजी ने कहा—** श्रीभगवान् के इस वाक्य को सुनकर भयभीत वे ब्राह्मण अपनी आत्मा की अनेक प्रकार से निन्दा किए ॥९१॥ वस्तुतः मेरे भाग्य को धिक्कार है मैं सभी पापियों में श्रेष्ठ हूँ । क्योंकि मैंने त्रैलोक्य स्वामी के हृदय में अत्यधिक व्यथा को उत्पन्न किया है ॥९२॥ भगवान् विष्णु सभी पापों को विनष्ट करने वाले हैं उनको मैंने दुःखी बनाया है । इस पाप को में अकेले पार नहीं कर सकता हूँ ॥९३॥ जिन श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर पापी जीव भी देवताओं के बन्द्य हो जाते हैं । वे श्रीभगवान् मेरे द्वारा प्रदत्त व्यथा से व्यथित हो गये । अरे मैं तो मर गया ॥९४॥ जिन श्रीभगवान् को ब्रह्मा आदि देवता अत्यन्त भक्ति पूर्वक प्रसन्न करते हैं । उन्हीं श्रीभगवान् के हृदय में पापी

किंतपोभिर्जपैः किंवा किं गृहैर्जीवनैश्श्रमे। धर्मार्थकामामोक्षाणं दातैकोऽयं व्यथातुरः ॥९६॥

इत्युक्त्वा स द्विजश्रेष्ठ ! तमेव परशुं निजे ।
दातुं कण्ठे मनश्चक्रे विष्णुप्रीणनहेतवे ॥९७॥
तस्य भक्तिं दृढां ज्ञात्वा दयालुः कमलापतिः ।
तद्धस्तात्तपरं निन्ये जवेन भक्तवत्सलः ॥९८॥

श्रीभगवानुवाच

कथंत्वमेव कुरुषे वत्स ! कर्माऽतिदारुणम् ।
आत्महत्या कृतां पुसांतुष्टोऽस्मि न कदाप्यहम् ॥९९॥
तव भत्तयाऽतितुष्टोऽस्मि भीतिं मा कुरु सत्तम ! ।
वरं वरय विप्रेन्द्र ! यत्ते मनसि वर्तते ॥१००॥

ब्राह्मण उवाच

मया व्यथा प्रदत्तेयं महती परमेश्वर !। मा तिष्ठतु शरीरे ते याचे वरमिमं प्रभो !॥१०१॥

श्रीभगवानुवाच

अज्ञानाद्भवता वत्स ! कर्मेदं विहितं द्विज ! ।
अतोऽपराधो नेतव्यो महानपि न ते यथा ॥१०२॥
नित्यं तवाऽनुपाल्योऽस्मिभक्तश्रेष्ठो यतो भवान् ।
भवदीयानहं मन्ये दोषान्वत्स दिने दिने ॥१०३॥
तथापिमयि भक्तिस्ते ववृधे महती सदा ।
तस्माद्वत्स ! तवाऽऽनृण्यंगन्तुमिच्छामि सम्प्रति ॥१०४॥

विहाय सकलां भीतिं वरं वृणु ममाऽग्रतः ॥१०५॥

मैंने कष्ट पहुँचाया है ॥९५॥ तप, जप, गृह तथा जीवन से मुझे कौन सा लाभ है ? धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को एकमात्र देने वाले श्रीभगवान् को मैंने कष्ट दिया है ॥९६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह से कहकर वे उसी कुल्हाड़ी से अपने गला पर प्रहार करना चाहे जिससे श्रीभगवान् विष्णु प्रसन्न हो जायँ॥९७॥ उस ब्राह्मण की सुदृढ़ भक्ति को जानकर दयालु श्रीभगवान् उसके हाथ से भक्त वत्सल भगवान् उसे ले लिए ॥९८॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे वत्स ! तुम इस अत्यन्त दुःख कर्म को क्यों करते हो ? आत्महत्या करने वाले पुरुषों से मैं कभी भी प्रसन्न नहीं होता हूँ ॥९९॥ हे श्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ डरो मत हे विप्र ! आपको मन में जो हो उस वरदान को आप माँग लो ॥१००॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे परमेश्वर ! आपको मैंने बहुत अधिक कष्ट दिया है । यह पाप मेरे शरीर में न रहे यही मैं वरदान माँगता हूँ ॥१०१॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे वत्स ! हे द्विज ! आपने अज्ञानवशात् यह कर्म किया है अतएव तुम्हारे इस महान् अपराध को मैं नहीं मानता हूँ ॥१०२॥ आप मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं अतएव मैं सदा आपका अनुपाल्य हूँ । हे वत्स ! इसीलिए मैं आपके अपराध को अपना ही अपराध मानता हूँ ॥१०३॥ फिर भी तुम्हारी भक्ति मुझमें बढ़ती गयी अतएव वत्स ! मैं तुम्हारे ऋण से अपने को

ब्राह्मण उवाच

त्वयि सर्वसुरश्रेष्ठ ! मम जन्मनि जन्मनि । तिष्ठतां सुदृढाभक्तिर्हरे ! किमपरैर्वरैः ॥१०६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वावाक्यमिदं तस्य केशवःप्रणयोदितम् । निजकण्ठस्थितां मालां प्रीतस्तस्मै ददौ ततः॥१०७॥

समालिङ्ग्य ततो विप्रं पिता पुत्रमिव प्रभुः ।
चतुर्भिर्बाहुभिर्दीर्घैरुवाच मृदुलं वचः ॥१०८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसि यदा विप्र ! तथा ते मत्प्रसादतः ।
अचिरेणैव सकलं भद्रं विप्र ! भविष्यति ॥१०९॥

अश्वत्थरूपं मां नित्यं क्रियायोगेनसत्तम !। समाराधय सर्वन्ते साधयिष्यामि वाञ्छितम् ॥११०॥

इत्युक्त्वा तं द्विजश्रेष्ठं भूयोऽप्यालिङ्ग्य केशवः ।
अभवत्सहसाऽदृश्यस्तत्रैव करुणालयः ॥१११॥
विष्णोः कण्ठस्रजं प्राप्य स विप्रो वैष्णवोत्तमः ।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मत्वा तस्थौ निजे गृहे ॥११२॥
ततः कुबेरो विप्रर्षे ! तस्य विप्रस्य सद्मनि ।
स्वयं ववर्ष वित्तानि बहूनि केशवाज्ञया ॥११३॥
प्रासादो रचितस्तस्य शिल्पिना विश्वकर्मणा ।
नारायणाज्ञया तत्र वैजयन्त इवोत्तमः ॥११४॥

दासदासीसमायुक्तो नानावस्तुविभूषितः। गजाश्वकोटिसङ्कीर्णं विबभौतस्य मन्दिरम्॥११५॥

मुक्त करना चाहता हूँ ॥१०४॥ अतएव सम्पूर्ण भयों को त्यागकर वरदान माँगो ॥१०५॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे सुरश्रेष्ठ ! मेरी सुदृढ भक्ति आपमें प्रत्येक जन्मों में हो । हे हरे ! इससे भिन्न वरदानों से क्या लाभ हैं ?॥१०६॥ **व्यासजी ने कहा**— भगवान् केशव ब्राह्मण के प्रेम से युक्त इस वाक्य को सुनकर प्रसन्न होकर अपने गले में विद्यमान माला को उन्हें दिए ॥१०७॥ जिस तरह से पिता अपने पुत्र का आलिङ्गन करते हैं उसी तरह उन विप्र का चारो भुजाओं से आलिङ्गन करके कहे ॥१०८॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे विप्र ! तुम जिस तरह मेरे भक्त हो उसी तरह से मेरी कृपा से हे विप्र ! आपका सारा कल्याण होगा ॥१०९॥ हे श्रेष्ठ ! क्रियायोग के द्वारा तुम अश्वत्थ रूपी मेरी आराधना करो ऐसा करने से मैं तुम्हारा सारा अभीप्सित पूजा कर दूँगा ॥११०॥ इस तरह से कहकर उन ब्राह्मण का श्रीभगवान् पुनः आलिङ्गन किए और वे करुणा सागर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१११॥ भगवान् के गले की माला को प्राप्त करके वे वैष्णवोत्तम विप्र अपने को कृत्य के समान मानकर अपने गृह में स्थित रहे ॥११२॥ हे विप्रर्षे ! उसके बाद कुबेर उस ब्राह्मण के गृह में भगवान् केशव की आज्ञा पाकर बहुत अधिक धनों की वर्षा किए॥११३॥ उनके भवन का निर्माण श्रीभगवान् की आज्ञा से स्वयं शिल्पी विश्वकर्मा ने किया वह महल इन्द्र के महल के समान उत्तम कोटि का था ॥११४॥ उन ब्राह्मण का गृह दासियों तथा दासों से युक्त तथा अनेक प्रकार

बभूवुः सङ्गतास्तस्य नष्टा अपि च बान्धवाः ।
कृतावज्ञा च तत्पत्नीं स्वयं तद्गृहमाययौ ॥११६॥
मृतपुत्राऽपि तत्पत्नी केशवस्याऽनुकम्पया। स्थिरप्रजाऽभवद्विप्र ! स्वामिभक्तिपरायणा॥११७॥
चिरं भुक्त्वाऽखिलान्भोगान्पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
आयुषोऽन्ते ययौ मोक्षं सदारो विप्रसत्तमः ॥११८॥

व्यास उवाच

साक्षादेव स्वयं विष्णुरश्वत्थो वृक्षसत्तमः ।
तद्भक्तिं कुर्वतां पुंसां विद्यते नाऽशुभं क्वचित् ॥११९॥
अश्वत्थं सेवते यस्तु विष्णुं ध्यात्वा नरोत्तमः ।
तस्य प्रसन्नो भगवान्ददाति परमं पदम् ॥१२०॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डेऽश्वत्थमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

व्यास उवाच

ज्येष्ठ मासि द्विजश्रेष्ठ ! भगवन्तं जनार्दनम् ।
पूजयेद्भक्तिभावेन जलैः संस्नाप्यशीतलैः ॥१॥

की वस्तुओं से विभूषित था । करोड़ों हाथियों और अश्वों से भरा हुआ वह अत्यन्त सुशोभित हुआ॥११५॥ उनके नष्ट हुए बान्धव भी मिल गये । उनका अपमान करने वाली उनकी पत्नी स्वयं उनके घर आ गयी॥११६॥ भगवान् केशव की कृपा से उनकी पत्नी अपने मरे हुए पुत्रों तथा स्थिर सन्तानों वाली और पति भक्ति परायण हो गयी ॥११७॥ अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ दीर्घकाल तक सभी भोगों को भोगकर वे ब्राह्मण अपनी आयु के अन्त में अपनी पत्नी के साथ मोक्ष प्राप्त कर लिए ॥११८॥ **व्यासजी ने कहा—** वृक्षों में श्रेष्ठ अश्वत्थ वृक्ष साक्षात् विष्णु हैं उनकी भक्ति करने वाले मनुष्यों का अमङ्गल कभी नहीं होता है ॥११९॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य भगवान् विष्णु का ध्यान करके पिप्पल के वृक्ष की सेवा करते हैं, उस पर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसको परमपद प्रदान कर देते हैं ॥१२०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के अश्वत्थ माहात्म्य वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

भिन्न-भिन्न महीनों में विभिन्न प्रकार के पुष्पों तथा द्रव्यों के विधान पुरस्सर प्रजा नामक ब्राह्मण की अपूर्व शबर वंश में उत्पत्ति के वृत्तान्त पूर्वक, श्रीहरि की भक्ति करने से मुक्ति की प्राप्ति तथा श्रीहरि की पूजा के फल का वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! ज्येष्ठ के महीने में भगवान् जनार्दन को शीतल जल से स्नान

उर्द्धर्तनं च दातव्यं सुगन्ध्यामलकं तथा। तैलं सुगन्धं हरये ग्रीष्मकाले दिने दिने ॥२॥
सुवासिते शीतले च मन्दिरेऽतिमनोरमे । प्रत्यहं कमलाकान्तं स्थापयेज्जनमण्डपे ॥३॥
न रौद्रदेशे विप्रेन्द्र ! सधूमे रन्धनालये। न सूतिका गृहे चैव स्थापयेत्कमलापतिम् ॥४॥
चामरैर्वीजयेच्छ्वेतैःसुदीर्घैः कमलापतिम् ।
ज्येष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ ! सुप्रीतः किं न यच्छति ॥५॥
मयूरपुच्छव्यजनैर्निदाघे वीजितो हरिः। ददात्यभिमतं सर्वमचिरेणैव सत्तम ! ॥६॥
तालवृन्तकवातेन पवित्राम्बरवायुना। यैर्ग्रीष्मे वीज्यते विष्णुस्ते सर्वे स्वर्गगामिनः ॥७॥
यो गात्रलेपनं कुर्यात्सुगन्धीयैश्च कर्दमैः। ग्रीष्मे हरिं चन्दनैश्च स विशेन्माधवीं तनुम् ॥८॥
उष्मागमे द्विजश्रेष्ठ ! स मुक्तो नाऽत्र संशयः ।
प्रपुल्लकुसुमोद्याने तुलसीकानने तथा ॥९॥
सन्ध्यायां स्थापयेद्विष्णुं देशे धीरसमीरणे। स्त्रग्भिः पाटलपुष्पाणां येन विष्णुरलङ्कृत ॥१०॥
ज्येष्ठे मासि स विज्ञेयो हाश्वमेधसहस्त्रकृत्। यस्तु मुक्तावलिं दद्याद्ग्रीष्मेवै श्रीपतेर्जनः॥११॥
भूपालत्वं हरिस्तस्मै यच्छेज्जन्मनि जन्मनि। यस्तुमण्डयति ग्रीष्मे श्रीकृष्णंमणिमालया॥१२॥
तस्य पुण्यफलं विप्र ! वदतो मे निशामय ।
यावद्ब्रह्मा सृजत्येतज्जैमिने ! सकलं जगत् ॥१३॥
तिष्ठेद्विष्णुपुरे तावन्मणिमालाविभूषितः । सुवर्णाभरणैर्यस्तु रजताभरणैस्तथा॥१४॥

कराकर भक्तिभाव से उनकी पूजा करनी चाहिए ॥१॥ उनको सुगन्धित आँवले का उबटन लगाना चाहिये। ग्रीष्मकाल में श्रीहरि को प्रतिदिन सुगन्धित तेल ॥२॥ सुगन्धित तथा शीतल एवं मनोहर मन्दिर में प्रतिदिन भगवान् कमलाकान्त को जन मण्डप में स्थापित करे ॥३॥ हे विप्रेन्द्र! रुक्ष स्थान में या रसोई घर में, या सूतिका गृह में भगवान् की स्थापना नहीं करना चाहिए ॥४॥ लम्बे और श्वेत चामरों से श्रीभगवान् को ज्येष्ठ मास में हवा करना चाहिए । इससे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् सब कुछ प्रदान कर देते हैं । ग्रीष्म ऋतु मयूर पङ्ख के व्यजन से हवा से श्रीहरि हे सत्तम ! श्रीहरि शीघ्र ही सम्पूर्ण अभिमत वस्तुओं को प्रदान कर देते हैं । ताड़के पत्ते के पङ्खे की हवा से तथा पवित्र वस्त्र की हवा से जो लोग श्रीहरि को हवा करते हैं वे सभी लोग स्वर्ग चले जाते हैं जो श्रीहरि के शरीर में सुगन्धित लेप ग्रीष्म काल में लगाते हैं तथा चन्दन का लेप लगाते हैं, वे श्रीहरि के शरीर में ही प्रवेश कर जाते हैं ॥५-८॥ उमस के दिन आने पर हे द्विजश्रेष्ठ! सायंकाल के समय विकसित पुष्पों वाले उद्यान में अथवा तुलसी वन में जहाँ पर वायु धीरे-धीरे चल रही हो वहाँ पर श्रीहरि को स्थापित करना चाहिए । जो गुलाब की मालाओं से जो श्रीभगवान् को ज्येष्ठ मास में अलंकृत करते हैं ॥९-१०॥ उनको हजारों अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है । जो ग्रीष्म काल में श्रीपति को मोती की माला प्रदान करते हैं ॥११॥ उनको श्रीभगवान् प्रत्येक जन्मों में राजत्व प्रदान करते हैं । जो भगवान् श्रीकृष्ण को ग्रीष्म ऋतु में मणियों की माला से अलंकृत करते हैं ॥१२॥ हे विप्र ! उनको प्राप्त होने वाले पुण्य रूपी फल को मैं बतलाता हूँ सुनो । हे जैमिने ! जब तक ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि करते हैं तब तक वे मणियों की माला से अलंकृत होकर विष्णु लोक में निवास करते हैं । सुवर्णालङ्कारों

कृष्णं मण्डयति ग्रीष्मे सोऽपि तत्फलामाप्नुयात् ।
विचित्रं यस्तु पर्यङ्कं सगण्डूकं प्रयच्छति ॥१५॥
हरये देवदेवाय न स दुःखी कदाचन । ग्रीष्मकाले न देयानि गुरूणि वसनानि च ॥१६॥
हरये ब्राह्मणश्रेष्ठ ! देयं तन्वंशुकं शुचि। यस्त्वच्युतफलैर्दिव्यैः सुगन्धैः पूजयेद्धरिम् ॥१७॥
अन्ते शक्रपुरं गत्वा स पिबेदमृतं मुदा। प्रियालानां फलैर्दिव्यैर्योऽर्चयेत्कमलापतिम् ॥१८॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः । निदाघे हरये यस्तु यवागूमतिशीतलाम् ॥१९॥
नानाव्यञ्जनसंयुक्तामर्पयेद्वैष्णवो जनः । आषाढे मासि विप्रेन्द्र ! देवदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥
दधिभिः स्नापयित्वा च पूजयेद्भक्तितो बुधः ।
मातुः पयोधरपयः पुनस्तेन न पीयते ॥२१॥
घनागमे घनश्यामं कदम्बकुसुमैर्हरिम् । आराधयति विप्रर्षे ! परां गतिमवाप्नुयात् ॥२२॥
कदम्बपुष्पमालभिर्मण्डपं मण्डयेन्नरः । यस्तस्य ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वाजिमेघफलं भवेत् ॥२३॥
सुगन्धैः केतकीपुष्पैः पूजितः कमलापतिः। सर्वदुःखं हरत्येव मानवानां द्विजोत्तम ! ॥२४॥
पनसानां फलैर्दिव्यैः सुपक्वैर्घृतमिश्रितैः। पूजितो भगवान्विष्णुर्दद्यादैश्वर्यमुत्तमम् ॥२५॥
आषाढेमासि दध्यन्नं हरये प्रतिवासरम् । श्रद्धया वैष्णवो दद्यान्मुक्तिमिच्छांन्द्वजोत्तम ! ॥२६॥
कृष्णाय नवनीतं यो ददाति वैष्णवो जनः। विशुद्धः सकलैः पापैर्ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२७॥
शेफालिकाप्रसूनैश्च यूथिकाकुसुमैस्तथा । योऽर्चयेत्परमात्मानं स गच्छेत्परमं पदम् ॥२८॥

तथा रजताभरणों से जो ग्रीष्म ऋतु में भगवान् कृष्ण को अलंकृत करता है वह भी उसी फल को प्राप्त करता है । जो श्रीभगवान् को ग्रीष्म ऋतु में विचित्र शय्या गढ़ए के साथ प्रदान करता है ॥१३-१५॥ देवाधिदेव श्रीहरि को ग्रीष्म ऋतु में कभी भी भारी वस्त्र प्रदान न करे ऐसा करने वाला कभी भी दुःखी नहीं होता है ॥१६॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! श्रीहरि को पतला और पवित्र वस्त्र प्रदान करे । जो पृथिवी पर बिना गिरे हुए दिव्य फलों से श्रीहरि की पूजा करता है ॥१७॥ वह शरीर त्याग के बाद इन्द्र के लोक में प्रसन्नता पूर्वक अमृत पान करता है । जो प्रियाल के फलों से लक्ष्मीपति की पूजा करता है ॥१८॥ वह भी उसी फल को प्राप्त करता है दूसरी बातों को करने से क्या लाभ है ? गर्मी के दिनों में जो शीतल हलवा का भोग लगाता है ॥१९॥ वह वैष्णव अपने हाथ के अनेक प्रकार के व्यंजनों को श्रीहरि को समर्पित करे । हे विप्रेन्द्र आषाढ के महीने में देवाराध्य श्रीभगवान् को ॥२०॥ दही से स्नान कराकर भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करे । ऐसा करने वाला मनुष्य पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता है ॥२१॥ हे विप्रर्षे! वर्षाकाल में जो घनश्याम भगवान् की पूजा कदम्ब कुसुमों से करता है वह परम गति को प्राप्त करता है॥२२॥ उस मनुष्य को चाहिए कि वह कदम्ब पुष्पों से मण्डप को अलंकृत करे । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! उस मनुष्य को अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है ॥२३॥ सुगन्धित केवड़ा के फूलों से पूजित होकर श्रीहरि मनुष्यों के समस्त दुःखों को हर लेते हैं ॥२४॥ कटहल के घृत मिश्रिता सुगन्धित फलों से पूजित होकर भगवान् विष्णु उसको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२५॥ हे द्विजोत्तम ! मुक्ति प्राप्त करना चाहने वाले को आषाढ के महीने में श्रीहरि को प्रतिदिन दध्योदन का भोग लगाना चाहिए ॥२६॥ जो भगवान्

प्रफुल्ल्मालतीपुष्पैः सुगन्धैर्योऽर्चयेद्धरिम्। तत्पुण्येन समं पुण्यं न किञ्चिद्भविता द्विज !॥२९॥
कदम्बपुष्पैर्बकुलैर्जगद्बन्धुं जनार्दनम्। अर्चयन्सकलं कामं प्राप्नोति भुवि मानवः ॥३०॥
महामहाप्रसूनैश्च तथा कुरुबकैर्हरिम् । प्रफुल्लैः पूजयेद्यस्तु तस्य तुष्टः सदा हरिः ॥३१॥

सैरीयकैश्च यो विष्णुं प्रसूपुष्पैश्च योऽर्चयेत् ।
करवीरप्रसूनैश्च सयाति हरिसन्निधिम् ॥३२॥
श्रावणे चैव यो दद्याल्लाजान्धृतसमन्वितान् ।
हरये तस्य विप्रर्षे ! गृहे श्रीःसर्वतोमुखी ॥३३॥

भाद्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! नारायणमनामयम्। श्रद्धया पूजयेत्प्राज्ञश्चतुर्वर्गप्रदायकम्॥३४॥
निर्मिते नूतनागार सर्वोपद्रववर्जिते। स्थापयेत्पुण्डरीकाक्षं भगवन्तं जनार्दनम्॥३५॥
दंशैश्चमशकैश्चाऽपि प्रकीर्णे मक्षिकादिभिः। हरिं पुरातनागारे स्थापयेन्नहि मानवः ॥३६॥
सकर्दमे पतद्द्वारे गलद्भित्तौ गृहे तथा। हरिं न स्थापयेत्प्राज्ञो वर्षासु परमेश्वरम्॥३७॥
विष्णवालये द्विजश्रेष्ठ प्रकुर्याद्यस्तुमानवः। चन्द्रातपं विचित्रं च चन्द्रलोकं सगच्छति॥३८॥
रात्रौनानाविधैर्धूपैर्मन्दिरेजगतीपतेः । दंशांश्च मशकांश्चैव पूजाकाले निवारयेत्॥३९॥
मसारिकाभिः प्रावृत्य मञ्चशायिनमच्युतम्। प्रावृषि स्थापयेद्विष्णुं निशायां दिव्यमन्दिरे॥४०॥
कह्लारपत्रैर्देवेशं सुगन्धैर्नूतनैस्तथा। मुमुक्षुः पूजयेन्मर्त्यो भाद्रे मासि दिने दिने॥४१॥

श्रीकृष्ण को नवनीत का भोग लगाता है वह वैष्णाव सभी पापों से छूटकर ब्रह्मलोक में जाता है ॥२७॥ जो मनुष्य शेफालिका का तथा जूही के फूलों से श्रीभगवान् की पूजा करता है वह परम पद में जाता है॥२८॥ जो विकसित तथा सुगन्धित मालती के फूलों से श्रीभगवान् की पूजा करता है, वह परमपद में जाता है। हे द्विज ! उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उसके समान कोई दूसरा पुण्य नहीं है ॥२९॥ जगद्बन्धु भगवान् जनार्दन की कदम्ब पुष्प तथा मौलिश्री के फूल से पूजा करने वाला मनुष्य अपनी सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ जो महाप्रसून तथा विकसित कुरबक के पुष्प से श्रीहरि की पूजा करता है उस पर श्रीहरि सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥३१॥ जो भगवान् विष्णु की पूजा भटकैटेय के फूलों से एवं करवीर के फूलों से करता है वह श्रीहरि के सन्निकट जाता है ॥३२॥ श्रावण के महीने में जो घी मिलाकर लावा का भोग लगाता है । हे विप्रर्षे ! उसके घर में लक्ष्मीजी सब ओर से आती हैं ॥३३॥ हे द्विजश्रेष्ठ भाद्रपद मास में अनामय भगवान् नारायण की जो श्रद्धा पूर्वक पूजा करता है उसको चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है ॥३४॥ नवीनतया निर्मित तथा सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित मन्दिर में श्रीभगवान् की स्थापना करनी चाहिए ॥३५॥ दंश तथा मच्छरों से भरे हुए तथा मक्षिका आदि से युक्त पुराने मन्दिर में श्रीभगवान् की स्थापना न करे ॥३६॥ कीचड़ से युक्त तथा जिसका दरवाजा गिर गया हो ऐसे गृह में प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि श्रीभगवान् की स्थापना न करे और न वर्षा में भगवान् की स्थापना करे ॥३७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो भगवान् विष्णु के मन्दिर में चाँद की चाँदनी कराये वह चन्द्रलोक में जाता है ॥३८॥ रात्रि में श्रीभगवान् के मन्दिर में पूजा के समय दंशों और मच्छरों को भगाने का काम करना चाहिए ॥३९॥ वर्षा के समय मञ्च पर सोने वाले भगवान् विष्णु को मच्छरदानी से ढँककर रात्रि में दिव्य

न भाद्रे केतकीपुष्पैः पूजितव्यो जनार्दनः । यतो भाद्रपदे मासि केतकीस्यात्सुरासमा ॥४२॥
पक्वैस्तालफलैर्दिव्यैर्योऽर्चयेद्यदुनन्दनम् । गर्भवासमहादुःखं स भूयो लभते न च ॥४३॥
संयुक्तं घृतदुग्धाभ्यां पक्वंतालं मुरारये। यो दद्याच्छ्रद्धया मर्त्यःस गच्छेन्मन्दिरं हरेः ॥४४॥
भाद्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! हरये तालपिष्टकम् ।
सघृतं वैष्णवो दद्यात्कैवल्यप्राप्तिहेतवे ॥४५॥
मासि भाद्रपदे विप्र ! न कुर्याच्छाकभक्षणम् ।
न रात्रौ भोजनं कुर्यान्मुमुक्षुर्वैष्णवो जनः ॥४६॥
आश्विने मासि विप्रेन्द्र ! केशवं क्लेशनाशनम् ।
पूजयेन्मधुरैस्तोयैः पवित्रैश्चसुगन्धिभिः ॥४७॥
यत्तोयं दीयते विप्र ! पूर्वाह्णे हरये जनैः । पीयूषमिव तत्तोयं गृह्णाति कमलापतिः ॥४८॥
मध्याह्ने दीयते यच्च तोयं वै चक्रपाणये । तत्तोयमिव वेत्तव्यं तद्गृह्णाति द्विजोत्तम !॥४९॥
अपराह्णे च यत्तोयं गोविन्दाय प्रदीयते। तत्तोयं रक्ततुल्यं स्यान्न गृह्णाति ततो हरिः॥५०॥
अतएव द्विजश्रेष्ठ ! पूवाह्णे हरिमर्चयेत्। समस्तं लभते कामं केशवस्याऽनुकम्पया ॥५१॥
एकवस्त्रेण विप्रेन्द्र ! न कुर्यात्पूजनं हरेः। कुर्याद्वाऽपि तथा पूजां न गृह्णाति च केशवः॥५२॥
अधौतेन च वस्त्रेण यः पूजां कुरुते हरेः ।
विफला सा च पूजा स्यान्न च विष्णुः प्रसीदति ॥५३॥

मन्दिर में रखे ॥४०॥ मुमुक्षु पुरुष को चाहिए कि भाद्रपद के महीने में सुगन्धित तथा नवीन कह्लार पत्र से प्रतिदिन पूजन करे ॥४१॥ भाद्रपद के महीने में केतकी पुष्प से भगवान् विष्णु की पूजा न करे क्योंकि भाद्रपद के महीने में केवड़ा मदिरा के समान होता है ॥४२॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा पके हुए ताड़ के फल से करता है वह पुनः गर्भवास जन्य महादुःख को नहीं प्राप्त करता है ॥४३॥ घृत तथा दुग्ध के साथ पके हुए तालफल को श्रीभगवान् को श्रद्धा पूर्वक जो चढ़ाता है वह श्रीहरि के लोक में जाता है॥४४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! कैवल्य को प्राप्त करने के लिए वैष्णव को घी के साथ ताल की पिण्डी चढ़ाना चाहिए ॥४५॥ हे विप्र ! वैष्णव को शाक नही खाना चाहिए और न तो मुमुक्षु पुरुष को रात्रि में भोजन करना चाहिए ॥४६॥ हे विप्रेन्द्र ! आश्विन के महीने में क्लेशों का नाश करने वाले भगवान् केशव की पूजा मीठे पवित्र तथा सुगन्धित जल से करना चाहिए ॥४७॥ हे विप्र ! पूर्वाह्ण में जो जल श्रीहरि को समर्पित किया जाता है उस जल को भगवान् कमलापति अमृत के समान पीते हैं ॥४८॥ हे द्विजोत्तम ! दोपहर की बेला में जो जल श्रीभगवान् को समर्पित किया जाता है, उस जल को वे जल के समान ग्रहण करते हैं ॥४९॥ जो जल अपराह्ण में श्रीभगवान् को प्रदान किया जाता है वह जल रक्त के समान होता है, उसको श्रीहरि नहीं स्वीकार करते हैं ॥५०॥ अतएव हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वाह्ण में श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य भगवान् केशव की अनुकम्पा से अपने समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है ॥५१॥ हे विप्रेन्द्र । एक वस्त्र धारण करके श्रीहरि की पूजा न करें । यदि कोई इसी तरह से पूजा करता है तो उसको श्रीभगवान् नहीं स्वीकार करते हैं ॥५२॥ जो बिना धोए हुए वस्त्र से श्रीहरि की पूजा करता

यैस्त्ववद्धशिखैः पूजा क्रियते चक्रिणो जनैः ।
पूजाफलं नाऽऽप्नुवन्ति बलिग्राह्या च सा भवेत् ॥५४॥
असंस्कृतगृहे पूजा क्रियते जगतीपतेः। सा पूजा ब्राह्मणश्रेष्ठ ! बलिग्राहा भवेत्खलु ॥५५॥
स्नानं देवार्चनं चैव दानं च पितृपूजनम् । तिलकेन बिना विप्र ! कुरुते न विचक्षणः ॥५६॥
तिलकान्यगृहीत्वा यत्पुण्यकर्म विधीयते। भस्मीभवति तत्सर्वं कर्ता च नारकीभवेत् ॥५७॥
शङ्खचक्रगदापद्मैरङ्कितं यस्य दृश्यते ।
शरीरं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! विज्ञेयः सोऽच्युतः स्वयम् ॥५८॥
यो लिखेद्दक्षिणेबाहौ शङ्खपद्मे च वैष्णवः। सव्ये चक्रं गदां चैव सविष्णुर्नाऽत्रसंशयः ॥५९॥
पङ्कजं दक्षिणे बाहौ शङ्खस्योपरि यो लिखेत् ।
पातकं सकलं तस्य क्षणादेव तु नश्यति ॥६०॥
चक्रोपरि गदां यस्तु लिखेत्सव्ये भुजे द्विज ! ।
तं वन्दन्ते द्विजश्रेष्ठ ! शक्राद्या अपि निर्जराः ॥६१॥
मुरारिपादयुग्मं च स्वललाटे लिखेद्बुधः। पापात्माऽपि तं दृष्ट्वा मुक्तोभवति पातकात् ॥६२॥
अष्टाक्षरं महामन्त्रं मत्स्यं कूर्मं च यो हृदि। लिखेत्स वैष्णवश्रेष्ठः पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥
कृष्णायुधाङ्कितं यस्य शरीरं स्याद्दिने दिने। तस्य कृष्णोजगन्नाथो ददाति परमम्पदम् ॥६४॥
कृष्णायुधाङ्कितनुर्यत्कर्म कुरुते नरः। शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥६५॥

है वह पूजा व्यर्थ हो जाती है, उससे भगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं ॥५३॥ जो लोग शिखा को बाँधे बिना ही श्रीहरि की पूजा करते हैं वह पूजा के फल को नहीं प्राप्त करता है, उस पूजा को राजा बलि लेते हैं।।५४।। जो संस्कार रहित गृह में पूजा की जाती है उस पूजा को भी बलि ले लेते हैं ॥५५॥ हे विप्र! तिलक लगाये बिना दक्ष व्यक्ति, स्नान, देवार्चन, दान तथा पितृपूजन नहीं करते हैं ॥५६॥ तिलक लगाये बिना ही जो पुण्य कर्म किए जाते हैं वे सब कुछ भस्म हो जाता है और उसको करने वाले भी नारकी होते हैं ॥५७॥ जिसका शरीर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म से चिह्नित दिखता है हे द्विज श्रेष्ठ ! उसको अच्युत स्वरूप ही मानना चाहिए ॥५८॥ जो वैष्णव अपनी दाहिनी भुजा पर शङ्ख और पद्म का चिह्न बनाता है और बायीं भुजा पर चक्र तथा गदा का चिह्न बनाता है वह इस लोक में निश्चित रूप से विष्णु ही हैं ॥५९॥ जो अपनी दाहिनी भुजा पर शङ्ख के ऊपर पद्म बनाता है, उसके सारे पाप क्षणभर में विनष्ट हो जाते हैं ॥६०॥ हे द्विज ! जो चक्र के ऊपर गदा को अपनी बायीं भुजा पर बनाता है हे द्विज ! उसकी इन्द्र आदि देवता भी वन्दना करते हैं ॥६१॥ बुद्धिमान को चाहिए कि वह अपने ललाट पर श्रीभगवान् दोनो चरणों को बनाया उसको देखकर पापी भी मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥६२॥ अष्टाक्षर नामक महामन्त्र को तथा मत्स्य एवं कूर्म को अपने हृदय पर जो बनाता है वह श्रेष्ठ वैष्णव त्रैलोक्य को पवित्र बना देता है ॥६३॥ जो प्रतिदिन भगवान् के आयुधों को अपने शरीर पर बनाता है उसको जगन्नाथ श्रीभगवान् परगपद प्रदान करते हैं ॥६४॥ श्रीभगवान् के आयुधों से चिह्नित जिसका शरीर वाला पुरुष जिस कर्म को करता है, वह पुण्य अथवा पाप जिस कर्म को करता है, वह सारा कर्म अक्षय हो जाता है॥६५॥

दानवा राक्षसाश्चैव भूतवेतालकास्तथा। पिशाचाः पन्नगाश्चाऽपि यक्षविद्याधरास्तथा ॥६६॥
किन्नरा गुह्यकाश्चैव ग्रहा बालग्रहास्तथा। कृष्माण्डाश्चैव डाकिन्यस्तथाऽन्ये विघ्नकारकाः॥६७॥
सर्वे भीत्या पलायन्ते दृष्ट्वा कृष्णायुधाङ्कितम् ।
द्वीपाश्चद्वीपिनश्चैव तथाऽन्ये वनवासिनः ॥६८॥
दृष्ट्वैव प्रपलायन्ते भयात्कृष्णायुधाङ्कितम्। कामलाद्या महारोगा देहदेहावपातिनः ॥६९॥
कृष्णायुधाङ्कितततनुं भक्तया पश्यति यो जनः ।
कृष्णदर्शनतुल्यं तु फलंप्राप्नोति मानवः ॥७०॥
त्रिपदीकृतदूर्वाभिराश्विने योऽर्चयेद्धरिम्। दूर्वावत्सन्ततिस्तस्य अविच्छिन्ना प्रवर्तते ॥७१॥
आश्विने मासि यो दद्याद्धरये कर्कटीफलम् ।
शोको न जायतेतस्यकदाचिद्धृदये द्विज ! ॥७२॥
कार्तिके च समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे। दामोदरं देवदेवं भक्तया प्राज्ञः प्रपूजयेत्॥७३॥
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र ! विष्णुप्रीणनहेतवे। यथोक्तविधिना प्राज्ञःप्रातःस्नानं समाचरेत्॥७४॥
आमिषं मैथुनं चैव कार्त्तिके मासि यस्त्यजेत् ।
जन्मान्तरार्जितैः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥७५॥
तुलाराशिगते सूर्ये प्रातःस्नानं द्विजोत्तम ! । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम्॥७६॥
आमिषं मैथुनं चैव कार्तिके मासि सेवते। जन्मजन्मनि विप्रेन्द्र ! स भवेद्ग्रामसूकरः ॥७७॥
द्विर्भोजनं परान्नं च तैलं च वैष्णवोजनः। आयाते कार्त्तिकेमासि यत्नादपि परित्यजेत्॥७८॥
दामोदराय नभसि दीपं यस्तु प्रयच्छति। फलं तस्य प्रवक्ष्यामि समासेन शृणु द्विज ! ॥७९॥

किन्नर तथा गुह्यक ग्रह एवं बाल ग्रह कुष्माण्ड, डाकिनी तथा दूसरे जो विघ्न करने वाले हैं ॥६७॥ ये सबके सब भगवान् विष्णु के आयुधों से अङ्कित शरीर वाले को देखकर भाग जाते हैं । सिंह और हाथी तथा दूसरे वन में रहने वाले जीवन ॥६८॥ श्रीभगवान् के आयुधों से अङ्कित शरीर वाले को देखकर ही भाग जाते हैं । कामलादि महारोग जो शरीर तथा शरीरी को विनष्ट करने वाले होते हैं वे भी भाग जाते हैं ॥६८-७०॥ जो तीन पत्तों वाले दूब से श्रीहरि की पूजा करता है उसकी सन्तान भी दूर्वा के ही समान निरन्तर बढ़ती रहती है ॥७१॥ आश्विन के महीने में जो श्रीहरि को ककड़ी के फल का भोग लगाता है। हे द्विज उसके हृदय में कभी भी शोक नहीं होता है ॥७२॥ सभी महीनों में उत्तम कार्तिक के महीने के आने पर देवाराध्य श्रीभगवान् दामोदर की पूजा प्राज्ञ पुरुष को भक्ति पूर्वक करनी चाहिए ॥७३॥ हे विप्रेन्द्र! भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए प्राज्ञ पुरुष को यथोक्त विधि से प्रात: स्नान करना चाहिए ॥७४॥ जो, कार्तिक के महीने में मांस और मैथुन को त्याग देता है वह जन्मान्तरों में भी किए गये पापों से मुक्त होकर परमागति को प्राप्त करता है ॥७५॥ हे द्विजोत्तम ! तुला राशि के सूर्य के हो जाने पर प्रात: स्नान, हविष्य तथा ब्रह्मचर्य पालन ये सभी महापातक को भी विनष्ट करने वाले होते हैं ॥७६॥ जो कार्तिक के महीने में मांस तथा मैथुन का सेवन करता है हे विप्रेन्द्र ! वह कई जन्मों तक ग्राम सूकर होता है ॥७७॥ कार्तिक के महीने के आ जाने पर वैष्णव को दो बार भोजन, परान्न और तेल इन सबों का प्रयास करके त्याग

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तः क्लेशदायकैः। दामोदरपुरं गत्वा तिष्ठेत्कोटियुगावधि॥८०॥
दीपं ज्वलन्तं नभसि त्रिदशा वासवादयः। विलोक्य हर्षिताः सर्वे वदन्तीतिपरस्परम् ॥८१॥
असौ पुण्यात्मनां श्रेष्ठः केशवार्चनतत्परः । प्रदीपं कार्तिके मासि यतो यच्छति चक्रिणे॥८२॥
कार्तिके मासि विप्रेन्द्र ! तस्य तुष्टः सदा हरिः ।
दद्यादक्षयदीपं यः कार्त्तिके हरिमन्दिरे ॥८३॥
दिनेदिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः । तुलसीदललक्षैर्यः कार्तिके पूजयेद्धरिम् ॥८४॥
लक्षैकवाजिमेधस्य मानवो लभते फलम्। बिल्वस्य दललक्षेण योऽर्चयेद्विष्णुमव्ययम् ॥८५॥
परमं मोक्षमाप्नोति प्रसादाज्जगतीपतेः । यत्किञ्चित्कार्तिके मासि विष्णुमुद्दिश्य दीयते ॥८६॥
तदक्षयं भवेत्सर्वं सत्यमेतन्मयोच्यते। घृताक्तं सुरपत्रं यः कार्तिके मासि विष्णवे ॥८७॥
दद्याद्दिनेदिने विप्र ! तस्य विष्णोः पुरे स्थितिः ।
प्रफुल्लपद्मपत्रेण सितेनाऽप्यसितेन वा ॥८८॥
योऽर्चयेत्कमलाकान्तं तस्य किंभुविदुर्लभम् ।
द्विजाग्र्यः कार्तिके मासि हरये येन पङ्कजम् ॥८९॥
न दत्तं तेन किं विप्र ! विष्णवे दैत्यजिष्णवे ।
एकमेवाऽम्बुजं हृत्वा ददाति कैटभारये ॥९०॥
तस्मै किं भगवान्विष्णुर्न ददाति श्रियःपतिः ।
कमलैःकार्तिकेमासियेननाऽऽराधितो हरिः ॥९१॥

देना चाहिए ॥७८॥ जो कार्तिक के महीने में भगवान् दामोदर को दीप प्रदान करता है हे द्विज ! उस को प्राप्त होने वाले फल को मैं संक्षेप में बतला रहा हूँ सुनो ॥७९॥ दुःख देने वाले क्लेशों से मुक्त होकर वह भगवान् दामोदर के लोक में जाकर करोड़ युगों तक वहाँ रहता है ॥८०॥ कार्तिक के महीने में जलते हुए दीपक को देखकर इन्द्र आदि देवता प्रसन्न होकर परस्पर में बातें करते हैं कि यह पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ भगवान् केशव की अर्चना में लगा रहता है क्योंकि यह कार्तिक के महीने में श्रीभगवान् को दीपदान करता है ॥८१-८२॥ हे विप्रेन्द्र ! उसके ऊपर कार्तिक के महीने में श्रीहरि सदा सन्तुष्ट रहते हैं । जो कार्तिक के महीने में श्रीहरि के मन्दिर में अक्षय दीप का दान करता है ॥८३॥ वह मनुष्य प्रतिदिन अश्वमेध याग करने के फल को प्राप्त करता है । जो कार्तिक के महीने में श्रीभगवान् को एक लाख तुलसी दल चढ़ाता है ॥८४॥ वह एक लाख अश्वमेध याग करने के फल को प्राप्त करता है । जो विल्व कें एक लाख दल से श्रीहरि की पूजा करता है ॥८५॥ वह भगवान् वासुदेव की कृपा से परम मोक्ष को प्रापत करता है । भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए जो कुछ भी दान दिया जात है ॥८६॥ मैं सत्य कहता हूँ वह सबकुछ उसके कार्य अक्षय हो जाते हैं । घी में डुबोये गये देवपत्र को जो भगवान् विष्णु को ॥८७॥ प्रतिदिन समर्पित करता है वह श्रीहरि के लोक में जाता है । विकसित श्वेत या अश्वेत कमल दल से ॥८८॥ जो लक्ष्मीपति की अर्चना करता है उसको भूलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । जो ब्राह्मण श्रेष्ठ कार्तिक के महीने में श्रीहरि को कमल ॥८९॥ नहीं चढ़ाया हे विप्र ! उसने दैत्य को परास्त करने वाले श्रीहरि को क्या प्रदान किया हैं ? एक ही कमल लाकर जो कैटभारि श्रीभगवान् को ॥९०॥ चढ़ता है उसको

जन्मजन्मनि तद्गेहे कमला नहि तिष्ठति। पद्मबीजानि यो दद्यात्केशवाय महात्मने ॥९२॥
स जायते विप्रकुले शुद्धे च प्रतिजन्मनि। ब्राह्मणस्य कुले जातश्चतुर्वेदसुहृद्भवेत् ॥९३॥
धनवान्बहुपुत्रश्च कुटुम्बानां च पोषकः। नास्ति पद्मसमं पुष्पं जैमिने ! सत्यमुच्यते ॥९४॥
येन सम्पूज्य गोविन्दं पापात्माऽपिच मोक्षभाक् ।
पद्मपुष्पस्य माहात्म्यं विशेषादुच्यते मया ॥९५॥
सेतिहासं द्विजश्रेष्ठ ! सावधानं निशामय। आसीदेकः प्रजानाम ब्राह्मणःसर्वशास्त्रवित् ॥९६॥
हरिपादाम्बुजे यस्य मनोभृङ्गसदा स्थितिः। देवानां ब्राह्मणानाञ्च गुरूणाञ्चैव सर्वदा ॥९७॥
कृता पूजा द्विजश्रेष्ठ ! त्यक्त्वा कार्यशतान्यपि ।
परद्रव्यं विषं तस्य परस्त्रीच स्वमातृवत् ॥९८॥
अभूच्च मानसं तस्य समं मित्रे च शात्रवे। आयान्तमतिथिं दृष्ट्वा स विप्रः परमार्थवित् ॥९९॥
भृशमानन्दमाप्नोति याचकञ्च द्विजोत्तमम् । सर्वयज्ञाः कृतास्तेन व्रतानि सकलानि च ॥१००॥
संसारसागरं घोरमपारं च तितीर्षुणा। एकदा स द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः ॥१०१॥
स्वमृत्युं च निजां जातिं चिन्तयामास चेतसा ।
अहं पूर्वं स्थितः को वा किं वा कर्म कृतं पुरा ॥१०२॥
कथम्वा जन्मसम्प्राप्तंगमिष्यामि क्व वा पुनः ।
इतिसञ्चिन्त्यविप्रोऽसौनिःश्वस्यचपुनःपुनः ॥१०३॥

लक्ष्मीपति श्रीभगवान् सब कुछ प्रदान कर देते हैं। जो श्रीहरि की आराधना कार्तिक मास में कमल से नहीं करता है ॥९१॥ कई जन्मों में उसके घर में लक्ष्मीजी नहीं निवास करती हैं। जो भगवान् केशव को कमल के बीजों को चढ़ाता है, उसका प्रत्येक जन्म में शुद्ध ब्राह्मणों के घर में जन्म होता है। वह ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न होकर चारो वेद का अध्ययन करता है ॥९२-९३॥ वह धनवान् अनेक पुत्रों तथा परिवार जनों का पालन करने वाला होता है। हे जैमिने ! मैं सत्य कहता हूँ कि कमल के समान कोई भी फूल नहीं होता है ॥९४॥ पापी भी उसके द्वारा श्रीभगवान् की पूजा करता है तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मैं कमल पुष्प का माहात्म्य विशेष रूप से बतलाता हूँ ॥९५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इसे तुम इतिहास के साथ सावधान होकर सुने। एक प्रजा नामक सर्वशास्त्र वेत्ता ब्राह्मण थे ॥९६॥ उनका मन रूपी भौरा श्रीभगवान् के चरण कमल में सदा लगा रहता था। देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुजनों के भी चरणों में उनका मन सदा लगा रहता था ॥९७॥ वह सैकड़ों कामों को भी छोड़कर इन लोगों की पूजा करते था। वह दूसरे के द्रव्य को विष के समान तथा दूसरे की स्त्री को माता के समान देखते थे ॥९८॥ वे अपने मित्रों तथा शत्रुओं को एक समान मानते थे। वह परमार्थ वेत्ता ब्राह्मण आते हुए अनेक अतिथि को देखकर ॥९९॥ तथा याचक को देखकर अत्यन्त आनन्दित होते थे। वे सभी यज्ञों तथा सभी व्रतों को भी कर लिये ॥१००॥ अपार तथा भयङ्कर अपार संसार सागर को पार करने की इच्छा वाले तथा हरि भक्ति परायण उस ब्राह्मण ने एक बार अपने अन्तःकरण से अपने जन्म तथा मृत्यु का विचार किया कि मैं पूर्व जन्म में कौन था और कौन सा कर्म किया ॥१०१-१०२॥ मेरा जन्म क्यों हुआ और मृत्यु के पश्चात् मैं कहाँ जाऊँगा।

विज्ञातुं पूर्ववृत्तान्तं शिवक्षेत्रं जगाम ह । तत्र बद्धाञ्जलिर्विप्रो भक्त्या परमया युतः ॥
तुष्टाव शङ्करं देवं वाचा मधुरया शिवम् ॥१०४॥

ब्राह्मण उवाच

नमस्तुभ्यं महादेव नमस्ते परमेश्वर !। नमस्ते शङ्करेशान ! नमस्ते वरद ! प्रभो !॥१०५॥
नमस्ते ज्ञानरूपाय नमस्ते ज्ञानदायिने। नमस्ते सर्वभूतानां हृदम्बुजनिवासिने॥१०६॥
जगत्स्रष्ट्रे नमस्तुभ्यं जगत्पित्रे नमोनमः । नमः संहारकर्त्रे च पशूनां पतये नमः ॥१०७॥
नमस्तेऽस्तु त्रिनेत्राय नमस्ते वह्निचक्षुषे । नमस्ते चन्द्रनेत्राय सूर्यनेत्राय वै नमः ॥१०८॥
नमस्ते भस्मभूषाय नमस्ते कृत्तिवाससे । नमोऽस्थिमालिने तुभ्यं नीलकण्ठाय वैनमः॥१०९॥
नमस्ते पञ्चवक्त्राय नमस्ते शूलपाणये। कन्दर्पदर्पविध्वंसकारिणे भीममूर्तये ॥११०॥
नमस्ते देवदेवाय नमस्ते त्रिपुरारये । पार्वतीपतये तुभ्यं नमस्ते भीममूर्तये॥१११॥
बाणभक्त्याऽतिसन्तुष्टमानसाय नमोऽस्तु ते । बहुरूपाय वै तुभ्यं विश्वरूपाय वै नमः ॥११२॥
गङ्गाधराय वै तुभ्यं दक्षयज्ञविनाशिने । प्रेतानां पतये तुभ्यं नमस्तुभ्यं पिनाकिने ॥११३॥
ईशानाय नमस्तुभ्यं मनीषाय नमोनमः। तुभ्यं नमोऽस्तु दृश्याय अदृश्याय नमोनमः॥
नमश्चिन्त्याय वै तुभ्यमचिन्त्याय नमोनमः ॥११४॥

ब्रह्मा त्वमेव त्रिदशैकनाथस्त्वमेव विष्णुस्तपनस्त्वमेव ।
त्वमेव सोमः सकलार्तिहारी नमोनमस्ते परमेश्वराय ॥११५॥

तस्य स्तवं समाकर्ण्य शङ्करो लोकशङ्करः। आविर्बभूव सहसा प्रसन्नः परमेश्वरः ॥११६॥

इस तरह से विचार करके उस ब्राह्मण ने बार-बार लम्बी श्वास लिया ॥१०३॥ अपने पूर्वजन्म को जानने के लिए शिव क्षेत्र में वह गया । वहाँ पर हाथ जोड़कर वह ब्राह्मण परम भक्ति पूर्वक, शङ्करजी की मधुर शब्दों में स्तुति की ॥१०४॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे महादेव ! हे परमेश्वर आपको नमस्कार है । हे शङ्कर, हे ईशान ! हे वरादान देने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है । ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञान प्रदान करने वाले तथा सभी जीवों के हृदय कमल में निवास करने वाले आपको नमस्कार है ॥१०५-१०६॥ हे जगत् की सृष्टि करने वाले ! तथा जगत् के पिता आपको नमस्कार है । सभी जीवों का संहार करने वाले पशुपति आपको नमस्कार है । तीन नेत्र वाले तथा अग्नि ही जिनके नेत्र हैं, ऐसे आपको नमस्कार है । चन्द्रमा तथा सूर्य ही जिनके नेत्र हैं ऐसे शिवजी को नमस्कार है ॥१०७-१०८॥ भस्म ही जिनकी भूषा है ऐसे कृत्तिवासा शिवजी को नमस्कार है । अस्थियों की माला धारण करने वाले नीलकण्ठ शिवजी को नमस्कार है ॥१०९॥ पाञ्चमुख वाले तथा त्रिशूल अपने हाथ में धारण करने वाले, भीम मूर्ति तथा कामदेव को विध्वंस करने वाले शिवजी को नमस्कार है ॥११०॥ देवदेव, त्रिपुरारि, भीममूर्ति तथा पार्वति पति को नमस्कार है॥१११॥ बाणासुर की भक्ति से अत्यन्त सन्तुष्ट रहने वाले, अनेक रूपों वाले विश्वरूप शिवजी को नमस्कार है॥११२॥ गङ्गाधर, दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले, प्रेतों के स्वामी तथा पिनाक धारण करने वाले शिवजी को नमस्कार है ॥११३॥ ईशान तथा मनीषा, दृश्य तथा अदृश्य आपको बारबार नमस्कार है । चिन्त्य तथा अचिन्त्य आपको बारम्बार नमस्कार है ॥११४॥ हे देवताओं के एक मात्र स्वामिन् आप ही, ब्रह्मा, विष्णु,

अविर्भूतं समालोक्य सर्वदेवनमस्कृतम्। ववन्देचरणौतस्य स विप्रोऽत्यन्तभक्तिमान्॥११७॥
भूयोऽपि स द्विजश्रेष्ठो हर्षनिर्भारमानसः। कृताञ्जलिर्महादेवं तुष्टाव वरदं प्रभुम्॥११८॥

ब्राह्मण उवाच

यं न पश्यन्ति देवेशं देवाअपि सवासवाः। पश्यामि तमहं साक्षान्महाभाग्यमिदं मम॥११९॥
ध्यानावस्थितचित्तेन यो दृश्यः परमेश्वरः। पश्यामि तमहं साक्षात्साध्यं किमपरं मम॥१२०॥
यन्नामस्मरणादेव महापातकिनोऽपि च। गच्छन्ति परमं स्थानं समीक्षे तमहं प्रभुम्॥१२१॥
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि च भाग्यवान्।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं प्रसीद परमेश्वर ! ॥१२२॥

महादेव उवाच

भवतोऽनेन वाक्येन तुष्टोऽस्मि द्विजसत्तम !।
वरं वृणु महाभाग ! वरं दित्सुरहं खलु ॥१२३॥

ब्राह्मण उवाच

भवन्तं परमात्मानमदृश्यं दैवतैरपि। साक्षात्पश्याम्यहं नाथ ! किंकार्यमपरैर्वरैः॥१२४॥
तथापि त्वं महादेव ! वरं दित्सुः कृपामयः।
पृच्छामि यदहं किञ्चित्तद्ब्रूहि परमेश्वर ! ॥१२५॥
कोऽहं तस्थौ पुरा देव ! किम्वा कार्यं कृतम्पुरा।
संसारसागरे नाथ ! पतितोऽस्मि कथं प्रभो ! ॥१२६॥
कर्मणा प्राप्यते देहो देही पापेन लिप्यते। पुनः पापप्रभावेण प्राप्यते विषमा गतिः॥१२७॥

सूर्य, सोम तथा सभी कष्टों को दूर करने वाले परमेश्वर है, आपको बारम्बार नमस्कार है ॥११५॥ उस ब्राह्मण की स्तुति को सुनकर संसार का कल्याण करने वाले शङ्करजी प्रसन्न होकर अविर्भूत हो गये॥११६॥ सभी देवताओं से नमस्कृत शङ्करजी को देखकर वे ब्राह्मण अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनके चरणों की वन्दना किए ॥११७॥ हर्ष से भरे हुए मन वाले वे ब्राह्मणश्रेष्ठ हाथ जोड़कर शङ्करजी को पुनः स्तुति किए॥११८॥ जिन देवेश को इन्द्र के साथ सभी देवता देख नहीं पाते हैं। उनका मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ यह मेरा महान् सौभाग्य है ॥११९॥ जो परमेश्वर ध्यानावस्थित चित्त वाले के ही द्वारा दृश्य हैं, उनका मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ अब मेरे लिए क्या प्राप्त करना है ?॥१२०॥ जिनके नाम का स्मरण करने मात्र से ही पापी भी मनुष्य परम स्थान को प्राप्त कर लेते हैं उनको मैं देख रहा हूँ ॥१२१॥ मैं अत्यन्त कृतार्थ और भाग्यवान् हूँ। हे परमेश्वर ! आपको बारम्बार नमस्कार है आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२२॥ **महादेवजी ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ठ ! आपके इस वाक्य से मैं सन्तुष्ट हूँ हे महाभाग ! आप वरदान माँगें मैं आपको वरदान देना चाहता हूँ ॥१२३॥ **ब्राह्मण ने कहा**— आप परमात्मा हैं और देवताओं के लिए भी अदृश्य हैं हे नाथ ! मैं आपको साक्षात् देख रहा हूँ और दूसरे वरदान से मुझे कौन सा लाभ है ?॥१२४॥ हे वर देने की इच्छा वाले महादेवजी फिर भी मैं आपसे कुछ पूछता हूँ उसे आप बतलायें ॥१२५॥ हे देव! पूर्व जन्म में मैं कौन था और मैंने कौन सा कर्म किया। हे नाथ मैं इस संसार रूपी सागर में क्यों पड़ा हुआ हूँ ॥१२६॥ कर्म के ही अनुसार शरीर की प्राप्ति होती है और शरीरधारी पाप से लिप्त हो जाता

प्रभावैः कर्मणां केषां जन्म प्राप्तमिदं मया ।
नानादुःखप्रदं नाथ ! प्रसन्नो ब्रूहि शङ्कर ! ॥१२८॥
पापमूलमिदं जन्म जन्मदुःखस्यकारणम्। ज्ञातुमिच्छाम्यहं तस्मात्पूर्ववृत्तान्तमात्मनः॥१२९॥
स्थितोऽहं जननीकुक्षौ जठरानलतापितः । मूत्रविष्ठाप्रकीर्णे च विपाकेन च कर्मणाम्॥१३०॥
गर्भवाससमं दुःखं संसारे नहि मन्यते । कथं मयाऽनुभूतं तत्प्रभो ! भक्तार्तिनाशन !॥१३१॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे नानादुःखसमन्विते। असारे माययाविष्णोर्मोहिते पातकाश्रये॥१३२॥
दुस्तरे बन्धुहीने च कामक्रोधादिसंयुते। शोकरोगप्रदे चैव जन्ममृत्युप्रदे तथा॥१३३॥
अपारे जगतामीश ! पतितोऽस्मि कथं शिव ! ।
एतत्सर्वं विभो ! ब्रूहि यदि ते मय्यनुग्रहः ॥१३४॥

महादेव उवाच

यद्यप्येतद् द्विजश्रेष्ठ ! गुह्याद्गुह्यतरं महत्। अप्रकाश्यं तथापि त्वां भक्तं प्रति वदाम्यहम्॥१३५॥
पुरा त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! शबरान्वयसम्भवः ।
दण्डपाणिरितिख्यातः स्थितः सँल्लोकदुःखदः ॥१३६॥
परलोकभयं त्यक्त्वा विवेकैः परिवर्जितः। दस्युवृत्तिं प्रपन्नोऽभूः सर्वेषां क्लेशदायिनीम्॥१३७॥
दस्युवृत्तिगतं दृष्ट्वा भवन्तमतिनिर्दयम्। अपरे भ्रातरः सर्वे बभूवुस्ते च दस्यवः॥१३८॥
तेषां नामानि विप्रेन्द्र ! भातृणां निगदाम्यहम् ।
यैः सार्द्धं भवता पूर्वं भ्रातृभिर्दस्युता कृता ॥१३९॥

है और उसके पश्चात् वह पाप के प्रभाव से गति को प्राप्त करता है ॥१२७॥ मैंने कि कर्मों के प्रभाव से इस शरीर को प्राप्त किया है । हे नाथ ! यह शरीर अनेक प्रकार के दुःखों को देने वाला है । आप प्रसन्न होकर इसे मुझे बतलाइये ॥१२८॥ इस जन्म का कारण पाप है वही जन्म और दुख का कारण है । इसीलिए मैं अपने पूर्ववृत्तान्त को जानना चाहता हूँ ॥१२९॥ जाठराग्नि से संतप्त में अपनी माता की कुक्षि में पड़ा रहा है कर्मों के परिणाम स्वरूप मैं मूत्र और विष्ठा से भरी हुयी माता की कुक्षि में पड़ा था॥१३०॥ गर्भ वास के समान संसार में कोई भी कष्ट नहीं है । हे भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले शङ्करजी उसका अनुभव मैंने कैसे किया ॥१३१॥ इस भयङ्कर तथा अनेक प्रकार के कष्टों से युक्त यह संसार सार विहीन भगवान् की माया से मोहित तथा पापियों को आश्रय हैं ॥१३२॥ इस संसार को पार करना कठिन हैं, बन्धुओं से रहित, काम तथा काम एवं क्रोध से युक्त है । यह शोक, रोग जन्म तथा मृत्यु को प्रदान करने वाला है ॥१३३॥ हे शिवजी ! हे संसार के स्वामिन् ! इस आपार संसार में मैं क्यों पड़ा हुआ हूँ ? यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो आप इन सारी बातों को मुझे बतलायें ॥१३४॥ **महादेवजी ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ठ ! ये सारी बातें अत्यन्त रहस्यात्मक और गोपनीय हैं । अप्रकाश्य हैं फिर भी मैं आपको बतलाता हूँ ॥१३५॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व जन्म में तुम शबर वंश में उत्पन्न थे । तुम्हारा नाम दण्डपाणि था और तुम संसार को दुःख देने वाले थे ॥१३६॥ परलोक के भय को त्यागकर विवेक विहीन तुम सबों को दुःख देने वाली दस्युओं की वृत्ति को अपना लिए ॥१३७॥ तुमको अत्यन्त निर्दय तथा दस्युवृत्ति को अपनाने वाला देखकर तुम्हारे दूसरे सभी भाई लुटेरे ही हो गये ॥१३८॥ हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे उन भाइयों का नाम

दण्डी दण्डायुधश्चैव दत्तवान्दत्तभूस्तथा। सुदण्डो दण्डकेतुश्च भ्रातरःषट्प्रकीर्तिताः ॥१४०॥
तैर्भ्रातृभिर्महाघोरैर्दयाभिः परिवर्जितः। दण्डेन भवता नित्यं सर्वे व्यग्रीकृता जनाः॥१४१॥
धनलोभेन भवता दुष्टैस्तैर्भ्रातृभिः सह। अरण्यप्रान्तरे विप्र ! हताः शतसहस्रशः ॥१४२॥
हत्वा च सायकैस्तीक्ष्णैर्वनस्थेन त्वया सदा ।
गवां क्रव्याणि भुक्त्वा च मदिराभिः सह द्विज ! ॥१४३॥
ततो यानविधिं सर्वे वणिजस्त्वद्भयात्तथा। तत्यजुर्विपिने तस्मिन्ननर्थः पतितः सदा॥१४४॥
यस्य वित्तं न तद्वित्तं गृहं यस्य न तद्गृहम् ।
यस्य भार्या नतद्भार्यात्वयि दस्युत्व मागते ॥१४५॥
एवं स्वभ्रातृभिस्तैस्तु तस्मिन्नेव महावने। गतो वर्त्मश्रमश्रान्तः स्नानार्थं सरसीं प्रति ॥१४६॥
तत्र स्नानं समाचर्य क्षुधितेन द्विजोत्तम !। भक्षितानि मृणालानि भ्रातृभिस्तैर्जलानि च ॥१४७॥
अथ त्वया द्विजश्रेष्ठ ! कौतुकात्तत्र सत्तम ! ।
भुक्तानि पद्मपुष्पाणि प्रफुल्लानि बहूनि च ॥१४८॥
तस्मिन्नेव ततः काले ब्राह्मणो विपिने चरः ।
सर्ववेदा इति ख्यातस्तत्र स्नानार्थमागतः ॥१४९॥
तत्र स्नात्वा स धर्मात्मा भगवन्तं जनार्दनम् ।
यष्टुं त्वामेकमम्भोजं ययाचे विनयान्वितः ॥१५०॥
अथ त्वया च विप्रेन्द्र ! पद्ममेकं सुनिर्मलम् ।
दत्तं परमया भक्तया पूजार्थं कमलापतेः ॥१५१॥

मैं बतलाता हूँ। जिन सबों के साथ तुम दस्युता का काम करते थे ॥१३९॥ दण्डी, दण्डायुध, दत्वान्, दत्तभूः, सुदण्ड और दण्डकेतु, ये तुम्हारे छह भाई थे ॥१४०॥ दयाहीन तथा अत्यन्त भयङ्कर उन भाइयों के साथ निर्दय तुमने सभी लोगों को दण्ड देकर अत्यन्त व्याकुल बना दिया ॥१४१॥ तुमने घन के लोभ में उन भाइयों के साथ वन में तथा वन के किनारे के लाखों लागों को मार दिया ॥१४२॥ तीक्ष्ण बाणों से मारकर वन में रहने वाले तुम सदा गौओं के मांस को मदिरा के साथ खाकर रहते थे ॥१४३॥ उसके पश्चात् तुम्हारे भय से सभी व्यापारी यानविधि को अपनाकर सदा अनर्थ से भरे हुए उस वन के मार्ग को ही त्याग दिए ॥१४४॥ तुम्हारे दस्यु हो जाने पर जिसके पास घन नहीं होता था उस धन को जिसका घर नहीं था उसका घर दूसरे की ही पत्नी दूसरे की होगी ॥१४५॥ इस तरह अपने उन भाइयों के साथ उस महान् वन में रास्ते में चलने के कारण थके हुए तुम एक दिन स्नान करने के लिए सरोवर पर गये॥१४६॥ हे द्विज ! स्नान करके भूखे हुए तुमने अपने भाइयों के साथ कमल दण्ड को खाकर पानी पिया ॥१४७॥ हे सत्तम ! वहाँ पर तुमने कौतुकवशात् विकसित कमलों के बहुत से फूलों को खा लिया॥१४८॥ उस समय वन में रहने वाले एक ब्राह्मण स्नान करने के लिए आये। उनका नाम सर्ववेदा था। वहाँ पर स्नान करके वे धर्मात्मा भगवान् जनार्दन की पूजा करने के लिए तुमसे विनय पूर्वक एक कमल माँगे ॥१४९-१५०॥ उसके पश्चात् हे विप्रेन्द्र ! आप भी अत्यन्त भक्ति पूर्वक निर्मल एक कमल

त्वया दत्तेन पद्मेन स च प्रीतो द्विजोत्तमः । पूजयामास तत्रैव विष्णुं सकलकारकम् ॥१५२॥
विष्णुपूजापरं दृष्ट्वा तं विप्रं सर्ववेदसम् । त्वमपि प्रहसन्विष्णुं नन्दनं च सुकामदम् ॥१५३॥
अथाऽभ्यर्च्य परात्मानं चतुर्वर्गफलप्रदम्। यथोक्तविधिना विप्र ! स जगाम यथागतः ॥१५४॥
तेनाऽम्बुजप्रदानेन प्रणामेन च सत्तम ! । विष्णुपूजादर्शनेन नष्टं ते सर्वपातकम् ॥१५५॥

ततः कियद्भिर्दिवसैस्तास्मिन्नेव महावने ।
सम्प्राप्तकालः पञ्चत्वं गतोऽसित्वं द्विजोत्तम ! ॥१५६॥

तेनैव कर्मणा तुष्टो भगवान्मकरुणालयः । ददौ तुभ्यं परं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् ॥१५७॥
मन्वन्तरसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च। भुक्तं नानासुखं तत्र कृपया कमलापतेः ॥१५८॥
ततः कर्मावसाने तु कर्मभूमिमिमां द्विज !। आगत्य तैः पुण्यफलैर्जातोऽसिद्विजसन्ततौ ॥१५९॥

ब्राह्मणस्य कुले शुद्धे जन्म सम्प्राप्य सत्तम ! ।
सर्वगुणाश्रया लब्धा हरिभक्तिरचञ्चला ॥१६०॥
आराधितो महाविष्णुः क्रियायोगैस्त्वया प्रभुः ।
तुभ्यं दास्यति विज्ञानं ज्ञानान्मुक्तो भविष्यसि ॥१६१॥
गच्छ ब्राह्मण ! भद्रन्ते सुप्रीतो निजमन्दिरम् ।
मद्दर्शनं त्वया प्राप्तं मुक्तोऽसिभवबन्धनात् ॥१६२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विप्र ! तत्रैव जगदीश्वरः। कृतार्थो ब्राह्मणः सोऽपिजगामभवनंस्वकम् ॥१६३॥
अथ स त्रिदिनं विष्णुं पद्मपुष्पैर्मनोरमैः । यत्नादाराधयामास तुष्ट्यर्थं परमेश्वरम् ॥१६४॥

का फूल भगवान् कमलापति की पूजा करने के लिए दे दिए ॥१५१॥ देने वाले तुम भगवान् विष्णु की पूजा किए ॥१५२॥ विष्णु पूजा करते हुए सर्ववेदा ब्राह्मण को देखकर तुम भी जोर से हँसते हुए सारी कामनाओं को देने वाले भगवान् विष्णु को प्रसन्न किए ॥१५३॥ इसके पश्चात् चतुर्विधि पुरुषार्थ प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु की पूजा करके वे ब्राह्मण चले गये ॥१५४॥ उस कमल को देने तथा प्रणाम करने के कारण एवं भगवान् विष्णु की पूजा को देखने के कारण तुम्हारे सारे पाप विनष्ट हो गये ॥१५५॥ हे द्विजोत्तम ! कुछ दिनों बाद काल आ जाने के कारण उसी वन में तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥१५६॥ तुम्हारे उसी कर्म से सन्तुष्ट होकर करुणा सागर श्रीभगवान् तुमको देवताओं के भी लिए दुर्लभ परमपद प्रदान किए॥१५७॥ वहाँ पर श्रीलक्ष्मीपति की कृपा से एक हजार एक सौ मन्वन्तरों तक तुमने अनेक प्रकार के सुखों का भोग किया ॥१५८॥ उसके पश्चात् कर्मों के समाप्त हो जाने पर हे द्विज ! तुम इस कर्मभूमि में आकर उस पुण्य के फलों के कारण ब्राह्मण की सन्तान हुए हो ॥१५९॥ श्रेष्ठ ! ब्राह्मण के शुद्ध वंश में जन्म प्राप्त करके तुम सभी गुणों वाली श्रीहरि की भक्ति प्राप्त की ॥१६०॥ तुमने क्रियायोग के द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना की है । अतएव श्रीभगवान् तुमको विशिष्ट ज्ञान प्रदान करेंगे उसी से तुम मुक्त हो जाओगे ॥१६१-१६२॥ **व्यासजी ने कहा—** हे विप्र ! इसीतरह से कहकर शङ्करजी अन्तर्धान हो गये। कृतार्थ होकर वे ब्राह्मण भी अपने घर चले गये ॥१६३॥ इसके बाद वे तीन दिनों तक मनोहर कमल पुष्पों

विष्णुं समाराध्य चिरं प्रसुप्तः पद्मप्रसूनैर्विविधै सुपुष्पैः ।
ज्ञानं समासाद्य जगाम मोक्षं प्रसादतः श्रीगरुडध्वजस्य ॥१६५॥
अनिच्छयाऽपि कमलं यच्छतःफलमीदृशम् ।
विष्णवे यच्छतोभक्त्या नजाने किंभवेदिति ॥१६६॥
सत्यं सत्यं पुनःसत्यं सत्यमेव मयोच्यते । कमलैर्हरिमभ्यर्च्य प्राप्यते परमम्पदम् ॥१६७॥
एकमेवाऽरविन्दं यः प्रददाति मुरारये । तस्य नास्ति पुनर्जन्म संसारे तु भयावहे ॥१६८॥
नारायणं ये च प्रफुल्लवारिजैर्दयामयं कामदमर्चयन्ति ।
एकाहमप्युत्कटपापयुक्तास्ते यान्ति मुक्तिं ह्यतिपापिनोऽपि ॥१६९॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
हरिपूजावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

व्यास उवाच

मार्गशीर्षे द्विजश्रेष्ठ ! महालक्ष्म्या समन्वितम् ।
पूजयेदव्ययं विष्णुं भक्तिभावेन वैष्णवः ॥१॥

से परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए प्रयास पूर्वक भगवान् विष्णु की आराधना किए ॥१६४॥ भगवान् विष्णु की आराधना कमल के पुष्पों से करके सोए हुए वे श्रीभगवान् गरुड ध्वज की कृपा से ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त कर लिए ॥१६५॥ बिना इच्छा के ही भगवान् विष्णु को कमल का फूल प्रदान करने का यदि इस प्रकार का फल है तो भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु को कमल देने वाले को न जाने कौन सा फल होगा?॥१६६॥ यह मैं परम सत्य कहता हूँ कि भगवान् विष्णु को कमल पुष्प चढ़ाने वाले को परम्पद की प्राप्ति होती है ॥१६७॥ जो श्रीभगवान् को एक भी कमल पुष्प समर्पित करता है उसका इस भयावह संसार में पुनः जन्म नहीं होता है ॥१६८॥ जो लोग दयामय तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु को विकसित कमलों के द्वारा पूजा एक दिन भी कर लेते हैं वे लोग यदि अत्यन्त उत्कट भी पापी हो तो भी मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥१६९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के श्रीहरि पूजा वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

श्रीभगवान् की पूजा का माहात्म्य वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! वैष्णव को चाहिये कि वह मार्गशीर्ष के महीने में श्रीमहालक्ष्मीजी के साथ निर्विकार भगवान् विष्णु की भक्तिभाव पूर्वक पूजा करे ॥१॥ हे विप्रेन्द्र ! म्लेच्छों के देश में पतितों

म्लेच्छदेशे च विप्रेन्द्र ! तथैव पतितालये । दुर्गन्धैश्च परिव्याप्ते स्थाने विष्णुं न पूजयेत् ॥२॥
पाखण्डानां समीपे च महापातकिनां तथा । असत्यभाषिणां चैव न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ॥३॥
क्रन्दतां सन्निधौ चाऽपि कलहानपि कुर्वताम् ।
तथोपहसतां स्थाने न कुर्यात्पूजनंहरेः ॥४॥
प्रतिग्रहरतानाञ्च स्थाने विष्णुं न पूजयेत् । कृपणानां गृहे चैव परवित्ताभिलाषिणाम् ॥५॥
तथा कपटवृत्तीनां न कुर्याद्विष्णुपूजनम् । नारायणार्चने विप्र ! परं भक्तिपरायणः ॥६॥
अन्यचित्तं परित्यज्य हरिध्यानपरो भवेत् । हाहाकारं च निःश्वासं विस्मयं च द्विजोत्तम ! ॥७॥
पाखण्डजनसम्भाषं न कुर्याद्धरिपूजने । अनन्यमानसो भूत्वा भक्तया विष्णुं यजेद्बुधः ॥८॥
भ्रान्तचित्तेन यत्कर्म क्रियते तच्चनिष्फलम् । सर्वं कर्म मनोऽधीनं मनोऽधीनंजगत्त्रयम् ॥९॥
तस्मान्मनो दृढीकृत्य पूजयेत्कमलापतिम् । पूजान्यत्रमनो यत्र भवेद्यस्य द्विजोत्तम ! ॥१०॥
न च तस्य फलेत्कार्यं कल्पकोटिशतैरपि । यत्नाद्विहितशौचोऽपि विष्णुपूजापरोऽपिच ॥११॥
मनःशुद्धिविहीनश्चेच्चाण्डाल इव स स्मृतः । अभक्त्या यत्तपस्तप्तं सुचिरंविधिनाद्विज ! ॥१२॥
भवेन्निरर्थकं सर्वं केवलं कायशोधनम् । मेरुप्रमाणकं स्वर्णं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥१३॥
अभक्त्या यत्तमप्यर्थनाशायैव तु केवलम् । तस्मादेकमना भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥१४॥

के घर में तथा दुर्गन्धि से युक्त गृह में भगवान् विष्णु की पूजा न करे ॥२॥ पाखण्डियों के, महापतितों के तथा मिथ्या भाषण करने वाले के समीप भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिए ॥३॥ रोने वालों के कलह करने वालों के तथा श्रीभगवान् का उपहास करने वालों के समीप श्रीहरि की पूजा न करे ॥४॥ सदा दान लेते रहने वालों के समीप, कृपणों के घर में तथा दूसरे की सम्पत्ति की अमिलाषा रखने वालों के सन्निकट के घर में तथा दूसरे की सम्पत्ति की अभिलाषा रखने वालों के सन्निकट भगवान् विष्णु की पूजा न करे ॥५॥ कपट करने वालों के भी समीप भगवान् विष्णु की पूजा न करे । हे विप्र ! भगवान् नारायण की पूजा करने में ॥६॥ अन्य वस्तुओं की ओर से मन को हटाकर श्रीहरि का ही ध्यान करे । हाहाकार लम्बी श्वास लेना तथा विस्मय का एवं पाखण्डियों के साथ बातें करने का श्रीहरि के पूजन में त्याग कर देना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि वह अनन्यमना होकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करे ॥७-८॥ चञ्चल चित्त वाले के द्वारा किया जाने वाला कर्म निष्फल होता है । सारे कर्म मन के अधीन हैं मन के ही अधीन त्रैलोक्य है ॥९॥ अतएव मन को दृढ बनाकर भगवान् लक्ष्मीपति की पूजा करनी चाहिए । पूजा से भिन्न विषय में यदि मन हो तो हे द्विजोत्तम !॥१०॥ सैकड़ों कल्पों में भी उसका कार्य सफल नहीं होता है । प्रयास पूर्वक जो शौच का पालन करता है तथा भगवानृ विष्णु की पूजा करते भी रहे तो भी यदि उसका मन शुद्ध न हो तो वह चाण्डाल के सदृश होता है । भक्ति के बिना किया गया दीर्घकाल पर्यन्त तथा विधि पूर्वक किया गया तप ॥११-१२॥ वह केवल शरीर को शुद्ध करने वाला है उसका कुछ भी फल नहीं होता है । परिवार वाले ब्राह्मण को सुमेरु पर्वत के बराबर भक्ति के बिना दिया गया सुवर्ण केवल अर्थनाश मात्र होता है ॥१३॥ अतएव एकाग्रमन करके भक्ति तथा श्रद्धा पूर्वक वैष्णव को सभा में वस्तु के साथ शाक ही प्रदान करे । जो अच्छी तरह से पके हुए दिव्य नारङ्गी का फल भगवान्

सवास्तुकादिशाकम्वा दद्यात्सदसि वैष्णवे ।
नारङ्गस्य फलं दिव्यं सुपक्वं यस्तु यच्छति ॥१५॥
केशवाय द्विजश्रेष्ठ ! सोऽस्माभिरभिपूज्यते ।
यत्नेन नूतनं वस्तु प्रियं भवगतो हरेः ॥१६॥
तदेवाऽऽग्रयणेमासि भक्तया दद्यान्मुरारये। पौषे मासि समायाते श्रीकृष्णं वरदं प्रभुम् ॥१७॥
देवमिक्षुरसैर्दिव्यैः स्नापयेद्वैष्णवो जनः । यः स्नापयति विप्रेन्द्र ! विष्णुमिक्षुरसैः प्रभुम्॥१८॥
इह भुङ्क्ते सुखं सर्वं मृतो यातीक्षुसागरम्। यो दद्यादिक्षुनैवेद्यं देवदेवाय विष्णवे॥१९॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः । सुदुग्धपृथुकं पौषे दधिभिर्वा समन्वितम् ॥२०॥
दत्त्वा मुरारये मर्त्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात्। सर्वं पुरातनं वस्त्रं दूरीकृत्य मुरारये ॥२१॥
शीतस्य वारणार्थाय दद्याद्वस्त्रं च नूतनम्। पौषसंक्रमणे विप्र ! सलक्ष्मीकाय विष्णवे॥२२॥
दद्यान्मुमुक्षुर्मनुजो दशवर्णं च पीठकम् । यस्तु शङ्खध्वनिं कुर्यात्सम्पूज्य कमलापतिम् ॥२३॥
तस्य पुण्यफलं वच्मि शृणु वत्स ! समाहितः ।
अगम्यागमनाद्यैश्च विमुक्तः सर्वपातकैः ॥२४॥
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा विष्णुना सह मोदते। वैनतेयाङ्कितां घण्टां यस्तु वादयते हरेः॥२५॥
पूजाकाले द्विजश्रेष्ठ ! तस्यपुण्यं वदाम्यहम् ।
अभक्ष्यभक्षणाद्यैश्च विमुक्तः सर्वपातकैः ॥२६॥
प्रयाति मन्दिरं विष्णोरथमारुह्य शोभनम्। तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामान्कल्पकोटिशतावधि॥२७॥

केशव को चढ़ाता है हे द्विजश्रेष्ठ वह हमलोगों का भी पूज्य हो जाता है । जो वस्तु भगवान् को प्रिय हो ऐसी वस्तु प्रयास करके उन्हें प्रदान करे ॥१४-१६॥ मार्गशीर्ष के महीने में उसी वस्तु को भक्ति पूर्वक प्रदान करना चाहिए । पूस का महीना आने पर वरदान देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को वैष्णवों को चाहिए कि वे ईख के रस से भगवान् को स्नान कराये । हे विप्रेन्द्र ! जो श्रीभगवान् को ईख के रस से नहवाता है ॥१७-१८॥ वह इस लोक में सभी भोग को भोगकर मृत्यु के पश्चात् ईक्षुसागर में जाता है । जो श्रीभगवान् को ईख का भोग लगाता है, वह भी उसी फल को प्राप्त करता है । इस विषय में बहुत अधिक क्या कहना है ? सुन्दर दूध को खूब गाढा करके अथवा दधि के साथ ॥१९-२०॥ श्रीभगवान् को प्रदान करके मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । सारे पुराने वस्त्रों को हटाकर श्रीभगवान् को ॥२१॥ ठंढी से बचाने के लिए नवीन वस्त्र प्रदान करना चाहिए । हे विप्र ! पूसमास की संक्रान्ति के अवसर पर लक्ष्मी सहित भगवान् विष्णु को मुमुक्षु पुरुष दरङ्ग के ये ठठ को प्रदान करता है तथा जो श्रीभगवान् की पूजा करके शङ्ख को बजाता है ॥२२-२३॥ हे वत्स ! उसको प्राप्त होने वाले फल को बतलाता हूँ उसे सावधानी पूर्वक सुनो । वह अगम्यागमन आदि से होने वाले पापों से मुक्त हो जाता है ॥२४॥ अन्त में वह भगवान् विष्णु के लोक में जाकर भगवान् विष्णु के ही साथ आनन्दानुभव करता है । जो हरे के गरुड़ के चिह्न से युक्त घण्टा को ॥२५॥ पूजा के समय बजाता है उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं बतला रहा हूँ वह अभक्ष्य भक्षण आदि पापों से मुक्त होकर ॥२६॥ सुन्दर रथ पर चढ़कर भगवान् विष्णु के लोक

पुनरागत्य धरणीं चतुर्वेदी द्विजोत्तमः । तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामानकल्पकोटिशतावधि॥२८॥
पुनर्विष्णुपुरं गत्वा मोक्षं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । वीणां वादयते यस्तु पूजाकाले जगत्पतेः ॥२९॥
पण्डितानामग्रणीः स्यात्सो मर्त्यः प्रतिजन्मनि ।
मृदङ्गवाद्यकृद्यस्तु पूजायां कैटभद्विषः ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान्ददात्यभिमतं फलम् । डमरुं डिण्डिमं चैव झर्झरीं मधुरीं तथा ॥३१॥
पटहं दुन्दुभिं चैव काहलं सिन्धुवारकम् । कांस्यं च करतालं च वेणुं वादयते तु यः ॥३२॥
पूजाकाले महाविष्णोस्तस्य पुण्यं निशामय ।
स्तेयाद्यैः पातकैर्मुक्तो मन्दिरं याति चक्रिणः ॥३३॥
परमं ज्ञानमासाद्य तत्रैव परिमुच्यते । कलशब्दं च यः कुर्यात्पूजाकाले जगद्गुरोः ॥३४॥
मुखवाद्यं च विप्रन्द्र ! तस्य पुण्यं मयोच्यते ।
कोटिकोटिकुलैर्युक्तः प्रयाति मन्दिरंहरेः ॥३५॥
ज्ञानमासाद्य तत्रैव मोक्षमक्षय्यमाप्नुयात् । विष्णोरायतनेयस्तु भक्तियुक्तः प्रनृत्यति ॥३६॥
सयाति ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तद्विष्णोः परमम्पदम् ।
यस्तु गायति गीतानि भक्त्यानारायणाग्रत ॥३७॥
स नृपत्वमवाप्नोति गन्धर्वाणां पुरेषुच । स्तौति स्तोत्रैर्जगन्नाथं भक्तया च वैष्णवोजनः ॥३८॥
तस्यप्रसन्नो भगवान्सर्वान्कामान्प्रयच्छति । मासेमासे हरिं यस्तु विधिनाऽनेनपूजयेत् ॥३९॥
अचिरेणेव विप्रर्षे प्रसादयति सोऽच्युतम् ॥४०॥

में जाता है । वहाँ पर वह सौ करोड़ कल्पों तक सभी भोगों को भोगकर ॥२७॥ फिर वह पृथिवी पर आकर चारो वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होता है और करोड़ों सौ वर्षो तक भोग भोगकर ॥२८॥ फिर भगवान् विष्णु के लोक में जाकर सर्वोत्तम मोक्ष को प्राप्त करता है । जो श्रीभगवान् के पूजा के समय वीणा बजाता है ॥२९॥ वह मनुष्य प्रत्येक जन्मों में पण्डितों में श्रेष्ठ पण्डित होता है । श्रीभगवान् की पूजा के समय जे मृदङ्ग वादन करता है ॥३०॥ उस पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उसके अभिमत फल को प्रदान करते हैं जो डमरू-डिण्डिम, झर्झरी, मधुरी, पटह, दुन्दुभि, काहली, सिन्धुवारक, कांस्य, करताल तथा वेणु को ॥३१-३२॥ भगवान् विष्णु की पूजा के समय बजाता है उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं कहता हूँ सुनो वह चोरी जन्य पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥३३॥ और वहीं पर परमज्ञान को प्राप्त करके मुक्त हो जाता हैं । जो श्रीभगवान् की पूजा के समय कल शब्द करता है॥३४॥ तथा जो मुँह से बाजा बजाता है, उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं कहता हूँ, उसे सुनो वह करोड़ों कुलों के साथ श्रीहरि के लोक में जाता है ॥३५॥ वह ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करता है। जो भगवान् विष्णु के मन्दिर में भक्ति पूर्वक नृत्य करता है ॥३६॥ वह ब्राह्मण श्रेष्ठ भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । जो भगवान् नारायण के समक्ष भक्ति पूर्वक गीतों को गाता है ॥३७॥ वह गन्धर्वों का राजा होता है । जो वैष्णव भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् की स्तोत्रों से स्तुति करता है और जो प्रत्येक मास में इसी विधि से श्रीभगवान् की पूजा करता है उस पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उसकी सारी कामनाओं को पूर्णकर

जगदुदधिमिमं ये तर्तुमिच्छन्ति मर्त्याः प्रचुरतरगभीरं सर्वदुःखप्रदञ्च ।
परमपुरुषपादाम्भोजयुग्मं मनोज्ञं त्रिदशनिवहसेव्यंतेचसर्वेयजन्तु ।।४१।।

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
भगवत्पूजामाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

व्यास उवाच

नारायणस्य माहात्म्यं पुनर्वच्मिशृणु द्विज ! ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवाः ।।१।।
विष्ण्वंशभूतं सकलं जगदेतद्द्विजोत्तम !। तस्माद्विष्णुमयं धीराःपश्यन्ति परमार्थिनः ।।२।।
ब्रह्मशङ्कररुद्राद्या विष्ण्वंशाःसकलाःसुराः। तस्मात्समस्तदेवार्चा विष्णुमेकंप्रपद्यते ।।३।।
स्मरतां विष्णुनामानि सर्वपापहराणिच। येनकेनाऽप्युपायेन विद्यते नाऽशुभं क्वचित् ।।४।।

देते हैं ।।३८-३९।। हे विप्रर्षे ! वह शीघ्र ही श्रीभगवान् को प्रसन्न करता है ।।४०।। जो मनुष्य इस संसार सागर में जो लोग अत्यन्त गहरा तथा सभी प्रकार के दुःखों को प्रदान करने वाला है उसको पार करना चाहते हैं वे उन सबों को चाहिए कि वे श्रीभगवान् के अत्यन्त मनोहर तथा देव समूह से सदा सेवित दोनों चरणों की सेवा करें ।।४१।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के भगवत पूजा माहात्म्य वर्णन नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भगवान् के नाम के प्रभाव वर्णन के प्रसङ्ग में परशु नामक वैश्य की पत्नी जिसका पति मर गया था उस जीवन्ती, जो कामार्त बनी रहती थी, उसका अपने पिता के घर से निष्कासन, वेश्या का काम करने वाली का किसी भाग्यवशात् किसी बहेलिए के पास से शुक शावक को खरीदना, उसका पालन करना, वात्सल्य गुण के कारण उसको रामनाम पढ़ाना, राम नाम की महिमा से उसके पाप समूह का नाश उन दोनों के मर जाने पर विष्णु दूतों का यमदूतों के साथ युद्ध के पश्चात् उन दोनों को वैकुण्ठ में ले जाना, यमराज द्वारा रामनाम की प्रशंसा

व्यासजी ने कहा— हे द्विज ! मैं भगवान् नारायण का पुनः माहात्म्य कह रहा हूँ उसे आप सुनें। उसको सुन करके ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।।१।। हे द्विजोत्तम ! यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णु का अंश है । इसीलिए परमार्थी धीर पुरुष जगत् को विष्णुमय देखते हैं ।।२।। ब्रह्माजी, शङ्करजी तथा रुद्र आदि सभी देवता भगवान् विष्णु के अंश हैं इसीलिए सभी देवताओं की पूजा भगवान् विष्णु को हीं प्राप्त होती है ।।३।। भगवान् विष्णु के नामों का स्मरण करना सभी पापों को विनष्ट करने वाला है जिस

सर्वमेव द्विजश्रेष्ठ ! कर्म पापमयं भवेत् । अनपायित्विदं विष्णोः स्मरणं पापनाशनम् ॥५॥
स्वपन्भुञ्जन्वदंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च व्रजंस्तथा । स्मरेदवितरं विष्णुं मुमुक्षुर्वैष्णवो जनः ॥६॥
उत्तुङ्गैर्मुनिभिः सर्वैः स्मरणे कमलापतेः । न कालनियमः प्रोक्तः सर्वदुःखविनाशनः ॥७॥
नामप्रभावं विप्रर्षे ! केशवस्य महात्मनः । ब्रवीम्यहं समासेन सेतिहासं निशामय ॥८॥
आसीत् स परशुर्नाम पूर्वं कृतयुगे शुचिः । वैश्यो वैश्यकुलश्रेष्ठः समस्तगुणपारगः ॥९॥
स वैश्यो दैवयोगेन प्रथमे वयसि द्विज ! । जगाम वशतां मृत्योः कासश्वासगदार्दितः ॥१०॥
जीवन्ती नाम तत्पत्नी सुमध्या नवयौवना । मृते भर्तरि तातस्य जगाम निलयं ततः ॥११॥
सा जीवन्ती द्विजश्रेष्ठ ! नवयौवनगर्विता । गतिं चकार जारेषु बोध्यमानाऽपि बान्धवैः ॥१२॥
व्रतस्य नियमं वाऽपि गृहव्यापारमेव च । जारानुरक्तचिता सा तत्याज नवयौवना ॥१३॥
अन्धीकृता सा कामेन सुश्रोणी पीवरस्तनी ।
धर्ममार्गं द्विजश्रेष्ठ ! न कदाचिद्ददर्श ह ॥१४॥
दुःशीलांचैव तां दृष्ट्वा तत्पिता धर्मतत्परः । अपकीर्तिभयाद्भीरुरित्याहात्यन्तकोपवान् ॥१५॥
दुष्टे पापिनि ! मद्वंशे सर्वदोषविवर्जिते । आसाद्य जन्म किमिति क्रियते पातकं त्वया ॥१६॥
यदि ते पातके चित्तं नेहि भोक्तुं गृहं मम । अभद्रे गच्छ सदनाज्जहीहि मम मन्दिरम् ॥१७॥
तातेनेति निरुक्ता सा क्रोधारुणितलोचना । पितुर्गेहं परित्यज्य सा जगाम यथासुखम् ॥१८॥

किसी भी भगवान के नाम का स्मरण करने वालों काहीं अशुभ नहीं होता है ॥४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! सारा कर्म पापमय हो सकता है किन्तु सभी दोषों से रहित भगवान् विष्णु का स्मरण पापों का विनाशक है ॥५॥ मुमुक्षु वैष्णवों को चाहिए कि वे सोते हुए, खाते हुए, बोलते हुए खड़ा होते हुए चलते हुए सदैव ही भगवान् विष्णु के नामों का स्मरण करें ॥६॥ बड़े-बड़े मुनियों ने श्रीभगवान् के स्मरण में कोई काल का नियम नहीं बतलाया है । भगवान् के नाम स्मरण सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥७॥ हे विप्रर्षे ! मैं श्रीभगवान् केशव के नाम का प्रभाव इतिहास वर्णन पूर्वक संक्षेप में बतलाता हूँ उसे सुनो ॥८॥ पहले के सत्य युग में वैश्य वंश में श्रेष्ठ परशु नामक वैश्य था वह सभी गुणों में पारङ्गत था ॥९॥ हे द्विज! दैवयोग के कारण वह वैश्य बाल्यावस्था में ही कास, श्वास आदि रोगों के कारण मर गया ॥१०॥ उसकी पत्नी का नाम जीवन्ती था । वह नवीन अवस्था से युक्त सुन्दरी थी ॥११॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! नवीन जवानी वाली वह जीवन्ती अपने बान्धवों के द्वारा मना किए जाने पर भी अपने प्रेमी पुरुषों के पास जाती रही॥१२॥ उसका मन अपने प्रेमी में ही अनुरक्त रहने के कारण वह नवीन जवानी से युक्त व्रत के नियम और घर के कामों को करना छोड दी ॥१३॥ सुन्दर कमर तथा उन्नत स्तनों वाली वह काम के द्वारा अन्धी बना दी गयी थी । हे द्विजश्रेष्ठ ! उसने कभी भी धर्म के मार्ग पर ध्यान ही नहीं दिया ॥१४॥ उसको दुःशील देखकर उसके पिता अपयश के भय से अत्यन्त क्रोध करके उससे कहे ॥१५॥ हे दुष्टे! हे पापिनी ! मेरा वंश सभी दोषों से रहित है इस वंश में जन्म लेकर तुम क्या कर रही हों ?॥१६॥ यदि तुम्हारा मन पाप में ही लगा रहता है तो तुम खाने के लिए मेरे घर मत आया करो । हे दुष्टे ! तुम मेरे घर से निकल जाओ मेरा घर त्याग दो ॥१७॥ पिता के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वह क्रोध से आँखें

अथ सा स्वेच्छया नारी भ्रमन्ती जारकाङ्क्षया ।
वेश्यावृत्तिं समाश्रित्य तस्थौ लज्जाविवर्जिता ॥१९॥
पुलिन्दः शवरो वाऽपि चाण्डालो वाऽपि तद्गृहम् ।
आयाति तस्यास्तेनाऽपि मुदा क्रीडति साऽसती ॥२०॥
परलोकभयं विप्र ! कदाचिदपि चेतसा । न चिन्तयामास च सा वारनारी यथाक्रमात्॥२१॥
कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कश्चिद्व्याधस्तदालये ।
शुकशावं समादाय विक्रयार्थं समाययौ ॥२२॥
साऽपि वाराङ्गनातं च शुकशावकमुत्तमम् । जगृहे परमप्रीत्या धनैःसम्पूज्य लुब्धकम् ॥२३॥
तद्योग्याहारदानेन वारस्त्री नित्यमेव सा । शुकस्य पोषणं चक्रे तस्य जातकुतूहला ॥२४॥
वाराङ्गनाऽपत्या सा तमेव शुकशावकम् । मत्वा पुत्रमिवाऽऽत्मानं चक्रेतत्प्रतिपालनम् ॥२५॥
सोऽपि पक्षी द्विजश्रेष्ठ ! नित्यमेव तदाज्ञया ।
ज्ञातिवच्चित्तवात्सल्यव्यवहारं करोति च ॥२६॥
ततोऽसौ लब्धभावश्च शुकोगणिकया तदा। रामेति सततं नाम पठ्यते सुन्दराक्षरम् ॥२७॥
रामनाम परं ब्रह्म सर्वदेवाधिकं महत् । समस्तपातकध्वंसि स शुकस्तु सदा पठन् ॥२८॥
रामोच्चारणमात्रेण तयोश्च शुकवेश्ययोः । विनष्टमभवत्पापं सर्वमेव सुदारुणम् ॥२९॥
कदाचिद्वारमुख्या सा शुकोऽपिच द्विजोत्तमः ।
उभावपि च पञ्चत्वमेककाले गतौ ततः ॥३०॥

लाल करके अपने पिता के घर को छोड़कर अपने मनोनुकूल स्थान पर चली गयी ॥१८॥ उसके बाद अपनी इच्छा के अनुसार अपने उपपति को प्राप्त करने की इच्छा से वेश्यावृत्ति को अपनाकर वह निर्लज्ज हो गयी ॥१९॥ वह पुलिन्द, या शबर, या चाण्डाल के भी घर जाती थी और वह दुष्टा उसके भी साथ अपनी इच्छा के अनुसार क्रीडा करती थी ॥२०॥ वह वेश्या नारी हे विप्र ! अपने मन में कभी भी परलोक के भय के विषय में सोचा ही नहीं ॥२१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! एक बार एक व्याध उसके घर आया । वह अपने हाथ में शुक पक्षी के बच्चों को बेंचने के लिए लिया था ॥२२॥ उस वेश्या ने भी उस बहेलिए को उसके योग्य धन को देकर उस शुक शावक को अत्यन्त प्रेम से खरीद ली ॥२३॥ वह वेश्या उसके योग्य आहार प्रतिदिन देती थी और अपने कुतूहल पूर्वक उस शुक को उसने पाला-पोसा ॥२४॥ निःसन्तान वह वेश्या भी उस शुक पक्षी को ही अपने पुत्र के समान उसके पालन में अपने को लगाये रहती थी॥२५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वह पक्षी भी प्रतिदिन उसकी आज्ञा से अपने दायाद के समान चित्त को वात्सल्य पूर्ण व्यवहार करता था ॥२६॥ उसके पश्चात् वह शुक भी उस वेश्या के भाव को जानकर सुन्दर अक्षरों वाले राम नाम को पढ़ता था ॥२७॥ राम का नाम ही परब्रह्म है, वह सभी देवताओं से अधिक महत्त्वपूर्ण है । वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है उसको वह शुक पक्षी निरन्तर पढ़ते रहता था ॥२८॥ राम नाम का उच्चारण करने से ही उस शुक पक्षी तथा वेश्या दोनों का अत्यन्त भयङ्कर पाप विनष्ट हो गया॥२९॥ एक बार वह वेश्या और शुक दोनों ही एक ही साथ मर गये ॥३०॥ सभी पापों को करने

समानेतुं ततस्तौ तु विहिताखिलपातकौ। किङ्करान्प्रेषयामास चण्डाद्यान्धर्मराट् ततः॥३१॥

ततस्ते किङ्कराः सर्वे चण्डाद्या अतिवेगिनः ।
यमाज्ञया समायाताः पाशमुद्गरपाणयः ॥३२॥
आनेतुं तौ समायाताः सर्वे विष्णोस्तु किङ्कराः ।
पाशबद्धौ तु तौ दृष्ट्वा पतितौ विष्णुकिङ्कराः ॥३३॥
ऊचुर्वाक्यमिदं क्रुद्धा यमदूतान्दुरासदान् ॥३४॥

विष्णुदूताऊचुः

अहो चित्रमिदं वाक्यं यमदूतमुखाच्छ्रुतम्। भक्तावपि हरेरेतौ दण्ड्यौ भास्करसूनुना ॥३५॥
अहो चरित्रं दुष्टानां कदाचिदपि नोत्तमम्। यत्नादपि यतो हिंसा कुर्वन्ति सततं सताम् ॥३६॥
दुष्टानां कृतपापानां चरित्रमिदमद्भुतम्। निष्पापमपि पश्यन्ति पुण्यात्मानोऽखिलं जगत्॥३७॥
पापिनस्तु प्रपश्यन्ति कृतपपमिवाऽखिलम् । श्रुत्वा पुण्यात्मनां पुण्यमभितृप्यन्ति धर्मिणः ॥३८॥

तृप्यन्ति पातकं श्रुत्वापापिनां पापिनो जनाः ।
पापचर्चांसमाकर्ण्य यथातृप्यन्ति पापिनः ॥३९॥

नतृप्यन्ति तथाप्राप्य स्वर्णभारशतान्यपि। अहोबलवती माया महाविष्णोर्महात्मनः॥४०॥
आत्मपीडाकरमपि पापं कुर्वन्ति ते द्विज ! ॥४१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा विष्णुदासास्ते विष्णुभक्तिपरायणाः ।
छिन्नवन्तास्तयोर्विप्र बन्धनं चक्रधारया ॥४२॥

ततस्तु शमनप्रेष्या क्रुद्धास्ते वह्निसन्निभाः। ववर्षुः सहसा तत्र ज्वलदङ्गारसञ्चयान् ॥४३॥

वाले उन दोनों को लेने के लिए यमराज ने चण्ड आदि अपने दूतों को भेजा ॥३१॥ उसके पश्चात् अत्यन्त वेग सम्पन्न वे चण्ड आदि यमदूत अपने हाथ में पाश तथा मुग्दर लेकर आये ॥३२॥ उन दोनों को लेने के लिए भगवान् विष्णु के दूत भी आये । पाश में बाँधकर गिराये गये उन दोनों को देखकर भगवान् विष्णु के दूतों ने क्रुद्ध होकर भयङ्कर यमदूतों से क्राध पूर्वक कहा ॥३३-३४॥ **भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा—** अरे यह यमदूतों के मुख से विचित्र बात सुनाई देती है कि श्रीहरि के दोनों भक्त ये यमराज के दण्ड के पात्र हैं ॥३५॥ दुष्टों का चरित्र कभी भी उत्तम नहीं होता है क्योंकि वे प्रयास करके सदा सज्जनों की हिंसा किया करते हैं ॥३६॥ दुष्टों और पापियों का यह अद्भुत चरित्र हैं । पुण्य पुरुष सम्पूर्ण जगत् को पाप रहित देखते हैं ॥३७॥ किन्तु पापी पुरुष उसको पापी के समान नहीं देखते हैं । धार्मिक पुरुष पुण्यात्माओं के पुण्य को सुनकर प्रसन्न होते हैं ॥३८॥ पापी पुरुष पापियों के पाप को सुनकर प्रसत्र होते हैं । पाप की चर्चा सुनकर पापी पुरुष जितना प्रसन्न होते हैं ॥३९॥ उतना वे सौ भार सुवर्ण को भी प्राप्त करके प्रसन्न नहीं होते हैं । भगवान् महाविष्णु की माया बलवती है ॥४०॥ हे द्विज ! वे ऐसे भी पाप को करते हैं जिसे करने से उनको कष्ट उठाना पड़ता है ॥४१॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से कहकर वे विष्णुदूत जो भगवान् विष्णु की भक्ति करने में ही लगे रहते हैं । उन सबों ने चक्र की धारा से उन दोनों के बन्धन को काट दिए ॥४२॥ उसके पश्चात् वे यमदूत क्रुद्ध हो गये और अग्नि के समान जलते हुए

दण्ड उवाच

विहितंच मयाऽप्येवं शुकं वेश्यां च पापिनीम् ।
नेतुं यूयं समायाता इत्याद्भुतमिवाऽभवत् ॥४४॥

नूनमेतौ यदानेतुं यूयमिच्छथ सत्तमाः !। तदा कुरुत सङ्ग्राममस्माभिः सह सम्प्रति॥४५॥
इत्युक्त्वा यमदूतास्ते बलिनो विधृतायुधाः। सिंहनादैर्दिशः सर्वे पूरयामासुरुद्धताः ॥४६॥
विष्णुदूता महात्मानः सुप्रतीकादयस्तथा। शङ्खनादैः सुललितैश्शङ्खः शब्दमयं जगत्॥४७॥
याम्यैस्ततो महादूतैर्धनुर्मुक्तैःशिलीमुखैः । छातिताविष्णुदूतास्ते सङ्ग्रामेऽत्यन्तदारुणे॥४८॥

शूलानि चिक्षिपुः केचिच्छक्तिं केचिन्महारणे ।
केचिच्छरसहस्राणि केचिच्चक्राणि ते रुषा ॥४९॥

तेर्मुक्तानि महास्त्राणि विष्णुदूता महामराः। बाणान्विचूर्णयामासुर्गदाप्रहरणादिभिः ॥५०॥
ततो भागवतैरैतैर्याम्यानां चक्रधारया। केषाञ्चिच्चरणाश्छिन्नाः केषाञ्चिद्बाहवस्तथा॥५१॥
केचिद्विच्छिन्नशिरसः केचिन्निर्भिन्नवक्षसः। अत्युद्भुतक्षताः केचिद्व्यास्याः पेतुर्गतासवः ॥५२॥
छिन्नैकचरणाः केचित्केचिच्छिन्नैकपाण्यः। सन्त्यज्य सहसा याम्याः सङ्ग्रामाच्च प्रदुद्रुवुः॥५३॥
तानालोक्य ततो दूतान्पलायनपरायणान्। प्रविवेश्य रुषा चण्डः सङ्ग्रामं धृतमुद्गरः ॥५४॥
यमदूतगणश्रेष्ठश्चण्डोऽत्यन्तप्रतापवान् । ताडयामास शतशो मुद्गरैर्विष्णुकिङ्करान् ॥५५॥
अथ भागवता दूता निशितायुधवर्षणैः । ववर्षुस्तरसा क्रुद्धास्तं चण्डं चण्डविक्रमम्॥५६॥

अङ्गारों की वर्षा किए ॥४३॥ **दण्ड ने कहा—** शुक तथा पापिनी वेश्या को मैंने बाँधा है और उन दोनों को लेने के लिए आपलोग आये यह अत्यन्त अद्भुत बात है ॥४४॥ हे श्रेष्ठ पुरुषों ! आपलोग इन दोनों को ले जाना चाहते हैं तो आपलोग इस समय हमलोगों के साथ युद्ध कीजिये ॥४५॥ यह कहकर वे बलवान् यमदूत हाथ में आयुध धारण कर लिये और उद्धत उन सबों ने अपने सिंह नाद के द्वारा सभी दिशाओं को परिपूर्ण बना दिया ॥४६॥ भगवान् विष्णु के दूत सुप्रतीक आदि ने भी अपने शङ्खों की मनोहर ध्वनि से जगत् को शब्दमय बना दिया ॥४७॥ उसके बाद यमराज के महादूतों ने अपने धनुष के छोड़े गये बाणों से भगवान् विष्णु के दूतों को उस भयङ्कर संग्राम में ढँक दिया । कुछ ने उस महारण में त्रिशूल चलाया और कुछ ने शक्ति से प्रहार किया । कुछ यमदूतों ने क्रोध करके हजारों बाणों को छोड़ा तो कुछ ने चक्रों को चलाया ॥४८-४९॥ उन सबों के द्वारा छोड़े गये महास्त्रों बाणों को विष्णु दूतों ने अपनी गदा के प्रहार के द्वारा चूर-चूर कर दिया ॥५०॥ उसके पश्चात् उन भागवतों ने अपने चक्र से कुछ यमदूतों के पैरों को तथा कुछ यमदूतों के हाथों को काट दिया ॥५१॥ कुछ यमदूतों के शिर कट गये और कुछ के वक्षःस्थल छिद गये । कुछ तो अद्भुत प्रकार से कटे हुए बिना मुँह के होकर मर गये । कुछों का एक पैर कटा तो कुछ का एक हाथ कटा था । इस तरह से यमदूत संग्राम करना छोड़कर भाग चले ॥५२-५३॥ यमदूतों को उस तरह से भागते हुए देखकर चण्ड नामक यमदूत मुद्गर लेकर संग्राम करने आया ॥५४॥ यमदूत समुदाय में चण्ड अत्यन्त प्रतापी था । उसने अपने मुद्गरों से सैकड़ों विष्णुदूतों पर प्रहार किया॥५५॥ उसके बाद भगवान् के दूतों ने तीक्ष्ण आयुधों की वर्षा चण्ड के ऊपर किया ॥५६॥ उसके बाद चण्ड ने

मुद्गरेण ततश्चण्डो विष्णुदूतान्पृथक्पृथक् । ताडयामास विगलद्रक्तसंसिक्तविग्रहः ॥५७॥
चण्डेन ताडितास्तेन दूता भगवतो युधि । त्यक्तसत्त्वाः पृष्ठभागं सुप्रकाशस्य वै ययुः ॥५८॥
सुप्रकाशस्ततः क्रुद्धो जपापुष्पनिभेक्षणः । प्रविवेश रणे युद्धं गदापाणिर्महाबलः ॥५९॥
ताडयामास संक्रुद्धो विष्णुतुलयपराक्रमः । मुद्गराच्चण्डहस्ताच्च प्रेक्ष्य जनभयप्रदात्॥६०॥
समुत्तस्थौ महानग्निः सधूमः पूतिगन्धवान् । समुद्गरेण चण्डेन ताडितस्तेन वेगिना॥६१॥
स्फुलिङ्गवर्षणं सद्यो मुमोचाऽत्यन्तभीतिदम् ।
ततः क्रुद्धेन चण्डोऽसौ तेनैवमुद्गरेण च ॥६२॥
ताडयाामस विप्रर्षे ! सुप्रकाशं महाबलम्। सुप्रकाशस्ततो विप्र ! व्यथां विस्मृत्यकोपवान्॥६३॥
गदया ताडयामास चण्डं शमनकिङ्करम्। तेन प्रताडितश्चण्डस्तत्र रक्तपरिप्लुतः ॥६४॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ बालार्क इव जैमिने ! ।
याम्यदूतास्ततस्ते च चण्डमादाय मूर्च्छितम् ॥६५॥
हाहाकारं प्रकुर्वन्तो युद्धाद्भीताः प्रदुद्रुवुः । विष्णुदूतास्ततो विप्र ! सर्वे चाऽतिप्रहर्षिताः॥६६॥
अथ शङ्खान्समादध्मुर्जैमिने द्विजसत्तम !। यमदूतास्ततस्ते च शोणितौघपरिप्लुताः ॥६७॥
यमस्य सन्निधि जग्मुः क्रन्दन्तो भयविह्वलाः ॥६८॥

यमदूता ऊचुः

सूर्यपुत्र ! महाबाहो तवाऽऽज्ञाकारिणौ वयम् ।
तथापि विष्णुदूतैर्नः कृता दुर्गतिरीदृशी ॥६९॥
महापातकिनां श्रेष्ठौ प्रभो यद्यपि तौ खलु ।
रामनामप्रभावेण गतौ नारायणालयम् ॥७०॥

अपने मुद्गर से विष्णु दूतों पर अलग-अलग प्रहार किया । उसके शरीर से रक्त निकल रहा था ॥५७॥ चण्ड के द्वारा मारे गये वे विष्णुदूत भागकर सुप्रकाश के पास गये ॥५८॥ उसके पश्चात् जपापुष्प के समान नेत्रों वाले क्रोध करके अपने हाथ में गदा लेकर सुप्रकाश युद्ध में प्रवेश किए ॥५९॥ भगवान् विष्णु के समान पराक्रम वाले उन्होंने क्रोध करके चण्ड के हाथों को देखकर गदा से प्रहार किया ॥६०॥ उससे पूति (सड़ेमांस) के समान गन्ध वाली धूम से युक्त महानग्नि जल गयी । वेग सम्पन्न भयङ्कर मुद्गर से मारा गया वह अत्यन्त भयङ्कर चिनगारियों की वर्षा किया । उसके पश्चात् क्रुद्ध चण्ड ने उसी मुद्गर से हे विप्रर्षे ! महाबलवान् सुप्रकाश को मारा । हे विप्र ! उस व्यथा को भूलकर क्रोध करने वाले सुप्रकाश ने ॥६१-६३॥ यम के दूत चण्ड को गदा से मारा उनके द्वारा मारा गया चण्ड रक्त से भिंगकर ॥६४॥ मूर्छित होकर बाल सूर्य के समान पृथिवी पर गिर पड़ा । उसके बाद यमराज के दूत मूर्छित चण्ड को लेकर ॥६५॥ हाहाकार करते हुए युद्ध से भयभीत होकर भाग गये । हे विप्र ! उसके बाद भगवान् विष्णु के दूत हर्षित होकर॥६६॥ हे जैमिने ! अपने शङ्खों को बजाये । उसके पश्चात् रक्त समूह से भिंगे हुए वे यमदूत चिल्लाते हुए भयभीत होकर यम के पास गये ॥६७-६८॥ **यमदूतों ने कहा**— हे महाबाहो ! सूर्य पुत्र ! हमलोग आपकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं । फिर भी विष्णु के दूतों ने हमलोगों की इस प्रकार से दुर्गति की है ॥६९॥

भवता दण्डनीया ये दुरात्मानःकृतैनसः। तेऽपि विष्णुपुरं यान्ति प्रभुत्वं तव किन्तदा॥७१॥
नाऽस्माकं विष्णुदूतैस्तैःकृतः परिभवस्त्वयम् ।
तवैव केवलं नाथ ! यतो वै किङ्करा वयम् ॥७२॥

यम उवाच

दूताः स्मरन्तौ तौ रामरामनामाक्षरद्वयम्। तदा न मे दण्डनीयौ तौ तयोर्नारायणःप्रभुः॥७३॥
संसारे नास्ति तत्पापं यद्रामस्मरणैरपि। न याति संक्षयं सद्यो दृढं शृणुत किङ्कराः ॥७४॥
ये मानवाः प्रतिदिनं मधुसूदनस्य नामानि घोरदुरितौघविनाशनानि ।
भक्त्या स्मरन्ति विबुधप्रवरार्चितस्यते पापिनोऽपि हि भटा मम नैव दण्ड्याः ॥७५॥
गोविन्द केशव हरे जगदीश विष्णो नारायण प्रणतवत्सल माधवेति ।
भक्त्या वदन्ति पुरुषाःसततं क्षितौ ये दण्ड्या न ते मम भटा अतिपापिनोऽपि ॥७६॥
भक्तातिनाशन सुरेश्वर दीनबन्धो लक्ष्मीपते सकलपापविनाशकारिन् ।
एतद्वदन्ति सततं भुवि ये मनुष्यास्ते पापिनोऽपि न भटा मम दण्डनीयाः ॥७७॥
दामोदरेश्वर मुखामरवृन्दसेव्य श्रीवासुदेव पुरुषोत्तम माधवेति ।
येषां भवन्ति वदनेषु सदैव शब्दा दूता नामाम्यहमपि प्रतिवासरं तान् ॥७८॥
नारायणस्य जगदेकपतेर्मुरारेश्चर्चासु चित्तमतिहार्दि नृणां च येषाम् ।
तेषामहं च सततं सुभटा ह्यधीनो ये ते प्रफुल्लकमलेक्षणरूपभाजः ॥७९॥

हे प्रभो ! वे दोनों यद्यपि महापातकी हैं फिर भी राम नाम के प्रभाव से भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥७०॥ जो दुष्ट तथा पापी आपके द्वारा दण्डनीय हैं वे भी यदि विष्णुलोक में जाते है तो आपके प्रभुत्व का क्या महत्त्व हैं ?॥७१॥ विष्णु दूतों ने हमलोगों का केवल अपमान नहीं किया है । अपितु हे नाथ ! उन सबों ने आपका भी अपमान किया है क्योंकि हमलोग तो आपके ही दूत हैं ॥७२॥ **यमराज ने कहा**— हे दूतों ! राम-राम इन दो अक्षरों का स्मरण करने वाले हमारे दण्डनीय नहीं हैं । उन दोनों के स्वामी तो भगवान् नारायण ही हैं ॥७३॥ संसार में कोई भी ऐसा पाप नहीं है जो राम का नाम स्मरण करने पर भी सद्यः विनष्ट न हो जाय ॥७४॥ हे मेरे दूतों सदैव भगवान् माधव के भयङ्कर पाप समूह को विनष्ट करने वाले नामों को भक्ति पूर्वक स्मरण करने वाले पापी भी श्रेष्ठ देवताओं द्वारा अर्चनीय हैं, वे हमारे दण्ड के पात्र नहीं हैं ॥७५॥ जो लोग सदा भक्ति पूर्वक हे हरे ! हे केशव ! हे गोविन्द ! हे जगदीश ! हे विष्णो ! हे नारायण ! हे प्रणत वत्सल ! हे माधव ! कहा करते हैं वे यदि अत्यन्त पापी भी हैं तो वे हमारे दण्ड्य नहीं हैं ॥७६॥ हे भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले । हे सुरेश्वर ! हे दीन बन्धों! हे लक्ष्मीपते ! हे सभी पापों को विनष्ट करने वाले ! इन नामों को पृथिवी पर जो मनुष्य सदैव बोलते रहते हैं वे यदि पापी भी हैं तो हे यमदूतों ! वे मेरे दण्डनीय नहीं हैं ॥७७॥ हे दामोदर ! हे ईश्वर ! हे मुख्य देव समूह के सेव्य । हे श्रीवासुदेव ! हे पुरुषोत्तम ! हे माधव ये शब्द जिनके मुख से निकलते रहते हैं हे दूतों उन लोगों को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ ॥७८॥ संसार के एकमात्र स्वामी भगवान् नारायण प्रभु की चर्चा में जिन मनुष्य को चित्त अत्यन्त प्रेम पूर्वक लगता है हे दूतों ऐसे लोगों के मैं अधीन हूँ और

ये विष्णुपूजनरता हरिभक्तभक्ता एकादशीव्रतरताः कपटैर्विहीनाः ।
येविष्णुपादसलिलं शिरसा वहन्ति ते पापिनोऽपि न भटा मम दण्डनीयाः ॥८०॥
ये भुञ्जते भगवतो मधुसूदनस्य नैवेद्यशेषमखिलौधविनाशकारि ।
ये कर्णयोश्च शिरसिच्छदनं तुलस्या नित्यं वहन्ति च भटाः प्रणमाम्यहं तान् ॥८१॥
ये कृष्णपादकमलार्चनतत्पराश्च ये ब्राह्मणार्चनतरा गुणसेविनश्च ।
ये दीनलोकहृदयातिसुखप्रदाश्च तेषामहं सततमेव भटा अधीनः ॥८२॥
ये सत्यवाक्यकथनेषु सदाऽनुरक्ता लोकप्रियाश्च शरणागतलोकपालाः ।
पश्यन्ति ये च सततं विषवत्परस्वं ते मानवा मम भटा न हि दण्डनीयाः ॥८३॥
ये चाऽन्नदाननिरताः सलिलप्रदाश्च भूमिप्रदा निखिललोकहितैषिणश्च ।
ये वृत्तिहीननजनतृप्तिकराः प्रशान्ता दूता न ते खलु कदापि च दण्डनीयाः ॥८४॥
ये ज्ञातिपोषणरताः प्रियवादिनश्च ये दम्भकोपमदमत्सरहीनचित्ताः ।
ये पापदृष्टिरहिता विजितेन्द्रियाश्च तेषामहं न विदधामि कदापि चर्चाम् ॥८५॥

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितास्तेन यमेन यमकिङ्कराः । ज्ञातवन्तो जगद्भर्तुः प्रभावमतुलं हरेः ॥८६॥
विष्णोर्नामानि विप्रेन्द्र ! सर्वदेवाधिकानि वै ।
तेषां मध्येतु तत्त्वज्ञा रामनाम वरं स्मृतम् ॥८७॥

वे भगवान् कमल नयन के रूप के पात्र हैं ॥७९॥ जो लोग श्रीहरि की पूजा में लगे रहते हैं, भगवान् के भक्तों के भक्त हैं, एकादशी व्रत को करते है कपट से रहित हैं, जो श्रीहरि के चरणोदक को अपने शिर पर धारण करते हैं हे दूतों ! यदि वे पापी भी हैं तो भी वे मेरे दण्ड के पात्र नहीं है ॥८०॥ जो लोग सकल पाप विनाशकारी श्रीभगवान् के नैवेद्य से बची हुयी वस्तुओं का ही भोजन करते हैं । तथा अपने शिर पर तथा कानों में तुलसी लगाते हैं हे दूतों ! मैं उन लोगों को सदैव प्रणाम करता हूँ ॥८१॥ जो श्रीभगवान् के चरण कमलों की पूजा में लगे रहते हैं तथा उनके गुणों को अपनाते हैं । जो दीन समूह के हृदय को अत्यन्त सुख प्रदान करते हैं हे भटों में सदा उन लोगों के ही अधीन में रहता हूँ ॥८२॥ जो सदा सत्य ही बोलना पसन्द करते हैं, लोकप्रिय तथा शरणागतों की रक्षा करते हैं । जो दूसरों की सम्पत्ति को विष के समान देखते हैं हे दूतों वे मेरे दण्ड के पात्र नहीं हैं ॥८३॥ जो लोग सदा अन्नदान करते हैं तथा जलदान करते हैं, भूमिदान करते हैं, तथा सभी जीवों का कल्याण करते हैं, जो लोग वृत्तिहीन मनुष्यों को सन्तुष्ट करते हैं, अत्यन्त शान्त हैं, हे दूतों वे मेरे दण्ड के पात्र नहीं हैं ॥८४॥ जो लोग अपने संबन्धियों का पोषण करते हैं, प्रिय बोलते हैं जिनका चित्त, दम्भ, कोप, मद तथा मत्सर से रहित हैं । जो पापों को नहीं देखते हैं, जितेन्द्रिय हैं, उनलोगों की मैं कभी चर्चा भी नहीं कराता हूँ ॥८५॥
व्यासजी ने कहा— इस तरह से यम के द्वारा बतलाये जाने पर वे यमदूत जगत् के स्वामी श्रीभगवान् को जान गये ॥८६॥ हे विप्रेन्द्र ! भगवान् विष्णु के नाम सभी देवताओं से बढ़कर हैं । उनमें भी तत्त्वों के जानने वाले तथा भगवान् राम का नाम श्रेष्ठ है ॥८७॥ हे द्विज ! राम ये दो अक्षर सभी मन्त्रों से श्रेष्ठ

रामेत्यक्षरयुग्मं हि सर्वमन्त्राधिकं द्विज !। यदुच्चारणमात्रेण पापी याति परां गतिम् ॥८८॥
रामनामप्रभावं हि सर्वदेवप्रपूजनम् । महेश एव जानाति नान्यो जानाति जैमिने ! ॥८९॥
विष्णोर्नामसहस्राणां पठनाल्लभते फलम्। तत्फलं लभते मर्त्यो रामनाम स्मरन्नपि॥९०॥
अहो चित्रं मनुष्याणां चरित्रमिदमुच्यते। रामेतिमुक्तिदं नाम न स्मरन्ति दुराशयाः ॥९१॥
वक्तुंश्रमो नचाल्पोऽपि श्रोतुमत्यन्तसुन्दरम्। तथापि रामरामेति न वदन्ति दुराशयाः ॥९२॥
अत्यन्तदुःखलभ्याऽपि मुक्तिर्जगति मानवैः। लभ्यते रामनाम्नैव कर्माऽस्ति किमतःपरम् ॥९३॥
तावत्तिष्ठन्ति पापानि देहेषु देहिनाम्वर !। रामरामेति यावद्वै न स्मरन्ति सुखप्रदम्॥९४॥
श्राद्धे च तर्पणे चैव बलिदाने तथोत्सवे । यज्ञे दाने व्रते चैव देवताराधनेऽपि च ॥९५॥
अन्येष्वपि च कार्येषु वैदिकेषु विचक्षणः । स्मरेद्यस्तत्फलप्रेप्सू रामरामेतिभक्तितः ॥९६॥
नमोरामायेति विप्रेन्द्र ! मन्त्रमोङ्कारपूर्वकम्। षडक्षरं जपेद्यस्तु सायुज्यं प्राप्यते हरेः ॥९७॥
षडक्षरेण मन्त्रेण हरिपूजनकृन्नरः। सर्वान्कामानवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥९८॥

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ ! रामरामेति यः स्मरेत् ।
स पापिष्ठोऽपि परमं मोक्षमाप्नोति मानवः ॥९९॥
रामेति नाम यात्रायां ये स्मरन्ति मनीषिणः ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां यात्रायां नाऽत्रसंशयः ॥१००॥
अरण्यप्रान्तरे वाऽपि स्मशाने यो भयानके ।
रामनामस्मरेत्तस्य विद्यतेनाऽऽपदो द्विज ! ॥१०१॥

हैं। उसका उच्चारण करने मात्र से पापी भी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥८८॥ राम नाम सभी देवताओं का पूज्य है हे जैमिने ! इस बात को शङ्करजी ही जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता है ॥८९॥ विष्णुसहस्रनाम के पढ़ने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल को मनुष्य राम नाम का स्मरण करके भी प्राप्त कर लेता है ॥९०॥ मनुष्यों का यह अद्भुत चरित्र है कि वे दुष्ट राम का मुक्ति प्रदान करने वाले नाम का स्मरण नहीं करते हैं ॥९१॥ इसके बोलने में थोड़ा सा भी परिश्रम नहीं होता है और सुनने में यह अत्यन्त सुन्दर है । फिर भी दुष्ट हृदय वाले राम-राम शब्द का उच्चारण नहीं करते हैं ॥९२॥ संसार में मनुष्यों को अत्यधिक कष्ट से मुक्ति की प्राप्ति होती है । वह मुक्ति रामनाम का उच्चारण करने से भी प्राप्त होती है । इससे बढ़कर दूसरा कर्म कौन है ॥९३॥ देहधारी मनुष्यों के शरीर में पाप तब तक ही बने रहते हैं जब तक वे राम के सुखप्रद नाम का स्मरण नहीं करते हैं ॥९४॥ श्राद्ध, तर्पण, बलिदान, उत्सव, यज्ञ, दान, व्रत तथा देवराधन में भी ॥९५॥ निपुण व्यक्ति दूसरे भी वैदिक कार्यों में भी यदि उस कार्य का फल प्राप्त करना चाहे तो राम-राम इस शब्द का उच्चारण भक्ति पूर्वक करे ॥९६॥ हे विप्रेन्द्र ! **ओम रामाय नमः** इस छह अक्षर वाले मन्त्र का भक्ति पूर्वक जप करने से श्रीहरि का सायुज्य प्राप्त होता है ॥९७॥ इस षडक्षर मन्त्र से श्रीहरि की पूजा करने वाला मनुष्य श्रीभगवान् की कृपा से अपने सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ॥९८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मृत्यु के समय जो राम-राम यह स्मरण करता है, वह पापी भी मनुष्य सर्वश्रेष्ठ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥९९॥ जो यात्रा में राम नाम का स्मरण करता है उसके सभी

राजद्वारे तथा दुर्गे विदेशे दस्युसम्मुखे । दुःस्वप्नदर्शने चैव ग्रहपीडासु जैमिने ! ॥१०२॥
औत्पतिके भयेचैव वातरोगभये तथा । रामनाम स्मरन्मर्त्यो लभते नाऽशुभं क्वचित्॥१०३॥
रामनाम द्विजश्रेष्ठ ! सर्वाशुभनिवारणम् । कामदं मोक्षदं चैव स्मर्तव्यं सततं बुधैः ॥१०४॥
रामरामेति विप्रर्षे ! यस्मिन्नस्मर्यते क्षणे । क्षणः स एव व्यर्थः स्यात्सत्यमेव मयोच्यते॥१०५॥
स्मरन्तो हरिनामानि नावसीदन्तिमानवाः ! ॥१०६॥

जन्मकोटिदुरितक्षयमिच्छुः सम्पदं च लभते भुवि मर्त्यः ।
विष्णुनामसततं भुवि भक्तया मोक्षदायिमधुरं स्मरतुस्म ॥१०७॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत् साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
रामनामप्रशंसनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

व्यास उवाच

भूय एव द्विजश्रेष्ठ ! महाविष्णोः परात्मनः ।
ब्रवीमि शृणु माहात्म्यं सर्वदुःखविनाशनम् ॥१॥

अभिप्रेत कार्यों की सिद्धि हो जाती है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१००॥ जो मनीषी पुरुष अरण्य में अथवा प्रान्तर में या श्मशान में राम नाम का स्मरण करते हैं हे द्विज ! उसके ऊपर कोई आपत्ति नहीं आती हैं ॥१०१॥ राज दरबार में दुर्गम स्थान में, विदेश में तथा लुटेरों के समक्ष, दुःस्वप्न के देखेने पर तथा ग्रह पीड़ा में हे जैमिने ! ॥१०२॥ उत्पत्ति जन्य भय में तथा वायु रोग में मनुष्य को रामनाम का स्मरण करना चाहिए । ऐसा करने वाले का अशुभ नहीं होता है ॥१०३॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! रामनाम सभी अशुभों को दूर करने वाला है । वह कामनाओं को पूर्ण करने वाला और मोक्ष देने वाला है अतएव उसका सदैव स्मरण करना चाहिए ॥१०४॥ हे विप्रर्षे ! जिस क्षण में राम के नाम का स्मरण नहीं किया जाता वही क्षण व्यर्थ हैं यह मैं सत्य कहता हूँ ॥१०५॥ राम के नाम का स्मरण करने वाले मनुष्य कभी दुःखी नही होते हैं ॥१०६॥ करोड़ों जन्मों के पाप का नाश चाहने वाले मनुष्य संसार में सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं । हे मनुष्य ! संसार में भगवान् विष्णु के नाम का सदैव स्मरण करो ॥१०७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के रामनाम की प्रशंसा नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

श्रीहरि की भक्ति की प्रशंसा के प्रसङ्ग में शबर जाति में उत्पन्न चक्रिक का आख्यान वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं पुनः पापों का विनाश करने वाले परमात्मा महाविष्णु भगवान् का माहात्म्य वर्णन करता हूँ उसे आप सुनें ॥१॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा दूसरे अन्त्यज भी जो श्रीहरि

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याःशूद्राश्चान्येऽन्त्यजास्तथा ।
हरिभक्तिं प्रपन्ना ये ते कृतार्था न संशयः ॥२॥
हरेरभक्तो विप्रोऽपि विज्ञेयः श्वपचाधिकः । हरिभक्तः श्वपाकोऽपि विज्ञेयो ब्राह्मणाधिकः ॥३॥
स कथं ब्राह्मणो यस्तु हरिभक्तिविवर्जितः । स कथं श्वपचो यस्तु भगवद्भक्तिमानसः ॥४॥
अव्याजेन यदा विष्णुः श्वपाकेनाऽपि पूज्यते ।
तदा पश्येत्तमप्येवं चतुर्वेदद्विजाधिकम् ॥५॥
पुराऽऽसीच्चक्रिको नाम शबरो लोककर्षकृत् ।
सुजातिवृत्तिहीनश्च युगेद्वापरसञ्ज्ञके ॥६॥
विप्रवादी जितक्रोधः परहिंसाविवर्जितः । दयालुर्दम्भहीनश्च पितृमातृपरायणः ॥७॥
न कृतो वैष्णावालापे मोक्षशास्त्रं न च श्रुतम् ।
तथापि जाता तच्चिते हरिभक्तिरचञ्चला ॥८॥
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जनार्दन । इत्यादीनि स्मरन्नित्यं स च नामानि चक्रिणः ॥९॥
वन्यं फलं च यत्किञ्चित्प्राप्नोति द्विजसत्तम ! ।
आदौ ददाति तद्वक्त्रे निजे शबरवंशजः ॥१०॥
तन्माधुर्यं ततो ज्ञात्वा वक्त्रान्निष्कास्य तत्पुनः ।
ददाति हरये भक्तया सुप्रीतःप्रतिवासरम् ॥११॥
उच्छिष्टं वाऽप्यनुच्छिष्टं द्वयमेव न वेत्ति सः ।
निजजातिस्वभावो हि सततं मूर्ध्नि वर्तते ॥१२॥

की भक्ति करते हैं वे कृतार्थ हैं इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२॥ जो श्रीहरि का भक्त नहीं है ऐसे ब्राह्मण को भी चाण्डाल से भी अधिक पापी मानना चाहिए और श्रीहरि के भक्त चाण्डाल को भी ब्राह्मण से भी अधिक पवित्र मानना चाहिए ॥३॥ जो श्रीहरि का भक्त नहीं है वह ब्राह्मण हो सकता है जिसका मन भगवद् भक्ति में लगा रहता है वह चाण्डाल कैसे हो सकता है ॥४॥ जो साक्षात् भगवान् की पूजा करता है उस चाण्डाल को भी चतुर्वेदी ब्राह्मण से अधिक पवित्र मानना चाहिए ॥५॥ पहले के द्वापर युग में चक्रिक नामक शबर था वह अपनी जाति की वृत्ति को त्याग दिया था ॥६॥ वह ब्राह्मणों को महत्त्व देता था दूसरे जीव की हिंसा नहीं करता था । वह दयालु दम्भ हीन तथा अपने माता-पिता का भक्त था ॥७॥ वह किसी वैष्णव से बातचित नहीं करता था और न तो उसने शास्त्रों को सुना था फिर भी उसके मन में श्रीहरि की सदृढ भक्ति उत्पन्न हो गयी थी ॥८॥ वह नित्य ही श्रीहरि के हे हरे ! हे केशव ! हे गोविन्द! हे वासुदेव ! हे जनार्दन इन नामों का स्मरण करता रहता था ॥९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वह जो कुछ भी वन के फलों को प्राप्त करता था वह शबर वंश में उत्पन्न सबसे पहले उन सबों को अपने मुंह में डाल लेता था ॥१०॥ उसके स्वाद को जानकर वह उसे अपने मुख से निकाल कर श्रीभगवान् को अत्यन्त भक्ति पूर्वक भोग लगाता था ॥११॥ वह उच्छिष्ट तथा अनुछिष्ट कुछ भी नहीं जानता था । क्योंकि अपनी जाति का स्वभाव तो सदैव शिर पर विद्यमान रहता है ॥१२॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! एक बार वह वन में घूमता हुआ

कदाचित्स द्विजश्रेष्ठ ! काननाभ्यन्तरे भ्रमन् ।
फलमेकं प्राप्य पक्वं प्रियालस्य तुशाखिनः ॥१३॥
अथाऽसौ हर्षितस्तस्य फलमासीत्तु दुर्लभम् ।
ससंरम्भेण तल्लब्ध्वा निजवक्त्रान्तरे ददौ ॥१४॥
स ददौ तत्फलं यावन्निजवक्त्रान्तरे द्विज ! ।
प्रविवेश गलं तावत्तत्फलं शृणु जैमिने ! ॥१५॥
तावत्सव्येन हस्तेन गलरन्ध्रं बबन्ध सः। यत्नाद्विधृत्य सव्येन पाणिना सकलं द्विज !॥१६॥
चक्रिकश्चिन्तयामास हरिभक्तिपरायणः। फलमेतद्यदा तस्मै न ददामि मुरारये॥१७॥
न जातः कोऽपि संसारे तदाऽहमिव पातकी ।
हरिं सञ्चिन्त्य बहुधा स चकार मतिं ततः ॥१८॥
तथापि तत्फलंतस्य ननिष्क्रान्तं गलाद् द्विज ।
हरेरेकान्तभक्तोऽसौ छित्त्वा परशुना गलम् ॥१९॥
आनीय तत्फलं पक्वं ददौ देवाय विष्णवे। तत्सन्निधिं समायातस्तमेव हृदि चिन्तयन्॥२०॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः पतितः क्षितिमण्डले। तं दृष्ट्वा भगवान्विष्णुर्गतासुं व्यथितोऽभवत् ॥२१॥
एतस्य सदृशो भक्तो मम कोऽपि न विद्यते ।
यतो निजगलं छित्त्वा मम सन्तोषणं कृतम् ॥२२॥
यथा भक्तिमताऽनेन सात्त्विकं कर्म वै कृतम् ।
यद्दत्त्वाऽऽनृण्यमाप्नोमि तथा वस्तु किमस्ति मे ॥२३॥
धन्योऽयमतिधन्योऽयंधन्योऽयं नाऽत्रसंशयः ।
प्राणानपि परित्यज्य मम सन्तोषणं कृतम् ॥२४॥

प्रियाल के कच्चे फल को पाकर ॥१३॥ वह बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि वह उसके लिए दुर्लभ फल था। शीघ्रता से उसे प्राप्त करके वह उसे अपने मुख में डाल लिया ॥१४॥ वह जब उस फल को अपने मुख में डाला हे जैमिने ! वह उसके गले में प्रवेश कर गया ॥१५॥ उस समय उसने अपने बायें हाथ से गला के छिद्र को बन्द कर दिया और हे द्विज ! उसने प्रयास पूर्वक अपने बायें हाथ से उसे पकड़ कर पूरा का पूरा निकालना चाहा ॥१६॥ हे द्विज ! श्रीहरि की भक्ति में लगे रहने वाले चक्रिक ने सोचा, जब तक इस फल को मैं श्रीभगवान् को नहीं प्रदान करता हूँ ॥१७॥ तब तक मेरे समान इस संसार में कोई पापी नहीं होगा । उसने अनेक प्रकार से श्रीहरि का चिन्तन करके सोचा ॥१८॥ हे विप्र ! वह उसके गले से नहीं निकला श्रीहरि का ऐकान्तिक वह भक्त कुल्हाड़ी से अपने गले को काटकर ॥१९॥ उस पक्के हुए फल को लाकर श्रीहरि को प्रदान किया । वह श्रीभगवान् का ही चिन्तन करते हुए उनके पास आया॥२०॥ उसका सारा शरीर रक्त से भींग गया था । वह पृथिवी पर गिर पड़ा । उसको मरा हुआ देखकर भगवान् विष्णु दुःखी हुए ॥२१॥ वे सोच रहे थे कि इसके समान मेरा कोई भी भक्त नहीं है, क्योंकि इसने अपने गले को काटकर मुझको सन्तुष्ट किया है ॥२२॥ जिस तरह से इस भक्त ने सात्त्विक कर्म किया है, वैसी

ब्रह्मत्वं वा शिवत्वं वा चक्रित्वं वापि दीयते ।
तदाऽप्याऽऽनृण्यमेतस्य भक्तस्य नहि गम्यते ॥२५॥
इत्युक्त्वाऽत्यन्तसन्तुष्टो भगवान्गारुडध्वजः । स्वहस्तकमलेनाऽस्य ततो मस्तकमस्पृशत् ॥२६॥
तद्धस्तकमलस्पर्शाच्छबरोऽसौ गतव्यथः । समुत्तस्थौ महासत्त्वो नारायणपरायणः ॥२७॥

व्यास उवाच

ततोऽस्य भक्तश्रेष्ठस्य निजवस्त्रेण केशवः । पुत्रस्येव पिता गात्ररजोमार्जितवान्द्विज ! ॥२८॥
चक्रिकस्तं समालोक्य मूर्तिमन्तं जनार्दनम् । वाचा मधुरयाऽस्तौषीत्प्रह्वमस्तः कृताञ्जलिः ॥२९॥

चक्रिक उवाच

गोविन्द केशव हरे जगदीश विष्णो ! जानामि यद्यपि न ते स्तुतियोग्यवाक्यम् ।
स्तोतुं तथापि रसना मम वाञ्छति त्वां स्वामिन्प्रसीद हर दोषमिमं प्रवृद्धम् ॥३०॥
त्यक्त्वा भवन्तमखिलेश्वरचक्रपाणे ! ह्यन्यं यजन्ति मनुजा जगतीह ये वै ।
मूढास्त एव दुरितप्रकरैकधाम सानुग्रहस्त्वमसि मय्यपि देव यस्मात् ॥३१॥
जानाति देव ! भवतो भुवनैकनाथ भक्त्यैव यद्यपि नृणां भवबन्धनाशः ।
एकान्तपापशबरान्वयलब्धजन्मा विष्णोस्तथापि भगवान्मयि सुप्रसन्नः ॥३२॥
यस्य प्रभो ! तव मनोज्ञकरारविन्दस्पर्शं चतुर्मुखमुखाअपि देववृन्दाः ।
न प्राप्नुवन्ति विदितस्य मयाऽद्य लब्धं त्वत्तो न कोऽपि सदयो निजसेवकेषु ॥३३॥

मेरी पास कौन सी वस्तु है जिसे इसे देकर मैं ऋण रहित हो जाऊँ ॥२३॥ इसमें कोई भी संशय नहीं है कि यह अत्यन्त धन्य है । इसने अपने प्राणों का भी परित्याग करके मुझे सन्तुष्ट किया है ॥२४॥ यदि मैं इसको ब्रह्मत्व, विष्णुत्व या शिवत्व प्रदान कर देता हूँ तो भी मैं इससे उऋण नहीं हो सकता हूँ॥२५॥ इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु अपने हाथ से उसके शिर का स्पर्श किया ॥२६॥ श्रीभगवान् के हस्त कमल का स्पर्श होते ही वह व्यथा रहित हो गया नारायण भक्त महासात्विक वह उठकर खड़ा हो गया॥२७॥ **व्यासजी ने कहा—** हे द्विज ! उसके पश्चात् श्रीभगवान् उस श्रेष्ठ भक्त के शरीर को अपने वस्त्रों से उसी तरह पोंछे जिस तरह कोई पिता अपने पुत्र के शरीर को अपने वस्त्रों से पोंछता हैं ॥२८॥ चक्रिक ने उन मूर्तिमान श्रीभगवान् को देखकर अपने हाथ को जोड़कर अत्यन्त हर्षित होकर श्रीभगवान् की मधुर वाणी से स्तुति की ॥२९॥ **चक्रिक ने कहा—** हे गोविन्द ! हे केशव ! हे हरे ! हे जगदीश ! हे विष्णो ! मैं आपकी स्तुति के योग्य वाक्य को यद्यपि नहीं जानता हूँ फिर भी मेरी जीभ आपकी स्तुति करना चाहती है । हे स्वामिन् ! आप प्रसन्न होएँ मेरे बढ़े हुए इस पाप को दूर कर दें ॥३०॥ इस संसार में जो लोग आपको छोड़कर किसी दूसरे की पूजा करते हैं वे लोग मूर्ख तथा पाप समूह के एक मात्र आश्रय हैं; क्योंकि आपने हे देव ! मुझ पर कृपा की है ॥३१॥ हे नाथ ! शबर जाति में जन्म लेकर भी मैं यह जानता हूँ कि आप ही सम्पूर्ण संसार के स्वामी हैं और केवल भक्ति के ही द्वारा संसार बन्ध का नाश होता है फिर भी आप मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हैं ॥३२॥ हे प्रभो ! ब्रह्मा आदि देव समूह जिस आपके हस्त कमल का स्पर्श नहीं प्राप्त किया ॥३३॥ जिस आपने देवताओं के प्रधान वैरी, सभी प्रकार के पापों को

येन त्वया विनिहतस्त्रिदशाद्यवैरी कंसापुरो निमिसुतः कृतसर्वपापः ।
सेन्द्रामरप्रकरमर्त्यहिताय पूर्वं तस्मै नमः परममङ्गलदाय तुभ्यम् ॥३४॥
येन त्वयाऽतिबलिना यमलार्जुनौ तौ देवोत्तमेन निहतौ वसुदेवजेन ।
दुष्टश्च कालयवनो युधि धेनुकश्च तस्मै नमोऽस्तु नवमेघनिभाय तुभ्यम् ॥३५॥
श्रीकृष्ण माधव यदूत्तम ! भो ह्यनन्त ! येन त्वयाऽमरपतेरचलाविभूतिः ।
पूर्वं कृता भगवता परमेश्वरेण तस्मै नमोऽस्तु यदुवंशपराय तुभ्यम् ॥३६॥
पारिजातो हृतो येन जितश्चाऽऽखण्डलस्त्वया ।
लीलाजितमहेशाय तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥३७॥
कृत्वा वृकोदरं हेतुं जरासन्धो निपातितः। बाणासुरस्य विच्छिन्ना बाहवश्च त्वयापुरा॥३८॥
शिशुपालो हतो येन तस्मै नित्यं नमो नमः । भूमेरपहृतो भारस्त्वया येन महात्मना ॥३९॥
क्षत्रियान्मायया हत्वा तस्मै नित्यं नमोनमः ॥४०॥

व्यास उवाच

इति तेन स्तुतो विष्णुश्चक्रिकेण महात्मना । उवाच परमप्रीतो वरं वृण्विवति जैमिने॥४१॥

चक्रिक उवाच

परं ब्रह्म परंधाम परमात्मन्कृपामय ! । पश्यामि त्वामहं साक्षाद्वरैः किमपरैर्द्विज !॥४२॥
न ध्याता भवतो मूर्तिः पूजा च न कृता तव ।
नैवेद्यैर्दिव्यपुष्पैश्च दिव्यधूपैः प्रदीपकैः ॥४३॥
न ते स्मृतानि नामानि कदाचिद्भगवन्मया । त्वत्पादसलिलं स्वामिन्विधृतं नहि मूर्धनि॥४४॥

दूर करने वाले तथा निमि के पुत्र कंसासुर का वध इन्द्र इत्यादि सभी देवताओं का कल्याण करने के लिए किया उन परम मङ्गल प्रदान करने वाले आपको मेरा नमस्कार है ॥३४॥ अत्यन्त बलवान्, देवताओं में श्रेष्ठ तथा वसुदेवजी के पुत्र आपने यमलार्जुन को तोड़ दिया तथा युद्ध में दुष्ट कालयवन और धेनुकासुर का वध किया ऐसे नवीन मेघ के समान वर्ण वाले आपको नमस्कार है ॥३५॥ हे श्रीकृष्ण ! हे माधव! हे यदूत्तम ! हे अनन्त जिस आप परमेश्वर ने पूर्वकाल में इन्द्र को अचला विभूति प्रदान की ऐसे यदुवंश में रहने वाले आपको मेरा नमस्कार है ॥३६॥ आपने इन्द्र को जीतकर पारिजात वृक्ष का आपहरण किया। आपने महेश को बड़ी आसानी से जीत लिया ऐसे आपको नमस्कार है ॥३७॥ आपने भीम को माध्यम बनाकर जरासंध को मरवा दिया आपने पूर्वकाल में बाणासुर की भुजाओं को काट दिया ॥३८॥ आपने शिशुपाल को मार दिया, और भूमि के भार को दूर कर दिया ऐसे आप को नमस्कार है । आपने अपनी माया से क्षत्रियों का वध किया ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३९-४०॥ **व्यासजी ने कहा**— हे जैमिने ! इस तरह से उस चक्रिक के द्वारा स्तुति किए गये भगवान् विष्णु अत्यन्त प्रसन्न होकर कहे कि तुम वरदान माँगो ॥४१॥ **चक्रिक ने कहा**— हे परंब्रह्म ! परंधाम कृपामय परमात्मा मैं आपको साक्षात् देख रहा हूँ दूसरे वरदान से क्या लाभ हैं ?॥४२॥ मैंने आपकी मूर्ति की न तो ध्यान किया और न नैवेद्यों, धूपों, दीपों दिव्य पुष्पों से आपकी पूजा ही की ॥४३॥ हे भगवन् ! मैंने कभी भी आपके नामों

न भुक्तं तव नैवेद्यं त्वद्व्रतं न मया कृतम् ।
तथाप्यहमपश्यं त्वां किंकरोम्यपरैर्वरैः ॥४५॥
शबरान्वयजन्माऽस्मि सर्वधर्मबहिष्कृतः । तथापि पादपद्मं ते दैवतैरपि दुर्लभम् ॥४६॥
तदेवाऽद्य मया प्राप्तं वरैः किमपरैर्मम । तथापि कमलाकान्त ! वरदित्सुर्यदा भवान् ॥
त्वयि तिष्ठतु मे चित्तं सदाऽपि त्वदनुग्रहात् ॥४७॥

श्रीभगवानुवाच

वचनामृतवर्षेण त्वदीयेन महाशय ! । सम्प्राप्ता महती तुष्टिर्मया सेवकसत्तम ! ॥४८॥
यदिदं वत्स ! मे दत्तं त्वया फलमनुत्तमम्। अनेनाऽत्यन्ततुष्टोऽस्मि भक्तिं गृह्णामि हर्षितः ॥४९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुर्भक्तिग्राही दयामयः। तमालिङ्गितवान्भक्तं चतुर्भिर्दीर्घबाहुभिः ॥५०॥

श्रीभगानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतोभक्त्या वत्स ! चक्रिक ! सत्तम ! ।
यदिदं प्रार्थितं वत्स ! तत्तथैवभाविष्यति ॥५१॥
इत्युक्त्वा तं पुनर्भक्तमालिङ्ग्य परमेश्वरः । तत्रैवाऽन्तर्दधे विप्र ! विश्वात्मा विश्वपालकः ॥५२॥
स चक्रिकोऽतिसन्तुष्टो हरिभक्तिपरायणः। पुत्रदारादिकं त्यक्त्वा जगाम द्वारकां पुरीम् ॥५३॥
तत्र चैवं समासाद्य कृपया कमलापतेः । आयुषोऽन्ते ययौ मोक्षं देवानामपि दुर्लभम् ॥५४॥
तस्माद्भक्तवशो देवो भक्तिमात्रेण तुष्यति । न च स्तोत्रैर्न वित्तैश्च न तपोभिर्जपेन च ॥५५॥

का स्मरण भी नहीं किया और हे स्वामिन् ! आपके चरणोदक को मैंने कभी अपने शिर पर भी नहीं चढ़ाया ॥४४॥ मैंने कभी आपके नैवेद्य को भी नहीं खाया और न मैंने आपका व्रत ही किया फिर भी मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ और दूसरे वरों से क्या मतलब हैं ॥४५॥ मैं शबर वंश में उत्पन्न हूँ, सभी धर्मों से बहिष्कृत हूँ फिर भी देवताओं के लिए भी दुर्लभ आपके चरण कमल को मैंने प्राप्त कर लिया अत: दूसरे वरों से क्या काम हैं । फिर भी हे लक्ष्मीपते ! आप मुझे वरदान देना चाहते हैं ॥४६-४७॥ आपकी कृपा से मेरा मन आपमें लगा रहे ॥४७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे सेवक श्रेष्ठ ! हे महाशय ! तुम्हारे वचनामृत की वर्षा के द्वारा मुझे बहुत अधिक सन्तोष हुआ है ॥४८॥ हे वत्स ! तुमने यह जो सर्वोत्तम फल मुझे प्रदान किया है इसमें मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ मैं हर्षित होकर तुम्हारी भक्ति को स्वीकार करता हूँ॥४९॥ इस तरह से कहकर भक्ति को स्वीकार करने वाले दयालु भगवान् अपनी चारो लम्बी भुजाओं से उसका आलिङ्गन किए ॥५०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे श्रेष्ठ चक्रिक ! मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट हूँ । तुमने जो कहा है वह वैसा ही होगा ॥५१॥ इस तरह उस भक्त का पुन: आलिङ्गन करके श्रीभगवान् हे विप्र ! विश्व का पालन करने वाले विश्वात्मा अन्तर्धान हो गये ॥५२॥ श्रीहरि की भक्ति में लगे रहने वाले उस चक्रिक अत्यन्त सन्तुष्ट होकर अपने पुत्र तथा पत्नी इत्यादि का त्याग करके द्वारकापुरी में चला गया॥५३॥ वहाँ पर श्रीलक्ष्मीपति की कृपा से अपनी आयु के अन्त में देवताओं को भी दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त किया ॥५४॥ अतएव अपने भक्तों के वश में रहने वाले श्रीभगवान् केवल भक्ति से ही सन्तुष्ट होते

फलं यद्यपि चोच्छिष्टं दत्तं तेन द्विजोत्तम ! ।
तथापि तुष्टवान्विष्णुर्ज्ञात्वा भक्तिमचञ्चलाम् ॥५६॥
तस्मान्नारायणो देवः पूजनीयो मुमुक्षुभिः ॥५७॥
ये यजन्ति दृढया किल भक्त्या वासुदेवचरणाम्बुजयुग्मम् ।
वासवादिविबुधप्रवरेज्यं ते व्रजन्ति मनुजाः किल मोक्षम् ॥५८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे चक्रिकशबरभक्तिसहितं हरिभक्तिप्रशंसनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच

पुनरेव गुरो ! ब्रूहि माहात्म्यं कमलापतेः । हरेः कथामृतं पीत्वा तृप्तिर्वै कस्य जायते ॥१॥

व्यास उवाच

त्वत्तुल्यः कोऽपि संसारे सुकृती नहि विद्यते ।
यतः केशवमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छसि भक्तितः ॥२॥
नारायणकथा रम्या पुनात्येवं जगत्त्रयम् । श्रोतारं पृच्छकं चैव वक्तारं च द्विजोत्तम ! ॥३॥

हैं । स्तोत्रों, धनों, तपस्याओं तथा जपों से नहीं ॥५५॥ हे द्विजोत्तम ! उस चक्रिक ने श्रीभगवान् को उच्छिष्ट फल प्रदान किया था फिर भी भगवान् उसकी सदृढ भक्ति जानकर सन्तुष्ट हो गये ॥५६॥ अतएव मोक्ष चाहने वाले लोगों का श्रीभगवान् की ही पूजा करनी चाहिए ॥५७॥ जो लोग सुदृढ भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् के दोनों चरण कमलों की इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं के लिए पूज्य है उनकी पूजा करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के चक्रिक शबर की श्रीहरि भक्ति की प्रशंसा वर्णन नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहने वाले भद्रतनु नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त वर्णन, वेश्या के उपदेश द्वारा दान्त मुनि के आश्रम में जाना, उनके आदेश से भगवान् विष्णु की भक्ति करना, और प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु द्वारा उनको वरदान प्रदान

जैमिनि महर्षि ने कहा— हे गुरो ! आप पुनः श्रीभगवान् के माहात्म्य का वर्णन करें श्रीहरि की कथा रूपी अमृत का पान करने से किसी की भी तृप्ति नहीं होती हैं ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** तुम्हारे जैसा पुण्यवान् संसार में कोई भी नहीं है । क्योंकि तुम भक्ति पूर्वक भगवान् केशव के माहात्म्य को सुनाना

श्रृणु लक्ष्मीपतेर्वत्स ! माहात्म्यं पापनाशनम् ।
कथयामि समासेन चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥४॥
भक्त्या परमया विष्णुमेकाहमपि योऽर्चयेत् ।
जन्मकोटिकृतं पापं सद्यस्तस्य हरेद्धरिः ॥५॥
पुण्यात्मा स कथं मर्त्यो येन नाऽऽराधितो हरिः ।
स कथं पातकी यस्यभक्तिर्नारायणेप्रभौ ॥६॥

अस्ति सर्वपुरश्रेष्ठं पुरुषोत्तमसञ्ज्ञकम् । पुरं सर्वगुणैर्युक्तं सर्वदेवगणाश्रयम् ॥७॥
सर्वेषामेव तीर्थानां वरिष्ठं तन्निगद्यते । यतस्तस्मिन्पुरे रम्ये साक्षाद्वसति केशवः ॥८॥
तत्र भद्रतनुर्नाम पूर्वमेकोऽभवद्द्विजः । सुन्दरः प्रियवादी च पवित्रकुलसम्भवः ॥९॥
सम्प्राप्तयौवनो विप्रः सुन्दरः काममोहितः । परलोकमयं त्यक्त्वा वारस्त्रीनिरतोऽभवत् ॥१०॥
न वेदाध्ययनं चक्रे पुराणानि च सर्वशः । तत्याजोत्तमसञ्ज्ञां च पाखण्डजनसङ्गमात् ॥११॥
अयाज्यदानग्राही च परद्रव्यापहारकः । अभवद्धर्मनिन्दी च स विप्रः पापतत्परः ॥१२॥
तत्याज ब्राह्मणाचारं तथैव सत्यभाषणम् । गुरूणामतिथीनां च पूजनं ब्राह्मणाधमः ॥१३॥
यद्यत्पापतरं कर्म तत्तदेव विधीयते । न च पुण्यतमं कर्म कदाचित्तेन जैमिने ! ॥१४॥

एकदा कृतपापोऽसौ लोकलज्जाभयान्वितः ।
श्राद्धं चकारविप्रो वै श्रद्धाभक्तिविवर्जितः ॥
वारनारीमिति प्राह गतः स निशि तद्गृहम् ॥१५॥

चाहते हो ॥२॥ भगवान् नारायण की मनोहर कथा त्रैलोक्य को पवित्र बना देती है । हे द्विजोत्तम ! वह श्रोता, प्रष्टा और वक्ता तीनों को पवित्र बना देती हैं ॥३॥ हे वत्स ! तुम पाप विनाशक लक्ष्मीपति के माहात्म्य को सुनो यह चारो प्रकार के पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली है । उसे मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥४॥ जो एक दिन भी परमा भक्ति के द्वारा एक दिन भी श्रीहरि की अर्चना करता है उसके करोड़ों जन्मों में किए गये पाप को श्रीहरि क्षणभर में दूर कर देते हैं ॥५॥ जिस मनुष्य ने श्रीहरि की आराधाना नहीं की है, वह पुण्यात्मा कैसे हो सकता है ? जिसकी भगवान् नारायण में भक्ति हैं वह पातकी कैसे हो सकता है ?॥६॥ सभी नगरों में श्रेष्ठ पुरुषोत्तम नामक नगर सभी गुणों से सम्पन्न तथा सभी देवताओं का आश्रय था ॥७॥ वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ कहा जाता हैं क्योंकि उस नगर में श्रीहरि साक्षात् निवास करते हैं ॥८॥ पूर्वकाल में वहाँ भद्रतनु नामक एक ब्राह्मण हुए । वे सुन्दर, प्रिय बोलने वाले थे तथा पवित्र वंश में उत्पन्न थे॥९॥ जवान होकर वे सुन्दर ब्राह्मण काम से मोहित होकर परलोक के भय से रहित होकर वेश्या में आसक्त हो गये ॥१०॥ उन्होंने न तो वेदों का अध्ययन किया और न पुराणों को पढ़ा । पाखण्डियों के सङ्गति में पड़कर उन्होंने अपने उत्तम नाम का भी परित्याग कर दिया ॥११॥ वे अयाज्य व्यक्तियों के दान को लेते थे और दूसरों की सम्पत्ति को चुरा लेते थे । पाप परायण वे ब्राह्मण धर्म की निन्दा करने वाले हो गये॥१२॥ उन्होंने ब्राह्मणों के आचार को तथा सत्य भाषण को भी त्याग दिया । उस अधम ब्राह्मण ने गुरुओं तथा अतिथियों का पूजन भी नहीं किया ॥१३॥ जो अत्यन्त पापात्मक कर्म थे उन सबों को ही वे करते थे । हे जैमिने ! उसने कभी पुण्य कर्म नहीं किया ॥१४॥ एक बार लोक लज्जा के भय से वे

ब्राह्मण उवाच

एतद्विशालजघने ! पितृश्राद्धदिनं मम । आयातस्त्वद्गुणैर्बद्धस्तथाऽपि निलयं तव ॥१६॥

पश्य रात्रीमिमां कान्ते ! सर्वलोकभयावहाम् ।
स्त्रवदम्बुदसङ्घातपरिव्याप्तं नभःस्थलम् ॥१७॥

नवाम्बुलुप्तमार्गायां त्वद्गुणाकृष्टमानसः। अस्यामपि विभावर्यां तवाऽहं गृहमागतः॥१८॥

मेघविद्युत्प्रतीपेन कामेनाऽर्थोपदेशिना। त्वद्गुणाध्यानविश्वास आगतोऽहंनिशिप्रिये ॥१९॥

त्वामदृष्ट्वा क्षणमपि प्रीतिर्मे नहि जायते। अपि दुःखेन हे तन्वि ! त्वां द्रष्टुमहमागतः॥२०॥

तीर्थंतोयाभिषेकेणकान्ते ! किं मे प्रयोजनम् ।
त्वत्प्रेमतीर्थतोयेन सिक्तःप्राप्ताऽस्म्यहंदिवि ॥२१॥

परत्र सुखदान्देवानाराध्य मम किंफलम् । जीवतैव मया स्वर्गः प्राप्यते त्वत्प्रसादतः ॥२२॥

अपकीर्तिभयात्कान्ते ! श्राद्धकर्म कृतं गृहे ।
अस्मिञ्छ्राद्धे मम श्रद्धा स्वल्पाऽपि नहि विद्यते ॥२३॥

त्वंमे जपस्तपस्त्वं मे त्वम्मेनीतिश्चसुन्दरि !। त्वामेकामेव संसारे सर्वभावेन सुन्दरि ! ॥२४॥

प्रपन्नोऽस्मि सदाऽहं ते आज्ञाकारी करोमि किम् ॥२५॥

सुमध्यमोवाच

त्वया पुत्रेण तातस्तु पुत्रहीन इवाऽभवत्। पितृश्राद्धदिनेऽपि त्वं मैथुनं कर्तुमिच्छसि॥२६॥

दुर्मते ! मैथुनं यस्तु कुरुते पितृवासरे। रेतोभोजिनएव स्युः पितरस्तस्य सोऽपि च॥२७॥

ब्राह्मण श्राद्ध की भक्ति से रहित होकर श्राद्ध कर्म किए । जब वे रात में वेश्या के घर गये तो वे वेश्या को कहा ॥१५॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे विशाल जङ्घों वाली ! आज मेरे पिता के श्राद्ध का दिन है । फिर भी तुम्हारे गुणों से आकृष्ट होकर मैं तुम्हारे घर आया हूँ ॥१६॥ हे कान्ते ! सभी लोगों को भयभीत करने वाली इस रात्रि को देखो । वर्षालु बादलों से यह आकाश व्याप्त हो गया है ॥१७॥ नवीन जल से भरे हुए मार्गों वाली इस रात्रि में मैं तुम्हारे गुणों से आकृष्ट होकर तुम्हारे घर आया हूँ ॥१८॥ हे प्रिये ! मेघ में चमकने वाली बिजली के प्रभाव से अर्थ का उपदेश करने वाले काम के द्वारा तथा तुम्हारे गुणों के ध्यान से आकृष्ट मैं रात्रि में आया हूँ ॥१९॥ तुमको देखे बिना मेरा मन क्षणभर भी कहीं नहीं लगता है । हे तन्वि! मैं कष्ट पूर्वक भी तुमको देखने के लिए आ गया हूँ । हे प्रिये ! तीर्थ के जल में स्नान करने से मेरा कौन सा प्रयोजन हैं ? तुम्हारे प्रेम रूपी जल से सिक्त होकर मैंने स्वर्ग प्राप्त कर लिया है ॥२०-२१॥ परलोक में सुख देने वाले देवताओं की आराधना से मेरा क्या काम है । मैंने तो जीवन में ही तुम्हारी कृपा से सुख प्राप्त कर लिया है ॥२२॥ हे प्रिये ! अपयश के भय से मैंने अपने घर पर श्राद्ध कर्म किया है। इस श्राद्ध में मेरी थोड़ी सी भी श्रद्धा नहीं है ॥२३॥ हे सुन्दरि ! तुम ही मेरा जप, तप तथा नीति हो। हे सुन्दरि केवल तुमको ही सभी भावों से युक्त मैं तुम्हारे शरण में हूँ । मैं तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ बतलाओं मैं क्या करूँ ॥२४-२५॥ **सुमध्यमा ने कहा—** तुम जैसे पुत्र के द्वारा तुम्हारे पिता पुत्रहीन के समान हो गये हैं । पिता के श्राद्ध के भी दिन तुम मैथुन करना चाहते हो ॥२६॥ हे दुर्मते !

कुरुते मैथुनं मूढो मोहात्पितृदिने यदि। तच्छ्राद्धं राक्षसग्राह्यं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥२८॥
मय्यद्धा गदितं यत्ते यथास्नेहेन मानसम् । तथा यदि भवेद्विष्णौ तदा प्राप्नोति किंनहि ॥२९॥
यमदण्डान्तरस्थायि जीवितं च शरीरिणाम्। तथापि पातकं मूढ ! कुरुषे निर्भयः सदा ॥३०॥
जलबुद्बुदवन्मूढ ! क्षणविध्वंसि जीवितम्। किमर्थंशाश्वतधिया करोषि दुरितं सदा ॥३१॥
ललाटे लिखितं यस्य मृत्युरित्यक्षरद्वयम् । स कथं कुरुते पापं समस्तक्लेशदायकम् ॥३२॥
अहो ! मायामहाविष्णोरेका बलवती क्षितौ ।
यतः पापं प्रकुर्वाणः सततं हर्षितो द्विज ! ॥३३॥
स्थानं पापाय मे देहि निजदेहे दुराश्रये। दहत्याश्रममेधो हि वीतिहोत्र इव ज्वलन्॥३४॥

व्यास उवाच

दैवप्रेरितया तत्र तथेत्युक्तं सुवेश्यया। मनसा चिन्तयामास ब्राह्मणः कृतपातकः॥३५॥
धिग्धिङ्मां च महापापं मूढं पातकिनां वरम् ।
वेश्याया एव यज्ज्ञानं तन्मे नास्ति दुरात्मनः ॥३६॥
ब्राह्मणस्य कुले शुद्धे जन्म सम्प्राप्य वै मया ।
आत्मघातकरं पापं नित्यमेव कृतं महत् ॥३७॥
जातो यदा ध्रुवो मृत्युर्मृतेस्वामी यदा यमः। अविवेकतया पापं कथं तर्हि करोम्यहम्॥३८॥
जपस्तपस्तथा होमो वेदाध्ययनमेवच। विप्राचाराऽतिथेः पूजा गुरुभक्तिर्द्विजार्चनम्॥३९॥

जो पिता की तिथि को मैथुन करता है उसके पितर और पितृगण रेतस भोजन करने वाले हो जाते हैं॥२७॥ यदि कोई मूर्ख पिता की तिथि को अज्ञानवशात् मैथुन करता है उसके द्वारा किए गये श्राद्ध को राक्षस ही खाते हैं ॥२८॥ तुमने जो मेरे प्रति प्रेम पूर्वक मुझको कहा है वैसी भक्ति यदि तुम्हारी भगवान् विष्णु में भक्ति होती तो तुमको कुछ भी अप्राप्य नहीं होता ॥२९॥ शरीरधारियों का जीवन तब तक ही रहता है जब तक वह यमदण्ड को नहीं प्राप्त करता है । फिर भी हे मूर्ख तुम निर्भय होकर सदा पाप करते हो ॥३०॥ हे मूर्ख ! जीवन जल के बुलबुले के समान क्षणभङ्गुर है । तुम अपनी इस शाश्वत बुद्धि से पापों को क्यों करते हों ?॥३१॥ जिसके ललाट में मृत्यु शब्द के दो अक्षर लिखा है वह सभी कष्टों को प्रदान करने वाले पापों को क्यों करता है ॥३२॥ अरे ! इस पृथिवी पर भगवान् विष्णु की माया ही बलवती है हे द्विज ! उसी के कारण पाप करने वाले हर्षित होते हैं ॥३३॥ बुरे आशय वाले अपने शरीर में पाप को स्थान देते हो वह उसी तरह से आश्रम की क्रियाओं को भस्म कर देता है जिस तरह जलती हुयी अग्नि इन्धन को जला देती है ॥३४॥ **व्यासजी ने कहा—** देवताओं के द्वारा प्रेरित होकर उस सुन्दरी वेश्या के द्वारा उस तरह से कहे जाने पर उस पापी ब्राह्मण ने विचार किया ॥३५॥ मूर्ख तथा पापियों में श्रेष्ठ मुझको बार-बार धिक्कार है । इस वेश्या को जो ज्ञान है वह ज्ञान मुझ दुष्ट को नहीं है ॥३६॥ मैंने शुद्ध ब्राह्मणों के वंश में जन्म लिया । मैंने आत्म विनाशी महान पाप को प्रतिदिन किया है ॥३७॥ यदि उत्पन्न होने वाले की मृत्यु निश्चित रूप से होती है और मर जाने पर जब यमराज ही स्वामि होते हैं तो फिर अज्ञानवशात् मैं पाप क्यों करता हूँ ॥३८॥ जप, तप, होम, वेदाध्ययन, ब्राह्मणों के सदाचार अतिथियों

पितृयज्ञादिकं कर्म पूजा च कमलापतेः । मया न चक्रे कस्माद्वै भविष्यत्युत्तमा गतिः ॥४०॥
मार्कण्डेयं महात्मानं सर्वधर्मविदाम्वराम्। तुष्टाव स द्विजो वाचा प्रणम्य भुवि दण्डवत्॥४१॥

ब्राह्मण उवाच

नमस्तुभ्यं द्विजश्रेष्ठ ! दीर्घजीव नमोऽस्तुते ।
नारायणस्वरूपाय नमस्तुभ्यं महात्मने ॥४२॥

नमो मृकण्डपुत्राय सर्वलोकहितैषिणे। ज्ञानार्णवाय वै तुभ्यं निर्विकारय वै नमः ॥४३॥
स्तुतस्तेनेति व्रिपेण मार्कण्डेयो महातपाः । उवाच परमप्रीतः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥४४॥

मार्कण्डेय उवाच

तवभक्त्याऽतितुष्टोऽस्मिमहाभाग ! वरं वणु ।
तवाऽभिलषितंसद्यःसाधयिष्यामि नान्यथा ॥४५॥

ब्राह्मण उवाच

अहं पापात्मनां श्रेष्ठो द्विजाचारविवर्जितः। परहिंसान्वितो नित्यं परस्त्रीनिरतः सदा ॥४६॥
मायामूढेन विप्रेन्द्र ! सदा पापं कृतं महत्। नाल्पं वाऽपि कृतं पुण्यं कदाचिदपि सादरम् ॥४७॥
संसारसागरे घोरे दुःखदेऽत्यन्तभैरवे। कथं भवति निस्तारो महापातकिनो मम ॥४८॥

मार्कण्डेय उवाच

कृतपापोऽपि विप्रेन्द्र ! त्वं हिपुणत्मनां वरः ।
यतोबुद्धिरियं जाता त्वयि संसारदुर्लभा ॥४९॥

पुण्यात्मनां पुण्यदृष्टिर्वर्धते प्रतिवासरम्। पापात्मनां पापदृष्टिर्वर्धते तु दिनेदिने ॥५०॥

की पूजा, गुरु की भक्ति तथा ब्राह्मण की पूजा ॥३९॥ पितृश्राद्ध आदि कर्म तथा लक्ष्मीपति की पूजा जिससे कि उत्तम गति की प्राप्ति होती है उसको मैंने क्यों नहीं की ॥४०॥ उसने सभी धर्मों के जानकारों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि की साष्टाङ्ग प्रणाम करके स्तुति की ॥४१॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ठ ! हे दीर्घ जीवी आपको नमस्कार है । आप नारायण स्वरूप महात्मा को नमस्कार है ॥४२॥ मृकण्ड मुनि के पुत्र को नमस्कार है, सम्पूर्ण संसार के हितैषी को नमस्कार है । निर्विकार तथा ज्ञान सागर आपको नमस्कार है॥४३॥ उस ब्राह्मण के द्वारा स्तुति किए जाने पर महातपस्वी मार्कण्डेय महर्षि जो सभी शास्त्रों में पारङ्गत थे उन्होंने कहा ॥४४॥ **माकण्डेय महर्षि ने कहा**— हे महाभाग ! तुम्हारी भक्ति से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ वर माँगो । तुम्हारे अभिप्रेत वस्तु को मैं सद्यः प्रदान करूँगा ॥४५॥ **ब्राह्मण ने कहा**— मैं पापियों में श्रेष्ठ हूँ, ब्राह्मण के आचार से रहित हूँ, मैं सदा दूसरे जीवों की हिंसा करता हूँ तथा सदा परस्त्री गमन करने वाला हूँ ॥४६॥ हे विप्रेन्द्र ! माया से मोहित होकर सदा पापों को ही मैंने किया है । मैंने आदर पूर्वक कभी भी थोड़ा सा भी पुण्य नहीं किया है ॥४७॥ महापातकी मेरा इस भयङ्कर तथा सदा दुःख देने वाले संसार से निस्तार कैसे होगा ॥४८॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा**— हे विप्र श्रेष्ठ ! पापी होकर भी तुम पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हो । इसीलिए संसार में दुर्लभ तुम्हारी इस प्रकार की बुद्धि हो गयी है ॥४९॥ पुण्यात्माओं की पुण्य दृष्टि प्रतिदिन बढ़ती है । इसी तरह पापियों की पाप दृष्टि प्रतिदिन बढ़ती है ॥५०॥

पापत्मनाऽपि भवता पापदृष्टिर्निवार्यते। अतस्तुभ्यं जगन्नाथं प्रसन्न इव लक्ष्यते॥५१॥
पापं कृत्वाऽपि योमर्त्यःपापाद्भूयो निवर्तते। तमुत्तमं नरं प्राहुपूर्वजन्माऽर्चिताच्युतम्॥५२॥
निजभक्तं महाविष्णुर्दृष्ट्वा पापरतं प्रभुः। ददाति विपुलां बुद्धिं यथा भवति सद्गतिः॥५३॥

अतस्त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! प्रतिजन्माच्युतार्चकः ।
अचिरेणैव भद्रन्तो भविष्यति न संशयः ॥५४॥
यद्यत्पृष्टं त्वया विप्र ! मत्तः श्रोष्यसि तं नहि ।
यतो नित्यक्रियाकालो मम सम्प्रति वर्तते ॥५५॥

दान्तो नामद्विजःकश्चिदस्तिसर्वार्थतत्त्ववित्। कथयिष्यति तत्सर्वं स च तस्याऽऽश्रमं व्रज ॥५६॥
तेनोपदिष्टोऽसौ विप्रो मार्कण्डयेन धीमता। दान्ताश्रमं ययौ विप्रं पवित्रमतिसुन्दरम्॥५७॥
अश्वत्थैश्चम्पकैश्चैव बकुलैः प्रियकैस्तथा। अन्यैश्च पुष्पितैर्वृक्षैः शोभितं सुमनोहरम्॥५८॥
प्रफुल्लकुसुमामोदपरिव्याप्तदिगन्तरम् । गुञ्जद्भ्रमरसङ्घातं फलशब्दातिशब्दितम्॥५९॥
मन्दं मन्दं वहद्वायुशीतलञ्चैव वारि च। शतश्चापदसङ्कीर्णं शिष्योपशिष्यसङ्कुलम्॥६०॥

तस्याऽऽश्रमं ततो विप्रः प्रविश्याऽतिमनोहरम् ।
ददर्श दान्तं तत्त्वज्ञं सर्वशिष्यगणैर्वृतम् ॥६१॥
स्तुत्वा तं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दान्तं नारायणात्मकम् ।
ववन्दे चरणौ तस्य शिरसा सद्विजोत्तमः ॥६२॥

दान्त उवाच

कस्त्वं भद्र ! समायातः किमस्त्यत्र प्रयोजनम् ।
ब्रूहि तत्त्वं तु मां स्तौषि हेतुना केन साम्प्रतम् ॥६३॥

तुम पापी होकर भी अपनी पाप दृष्टि को दूर कर रहे हो । अतएव लगता है कि श्रीभगवान् तुम पर प्रसन्न हो गये हैं ॥५१॥ जो मनुष्य पाप करके भी पाप करना त्याग देता है उसको उत्तम पुरुष तथा पूर्वजन्म में भगवान् अच्युत की पूजा करने वाला कहा गया है । भगवान् महाविष्णु पाप करने वाले अपने भक्तों को देखकर उसको ऐसी बुद्धि प्रदान कर देते हैं जिससे कि वह सद्गति को प्राप्त कर लेता है ॥५२-५३॥ अतएव हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप प्रत्येक जन्मों में भगवान् अच्युत के पूजक हैं । आपका शीघ्र ही कल्याण होगा॥५४॥ हे विप्र ! आपने जिन विषयों को पूछा है उन सबों को मैं नहीं बतला रहा हूँ क्योंकि इस समय मेरी नित्य क्रिया का समय है ॥५५॥ दान्त नामक ब्राह्मण सभी तत्त्वों के ज्ञाता हैं वे ही तुमको सबकुछ बतलायेंगे तुम उन्हीं के आश्रम में जाओ ॥५६॥ महर्षि मार्कण्डेय के द्वारा उपदिष्ट होकर वह ब्राह्मण दान्त के अत्यन्त पवित्र तथा अत्यन्त सुन्दर आश्रम में चले गये ॥५७॥ वह आश्रम आश्वत्थ, चम्पा, बकुल, प्रियक तथा दूसरे विकसित वृक्षों से सुशोभित और मनोरम ॥५८॥ विकसित पुष्पों की सुगन्धि से सभी दिशायें व्याप्त थीं गुनगुनाते हुए भ्रमरों के समूह से तथा फलों के शब्दों से ध्वनित था ॥५९॥ वहाँ हवा धीरे-धीरे चल रही थी जल शीतल था अनेक प्रकार के जीवों से वह भरा था तथा वह शिष्यों तथा उपशिष्यों से भरा था ॥६०॥ उसके पश्चात् वे विप्र उस आश्रम में प्रवेश करके तत्त्वों के ज्ञाता तथा शिष्यों से घिरे हुए दान्त नामक ब्राह्मण को देखे ॥६१॥ हे ब्राह्मण ! उन नारायण स्वरूप दान्त की स्तुति करके वे द्विजश्रेष्ठ उनके

भद्रतनुरुवाच

ब्राह्मणोऽहं महाभागब्राह्मणाचारवर्जितः। नाम्ना भद्रतनुः ख्यातो विहिताखिलपातकः ॥६४॥
संसारपापविच्छेदः कथं मे पापिनो भवेत्। एतन्मे कथय ब्रह्मन्यतस्त्वं सर्वतत्त्ववित् ॥६५॥

दान्त उवाच

शृणु विप्र परं गुह्यं तव स्नेहान्मयोच्यते। येन संसारपाशस्य विच्छेदो भवेत् नृणाम् ॥६६॥
त्यज पाखण्डसंसर्गं सङ्गं भज सतां सदा। कामं क्रोधं च मोहं च लोभं च दर्पमत्सरौ॥६७॥
असत्यं परहिंसां च त्यज यत्नादपि द्विज ! ।
स्मरन्नामानि सततं महाविष्णोर्महात्मनः ॥६८॥
सम्मार्जनं द्विजश्रेष्ठ ! तथोपलेपनं पुनः। मार्गशोभाञ्च दीपञ्च केशवायतने कुरु ॥६९॥
कुरु ब्राह्मणासेवाञ्च ज्ञातिसेवाञ्च सर्वदा। कुर्वन्नातोयदानं च नित्यं पञ्चमहाध्वरान् ॥७०॥
कथां शृणु हरेर्मन्त्रं जप त्वं द्वादशाक्षरम्। कर्माण्येतानि सर्वाणि कुर्वतस्तव सत्तम ! ॥७१॥
भविष्यत्युत्तमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्स्यसि ॥७२॥

ब्राह्मण उवाच

यान्येतानि त्वया ब्रह्मन्प्रोक्तानि शुभादानि वै ।
तेषां विवरणंब्रूहि को मोहो दम्भमत्सरौ ॥७३॥
किमसत्यंच का हिंसा दया शान्तिर्दमश्च कः ।
समदृष्टिश्च का प्रोक्ता का पूजा कमलापतेः ॥७४॥

चरणों में शिर लगाकर उनकी स्तुति किए ॥६२॥ **दान्त ने कहा—** हे भद्र ! तुम कौन हो ? किस प्रयोजन से तुम यहाँ आये हो ? उन सारी बातों को बतलाओं किसलिए तुम मेरी स्तुति कर रहे हो॥६३॥ **भद्रतनु ने कहा—** हे महाभाग ! मैं ब्राह्मणों के आचार से रहित ब्राह्मण हूँ । मेरा नाम भद्रतनु है और मैंने समस्त पापों को किया है ॥६४॥ मुझ पापी के संसार का बन्धन कैसे कट सकता है ? हे ब्रह्मन् ! आप मुझे इस बात को बतलाइयें क्योंकि आप तत्त्वों के ज्ञाता हैं ॥६५॥ **दान्त ने कहा—** हे विप्र ! तुम्हारे प्रति स्नेह होने के कारण मैं अत्यन्त रहस्यात्मक बात बतलाता हूँ उससे मनुष्यों के संसार के बन्धन का नाश हो जाता है ॥६६॥ तुम पाखण्डियों का सम्बन्ध त्याग दो तथा सदा सज्जनों की सङ्गति में रहो। काम, क्रोध, मोह, लोभ, घमण्ड और मत्सर, असत्य बोलना और दूसरों की हिंसा का; प्रयास पूर्वक त्याग कर दो । निरन्तर भगवान् महा विष्णु के नामों का स्मरण करो ॥६७-६८॥ हे द्विज ! भगवान् के मन्दिर में झाडू लगाना, लिपना, मार्ग को सुशोभित करना तथा दीपक जलाने का काम करो ॥६९॥ सर्वदा ब्राह्मणों और अपने ज्ञातियों की सेवा किया करो । जलदान तथा पञ्च महायज्ञों को नित्य किया करो॥७०॥ श्रीहरि की कथा को सुनो और द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करो हे सत्तम इन सभी कर्मों को करने वाले तुम को महान् ज्ञान उत्पन्न हो जायेगा और ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त कर लोगे ॥७१-७२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! आपने जिन कल्याणकारी बातों को बतलाया है उन सबों का विस्तार पूर्वक आप वर्णन करें, मोह, दम्भ और मत्सर का स्वरूप क्या है ?॥७३॥ असत्य क्या है, हिंसा, दया, शान्ति और दम का

अहोरात्रश्च कः प्रोक्तः किं विष्णुस्मरणं तथा ।
के वा पञ्चमहायज्ञाः को मन्त्रो द्वादशाक्षरः ॥७५॥
एषां विवरणं सर्वं ब्रूहि ब्राह्मणसत्तम !। तथा तव प्रसादेन प्राप्नोमि परमं पदम् ॥७६॥

दान्त उवाच

ये वेदसम्मतं कार्यं त्यक्त्वाऽन्यत्कर्म कुर्वते ।
निजाचारविहीना ये पाखण्डास्ते प्रकीर्तिताः ॥७७॥
निजाचारग्राहिणो ये कुर्वते वेदसम्मतम्। पापाभिलाषरहिताः सज्जानास्ते प्रकीर्तिताः ॥७८॥
योऽभिलाषः सदास्त्रीषु विभवोपार्जनादिषु । वर्त्तते ब्राह्मणश्रेष्ठ ! स काम इति कथ्यते ॥७९॥
समाकर्ण्याऽऽत्मनो निन्दां यस्तापो हृदि जायते ।
सक्रोध इति विज्ञेयः सर्वधर्मावघातकः ॥८०॥
परवित्तादिकं दृष्ट्वा नेतुं यो हृदि जायते। अभिलाषो द्विजश्रेष्ठ! स लोभ इति कीर्तितः॥८१॥
मम माता मम पिता ममेयं गृहिणी गृहम्। एतदन्यन्ममत्वं हि स मोह इति कीर्तितः ॥८२॥
अहं महात्मा धनवान्न तुल्यःकोऽपिभूतले । इदं यज्जायते चित्ते मदःप्रोक्तः स कोविदैः॥८३॥
निन्दन्ति मां सदा लोका धिगस्तु मम जीवनम् ।
इत्यात्मानं वदेद्यस्तु धिक्कारः स च मत्सरः ॥८४॥
यथार्थकथनं यच्च सर्वलोकसुखप्रदम्। तत्सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययम् ॥८५॥

स्वरूप क्या है ? समदृष्टि किसे कहा गया है ? लक्ष्मीपति की पूजा का स्वरूप क्या है ?॥७४॥ दिन रात किसको कहा गया है और भगवान् विष्णु का स्मरण क्या है ? पञ्चमहायज्ञ कौन हैं ? और द्वादशाक्षर मन्त्र कौन है ?॥७५॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इन सारी बातों को आप विस्तार से बतलायें । आपकी ही कृपा से मैं परमपद को प्राप्त करूँगा ॥७६॥ **दान्त ने कहा**— जो लोग वेद सम्मत कार्य को त्यागकर दूसरे कर्मों को करते हैं तथा जो अपने आचार से रहित हैं, ऐसे लोगों को पाखण्डी कहा जाता है ॥७७॥ जो लोग अपने आचार को अपनाकर वेद सम्मत कार्यों को करते हैं । जो पाप करना नहीं चाहते हैं उन लोगों को सज्जन कहा गया है ॥७८॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जो लोग सदा स्त्रियों को ही प्राप्त करना चाहते हैं तथा जिनका मन सदा धनार्जन में लगा रहता है वे लोग कामी कहे जाते हैं ॥७९॥ अपनी निन्दा को सुनकर मन में जो सन्ताप होता है, उसी को क्रोध कहते है, वह सभी धर्मों को विनष्ट करने वाला है ॥८०॥ दूसरे की सम्पत्ति इत्यादि को देखकर उसे प्राप्त करने की जो इच्छा होती है । हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार की अभिलाषा को लोभ कहते हैं ॥८१॥ ये मेरी माता हैं, ये मेरे पिता है, यह मेरी पत्नी है और यह मेरा गृह है इसी तरह अन्य भी ममत्व हैं उनको मोह कहते हैं ॥८२॥ मैं ही महात्मा हूँ, मैं ही धनवान हूँ, पृथिवी पर मेरे समान कोई भी नहीं है इस प्रकार की धारणा जो चित्त में होती है उसे ही दम्भ कहते हैं॥८३॥ लोग मेरी सदा निन्दा किया करते हैं, मेरे जीवन को धिक्कार है, इस प्रकार से अपने को जो कहता है इस प्रकार का होने वाला धिक्कार मत्सर है ॥८४॥ जो सभी लोगों को सुख प्रदान करने वाला यथार्थ कथन है, उसी को सत्य कहते हैं । इसके विपरीत जो होता है वह असत्य है ॥८५॥ अमुक के

ऐश्वर्यं दारपुत्राद्यायान्त्यमुष्य कदा क्षयम् । इति याजायतेचित्ते सा हिंसा परिकीर्तिता ॥८६॥
यत्नादपि परक्लेशं हर्तुं यद्धृदि जायते । इच्छाभूमिर्द्विजश्रेष्ठ ! सा दया परिकीर्तिता ॥८७॥
या तुष्टिर्जायते चित्ते शान्तिः सा गद्यते बुधैः ।
कुत्सितात्कर्मणोऽन्यत्र यच्चित्तविनिवारणम् ॥८८॥
सङ्कीर्तितो दमः प्राज्ञैः सम्मतस्तत्त्वचदर्शिभिः ।
दुःखे सुखे च विप्रेन्द्र ! या तुष्टिर्वर्तते सदा ॥८९॥
तथा शत्रौ च मित्रे च समदृष्टिर्हि सा स्मृता ।
नैवेद्यगन्धपुष्पाद्यैः श्रद्धया पुरुषो हरेः ॥९०॥
योऽर्चनं कुरुते विप्र ! सा पूजा परिकीर्तिता ।
मध्याह्ने चैव रात्रौ च लङ्घनं यद्विधीयते ॥९१॥
तद्विज्ञेयमहोरात्रं पूर्वापरदिनाशनम् । आत्मनः केशवस्याऽपि द्वयोरपि च सत्तम !॥९२॥
यदेकीकरणं तच्च विष्णुस्मरणमुच्यते । ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च देवयज्ञश्च सत्तम !॥९३॥
पितृयज्ञो भूतयज्ञः पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः । नमो भगवते वासुदेवायोङ्कारपूर्वकम् ॥९४॥
महामन्त्रमिमं प्राहुस्तत्त्वज्ञा द्वादशाक्षरम् । इति ते कथितं सर्वं पृष्टं ब्राह्मणसत्तम ! ॥९५॥
यज्ज्ञात्वा मानवाः सर्वे लभन्ते ज्ञानमुत्तमम् ।
ततः प्रतिदिनं विप्र ! नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥९६॥
पठित्वा कमलाभर्तुर्दुर्लभं मोक्षमाप्स्यसि ॥९७॥

भद्रतनुरुवाच

ब्रूहि लक्ष्मीपतेर्विष्णोर्नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥९८॥

ऐश्वर्य, पत्नी, पुत्र आदि का कब नाश होगा इस प्रकार की चित्त में जो भावना होती है, उसी को हिंसा कहते हैं ॥८६॥ प्रयास करके भी दूसरे के क्लेश को दूर करने की जो इच्छा होती है, हे द्विजश्रेष्ठ उसको दया कहते हैं ॥८७॥ मन में होने वाली सन्तुष्टि को ही विद्वानों ने शान्ति कहा है । निन्दित कर्मों से भिन्न कर्म को करने में जो मन नहीं लगाता है; उसको प्राज्ञ पुरुषों ने दम कहा है । वह तत्त्वज्ञों के लिए अनुकूल है । हे विप्रेन्द्र ! सुख तथा दुःख दोनों में जो सन्तोष बना रहता है ॥८८-८९॥ तथा शत्रु एवं मित्र के विषय में जो सम्मान दृष्टि होती है उसी को समदृष्टि कहते हैं । मनुष्य जो नैवेद्य, चन्दन तथा पुष्प आदि से श्रीहरि की श्रद्धा पूर्वक पूजन करता है उसी को पूजा कहते हैं । मध्याह्न और रात्रि में जो लंघन होता है उसी को अहोरात्र कहते हैं । अहोरात्र के पूर्व और बाद के दिन में जो भोजन किया जाता है, हे श्रेष्ठ वह अपने और श्रीभगवान् दोनों को एक में मिला देने को ही विष्णु स्मरण कहते हैं । ब्रह्मयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ इन पाँचों को पञ्चमहायज्ञ कहते हैं । **ओम नमो भगवते वासुदेवाय** यह द्वादशाक्षर मन्त्र है ॥९०-९४॥ तत्त्वज्ञों ने इस द्वादशाक्षर मन्त्र को महा मन्त्र कहा है हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपने जो पूछा है उन सारी बातों को मैंने कह दिया ॥९५॥ इसको जानकर सभी मनुष्य उत्तम ज्ञान को प्राप्त करते हैं । हे विप्रेन्द्र ! उसके पश्चात् भगवान् लक्ष्मीपति के अष्टोत्तर शत नामों जो अत्यन्त दुर्लभ हैं,

दान्त उवाच

श्रृणुविप्र ! प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। सहस्रनाम्नामाकृष्य सारं विष्णोःपरात्मनः ॥९९॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां महापातकनाशनम्। पठितव्यं यथा ध्यात्वा श्रृणु ध्यानं मयोच्यते॥१००॥
अतसीकुसुमाकारं प्रफुल्लकमलेक्षणम्। गवां चरणधूलीभिर्भूषिताखिलविग्रहम् ॥१०१॥
गोपुच्छवालपाशेन मण्डितोत्तममस्तकम्। वंशीरन्ध्रपरिन्यस्तरुचिरौष्ठपुटं प्रभुम्॥१०२॥
गोगोष्ठवासिभिः स्निगधैः शिशुभिः परिवारितम्।
पीताम्बरं स्मेरमुखं ध्यायेत्कृष्णास्यमुत्तमम् ॥१०३॥
ॐ नमोऽस्य कृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य वेदव्यासऋषिरनुष्टुप्छन्दः।
श्रीकृष्णो देवता श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः॥
नमः कृष्णः केशवश्च केशिशत्रुः सनातनः।
कंसरिर्धेनुकारिश्च शिशुपालरिपुः प्रभुः ॥१०४॥
देवकीनन्दनः शौरिः पुण्डरीकनिभेक्षणः। दामोदरो जगन्नाथो जगत्कर्ता जगन्मयः ॥१०५॥
नारायणो बलिध्वंसी वामनोऽदितिनन्दनः। विष्णुर्यदुकुलश्रेष्ठो वासुदेवो वसुप्रदः ॥१०६॥

उन सबों को पढ़कर तुम मोक्ष को प्राप्त कर लोगे ॥९६-९७॥ **भद्रतनु ने कहा**— आप मुझे लक्ष्मीपति के अष्टोत्तर शत नामों को बतलायें ॥९८॥ **दान्त ने कहा**— हे विप्र ! परमात्मा भगवान् विष्णु के सहस्रनामों से उसके सारभाग को निकालकर मैं अष्टोत्तर शत नामों को बतलाता हूँ ॥९९॥ अष्टोत्तर शत नाम महापातकों को विनष्ट करने वाला है । जिस तरह से ध्यान करके इस को पढ़ना चाहिए उस ध्यान को मैं कहता हूँ सुनो ॥१००॥ अतसी पुष्प के समान आकार वाले विकसित कमल के समान नेत्र वाले, गायों के चरण की धूलि से अलंकृत सम्पूर्ण शरीर वाले ॥१०१॥ गौ के पुच्छ के बाल से निर्मित पाश के द्वारा जिनका मस्तक अलंकृत है ऐसे वाँसुरी के छिद्र पर जिन्होंने अपने ओष्ठ को रख दिया है ऐसे श्रीभगवान् का ध्यान करे ॥१०२॥ गौओ और गोशाले में रहने वाले बच्चों से धिरे हुए पीताम्बर धारी तथा मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण भगवान् का ध्यान करे ॥१०३॥ **ओम् नमः** इस श्रीकृष्ण अष्टोत्तर नाम नामक स्तोत्र मन्त्र के ऋषि महर्षि वेद व्यास है, इसका अनुष्टुप छन्द है भगवानृ श्रीकृष्ण ही इसके देवता है भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए इसका जप (पाठ) करने में विनियोग है।

श्रीकृष्ण अष्टोत्तरशत नाम

१. कृष्णः कृष्णावतार को ग्रहण करने वाले, **२. केशव-** केशव नाम वाले भगवन्, **३. केशिशत्रु-** केशी नामक राक्षस के शत्रु, **४. सनातन-** सदैव रहने वाले, **५. कंसारि-** कंस के शत्रु, **६. धेनुकारि-** धेनुकासुर के शत्रु, **७. शिशुपालरिपु-** शिशुपाल को मारने वाले, **८. प्रभु-** सबों के स्वामी ॥१०४॥ **९. देवकी नन्दनः** = माता देवकी के पुत्र, **१०. शौरिः** = शूर वंश में उत्पन्न होने वाले, **११. पुण्डरीक निभेक्षणः** = कमल के समान मनोहर नेत्रों वाले, **१२. दामोदरः** = जिनके कमर में यशोदाजी द्वारा बाँधी गयी रस्सी का दाग है, **१३. जगन्नाथः** = जगत् के स्वामी, **१४. जगत्कर्ता** = जगत् की सृष्टि करने वाले, **१५. जगन्मयः** = जगत् स्वरूप ॥१०५॥ **१६. नारायणः** = नारायण नाम वाले, **१७. बलि ध्वंसी** = राजा बलि से तीन पग पृथिवी का दान लेने के व्याज से उनके सम्पूर्ण राज्य को लेकर उन्हें

अनन्तः कैटभारिश्च मल्लजिन्नरकान्तकः। अच्युतः श्रीधरः श्रीमाञ्छ्रीपतिः पुरुषोत्तमः ॥१०७॥
गोविन्दो वनमाली च हृषीकेशोऽखिलार्तिहा ।
नृसिंहोदैत्यशत्रुश्च मत्स्यदेवो जगन्मयः ॥१०८॥
भूमिधारी महाकूर्मो वराहः पृथिवीपतिः। वैकुण्ठः पीतवासाश्च चक्रपाणिर्गदाधरः ॥११९॥
शङ्खभृत्पद्मपाणिश्च नन्दकीगरुडध्वजः। चतुर्भुजो महासत्त्वो महाबुद्धिर्ममहाभुजः ॥११०॥
महोत्सवो महातेजा महाबाहुप्रियः प्रभुः। विष्वक्सेनश्च शार्ङ्गींच पद्मनाभो जनार्दनः ॥१११॥
तुलसीवल्लभोऽपारः परेशः परमेश्वरः। परमक्लेशहारी च परत्रसुखदःपरः ॥११२॥
हृदयस्थोऽम्बरस्थो यो मोहदो मोहनाशनः। समस्तपातकध्वंसी महाबलबलान्तकः ॥११३॥

सुतल लोक में भेज देने वाले, **१८. वामनः =** वामनावतार धारण करने वाले, **१९. अदिति नंदनः =** अदिति माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाले उनके पुत्र, **२०. विष्णुः =** सम्पूर्ण जगत् में व्यापक, **२१. यदुकुलश्रेष्ठ =** यदुकुल में सबसे श्रेष्ठ, **२२. वासुदेवः** सम्पूर्ण जगत् के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले तथा प्रलय काल में सम्पूर्ण चेतना चेतनों को अपने उदर में रखने वाले, **२३. वसुप्रदः =** अपने भक्तों को सम्पत्ति प्रदान करने वाले ॥१०६॥ **२४. अनन्तः** = किसी देश काल एवं वस्तु की सीमा में नहीं रहने वाले, **२५. कैटभारिः =** कैटभ नामक राक्षस के शत्रु, **२६. मल्लजित् =** कंस की रङ्गशाला में कुश्ती लड़ते हुए कंस के पहलवानों को परास्त करने वाले, **२७. नरकान्तकः =** नरकासुर को मारने वाले, **२८. अच्युतः =** अपनी प्रतिज्ञा से कभी नहीं चुकने वाले, **२९. श्रीधरः =** श्रीदेवी के पति, **३०. श्रीमान् =** षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न, **३१. श्रीपतिः =** लक्ष्मीजी के पति, **३२. पुरुषोत्तमः =** सभी पुरुषों में उत्तम ॥१०७॥ **३३. गोविन्दः =** गौओं का पालन करने वाले, **३४. वनमाली =** वनमाला को धारण करने वाले, **३५. हृषीकेशः =** सभी इन्द्रियों के स्वामी, **३६. अखिलार्तिहा =** अपने भक्तों के सम्पूर्ण कष्टों को विनष्ट करने वाले, **३७. नृसिंहः =** नरसिंहावतार धारण करके हिरण्यकशिपु को मारने वाले, **३८. दैत्यशत्रुः =** दैत्यों के शत्रु, **३९. मत्स्यदेवः** = मत्स्यावतार धारण करने वाले, **४०. जगन्मयः** = जगत् स्वरूप ॥१०८॥ **४१. कूर्मावतारः** = धारण करके पृथिवी को धारण करने वाले, **४२. महाकूर्म** महान् कूर्म के रूप में अवतीर्ण होने वाले, **४३. वराहः** = पृथिवी का उद्धार करने के लिए वराहावतार धारण करने वाले, **४४. पृथिवीपतिः =** भूदेवी के स्वामी, **४५. वैकुण्ठः =** वैकुण्ठ स्वरूप, **४६. पीतवासा =** पीताम्बर धारण करने वाले, **४७. चक्रपाणिः =** अपने हाथ में सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले, **४८. गदाधरः =** अपने बायें हाथ में कौमोदकी नामक गदा को धारण करने वाले॥१०९॥ **४९. शङ्खभृतः =** अपने हाथ में पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को धारण करने वाले, **५०. पद्मपाणिः =** अपने हाथ में कमल धारण करने वाले, **५१. नन्दकी =** अपने हाथ में नन्दक नामक कृपाण को धारण करने वाले, **५२. गरुड़ध्वजः =** जिनकी विजय पताका पर गरुड का चिह्न हैं, **५३. चतुर्भुजः =** चार भुजाओं वाले, **५४. महासत्त्वः =** अत्यन्त सत्त्व (पराक्रम) सम्पन्न, **५५. महाबुद्धि :** महाबुद्धिमान्, **५६. महाभुजः =** महान भुजाओं वाले ॥११०॥ **५७. महोत्सवः =** महान् उत्सव वाले, **५८. महातेजाः** = महातेजस्वी, **५९. महाबाहुप्रियः =** अपनी लम्बी भुजाएँ जिनको प्रिय हैं, **६०. प्रभुः=** सबकुछ करने में समर्थ होने के कारण सबके स्वामी, **६१. विष्वक्सेनः =** विष्वसेन नाम वाले,

रुक्मिणीरमणो रुक्मिप्रतिज्ञाखण्डनो महान् ।
दामबद्धः क्लेशहारी गोवर्धनधरो हरिः ॥११४॥
पूतनारीर्मूष्टिकारिर्यमलार्जुनभञ्जनः । उपेन्द्रो विश्वमूर्तिश्च वयोमपादः सनातनः ॥११५॥
परमात्मा परब्रह्म प्रणतार्तिविनाशनः । त्रिविक्रमो महामायो योगविद्विष्टरश्रवाः ॥११६॥
श्रीनिधिः श्रीनिवासश्चयज्ञभोक्तासुखप्रदः । यज्ञेश्वरो रावणारिःप्रलम्बघ्नोऽक्षयोऽव्ययः ॥११७॥

---

६२. **शार्ङ्गी** = शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले, ६३. **पद्मनाभः** = जिनकी नाभि में कमल है, ६४. **जनार्दनः** = दुष्टों का मर्दन करने वाले ॥१११॥ ६५. **तुलसीवल्लभः** = तुलसी के प्रियतम, ६६. **अपारः** = जिनको कोई भी पूर्ण रूप से जान नहीं सकता है, ६७. **परेशः** = सबके स्वामी, ६८. **परमेश्वरः** = सम्पूर्ण जगत् के नियामक, ६९. **परमक्लेशहारी** = सर्वश्रेष्ठ कष्टों को दूर करने वाले, ७०. **परत्रसुखदः** = परलोक में सुख देने वाले, ७१. **परः** = सबों से बड़े ॥११२॥ ७२. **हृदयस्थः**= अपने भक्तों के हृदय में निवास करने वाले, ७३. **अम्बरस्थः** = त्रिपाद्‌विभूति में रहने वाले, ७४. **मोहदः** = अपनी माया के द्वारा विरोधियों को मोहित करने वाले, ७५. **मोहनाशनः** = अपने भक्तों के मोह को विनष्ट करने वाले, ७६. **समस्त पातकध्वंसी** = अपने भक्तों के सारे पापों को विनष्ट करने वाले, ७७. **महाबलबलान्तरः** = बड़े-बड़े बलवान् विरोधियों के बल को विनष्ट करने वाले ॥११३॥ ७८. **रुक्मिणीरमणः** = रुक्मिणीदेवी के पति, ७९. **रुक्मीप्रतिज्ञा खण्डनः** = रुक्मिणी देवी के बड़े भाई रुक्मी की इस प्रतिज्ञा को कि मैं श्रीकृष्ण को परास्त करके रुक्मिणी को लौटा लाऊँगा; का खण्डन करने वाले, ८०. **महान्** = स्वेतर समस्त देवताओं से महान्, ८१. **दामबद्धः** = यशोदाजी द्वारा रस्सी में बाँधे जाने वाले, ८२. **क्लेशहारी** = भक्तों के क्लेश को मिटाने वाले, ८३. **गोवर्धनधरः** = अपनी एक ऊँगली पर गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले, ८४. **हरिः** = अपने भक्तों के समस्त पापों का हरण करने वाले ॥११४॥ ८५. **पूतनारिः** = पूतना नामक राक्षसी के शत्रु, ८६. **मुष्टिकारिः** = कंस के मुष्टिक नामक सबसे बड़े पहलवान् के शत्रु, ८७. **यमालार्जुनभञ्जनः** = नन्दजी के द्वार पर विद्यमान जुड़वे अर्जुन वृक्ष को तोड़ देने वाले, ८८. **उपेन्द्रः** = इन्द्र के छोटे भाई, ८९. **विश्वमूर्तिः** = सम्पूर्ण जगत् शरीरक, ९०. **व्योमपादः** = त्रिविक्रमावतार में पृथिवी को नापते समय जिनका चरण आकाश तक पहुँच गया, ९१. **सनातनः** = सदा विद्यमान रहने वाले ॥११५॥ ९२. **परमात्मा** = सभी आत्माओं के भीतर रहने के कारण परमात्मा, ९३. **परंब्रह्म** = ब्रह्म शब्दाभिधेय ब्रह्मा प्रकृति तथा वेद आदि से भी बड़े होने के कारण परंब्रह्म, ९४. **प्रणतार्ति विनाशनः** = शरणागत जीवों के कष्ट को विनष्ट करने वाले, ९५. **त्रिविक्रमः** = राजा बलि के राज्य को नाप लेने के लिए त्रिविक्रमावतार को धारण करने वाले, ९६. **महामायः** = माया के स्वामी होने के कारण महामायी, ९७. **योगवित्** = योग को पूर्ण रूप से जानने वाले, ९८. **विष्टरश्रवा** = वेदों के ज्ञाता ॥११६॥ ९९. **श्रीनिधिः** = लक्ष्मीजी के निधि स्वरूप, १००. **श्रीनिवासः** = लक्ष्मीजी के एक मात्र आश्रय स्वरूप, १०१. **यज्ञभोक्ता** = यज्ञों का भोग करने वाले, १०२. **रावणारिः** = रावण नामक राक्षस राज के शत्रु, १०३. **प्रलम्बघ्नः** = बलरामजी के रूप में प्रलम्बासुर को मारने वाले, १०४. **अक्षयः** = जिनका कभी भी क्षय नहीं होता है, १०५. **अव्ययः**= सर्वदा निर्विकार रहने वाले ॥११७॥

नोट— इस श्रीकृष्ण अष्टोत्तरशत नाम में तीन नाम कम हैं ।

सहस्रनाम्नां चैतत्ते नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। विष्णुप्रीतिकरं सर्वं सर्वपापविनाशनम् ॥११८॥
दुःस्वप्ननाशनं चैव ग्रहपीडाविनाशनम्। सर्वरोगक्षयकरं परमैश्वर्यदं तथा ॥११९॥
सर्वोपद्रवविध्वंसि सर्वकर्मफलप्रदम् । मया प्रोक्तं द्विजश्रेष्ठ ! वैष्णवप्रीतिहेतवे॥१२०॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तितः पुरतो हरेः ।
शतमष्टोत्तरं नाम्नां तस्य तुष्टः सदा हरिः ॥१२१॥
श्राद्धे च यः पठेदेतद्भक्तिमान्वैष्णवो जनः। सन्तुष्टाः पितरस्तस्य प्रयान्ति परमम्पदम्॥१२२॥
यज्ञकाले पठेद्यस्तु देवताराधने तथा। दानकाले च यात्रायां स वै तत्फलमाप्नुयात्॥१२३॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां स्तवस्याऽस्य प्रकीर्तनात् ॥१२४॥
ये पठन्ति हरेर्भक्त्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। नाऽशुभं विद्यते तेषां कदाचिदपि भूतले॥१२५॥

दान्त उवाच

गच्छ ब्राह्मण ! भद्रन्ते प्रोक्तेन विधिना मया ।
समाराध्य हरिं भक्त्या परमं क्षेममाप्स्यसि ॥१२६॥
एवं प्रबोधितस्तेन दान्तेन परमार्थिना। तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये हरिपूजापरोऽभवत्॥१२७॥
नित्यं तु भक्त्या विप्रोऽसौ पञ्चाहानि च जैमिने ! ।
दान्तप्रोक्तेन विधिना चकार हरिपूजनम् ॥१२८॥
ज्ञात्वा भक्तिं हरिस्तस्य सुदृढां करुणामयः ।
आविर्बभूव सहसा कोटिसूर्यइवांऽशुमान् ॥१२९॥

मैंने सहस्रनामों में अष्टोत्तर शतनामों को तुम्हें सुनाया । ये सभी नाम भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले हैं तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाले हैं ॥११८॥ यह स्तोत्र दुःस्वप्न को विनष्ट करने वाला है तथा ग्रहों की पीड़ा को विनष्ट करने वाला है । यह सभी रोगों को विनष्ट करने वाला तथा परमैश्वर्य को प्रदान करने वाला है ॥११९॥ सभी उपद्रवों को विनष्ट करने वाला है तथा सभी पुण्यकर्मों के फल को प्रदान करने वाला है । हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने वैष्णवों को प्रसन्न करने के लिए इसे कहा है ॥१२०॥ जो मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में भगवान् विष्णु के समक्ष इस अष्टोत्तर शत नाम को पढ़ाता है उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥१२१॥ जो वैष्णव पुरुष इसको श्राद्ध के समय पढ़ता है, उसके पितृगण सन्तुष्ट होकर परम्पद में चले जाते हैं ॥१२२॥ जो यज्ञ के समय या देवाराधन के समय इसको पढ़ता है, या दान के समय या यात्रा में पढ़ता है वह उसके फल को प्राप्त करता है ॥१२३॥ इस स्तोत्र का पाठ करने वाला पुत्रहीन पुत्र को प्राप्त कर लेता है, धनार्थी धन को प्राप्त कर लेता है और विद्यार्थी विद्या को प्राप्त कर लेता है ॥१२४॥ जो लोग श्रीहरि के अष्टोत्तरशतनाम को पढ़ते हैं, उन सबों का भूलोक में कभी भी अशुभ नहीं होता है ॥१२५॥ **दान्त ने कहा—** हे ब्राह्मण ! जो तुम्हारा कल्याण हो । मेरे द्वारा प्रोक्त विधि से श्रीहरि की आराधना करके परम कल्याण को प्राप्त कर लोगे ॥१२६॥ इस तरह से परमार्थ परायण दान्त के द्वारा बतलाये जाने पर वे ब्राह्मण उसी क्षेत्र में पवित्र श्रीहरि की पूजा करने में लग गये । हे

तं दृष्ट्वा जगतामीशं कमलाप्रियमच्युतम्। ववन्दे शिरसा विप्रस्तत्पादकमलद्वये ॥१३०॥
अथाऽसौ ब्राह्मणश्रेष्ठो हर्षनिर्भरमानसः। कृताञ्जलिर्जगन्नामस्तौषीत्कमलापतिम् ॥१३१॥
दृष्टिं हरे ! दुरितगामपि मे कृपालां भक्तिं निजां प्रति विभो ! शुभदामनैषीः ।
तस्मादहं विहितविस्तरपातकोऽपि ग्राम्यस्त्वयाऽकारि पुमानिवाऽद्य ॥१३२॥
रुष्टे त्वयि त्रिदशववन्दिततपादयुग्मे दृष्टिः प्रयाति दुरितं खलु मानवस्य ।
तुष्टे च याति सुकृतं प्रति सैव दृष्टिर्ज्ञातं मयैव परमेश्वर ! केवलं च ॥१३३॥
त्वां वच्मि नाथ भवतःस्मरण प्रभावं यस्माद् व्रजामि निखिलार्जितपातकोऽपि ।
स्थानं जगाम परमं त्रिदशैकलभ्यमारुह्य शुद्धकनकच्छुरितं विमानम् ॥१३४॥
त्वत्पादपद्मसलिलस्य सदा गुणाढ्यो व्याधः स वेत्ति कनिकः कृतसर्वपापः ।
त्वद्वेश्ममार्जनफलं जगदेकनाथ ! यज्ञध्वजः क्षितिपतिः सुरवन्दितश्च ॥१३५॥
वेश्मोपलेपनफलं भवतो मुरारे ! सृष्टिस्थितिप्रलयकारण ईश्वरस्य ।
जानाति पन्नगरिपुध्वजयज्ञमाली भ्राता च तस्य कृतपापभयः सुमाली ॥१३६॥
हरिं प्रदक्षिणीकृत्य भवन्तं यत्फलं भवेत् । धर्म एव स जानाति नान्यः कश्चिज्जगत्त्रये॥१३७॥
तव चित्तं दयानाथ ! गदितंभुवि कःक्षमः। त्वांविद्ध्वाऽपि शरैर्व्याघोजगाम परमंपदम् ॥१३८॥
निन्दित्वाऽपि जगन्नाथ ! भवन्तं त्रिदशेश्वरम् ।
शिशुपालो ययौ मोक्षं तव भक्तस्य का कथा ॥१३९॥

जैमिने! दान्त के द्वारा प्रोक्त विधि से पाँच दिनों तक उस ब्राह्मण ने पूजा किया । उस समय श्रीभगवान् करोड़ों सूर्य के समान प्रकट हो गये ॥१२७-१२९॥ जगत् के स्वामी लक्ष्मीपति को देखकर उस ब्राह्मण ने श्रीभगवान् के दोनों चरणों में अपने शिर को लगाकर उनकी स्तुति की ॥१३०॥ उसके पश्चात् ब्राह्मण श्रेष्ठ हर्ष से परिपूर्ण मन से हाथ जोड़कर उन श्रीहरि की स्तुति किए ॥१३१॥ हे हरे ! हे विभो ! आपने मेरी पापकारिणी भी दृष्टि को अपने कृपा से परिपूर्ण और कल्याण कारिणी अपनी भक्ति को प्रदान किया उसके कारण अत्यधिक पाप करने वाले ग्रामय मुझको आपने पुरुष के समान बना दिया ॥१३२॥ देवताओं द्वारा पूजित चरण कमल वाले आपके रुष्ट हो जाने पर मनुष्य की दृष्टि पापकारिणी हो जाती है । हे परमेश्वर मैंन केवल यही जाना है कि आपके प्रसन्न होने पर ही मनुष्य की बुद्धि पुण्यपरायणी होती है॥१३३॥ हे नाथ ! आपके स्मरण का ही यह प्रभाव है कि सभी पापों को करने वाला मैं केवल देवताओं को ही प्राप्त होने वाला परमपद में शुद्ध सुवर्ण से सुशोभित विमान पर चढ़कर जा रहा हूँ ॥१३४॥ सभी प्रकार के पापों को करने वाला गुणों से परिपूर्ण वह कनिक नामक व्याध ही आपके चरणोदक का प्रभाव जानता है । हे सम्पूर्ण संसार के एकमात्र स्वामिन् आपके मन्दिर के धोने और झाड़ने का प्रभाव यज्ञ ध्वज नामक राजा ही जानते हैं ॥१३५॥ हे मुरारे ! जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करने वाले आपके मन्दिर को लिपने आदि का फल गरुड़ध्वज पाप समूह को करने वाला माली और पाप से भयभीत रहने वाला उसका भाई सुमाली ही जानते हैं ॥१३६॥ आप श्रीहरि की प्रदक्षिणा करने का जो फल होता है उसको धर्म ही जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता है ॥१३७॥ हे दयानाथ ! आपके चित्त का वर्णन कौन कर सकता है ? उस व्याघ ने आपको बाणों से छेदकर भी परम पद को प्राप्त किया ॥१३८॥ हे जगन्नाथ!

ब्रह्मरूपेण येनाऽसौत्वया सृष्टमिदंजगत्। त्वयितस्मिन्महाविष्णो ! रमतांममपानसम् ॥१४०॥
सर्वो विष्णो ! त्वयाऽनेन क्रियते जगतःक्षयः ।
रुद्ररूपेण संसारे तस्मैतुभ्यं नमोऽस्तुमे ॥१४१॥
यस्मादल्पतमंनास्ति यस्मान्नास्तिमहत्तमम्। येनव्याप्तंजगत्सर्वं त्वयातस्मैनजोऽस्तुते ॥१४२॥
नेत्राभ्यां यस्य देवस्य सूर्योऽजनि दिवाकरः ।
मुखादग्निश्च जायेततव तस्मैनमोऽस्तुते ॥१४३॥
यस्य श्रोत्राद्वायवोऽपि जाताः प्राणाश्चकेशव ! ।
तव तस्मै सुरश्रेष्ठ ! नमोऽस्तुममसर्वदा ॥१४४॥
लक्ष्मीर्यस्य सदा क्रोडे श्यामाङ्गस्य सुनिर्वृता ।
सौदामिनीव मेघस्य तव तस्मै नमोऽस्तु ते ॥१४५॥
गन्तुं महिम्नां सीमानं ब्रह्माद्या अपि निर्जराः ।
न शक्नुवन्तिवै यस्यतव तस्मैनमोऽस्तुते ॥१४६॥
धर्माणां स्थापनार्थाय विनाशायच पापिनाम् ।
युगेयुगे यःप्रभवेत्तस्मैतुभ्यंनमोऽस्तुते ॥१४७॥
मायया मोहितं येन जगदेतन्महात्मना। क्षिणोति मायया शम्भुर्यस्तस्मै ते नमोऽस्तुमे॥१४८॥
भक्तिमात्रेण यस्तुष्टो न धनैर्नस्तवैस्तथा। न दानैर्न तपोभिश्च तस्मैतुभ्यं नमोऽस्तु मे॥१४९॥
गवां च ब्राह्मणानां च साधूनांचहितन्तथा। कृपां च कुरुते यस्तुप्तस्मैतुभ्यं नमोऽस्तुमे ॥१५०॥

देवताओं के स्वामी आपकी निन्दा करके शिशुपाल भी मोक्ष को प्राप्त कर लिया तो फिर आपके भक्त के विषय में क्या कहा जा सकता है ॥१३९॥ हे महाविष्णो ! ब्रह्माजी का रूप धारण करके सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आपन की ऐसे आपमें मेरा मन रमण करें ॥१४०॥ हे भगवन् ! आप ही सम्पूर्ण जगत् का विनाश करते हैं ऐसे आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१४१॥ आपसे सूक्ष्मतम कोई भी वस्तु नहीं है और आपसे बड़ी भी कोई वस्तु नहीं है जिस आपके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ऐसे आप को नमस्कार है । जिस आप के नेत्र से सूर्य पैदा हुए आपके मुख से अग्नि उत्पन्न हुए ऐसे आपको नमस्कार है ॥१४२-१४३॥ हे केशव जिस आपके के कानों से वायु की तथा प्राणों की उत्पत्ति हुयी हे सुरश्रेष्ठ! ऐसे आपको मेरा सदैव नमस्कार है ॥१४४॥ जिस श्याम वर्ण वाले आपकी गोद में विद्यमान लक्ष्मीजी मेघों के बीच में चमकने वाली बिजली के समान सुशोभित होती हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥१४५॥ जिस आपकी महिमा का पार पाने में ब्रह्मा आदि देवता भी समर्थ नहीं हैं, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है॥१४६॥ जो आप धर्मों की स्थापना करने के लिए और पापियों का विनाश करने के लिए प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥१४७॥ जिस आपने अपनी माया से इस सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रखा है । जो आप माया के द्वारा जगत् का क्षय करते हैं ऐसे कल्याण करने वाले शम्भु स्वरूप आपको नमस्कार है ॥१४८॥ जो आप केवल भक्ति से ही सन्तुष्ट होते हैं, धन और स्तुति के द्वारा तथा दान और तपस्या के द्वारा भी नहीं, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥१४९॥ जो आप गौ, ब्राह्मण तथा साधुओं का

अनाथानांच बन्धूनां योगिनांदुःखिनान्तथा। दुःखं हरतियोदेवस्तस्मैतुभ्यंनमोऽस्तुमे॥१५१॥
मनुष्येषु च देवेषु गजेषु सकलेषु च। वर्तते यः समत्वेन तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु मे॥१५२॥
यस्मिंस्तुष्टे पर्वतोऽपि सद्य एव तृणायते। शैलायते तृणंरुष्टे तस्मै तुभ्यंनमोऽस्तुमे॥१५३॥
पुण्यानां च यथा पुण्ये निजेपुत्रेयथापितुः। यथा पत्यौसतीनाञ्च तथात्वयि ममास्तुवै॥१५४॥
यूनां चित्तं यथा स्त्रीषु लुब्धानां च यथा धने।
क्षुधितानां यथा चाऽन्ने तथा त्वयि ममाऽस्तु वै॥१५५॥
धर्मार्त्तानां यथाचन्द्रे शीतार्त्तानां रवाविति। तृषार्त्तानां यथा तोये तथा त्वयि ममाऽस्तु वै॥१५६॥
यन्मया बुद्धिहीनेन गुरुस्त्रीगमनं कृतम्। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम॥१५७॥
अवध्यानां बधो यस्तु मया मोहवता कृतः।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम॥१५८॥
अपेयपानं च मया विहितं परमेश्वर !। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम॥१५९॥
अप्सु योनौ तथा तोये यद्रेतःसेचनं कृतम्। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम॥१६०॥
भ्रूणहत्या कृता या च रेतसां सेचनं भुवि। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम॥१६१॥
विश्वासघातकं यच्च अज्ञात्वा मायया कृतम्।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम॥१६२॥

कल्याण एवं उन पर कृपा करते हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥१५०॥ हे देव ! आप अनाथों बान्धवों, योगियों तथा दुःखियों के दुःख को दूर करते हैं, ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ॥१५१॥ जो आप मनुष्यों देवताओं तथा हाथियों को एक समान दृष्टि से देखते हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥१५२॥ जिस आपके प्रसन्न होने पर पर्वत भी तृण के समान हल्का हो जाता है और आपके रुष्ट होने पर तृण भी पर्वत के समान भारी हो जाता है ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥१५३॥ जिस तरह से पुण्य करने वाले का मन पुण्य में लगता है, जैसे पिता का मन अपने पुत्र में लगता है। जिस तरह सती नारी का मन अपने पति में लगा रहता है उसी तरह मेरा भी मन आपमें ही लगा रहे ॥१५४॥ जिस तरह से युवकों का मन स्त्रियों में लगता है लोभी का मन धन में लगा रहता है, भूखे का मन अन्न में लगता है उसी तरह मेरा मन आपमें लगा रहे ॥१५५॥ धूप से व्याकुलों का जैसे मन चन्द्रमा में लगता है, ठंढ़े से व्याकुलों का मन जैसे सूर्य में लगता है, जिस तरह प्यास से व्याकुल का मन जल में लगता है उसी तरह मेरा मन आपमें लगा रहे ॥१५६॥ मूर्ख मैंने जो गुरु की पत्नी के साथ सहगमन किया मेरे वह पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१५७॥ अज्ञानी मैंने जो अबध्यों का वध किया मेरा वह पाप आपका दर्शन करने से विनष्ट हो जाय ॥१५८॥ हे परमेश्वर ! मैंने जो अपेयवस्तु का पान किया है मेरा वह पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१५९॥ मैंने जो जल में तथा योनियों में वीर्य पातन किया है मेरा वह पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६०॥ मैंने जो भ्रूण हत्या की है, तथा पृथिवी पर अपना वीर्य गिराया है, वह मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६१॥ मैंने अज्ञानवशात् जो माया के द्वारा विश्वासघात किया है, उससे उत्पन्न पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६२॥ मैंने जो क्षण-क्षण में झूठ बोला

अमत्यवचनं यच्च मयाप्रोक्तं क्षणे क्षणे । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६३॥

सतां निन्दा कृता या च परहिंसा च सर्वदा ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६४॥
श्लेष्मा च कफकश्चैव यद्वक्त्रे च मया कृतम् ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६५॥

वनस्पतिगते सोमे यत्कृतं तरुघातनम् । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६६॥

पथि देवालये गोष्ठे मलं मूत्रं च यत्कृतम् ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६७॥

अभक्तिर्वितता या च पितुर्मातुश्च केशव !। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६८॥

स्नानार्थं भोजनार्थं च गच्छन्यस्तु निवारितः ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१६९॥
एकादश्यां सुरश्रेष्ठ ! यन्मया भोजनं कृतम् ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७०॥

अतिथिर्गृहमागच्छन्पूजितो न मया प्रभो ! । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७१॥

द्वादश्यां च दशम्यां च कृतं यच्च द्विर्भोजनम् ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७२॥
निवारणं च पानार्थं यान्तीनां यद्गवां कृतम् ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७३॥

असमाप्य परित्यक्तं व्रतमारभ्य यन्मया । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७४॥

है उससे उत्पन्न पाप आपके दर्शन से मेरा पाप विनष्ट हो जाय ॥१६३॥ मैंने जो सदा सज्जनों की निन्दा की है तथा दूसरों की हिंसा की है मेरा वह पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६४॥ मैंने जो कफ तथा श्लेष्म घोंट लिया है उससे होने वाला पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६५॥ जब सोम वनस्पतियों के भीतर प्रवेश कर गये उस समय मैंने जो पेड़ों को काटा है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६६॥ मैंने रास्ते में, मन्दिर में तथा गोशाले में मल-मूत्र का जो त्याग किया है, उससे उत्पन्न मेरे पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६७॥ हे केशव ! मैंने जो अपनी माता-पिता की भक्ति नहीं की है, उससे उत्पन्न पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१६८॥ मैंने स्नान तथा भोजन करने के लिए जाते हुए को रोक लिया है, उससे उत्पन्न होने वाला पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय॥१६९॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मैंने जो एकादशी के दिन भोजन किया है, उससे उत्पन्न पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७०॥ हे प्रभो ! घर आये हुए अतिथि की जो मैंने पूजा नहीं की है, उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७१॥ द्वादशी और दशमी के दिन मैंने जो दो बार भोजन किया है, उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७२॥ पानी पीने के लिए जाती हुयी गायों को जो मैंने रोका है, उससे उत्पन्न मेरा पाप विनष्ट हो जाय ॥१७३॥ मैंने प्रारम्भ करके उसको

कूटसाक्ष्यं निरुक्तं यन्मित्रवात्सल्यतो मया । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७५॥
ऋतुकालाभिगमनं निजपत्न्यां कृतं न यत् । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७६॥
असंस्कृते गृहे यच्च भोजनं विहितं मया । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७७॥
ग्रामयाजकवृत्तिश्च या मया नृहरे ! कृता। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७८॥
दण्ड्यमाने मया भूपे प्रभुत्वं यत्कृतं प्रभो ! ।
तत्पाातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१७९॥
पौराणिककथामध्ये यो विघ्नो विहितो मया ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८०॥
आदरेण मया या च परपापकथा श्रुता । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८१॥
अश्वत्थच्छेदनं यच्च धात्र्याश्च च्छेदनं कृतम् ।
तत्पातकंक्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८२॥
दधिदुग्धघृतानां च विक्रयो यः कृतो मया ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८३॥
आशां दत्त्वा परेभ्यश्च कृता सा निष्फला मया ।
तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८४॥
द्विजाश्च याचकाश्चैव कोपदृष्ट्या मयेक्षिताः। तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८५॥
जीवनोपायदातारः कोपान्निर्भर्त्सिता मया । तत्पातकं क्षयं यातु भवन्तं पश्यतो मम ॥१८६॥

समाप्त किए बिना जो व्रत को छोड़ दिया है उससे उत्पन्न मेरा पाप विनष्ट हो जाय ॥१७४॥ मित्र के प्रति प्रेम होने के कारण मैंने जो झूठी गवाही दी है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय॥१७५॥ मैंने जो ऋतुकाल में भी अपनी पत्नी के साथ अभिगमन नहीं किया है, उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७६॥ संस्कार किए बिना मृह में जो मैंने भोजन किया है उससे होने वाला मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७७॥ हे नरसिंह ! मैंने जो गाँव में जाकर यजमानी की है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७८॥ राजा के दण्डित होने पर जो मैंने उसका समर्थन किया है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१७९॥ पौराणिक कथा के बीच में मैंने जो विघ्न किया है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१८०॥ मैंने प्रेम पूर्वक जो दूसरे के पाप से सम्बन्धित चर्चा को सुना है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय॥१८१॥ मैंने जो पिप्पल तथा आँवला के वृक्ष को काटा है, उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१८२॥ मैंने जो दही, दुग्ध तथा घी को बेंचा है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१८३॥ मैंने दूसरों को आशा देकर उसको पुनः पूरा नहीं किया उससे उत्पन्न पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१८४॥ मैंने जो याचकों तथा ब्राह्मणों को क्रोध भरी दृष्टि से देखा है उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१८५॥ मैंने क्रोध करके जो जीविका प्रदान करने वालों की निन्दा की है, उससे उत्पन्न मेरा पाप आपके दर्शन से विनष्ट हो जाय ॥१८६॥ बहुत अधिक

बहुनाऽत्र किमुक्तेन बहुजन्मार्जितानिच। क्षयं गतानि पापानि भवन्तं पश्यतो मम ॥१८७॥

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगत्पते ! ॥१८८॥
इत्युक्त्वाऽसौ द्विजोभित्तया पुलकाञ्चितविग्रहः ।
पपात जैमिने ! विष्णोश्चारुपादाम्बुजद्वये ॥१८९॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ते विप्र ! तुष्टोऽस्मि तव भक्तितः ।
किंतेऽभिलषितं ब्रूहि तत्ते दास्यास्यहं ध्रुवम् ॥१९०॥

भद्रतनुरुवाच

परमेश्वर ! गोविन्द ! दयालो ! परमाच्युत ! ।
यत्सम्प्रति मया प्राप्तं तत्केन भुवि लभ्यते ॥१९१॥
तथाप्येकं वरं याचे मुरारे ! तव सन्निधौ ।
ज नमजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो ! ॥१९२॥

मया कृतमिदं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तितो नरः। तस्याभिलषितं सर्वं प्रसन्नस्त्वं प्रदास्यसि॥१९३॥

श्रीभगवानुवाच

दत्तोऽयं ते वरः कोऽपि विप्र ! नास्त्यत्र संशयः ।
किन्तु त्वया सह प्राज्ञ ! सख्यं कर्तुं मयेष्यते ॥१९४॥

नमत्सेवकतायोग्यो भवानहमिह द्विज !। अतः सख्यं प्रविवृतं त्वया सह मयाऽधुना॥१९५॥

व्यास उवाच

ततो नारायणो देवो दयालुर्भक्तवत्सलः। चकार जैमिने ! सख्यं तेन पुण्यात्मना सह॥१९६॥

कहने से क्या लाभ है अनेक जन्मों में मैंने जो पाप किया वे सभी आपके दर्शन से विनष्ट हो जायँ॥१८७॥ हे जगत् के स्वामिन् ! मैं तो आपको दर्शन से कृतार्थ हो गया अतएव आपको बारम्बार नमस्कार है॥१८८॥ इस तरह से कहकर वह ब्राह्मण भूमि पर गिरकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया, उस समय उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया था ॥१८९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे विप्र ! तुम उठो मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट हूँ तुमको क्या अभिलषित है ? उसे तुम बतलाओ, मैं उसे तुमको निश्चित रूप से प्रदान करूँगा॥१९०॥ **भद्रतनु ने कहा—** हे परमेश्वर ! हे गोविन्द ! हे दयालो ! हे परम अच्युत ! इस समय मैंने जो प्राप्त किया हैं उसको कौन प्राप्त कर पाता है ॥१९१॥ हे मुरारे ! फिर भी आपसे मैं एक वरदान माँगता हूँ हे प्रभो ! प्रत्येक जन्मों में आपमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे ॥१९२॥ मेरे द्वारा की गयी इस स्तुति को भक्ति पूर्वक जो कोई भी आपके समक्ष पढ़े आप उसकी सभी अभिलषित वस्तुओं को प्रसन्न होकर उसे प्रदान करे ॥१९३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे विप्र ! मैंने इस वरदान को आपको दे दिया, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं । किन्तु मैं तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता हूँ ॥१९४॥ हे द्विज! यहाँ पर मैं तुम्हारी सेवकता के योग्य नहीं हूँ इसीलिए मैंने तुम्हारे साथ मित्रता का वरण किया हैं ॥१९५॥

निजकण्ठगतां मालां ददौ तस्मै मुदा हरिः ।
सोऽपि विप्रोददौ भक्तयाहरेस्तुलसिकास्त्रजम् ॥१९७॥
प्रसार्य चतुरोबाहूंस्तमालिङ्गितवान्हरिः । स विप्रोऽपि मुदा विष्णुं तमालिङ्गितवान्प्रभुः॥१९८॥
इत्थंकृत्वा हरिःसख्यं तेनाऽग्रजन्मना सह । भक्तिग्राही दयालुःस तत्रैवाऽन्तरधीयत॥१९९॥
ततः प्रतिदिनं तत्र क्षेत्रे च पुरुषोत्तमे । आरेभे कन्दुकक्रीडां हरिस्तेनाऽग्रजन्मना॥२००॥
कदाचिद्दुर्बलं दृष्ट्वा तं विप्रं करुणामयः। उवाच वाचं विप्रर्षे ! मित्रवात्सल्यतो हरिः॥२०१॥

श्रीभगवानुवाच

सखे ! कथं दुर्बलस्त्वं हृतं केन धनं तव ।
हृदि का वा च ते चिन्ता सखे ! तद्वक्तुमर्हसि ॥२०२॥

भद्रतनुरुवाच

त्वत्प्रीतये जगन्नाथ ! नित्यमेव मया तपः । क्रियते तेन मे गात्रं याति दुर्बलतां प्रभो ॥२०३॥

श्रीभगवानुवाच

यथा त्वयि प्रसन्नोऽस्मि कस्मिंश्चनतथासखे ! ।
कायक्लेशं पुनःकस्मात्करोषि द्विजसत्तम ॥२०४॥
दुर्बलं त्वां समालोक्य हृदि मे जायते व्यथा ।
कायक्लेशमतः सर्वं जहीहि द्विजसत्तम ॥२०५॥
निजोत्तरीयैर्निजवस्त्रभूषणैः सुचारुचामीकरकुड्मलाभ्याम् ।
स्वहस्तराजद्वलयैश्च विप्रः स्वयं सुरेशेन च मण्डितोऽसौ ॥२०६॥

व्यासजी ने कहा— उसके बाद भक्त वत्सल दयालु भगवान् नारायण ने उस पुण्योत्तम ब्राह्मण के साथ मित्रता कर ली ॥१९६॥ श्रीहरि ने प्रसन्नता पूर्वक अपने गले की माला को उसे प्रदान कर दिया । उस विप्र ने भी प्रसन्नता पूर्वक श्रीहरि को तुलसी की माला प्रदान की ॥१९७॥ श्रीहरि ने अपनी चारो भुजाओं को फैलाकर उस विप्र का आलिङ्गन किया और उस विप्र ने भी प्रसन्नता पूर्वक श्रीभगवान् का आलिङ्गन किया ॥१९८॥ इस तरह से श्रीहरि ने उस ब्राह्मण के साथ मित्रता करके भक्ति को स्वीकार करने वाले दयालु श्रीभगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१९९॥ उसके पश्चात् श्रीभगवान् उस ब्राह्मण के साथ प्रतिदिन कन्दुक क्रीड़ा करना प्रारम्भ किए ॥२००॥ एक बार उस ब्राह्मण को दुर्बल देखकर करुणामय श्रीभगवान् उस ब्राह्मण से मित्र प्रेम होने के कारण कहे ॥२०१॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे मित्र ! तुम दुर्बल क्यों हो तुम्हारे धन को किसने ले लिया है ? अथवा तुम्हारे हृदय में कोई चिन्ता है, उसे तुम बतलाओ॥२०२॥ **भद्रतनु ने कहा**— हे प्रभो ! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए प्रतिदिन तप करता हूँ उसी के कारण मेरा शरीर दुर्बल है ॥२०३॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— मित्र ! मैं तुम पर जितना प्रसन्न हूँ उतना किसी पर प्रसन्न नहीं हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर भी तुम अपने शरीर को क्यों दुःख देते हो ॥२०४॥ तुमको दुर्बल देखकर मेरे हृदय में कष्ट होता है; अतएव हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम अपने शरीर को कष्ट देना त्याग दो ॥२०५॥ श्रीभगवान् ने अपने ही हाथों से अपने उत्तरीय वस्त्रों तथा भूषणों से सुन्दर सुवर्ण के कुण्डलों से तथा अपने हाथ के

किरीटमानीय निजाल्ललाटात्पादाच्च पादाङ्गदयुग्ममीशः ।
सुवर्णहारं निजकण्ठदेशात्तस्मै ददौ विप्रवराय कृष्णः ॥२०७॥
तैर्भूषणैः श्रीहरिणा प्रदत्तैर्विभूषितोऽयं सुकृती द्विजन्मा ।
क्रीडेत्सदा कन्दुककेलिवेत्ता कृष्णेन कृष्णाम्बुजसुन्दरेण ॥२०८॥
तमेकदा भूषणभूषिताङ्गं ताम्बूलरागादुरुचिरोष्ठयुग्मम् ।
दिव्याम्बरं चारुतरोत्तरीयं स्मेराननं तत्र ददर्श दान्तः ॥२०९॥

दान्त उवाच

भद्र भद्रतनोऽद्यापि पापदृष्टिं न मुञ्चसि । दृष्ट्वाऽपि भवतः कार्यं निन्दितं सकलैर्जनैः॥२१०॥
शिष्यःकृतस्त्वं यस्मान्मे सर्वमेव हि भूषणम् ।
अहंयुश्चाऽपिदुःशीलो निर्दयः पापतत्परः ॥२११॥
गुरुकीर्तिविनाशी च पञ्चैते शिष्यपांसुलाः । अभक्तो बहुभाषी च तथा चञ्चलमानसः ॥२१२॥
परोक्षगुरुनिन्दाकृत्प्रोक्ताःशिष्याधमाइमे । चरित्रमुत्तमं ज्ञात्वा शिष्यःकार्यो विचक्षणैः ॥२१३॥
यतो दुर्जनगा विद्या गुरूणां चाऽपि दुःखदा ।
कीर्तिदास्तैश्च या विद्या निरुक्तास्तत्त्वदर्शिभिः ॥२१४॥
ता वै दुर्जनगाः सद्यो गुरोर्घ्नन्ति यशस्तरुम् ।
पापेभ्यः पुण्यकर्माणि न रोचन्ते कदापि च ॥२१५॥
न रोचते मक्षिकाभ्यः सुगन्धिचन्दनं यथा । यथा मिष्टान्नपानेन नहि तृप्यन्ति गर्दभाः॥२१६॥
दुर्जना नहि तृप्यन्ति यथा धर्मस्य चिन्तया। अपकीर्तिभयाल्लक्ष्मीर्धर्मश्च सर्वकामदः॥२१७॥

कङ्कणों से उस ब्राह्मण को अलंकृत किया ॥२०६॥ श्रीभगवान् उस ब्राह्मण को स्वयं अपने ललाट से किरीट लेकर और पैरों के दोनों अङ्गद को, अपने गले से सुवर्ण के हार को लेकर प्रदान किए ॥२०७॥ श्रीहरि द्वारा उन भूषणों से भूषित ये पुण्यवान् ब्राह्मण कन्दुक क्रीडा के ज्ञाता काले मेघ के समान सुन्दर श्रीभगवान् के साथ क्रीडा करते थे ॥२०८॥ एक बार दान्ता ने उस ब्राह्मण को भूषणों से भूषित शरीर वाले ताम्बूल की लालिमा से लाल ओष्ठ वाले दिव्य वस्त्र तथा मनोहर उत्तरीय वाले और मुस्कान मण्डित मुख वाले देखे ॥२०९॥ **दान्त ने कहा—** हे भद्र ! भद्रतनो अब भी तुम अपनी पाप दृष्टि को नहीं त्यागे हो क्या ? आपके निन्दित कर्म को देखकर ॥२१०॥ मैंने तुमको अपना शिष्य बनाया फिर भी तुम सभी भूषणों को धारण किये हो । अहङ्कारी, दुःशील, निर्दय, पापी तथा गुरु की कीर्ति का विनाश करने वाले ये पाँच तरह के शिष्य दोषी हैं । भक्ति हीन, बहुत बोलने वाले तथा चञ्चल मन वाले ॥२११-२१२॥ एवं परोक्ष में गुरु की निन्दा करने वाले ये शिष्य अधम कहे गये हैं । निपुण व्यक्तियों को चाहिए कि वे कि किसी के उत्तम चरित्र को जानकर ही उसे शिष्य बनायें ॥२१३॥ चूकि दुष्टों को दी गयी विद्या गुरुजनों को भी दुःख देती है जिससे यश बढे ऐसी ही विद्या को तत्त्वदर्शी पुरुषों ने बतलाया है ॥२१४॥ दुर्जनों को दी गयी विद्या ये गुरु को यश रूपी वृक्ष को काटने का काम करती हैं पापियों को पुण्यकर्म भी अच्छे नहीं लगते हैं ॥२१५॥ जिस तरह मखियों को चन्दन की सुगन्धि अच्छी नहीं लगती हैं जैसे मिठायी खाना गधों को अच्छा नहीं लगता है ॥२१६॥ जिस तरह दुष्ट पुरुष धर्म के चिन्तन से नहीं सन्तुष्ट होते हैं ।

कदाचिन्नभजेद्दुष्टं भजेद्वा गच्छतिक्षयम्। प्रतिजन्मनि या विद्या भाग्येन लभ्यते परा ॥२१८॥
कदाचिल्लभते वाऽपि तदा तां हरते विधिः ॥२१९॥

भद्रतनुरुवाच

सत्यं ब्रवीषि विप्रर्षे ! नाऽस्मि शास्त्रविशारदः ।
मया शिष्येण ते क्वाऽपि नाऽपकीतिर्भविष्यति ॥२२०॥
त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ ! सर्वाभिलषितं मम ।
सिद्धिं प्रति गतं यस्मात्त्वमेको भुवि दुर्लभः ॥२२१॥

दान्त उवाच

किंतेऽभिलषितं विप्र ! सिद्धिं प्रति गतं वद ।
अचिरेणैव तपसां कथमुद्यापनं कृतम् ॥२२२॥

भद्रतनुरुवाच

स्वल्पश्रमैरपि प्राप्तं मया संदर्शनं हरेः ।
यस्याऽऽज्ञया गुरो ! त्यक्तं मया नित्यक्रियादिकम् ॥२२३॥
निजोत्तरीयं वस्त्रं च सुवर्णकलशद्वयम्। स्वहस्तवलयं चाऽपि स्वललाटकिरीटकम्॥२२४॥
निजपादतुलाकोटिंनिजमुक्तावलीं ददौ । तथा मे भगवान्विष्णुः सुप्रीतो द्विजसत्तम !॥२२५॥
मया सह स कृत्वाऽऽस्ते सख्यं सेवकदुःखहा ।
करोमिकन्दुकक्रीडां गुरो ! तेन सहानिशम् ॥२२६॥
एतन्मे वचनं श्रुत्वा सन्देहस्ते भविष्यति। प्रतीत्या च मया प्रोक्तं तथापि तव सन्निधौ॥२२७॥

आपयश के भय से लक्ष्मी और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले धर्म को नहीं करते हैं ॥२१७॥ इसलिए कभी भी दुष्ट को नहीं अपनाना चाहिए, यदि कोई उसको अपनाता है तो उसका नाश हो जाता है जो पराविद्या भाग्यवशात् प्रत्येक जन्म में प्राप्त होती हैं ॥२१८॥ वह कभी प्राप्त भी हो जाती है तो उसे भाग्यहीन नहीं लेता है ॥२१९॥ **भद्रतनु ने कहा**— हे विप्रर्षे ! आप सत्य कह रहे हैं मैं शास्त्रज्ञ नहीं हूँ मुझ शिष्य के द्वारा आपका कहीं भी अपयश नहीं होगा ॥२२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मुझे सम्पूर्ण अभिलषित अर्थों की प्राप्ति हो गयी । क्योंकि आप तो संसार में दुर्लभ हैं ॥२२१॥ **दान्त ने कहा**— हे विप्र ! तुमको किस अभिलषित वस्तु की सिद्धि हुए हैं ? तुमने शीघ्र ही तपस्याओं का उद्यापन कैसे कर दिया ॥२२२॥ **भद्रतनु ने कहा**— मैंने अत्यन्त थोड़े परिश्रम से श्रीहरि का दर्शन कर लिया है? हे गुरो ! उन्हीं की आज्ञा से मैंने नित्य क्रिया आदि को त्याग दिया है ॥२२३॥ श्रीहरि ने मुझे अपना उत्तरीयवस्त्र तथा सुवर्ण के दो कलश, अपने हाथ का कङ्गन तथा अपने ललाट के किरीट आदि को॥२२४॥ अपने चरणों की करोड़ तुलसी तथा मुक्तावली मुझे प्रदान की है । हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होकर सेवक के दुःख को दूर करने वाले वे श्रीभगवान् मेरे साथ मित्रता किए हैं । हे गुरो ! उनके साथ मैं सदा कन्दुक क्रीड़ा करता हूँ ॥२२५-२२६॥ मेरे इस वचन को सुनकर आपको सन्देह होता होगा । फिर भी मैंने विश्वास पूर्वक इन सारी बातों को आपके सन्निकट कहा है ॥२२७॥ **दान्त ने कहा**— सात

दान्त उवाच

सप्तवर्षसहस्राणि भक्त्या परमया मया। आराधितोऽपि मे विष्णुर्दर्शनं न ददौ विभुः॥२२८॥

अहो विष्णुं समाराध्य पञ्चाहान्येव सत्तम ! ।
त्वया सन्दर्शनम्प्राप्तं दैवतैरपि दुर्लभम् ॥२२९॥
धन्योऽसि त्वं कृतार्थोऽसि साक्षाद्देवस्त्वमुच्यते ।
यतस्त्वया सह स्वामी प्रेम्णा सख्यं चकार ह ॥२३०॥

यदा मयि तव स्नेहो विद्यते द्विजसत्तम ! । कथं कथय मे विप्र ! दुर्लभं विष्णुदर्शनम्॥२३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो गुरुणाविप्रो विपिने निजमाश्रमम्। जगाम विस्मितो धीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ॥२३२॥
अथान्यस्मिन्दिने गत्वा कन्दुकक्रीडनंकृतम्। उवाचेति जगन्नाथं दयालुं विनयान्वितः॥२३३॥

भद्रतनुरुवाच

गुरुर्हि मम देवेन्द्र ! तव दर्शनमिच्छति ।
काऽऽज्ञा ते वर्तते ब्रूहि दयालो ! कमलापते ! ॥२३४॥
एकान्तभक्तो विप्रोऽसौ तव पद्मनिभेक्षण ! ।
अतस्तस्मै सुरश्रेष्ठ ! दर्शनं दातुमर्हसि ॥२३५॥

श्रीभगवानुवाच

बहुजन्मसु विप्रेन्द्र ! भत्तया परमया त्वया। पूजितोऽहमतो दत्तं दर्शनं मे मयाऽधुना ॥२३६॥
कतिचिद्दिवसानेन मामभ्यर्च्य द्विजः स च। मां द्रष्टुमिच्छति प्राज्ञस्त्वदृश्यं दैवतैरपि॥२३७॥
मम सोऽपि महाभक्तो मत्सपर्यापरायणः। मम सन्दर्शनं तस्मात्कदाचिद् द्विज लप्स्यति॥२३८॥

हजार वर्षों तक परमा भक्ति पूर्वक मेरे द्वारा पूजित होकर श्रीभगवान् विष्णु ने मुझे दर्शन नहीं दिया॥२२८॥ हे सत्तम ! पञ्च ही दिन श्रीभगवान् की आराधना करके तुमने देवताओं को भी दुर्लभ श्रीभगवान् का दर्शन प्राप्त कर लिया ॥२२९॥ तुम धन्य एवं कृतार्थ हो तुम साक्षात् देव स्वरूप बोल रहे हो । क्योंकि तुम्हारे साथ श्रीभगवान् ने मित्रता की है ॥२३०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि तुम्हारा मुझ पर प्रेम है तो हे विप्र बतलाओ मुझको श्रीभगवान् का दुर्लभ दर्शन कैसे हो ?॥२३१॥ **व्यासजी ने कहा—** अपने गुरु के द्वारा इस तरह से कहने पर वे ब्राह्मण वन में अपने आश्रम में गये भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले वे आश्चर्यित होकर अपने आश्रम में गये ॥२३२॥ उसके पश्चात् उन्होंने दूसरे दिन जाकर कन्दुक क्रीडा की। उन्होंने दयालु जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से नम्रता पूर्वक कहा ॥२३३॥ **भद्रतनु ने कहा—** हे देवेन्द्र ! मेरे गुरु आपका दर्शन करना चाहते हैं । हे दयालो ! हे लक्ष्मीपते ! आपकी क्या आज्ञा हैं ?॥२३४॥ हे कमलनयन ! वे आपके एकान्तिक भक्त हैं अतएव हे देववर्य ! आप उनको दर्शन दें ॥२३५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे विप्रेन्द्र तुमने अनेक जन्मों में परमाभक्ति पूर्वक मेरी आराधना की है, इसीलिए मैंने तुम्हें दर्शन दिया है ॥२३६॥ वे ब्राह्मण कुछ ही दिनों तक मेरी आराधना करके हे ब्राह्मण देवताओं के लिए भी दुर्लभ मेरा दर्शन करना चाहते हैं ॥२३७॥ वे भी मेरे महान् भक्त हैं और मेरी पूजा में लगे

व्यास उवाच

इति तस्य वचःश्रुत्वा स विप्रः कमलापतिम् ।
इत्युवाच पुनर्भक्त्या केशवं क्लेशनाशनम् ॥२३९॥

भद्रतनुरुवाच

अनुग्रहोऽस्ति देवेश यदा मयि जगत्पते !। तदा मे सम्मुखे देहि दर्शनं भक्तवत्सल !॥२४०॥
अयाचत गुरुर्देव ! तव दर्शनदक्षिणाम्। अहो मे गुरुवे दत्त्वा दर्शनं पाहि मां प्रभो !॥२४१॥

श्रीभगवानुवाच

यदा नूनं त्वयोत्सृष्टा मत्सन्दर्शनदक्षिणा। तदा गुरुं समानीय दर्शनं मम कारय ॥२४२॥
इत्याज्ञप्तस्ततस्तेन गुरोराश्रममुत्तमम् । ययौ भद्रतनुः प्रीत्या पुनः स्वगुरुरागतः॥२४३॥
तस्मिन्विप्रे समायाते दान्ते दातृवरे हरिः। आत्मानं दर्शयामास सर्वलक्षणसंयुतम् ॥२४४॥
ततो हरिं समालोक्य स विप्रो हरिभक्तिकृत् ।
बद्धाञ्जलिस्तमस्तौषीद्धर्षवाष्पाविलोचनः ॥२४५॥

दान्त उवाच

दयालो ! कमलाकान्त ! शरणगतपालक ! ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥२४६॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।
अद्य मे सफलं सर्वं प्राप्तं त्वद्दर्शनं मया ॥२४७॥
पूर्वमालोचितं यद्यद्वचनं श्रीपते ! प्रभो। सिन्धुकोटिगभीरस्य प्रसृतं पुरतस्तव ॥२४८॥
स्तोत्रं तन्नास्ति संसारे वागीशस्य जगत्पतेः ।
येन स्तोत्रेण ते प्रीतिं जनयिष्यामि चैतसि ॥२४९॥

रहते हैं। अतएव हे द्विज ! वे भी कभी मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे ॥२३८॥ **व्यासजी ने कहा—** श्रीभगवान् की बातों को सुनकर वे विप्र क्लेशों को दूर करने वाले भगवान् केशव से भक्ति पूर्वक पुनः कहें ॥२३९॥ **भद्रतनु ने कहा—** हे जगत् पते ! हे देवेश यदि आपकी मुझपर कृपा है तो हे भक्तवत्सल ! आप उन्हें मेरे सामने ही उनको दर्शन दें ॥२४०॥ हे देव ! उन्होंने आपके दर्शन रूपी दक्षिणा को माँगा है। हे प्रभो! आप मेरे गुरु को दर्शन देकर मेरी रक्षा करें ॥२४१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** यदि तुम्हें मेरा दर्शन रूपी दक्षिणा देनी है तो गुरु को लेकर उन्हें मेरा दर्शन करा दो ॥२४२॥ इस तरह से आज्ञा प्राप्त करके भद्रतनु अपने गुरु के आश्रम में प्रेम पूर्वक गये और उनके साथ उनके गुरु आये ॥२४३॥ दाताओं में श्रेष्ठ दान्त के आने पर श्रीभगवान् सभी लक्षणों से सम्पन्न होकर उनको दर्शन दिए ॥२४४॥ उसके पश्चात् श्रीहरि का दर्शन करके भगवद्भक्त वे ब्राह्मण हाथ जोड़कर श्रीहरि की स्तुति किए उस समय उनकी आँखों में हर्ष जन्य आँसू भर गये थे ॥२४५॥ **दान्त ने कहा—** हे दयालो ! हे कमलापते ! शरणागतों की रक्षा करने वाले आप को मेरा बारम्बार नमस्कार है। आज मेरे जन्म तथा तप सफल हो गये। आज मेरा सबकुछ सफल हो गया है क्योंकि मैंने आपका दर्शन प्राप्त कर लिया है ॥२४६-२४७॥ हे श्रीपते ! हे प्रभो ! मैंने यह

रक्ष रक्ष प्रभो रक्ष मां प्रसीद जगत्पते ! । त्वद्दासदासदासानां दासत्वेनाऽपिमां वृणु ॥२५०॥

व्यास उवाच

ततः प्रहस्य देवेशो भक्तिग्राही दयामयः । करारविन्दं तन्मूर्ध्नि दत्त्वा प्राहेति जैमिने !॥२५१॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसि द्विजश्रेष्ठ ! प्राप्तं मद्दर्शनं त्वया ।
मत्प्रसादेन भद्रन्ते सर्वमेव भविष्यति ॥२५२॥

व्यास उवाच

तमाऽऽलिङ्ग्य ततो दान्तं प्रेम्णा भद्रतनुञ्च तम् ।
तत्रैवाऽन्तर्दधे विप्र ! सहसा परमेश्वरः ॥२५३॥

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे। क्रियायोगैर्हरिं दृष्ट्वा दान्तो धाम परं ययौ॥२५४॥
सोऽपि भद्रतनुर्विप्रो हरिभक्तिपरायणः । आयुषोऽन्ते ययौ मोक्षं देवानामपि दुर्लभम्॥२५५॥
एकाहमपि यो भक्त्या पूजयेत्परमेश्वरम्। बहुजन्मकृतं पापं नश्येत्प्रीतिर्हरौ भवेत्॥२५६॥

अद्याऽपि त्रिदशाः सर्वे ब्रह्माद्याअपि जैमिने ! ।
प्रभावं नहि जानन्ति हरिभक्तस्य भूतले ॥२५७॥

कर्मभूमिरियं विप्र ! स्वर्गादपि च दुर्लभा। यत्र विष्णुंसमभ्यर्च्य मर्त्याःस्युःसुरवन्दिताः ॥२५८॥
शक्राद्यास्त्रिदशाः सर्वे सुपुण्यक्षयभीरवः । अन्योन्यमपि जल्पन्तोऽनिशं च द्विजसत्तम !॥२५९॥
भूयएव गमिष्यामः कर्मभूमिं कदा वयम् । कदा तत्र करिष्यामः पूजां श्रीकमलापतेः ॥२६०॥

जो विचारा था वह करोड़ों समुद्र के समान गम्भीर आपके समक्ष प्रसृत हो गया ॥२४८॥ संसार में कोई भी ऐसा स्तोत्र नहीं है जिससे कि मैं आपके हृदय में प्रेम उत्पन्न कर सकूँ ॥२४९॥ हे प्रभो ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करें । आप मुझको अपने दासों के दासों के दास के समान स्वीकार कर लें॥२५०॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके पश्चात् जोर से हँसकर भक्ति को स्वीकार करने वाले दयामय हे जैमिने ! उनके शिर पर अपना हस्तकमल रख दिये और कहे ॥२५१॥ **श्रीभगवान् बोले**— हे द्विज श्रेष्ठ! आप मेरे भक्त हैं आपने मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया । मेरी कृपा से आपका सभी प्रकार का कल्याण होगा ॥२५२॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके बाद प्रेम पूर्वक उन ब्राह्मण का तथा भद्रतनु का आलिङ्गन करके श्रीभगवान् सहसा अन्तर्धान हो गये ॥२५३॥ उस पवित्र तथा दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र में क्रिया योग के द्वारा श्रीहरि का दर्शन करके दान्त परंधाम में चले गये ॥२५४॥ वे श्रीहरि की भक्ति करने वाले ब्राह्मण भद्रतनु भी अपनी आयु के अन्त में देवताओं को भी दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त कर लिए ॥२५५॥ जो एक दिन भी भक्ति पूर्वक श्रीपरमेश्वर की पूजा करता है उसके अनेक जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं और उसका प्रेम श्रीहरि में हो जाता है ॥२५६॥ हे जैमिने ! आज भी ब्रह्मा आदि सभी देवता पृथिवी पर होने वाली श्रीहरि की भक्ति का प्रभाव नहीं जानते हैं ॥२५७॥ हे विप्र ! यह कर्मभूमि स्वर्ग से भी दुर्लभ है। यहाँ पर भगवान् विष्णु की पूजा करके मनुष्य देवताओं का भी वन्द्य हो जाते हैं ॥२५८॥ इन्द्र आदि सभी देवता जो अपने पुण्य के क्षय होने के डर से डरे रहते हैं हे द्विजश्रेष्ठ ! वे परस्पर मे सदा बातें करते

अतिधन्या इमे लोका अस्मत्तोऽपि महत्तराः ।
दुर्लभे भारते वर्षे पूजयन्ति हरिं प्रभुम् ॥२६१॥
अहो भारतवर्षस्य कः शक्तो गुणभाषणे । यत्राऽऽराध्य हरिं पूर्वं वयं देवत्वमागताः ॥२६२॥
इत्थं देवगणाः सर्वे वासवाद्या द्विजोत्तम ! ।
नित्यं भारतभूभागं प्रशंसन्ति शुभप्रदम् ॥२६३॥
तत्र जन्म समासाद्य येन नाराधितो हरिः। तत्तुल्यः कोऽपि संसारे नच दृष्टःश्रुतो नच॥२६४॥
सत्यं सत्यं पुनरपि गद्यते सत्यमेव तत्। विश्वात्मानं सकृदपि मानवा येऽर्चयन्ति च ॥
मुक्ताः पापैः स्वरचितैयान्ति कैवल्यमाशु मे ॥२६५॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रे भद्रतनुवरप्रदानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच

तीर्थश्रेष्ठमिति प्रोक्तं यत्त्वया पुरुषोत्तमम् । तन्माहात्म्यं गुरो ! ब्रूहि यदि ते मय्यनुग्रहः ॥१॥

हुए कहते हैं कि हमलोग कब कर्म भूमि में जायेंगे ? और वहाँ पर रहकर हमलोग कब श्रीहरि की पूजा करेंगे ?॥२५९-२६०॥ ये कर्म भूमि में रहने वाले लोग हमलोगों से भी महान् और धन्य हैं, क्योंकि ये दुर्लभ कर्मभूमि में श्रीहरि की पूजा करते हैं ॥२६१॥ अरे भारत वर्ष के गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ है ? यहीं पर पूर्वकाल में श्रीहरि की आराधना करके हमलोग देवत्व को प्राप्त किये थे ॥२६२॥ हे द्विजोत्तम ! इस तरह इन्द्र आदि देवता कल्याण प्रद पृथिवी के भारत वर्ष की सदा प्रशंसा करते रहते हैं ॥२६३॥ उस भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके जो श्रीहरि की आराधना नहीं करता है उसके समान कोई भी पुरुष न तो दिखता है और न सुनाई पड़ता है ॥२६४॥ मैं बार-बार यह परम सत्य कहता हूँ कि जो मनुष्य एक बार भी श्रीहरि की अर्चना कर लेते हैं। वे सभी पापों से मुक्त होकर अपने द्वारा रचित कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं ॥२६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार नामक खण्ड के पुरुषोत्तम क्षेत्र में भद्रतनु को वर प्रदान का वर्णन नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

पुरुषोत्तम क्षेत्र के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में गुडिवा यात्रा के फल का वर्णन

जैमिनि महर्षि ने कहा— आपने जो पुरुषोत्तम क्षेत्र बतलाया है हे गुरो ! यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो मुझे आप उसके माहात्म्य को बतलायें ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** हे द्विज ! आप पुरुषोत्तम क्षेत्र

व्यास उवाच

पुरुषोत्तमस्य माहात्म्यं समासेन शृणु द्विज ! ।
सम्यग्वक्तुं जगत्यस्मिन्कः शक्तो विष्णुना बिना ॥२॥
लवणाम्भोनिधेस्तीरे पुरुषोत्तमसञ्ज्ञितम् । पुरं तद्ब्राह्मणश्रेष्ठ ! स्वर्गादपि च दुर्लभम् ॥३॥
स्वयमस्ति पुरे तस्मिन्यतः श्रीपुरुषोत्तमः । पुरुषोत्तममित्युक्तं तस्मात्तन्नामकोविदैः ॥४॥
क्षेत्रं तद्दुर्लभं विप्र ! समन्ताद्दशयोजनम् । तत्रस्थदेहिनो देवैर्दृश्यन्ते च चतुर्भुजाः ॥५॥
प्रविशन्तस्तु तत्क्षेत्रं सर्वे स्युर्विष्णुमूर्तयः । तस्माद्विचारणा तत्र न कर्त्तव्या विचक्षणैः ॥६॥
चाण्डालेनाऽपि संस्पृष्टं ग्राह्यं तत्राऽन्नमग्रजैः ।
तत्राऽन्नपाचिका लक्ष्मीः स्वयं भोक्ता जनार्दनः ॥७॥
अस्मात्तत्रौदनं विप्र ! दैवतैरपि दुर्लभम् । हरिभुक्तावशिष्टं यत्पवित्रं भुवि दुर्लभम् ॥८॥
अन्नं ये भुञ्जते लोकास्तेषां मुक्तिर्न दुर्लभा । ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे तदन्नमतिदुर्लभम् ॥९॥
भुञ्जते नित्यमागत्य मानुषाणां च का कथा ।
न यस्य रमते चित्तं तस्मिन्नन्ने सुदुर्लभे ॥१०॥
तमेव विष्णुद्वेष्टारं प्राहुः सर्वमहर्षयः । पवित्रं भुवि सर्वत्र यथा गङ्गाजलं द्विज ! ॥११॥
तथा पवित्रं सर्वत्र तदन्नं पापनाशनम् । तदन्नं कोमलं दिव्यं यद्यपि द्विजसत्तम ! ॥१२॥
क्रकचस्योदरप्रायं तथाप्यघविदारणे । पूर्वार्जितानि पापानि क्षयं यास्यन्ति यस्य वै ॥१३॥
भक्तिः प्रवर्तते तस्य तस्मिन्नन्नेसुदुर्लभे । बहुजन्मार्जितं पुण्यं यस्य यास्यति संक्षयम् ॥१४॥

का माहात्म्य संक्षेप में सुनें उसका पूर्ण रूप से वर्णन करने में भगवान् विष्णु को छोड़कर कौन समर्थ हैं॥२॥ क्षार सागर के तट पर पुरुषोत्तम नामक नगर हैं। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वह स्वर्ग से भी अधिक दुर्लभ हैं क्योंकि उस नगर में स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् विद्यमान हैं। इसीलिए विज्ञ पुरुषों ने उस क्षेत्र को पुरुषोत्तम कहा है ॥३-४॥ हे विप्र ! वह क्षेत्र चारो ओर से दश योजन में फैला है देवता गण वहाँ के लोगों को चतुर्भुज रूप से देखते हैं ॥५॥ जो उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं वे सबके सब विष्णु स्वरूप हो जाते हैं। अतएव वहाँ के विषय में विचक्षण पुरुषों को विचार नहीं करना चाहिए ॥६॥ वहाँ पर चाण्डाल के द्वारा भी स्पृष्ट अन्न को ब्राह्मणों को खा लेना चाहिए। वहाँ पर अन्न को स्वयं लक्ष्मीजी पकाती हैं और भोजन स्वयं भगवान् जनार्दन करते हैं ॥७॥ अतएव हे विप्र ! वहाँ के भात देवताओं को भी दुर्लभ होता है। वह श्रीहरि के भोजन से बचा हुआ पृथिवी पर दुर्लभ है ॥८॥ जो लोग वहाँ के अन्न को खाते हैं उनकी मुक्ति दुर्लभ नहीं हैं। ब्रह्मा आदि सभी देवता उस अत्यन्त दुर्लभ अन्न को ॥९॥ वहाँ पर आकर प्रतिदिन खाते हैं तो मनुष्यों की कौन सी बात है। जिसका मन उस अत्यन्त दुर्लभ अन्न में नहीं लगता है ॥१०॥ सभी महर्षियों ने उसको ही भगवान् विष्णु से द्वेष करने वाला कहा है। हे द्विज ! जिस तरह गङ्गाजल सर्वत्र पवित्र होता है ॥११॥ उसी तरह वह अन्न भी सर्वत्र पवित्र और पाप विनाशक होता है। हे द्विजश्रेष्ठ ! यद्यपि वह अन्न दिव्य तथा कोमल होता है ॥१२॥ फिर भी वह पाप के पेट को फाड़ने में आरी के समान है। जिसके पूर्व जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१३॥ उसकी उस दुर्लभ अन्न में

तस्मिन्नन्ने द्विजश्रेष्ठ ! तस्यभक्तिर्न जायते । इन्द्रद्युम्नस्यसरसिमार्कण्डेयह्रदे तथा ॥१५॥
रोहिण्यां च समुद्रे च श्वेतगङ्गाजलेषु च । स्नानं ये कुर्वते मर्त्या भक्तिभावसमन्विताः ॥१६॥
तेषां न विद्यते जन्मपुनरस्मिन्महीतले। लवणाम्भोनिधेस्तोयैः पितरस्तर्पिताद्विज ! ॥१७॥
सर्वदुःखविनिर्मुक्ताव्रजन्तिहरिमन्दिरम् । तीर्थराजः समुद्रोऽसौ कीर्तितस्तत्त्वदर्शिभि ॥१८॥
तस्मात्तत्र कृतं कर्म सर्वमेवाऽक्षयं भवेत्। पित्रर्चनं तथा दानं भगवच्चरणार्चनम् ॥१९॥
जपयज्ञं तथाऽन्यच्च तस्मिन्क्षेत्रे मनोरमे। यत्कर्म कुरुते मर्त्यो विष्णुप्रीणनहेतवे॥२०॥
सर्वमेवाऽक्षयं तच्च भवेन्नास्त्यत्र संशयः। बलभद्रं सुभद्रां च कृष्णं च कमलेक्षणम् ॥२१॥
ये मानवाः प्रपश्यन्ति तेषां किंचिन्नदुर्लभम् ।
अदृष्ट्वा श्रीजगन्नाथं सुभद्रां च बलं तथा ॥२२॥
मोक्षं न लभतेमर्त्यः कुर्वन्पुण्यशतान्यपि । तत्र वेत्रप्रहारेण शरीरं यस्य लोहितम् ॥२३॥
तंवन्दन्ते द्विजश्रेष्ठ देवाःशक्रादयोऽखिला । स्थित्वाऽन्तरिक्षे शक्राद्याः सर्वदेवगणा द्विज !॥२४॥
विमानचारिणोऽन्योन्यं प्रवदन्तीति हर्षिताः । कदा मानुष्यमस्मभ्यं दास्यते कमलापतिः ॥२५॥
मनुष्यवच्च गच्छामस्तदा द्रष्टुं हरिं प्रभुम्। कदा वेत्रप्रहारेण क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥२६॥
भविष्यन्त्यस्मदीयानि लोहितानि वपूंषिच। वासवाद्या सुराः सर्वे तस्मिन्क्षेत्रे वरप्रदे ॥२७॥
सदावेत्रप्रहारांश्च वाञ्छन्ति द्विजसत्तम !। तत्राऽक्षयवटं ये तु भक्त्या पश्यन्ति मानवाः ॥२८॥

भक्ति हो जाती हैं । जिसके अनेक जन्मों में अर्जित पुण्य विनष्ट हो जाते हैं ॥१४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसकी उस अत्यन्त दुर्लभ अन्न में भक्ति नहीं होती है । इन्द्रद्युम्न के सरोवर में तथा मार्कण्डेय ह्रद में ॥१५॥ रोहिणी के समुद्र में तथा श्वेत गङ्गा में जल में जो मनुष्य भक्ति भाव पूर्वक स्नान करते हैं ॥१६॥ उन लोगों का पुनः इस भूमि पर जन्म नहीं होता है । हे द्विज ! क्षार समुद्र के जल से तपते पितृगण ॥१७॥ सभी दुःखों से छूटकर श्रीहरि के लोक में जाते हैं । तत्त्वज्ञ पुरुषों ने इस समुद्र को तीर्थ राज कहा है॥१८॥ अतएव वहाँ पर किए गये सभी कर्म अक्षय हो जाते हैं । पितरों की पूजा दान तथा श्रीहरि के चरणों की पूजा ॥१९॥ जप तथा दूसरे कर्म जो इस मनोहर क्षेत्र में भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए किए जाते हैं ॥२०॥ वे सबके सब अक्षय हो जाते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । बलभद्रजी, सुभद्राजी तथा कमलनयन भगवान् जगन्नाथ का ॥२१॥ जो मनुष्य दर्शन कर लेते हैं उन मनुष्यों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । जगन्नाथ भगवान् सुभद्रा लक्ष्मी और बलरामजी का दर्शन किए बिना ॥२२॥ सैकड़ों पुण्यों को करने के भी मनुष्य मोक्ष को नहीं प्राप्त कर पाता है । वहाँ के वेत्र के प्रहार से जिसका शरीर लाल हो जाता है ॥२३॥ हे द्विज ! उस मनुष्य की इन्द्र आदि देवता भी वन्दना करते हैं । हे द्विज ! इन्द्र आदि देवता अन्तरिक्ष में स्थित होकर ॥२४॥ विमान में चलने वाले वे सब हर्षित होकर आपस में बाते करते हैं कि न जाने कब श्रीभगवान् हमलोगों को मनुष्यत्व प्रदान करेंगे ॥२५॥ उस समय मैं मनुष्य के समान श्रीहरि का दर्शन करने के लिए जाऊँगा । उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में बेंत के प्रहार से ॥२६॥ हमारे भी शरीर लाल हो जायेगे इन्द्र आदि सभी देवता उस वरप्रद क्षेत्र में हे द्विज सत्तमवेत के प्रहार को प्राप्त करना चाहते हैं । वहाँ पर विद्यमान जो लोग अक्षय वट का दर्शन करते

कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुक्ता यान्ति परां गतिम् ।
सुभद्रां बलभद्रं च जगन्नाथमनामयम् ॥२९॥
श्वेतं माधवदेवेशं मार्कण्डेयह्रदं तथा। ज्यामेश्वरं हनूमन्तन्त्राक्षय्यं वटं द्विज ! ॥३०॥
पश्यन्ति भक्त्या ये मर्त्यास्तेषां मुक्तिर्हि शाश्वती ।
दोलयमानं गोविन्दं फाल्गुने मासि तत्र ये ॥३१॥
पश्यन्ति मानवा भक्त्या तेषाम्पुण्यं निशामय ।
विमुक्ताः सकलैः पापैरन्ते यान्ति हरेर्गृहम् ॥३२॥
ज्ञानंसम्प्राप्य तत्रैव मोक्षं यान्ति सुदुर्लभम्। चैत्रके मासिवारुण्यां यो जगन्नाथमीक्षते ॥३३॥
स मृतः प्रविशेद्देहं जगन्नाथस्य जैमिने !। वैशाखे चैव शुक्लायामेकादश्यां जगत्पतिम् ॥३४॥
तृतीयायां च यःपश्येन्मुक्तएवस मानवः। प्रविशेद्यस्तुमनुजो महास्नाानं जगत्पतेः॥३५॥
तस्य सिध्यन्ति विप्रर्षे ! सर्वएवमनोरथाः ।
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे स्थित्वाऽऽकाशे जगत्पतेः ॥३६॥
महास्नानं प्रपश्यन्ति भक्तिभावसमन्विताः। महाज्येष्ठ्यां चविप्रर्षे जगन्नाथमनामयम्॥३७॥
आलोक्य लभते मर्त्यो विष्णोस्तत्परमंपदम् ।
गुण्डिकामण्डपं यान्तमाषाढ़े कमलापतिम् ॥३८॥
बलभद्रं च यः पश्येत्स मुक्तो नाऽत्रसंशयः ।
यः पश्यति जगन्नाथं रथस्थं कमलेक्षणम् ॥३९॥

हैं॥२७-२८॥ वे करोड़ों जन्मों में किए गये पापों से मुक्त होकर परमागति को प्राप्त करते हैं । सुभद्रा, बलभद्र तथा श्रीजगन्नाथ भगवान् का दर्शन और श्वेत माधव भगवान् का, मार्कण्डेय ह्रद का, ज्यामेश्वर हनुमान का तथा अक्षय वट का जो लोग भक्ति पूर्वक दर्शन करते हैं उनको शाश्वत मुक्ति प्राप्त हो जाती है । झूले पर हिलाये जाते हुए गोविन्द को जो लोग वहाँ फाल्गुन के महीने में दर्शन भक्ति पूर्वक करते हैं ॥२९-३१॥ उन लोगों को प्राप्त होने वाले पुण्य को तुम सुनो । वे लोग सभी पापों से मुक्त होकर अन्त में श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥३२॥ वे वहीं पर ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं । चैत्र मास के वारुणी में जो लोग जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करते हैं ॥३३॥ हे जैमिने ! वे लोग मृत्यु के पश्चात् भगवान् जगन्नाथ के शरीर में ही प्रवेश कर जाते हैं । वैशाख शुक्ल एकादशी के दिन जगत् के स्वामी का ॥३४॥ तथा तृतीया तिथि को दर्शन करते हैं वे मनुष्य मुक्त हो जाता हैं । जो मनुष्य श्रीभगवान् के महास्नान का दर्शन करते हैं ॥३५॥ हे विप्रर्षे ! उन लोगों के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं । ब्रह्मा आदि सभी देवता आकाश में स्थित होकर श्रीभगवान् का ॥३६॥ भक्ति भाव से युक्त होकर श्रीभगवान् के महास्नान का दर्शन करते हैं । हे विप्रर्षे ! महा ज्येष्ठा में अखिल हेय प्रत्यनीक जगन्नाथ भगवान् का ॥३७॥ दर्शन करने वाले मनुष्य भगवान् विष्णु के परम्पद को प्राप्त करते हैं आषाढ के महीने में गुण्डिका मण्डप में जाते हुए लक्ष्मीपति ॥३८॥ और बलभद्रजी का जो मनुष्य दर्शन करता है वह निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य रथ पर विद्यमान श्रीभगवान् का दर्शन करता है ॥३९॥ उस

तस्य नास्तिपुनर्जन्म संसारे सर्वदुःखदे । रथारूढां सुभद्रांच भक्त्यापश्यन्ति मानवाः ॥४०॥
छिनत्ति भगवांस्तस्य दुःखदं भवबन्धनम् । अपुत्रा मृतपुत्रा च या सुभद्रां प्रपश्यति॥४१॥
वह्वपत्या जीववत्सा सा नारी भवति द्विज ! ।
दुर्भगा वाऽथ वन्ध्या वा सुभद्रा याप्रपश्यति ॥४२॥
सस्वामिसुभगा नारी बह्वपत्याभवेत्खलु । गुण्डिकामण्डपस्थं च कृष्णं पश्यति यःपुमान् ॥४३॥
बलभद्रं सुभद्रां च स याति परमंपदम् । रोगी दुःखी च यःपश्येद्गुण्डिका मण्डपे हरिम्॥४४॥
रोगाच्छोकाच्च सहसा जैमिने ! सप्रमुच्यते ।
यस्त्वपुत्रो जगन्नाथं गुण्डिकामण्डपे स्थितम् ॥४५॥
पश्येत्सवं द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रं प्राप्नोति वैष्णवम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥४६॥
दारार्थी लभते दारान्मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ।
भ्रष्टराज्योनृपो यस्तु हरिं पश्यति भक्तितः ॥४७॥
गुण्डिकामण्डपेविप्र ! निजराज्यं लभेत सः ।
शत्रुर्भिर्विजितो यस्तु गुण्डिकामण्डपेहरिम् ॥४८॥
भक्त्या पश्यति विप्रर्षे तस्य नश्यन्ति शत्रवः ।
गुण्डिकामण्डपे पश्येद्यो राजपीडितोभृशम् ॥४९॥
ससद्य एव राजानं स्वकीयं वशमानयेत् । सर्वासामेव यात्राणां गुण्डिकाप्रवरा मता॥५०॥

मनुष्य का इस सभी प्रकार के दुःखों को देने वाले संसार में पुनः जन्म नहीं होता है । रथ पर बैठी हुयी सुभद्रा का जो लोग दर्शन करते हैं ॥४०॥ उसके दुःखद संसार के बन्धन को श्रीभगवान् काट देते हैं । पुत्रहीन अथवा मृतपुत्र जो स्त्री सुभद्राजी का दर्शन करती है ॥४१॥ हे द्विज ! वह नारी अनेक पुत्रों वाली तथा जीवित पुत्रों वाली हो जाती है । जो दुर्भगा अथवा वन्ध्या नारी सुभद्राजी का दर्शन करती है ॥४२॥ वह अपने पति के साथ सुभगा अथवा अनेक पुत्रों वाली हो जाती है । गुण्डिका मण्डप में जो लोग भगवान् कृष्ण का दर्शन करते हैं ॥४३॥ तथा बलभद्र तथा सुभद्रजी का दर्शन करते हैं वह परम पद को प्राप्त करते हैं । जो रोगी दुःखी मनुष्य गुण्डिका मण्डप में श्रीभगवान् का दर्शन करता है ॥४४॥ हे जैमिने! वह रोग तथा शोक से मुक्त हो जाता है । जो पुत्रहीन मनुष्य गुण्डिका मण्डप में स्थित श्रीभगवान् का ॥४५॥ दर्शन करता है द्विजश्रेष्ठ वह वैष्णव पुत्र को प्राप्त करता है । विद्यार्थी विद्या को और धनार्थी धन को प्राप्त करता है ॥४६॥ पत्नी चाहने वाला पत्नी को प्राप्त कर लेता है तथा मोक्ष चाहने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है । जिस राजा का राज्यपथ चला गया है वह दिव्य भक्ति पूर्वक श्रीहरि का दर्शन गुण्डिका मण्डप में करता है ॥४७॥ हे विप्र ! वह अपने राज्य को प्राप्त कर लेता है । जो शत्रुओं के द्वारा परास्त हुआ मनुष्य गुण्डिका मण्डप में श्रीहरि का दर्शन भक्ति पूर्वक करता है ॥४८॥ उसके शत्रुओं का नाश हो जाता है जो राजा से पीड़ित मनुष्य गुण्डिका मण्डप में ॥४९॥ श्रीहरि का दर्शन करता है उसके वंश में वह राजा शीघ्र ही हो जाता है । यात्राओं में गुण्डिका यात्रा श्रेष्ठ मानी गयी है ॥५०॥ अतएव मनुष्यों को

तस्मात्सा मानवैः कार्यात्यक्त्वा कार्यशतान्यपि ।
शयने च तथोत्थाने तस्मिन्क्षेत्रे मनोरमे ।।५१।।
हरिं पश्यति यो मर्त्यः सदेवैरपि पूज्यते। पुरुषोत्तममाहात्म्यं वक्तुं शक्नोति कः क्षितौ ।।५२।।
यस्य प्रवेशमात्रेणनरो नारायणो भवेत् । बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपादुच्यते मया ।।५३।।
सर्वेषामेव तीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ।।५४।।
संसारसिन्धुमतिनिम्नमिमं तितीर्षुः क्लेशप्रदं विषमपापगणाश्रयं यः ।
क्षेत्रे समस्तसुखदे पुरुषोत्तमाख्ये पश्येदमुंवरसुरं पुरुषोत्तमं च ।।५५।।
इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
पुरुषोत्तममाहात्म्यं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

नारायणे प्रपन्ना ये नरा भक्तिसमन्विताः। कदाचिदशुभं तेषां विद्यते न द्विजोत्तम !।।१।।
पुनरेव प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं कमलापतेः। यच्छ्रुत्वामानवाः सर्वे लभन्ते परमं पदम् ।।२।।
वासुदेवस्य माहात्म्यं श्रुत्वा तृप्यन्ति वैष्णवाः ।
पाखण्डा नहि तृप्यन्ति नरके क्लेशभागिनः ।।३।।

चाहिए कि वे सैकड़ों कार्यों को छोड़कर उन मनोहर क्षेत्र में सोने तथा जगने के समय ।।५१।। जो श्रीहरि का दर्शन करता है इसकी वन्दना देवता भी करते हैं । पृथिवी पर कौन ऐसा है ? जो पुरुषोत्तम का वर्णन कर सके ।।५२।। उस क्षेत्र में प्रवेश करने मात्र से मनुष्य नारायण के समान हो जाता है । इस विषय में बहुत अधिक कहने से कौन सा लाभ है मैं संक्षेप में कहता हूँ ।।५३।। सभी तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ सबसे श्रेष्ठ हैं ।।५४।। इस अत्यन्त गहरे पापों के आश्रय तथा अत्यन्त दुख देने वाले संसार सागर को पार करने की इच्छा वाले को चाहिए कि वह हर प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाले इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में सभी देवताओं से श्रेष्ठ भगवान् जगन्नाथ का वह दर्शन करे ।।५५।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के पुरुषोत्तम माहात्म्य वर्णन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

विष्णु माहात्म्य पूर्वक उर्वीशु ब्राह्मण की कथा

व्यासजी ने कहा— जो भक्ति सम्पन्न मनुष्य भगवान् नारायण के भक्त हैं हे द्विजोत्तम ! उनका कभी भी अशुभ नहीं होता है ।।१।। मैं पुनः भगवान् लक्ष्मीपति के माहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ । उसको सुनकर मनुष्य परम्पद को प्राप्त कर लेते हैं ।।२।। भगवान् नारायण के माहात्म्य को सुनकर वैष्णवों को

पाखण्डानां समीपे तु विष्णुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
नवक्तव्यं द्विजश्रेष्ठ ! वक्तव्यं वैष्णवाग्रतः ॥४॥
पूर्वं त्रेतायुगे विप्रउर्वीशुर्नाम जैमिने ! । आसीत्पापरतो नित्यं धर्मनिन्दापरायणः ॥५॥
ब्रह्मस्वहारी विप्रेन्द्र ! परस्त्रीगमनोद्यतः । गोमांसाशी सुरापी च वेश्याविभ्रमलोलुपः ॥६॥
शराणागतहन्ता च परनिन्दाकरः सदा । विश्वासघाती मित्रघ्नो ज्ञातिपीडाकरस्तथा ॥७॥
असत्यभाषी क्रूरश्च पाखण्ड जनसङ्गभाक् ।
वृत्तिच्छेदीद्विजातीनांन्यासापहारकस्तथा ॥८॥
तादृशं तं समालोक्य दुष्टं पापपरायणम् । आजग्मुर्ज्ञातयः सर्वे कुद्धास्तस्य निजं गृहम् ॥९॥

ज्ञातय ऊचुः

प्रतिष्ठोपार्जिता पूर्वैरस्माकं विमले कुले । सा प्रतिष्ठा त्वया मूढ विनाशम्प्रतिनीयते ॥१०॥
धर्ममार्गं परित्यज्य कुरुषे पातकं सदा । मद्वंशकीर्तिहन्ता त्वं जातोऽसि ज्ञातिदुःखदः ॥११॥
अतिविस्मयदा सृष्टिर्विधातुर्मन्यते त्वियम् । यस्मिन्सिन्धौ शशी जातस्तत्र क्ष्वेडोद्भवोऽपि च॥१२॥
अहोशक्तिःकुपुत्राणां संख्यात्तुं न च शक्यते ।
अनेकैःपुरुषैःकीर्तिं संचितां हन्ति तत्क्षणात् ॥१३॥
जातेपुत्रोत्तमे वंशः श्रेष्ठःस्यादधमोऽपि च । पुत्राऽधमे तुश्रेष्ठोऽपि वंशो गच्छति हीनताम् ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा ज्ञातयस्तेच तं सर्वे पापिनां वरम् ।
अपकीर्तिभयात्क्रुद्धास्तत्यजुःसहसाद्विज ॥१५॥

तृप्ति होती है । पाखण्डी लोग उससे तृप्त नहीं होते हैं वे नरक में जाकर कष्ट प्राप्त करते हैं ॥३॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! पाखण्डियों के समीप भगवान् विष्णु के माहात्म्य को नहीं कहना चाहिए ? उसे वैष्णवों के समीप कहना चाहिए ॥४॥ हे जैमिने ! पहले के त्रेतायुग में उर्वीशु नामक ब्राह्मण थे । वे सदा पाप करते रहते थे तथा धर्म की निन्दा करते थे ॥५॥ हे विप्रेन्द्र ! वह दूसरे की सम्पत्ति का हरण करने वाला ब्राह्मण था परस्त्रीगमन के लिए तैयार रहता था । गोमांस खाता था मदिरा पीता था और वेश्या के कटाक्षपातों का लोलुप था ॥६॥ वह शरणागतों को मारने वाला सदा दूसरों की निन्दा करने वाला, विश्वासघाती, मित्रों को मारने वाला, तथा अपने ज्ञातियों को पीड़ा देने वाला था ॥७॥ वह मिथ्यामायी, क्रूर, पाखण्डियों के साथ रहने वाला, दूसरों की वृत्ति को काटने वाला तथा ब्राह्मणों के न्यास का अपहरण करने वाला था ॥८॥ उसको इस प्रकार का पापी देखकर उसके दायाद उसके घर क्रुद्ध होकर आये ॥९॥ **ज्ञातियों ने कहा**— पूर्वजों ने हमारे निर्दोष वंश में प्रतिष्ठा प्राप्त किया था, अरे मूर्ख उस प्रतिष्ठा को तुम विनष्ट कर रहे हो॥१०॥ तुम धर्म मार्ग को छोड़कर सदा पाप किया करते हो तुम हमारे वंश की कीर्ति को विनष्ट करने वाले तथा अपने ज्ञातियों को कष्ट देने वाले हो ॥११॥ तुम्हारी ब्रह्माजी की सृष्टि में अत्यन्त विस्मय प्रदान करने वाली सृष्टि है । जिस समुद्र में चन्द्रमा उत्पन्न हुए उसी से विष भी उत्पन्न हुआ ॥१२॥ कुपुत्रों की शक्ति का वर्णन करना कठिन है, वे अनेक पूर्वजों से अर्जित कीर्ति को क्षण भर में विनष्ट कर देते हैं । उत्तम पुत्र के होने पर अधम वंश भी श्रेष्ठ हो जाता है और अधम पुत्र के होने पर उत्तम वंश भी हीन

ज्ञातिभिःस परित्यक्तो जनैःसर्वैश्च धिक्कृतः ।
प्रपेदे दस्युतां दुःखी विनष्टाखिलवैभवः ॥१६॥
तं दस्युकर्म कुर्वन्तं निर्दयं परहिंसकम्। धृत्वा जानपदाः सर्वे भूपालाय न्यवेदयन् ॥१७॥
तेनभूमिभुजा तस्य पितृस्नेहाद्द्विजोत्तम !। न हतोऽसौ दुराचारो निजदेशाद्बहिष्कृतः ॥१८॥
ततोऽसौ वनमाश्रित्य दुस्युभिः सह निर्दयः ।
पान्थस्वहरणार्थाय तस्थौ बहुभिरुद्धतैः ॥१९॥
कदाचित्तटिनीतीरं दस्युभिः सह जैमिने !। वनपर्यटने श्रान्तो जगाम स्नानहेतवे ॥२०॥
तस्यां तटिन्यां भगवत्परिचर्यापरायणान्। असौ ददर्श दुष्टात्मा ब्राह्मणान्कृतिनो बहून् ॥२१॥
अथ ते ब्राह्मणाः सर्वे समाराध्य जनार्दनम् ।
अन्योन्यं कथयामासुर्विहितान्यतिकौतुकात् (रिति जातातिकौतुकम्) ॥२२॥
अद्यचम्पकपुष्पाणि मया त्यक्तानि तानि वै। कश्चिद्वदति ताम्बूलं मया दत्तं मुरारये॥२३॥
न खादितव्यं ताम्बूलं कदाचिदपि जन्मनि। मयाऽद्य हरये दत्तं कदलीफलमुत्तमम्॥२४॥
जन्मजन्मनि च मयाभक्ष्यं न कदलीफलम्। कोऽपि वक्ति मया दत्तं ध्ये दाडिमीफलम् ॥२५॥
जन्मनीह मया तत्तु न भोक्तव्यं कदापि च। कोऽपि वक्ति मया दत्तं रसालफलमुत्तमम्॥२६॥
मयाऽपि च न भोक्तव्यं फलं तस्य च जीवता ।
अन्योन्यमेतद्वदतां तेषां श्रुत्वा वचांसि च ॥२७॥
उर्वीशुश्चिन्तयामास किं प्रदास्यामि विष्णवे ।
संसारे यानि वस्तूनि भोक्ष्याणि सन्ति तान्यहम् ॥२८॥

हो जाता है ॥१३-१४॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से कहकर उसके सभी दायाद उस श्रेष्ठ पापी को अपने अपयश के भय से सहसा त्याग दिये ॥१५॥ सभी ज्ञातियों के द्वारा परित्यक्त तथा सभी लोगों के द्वारा धिक्कारा गया वह सम्पूर्ण सम्पत्ति के नष्ट हो जाने के कारण लुटेरा हो गया ॥१६॥ दस्युओं का कर्म करने वाले उस दूसरों को मारने वाले तथा निर्दय को पकड़कर वहाँ लोगों ने राजा को समर्पित कर दिया॥१७॥ उसके पिता से स्नेह होने के कारण उस राजा ने उसको मारा नहीं अपने राज्य से बाहर निकाल दिया ॥१८॥ उसके पश्चात् वह निर्दय वन में लुटेरों के साथ आकर पथिकों को लूटने के लिए अनेक बदमाशों के साथ रहने लगा ॥१९॥ हे जैमिने ! एक बार वह वन में घूमते हुए थककर स्नान करने के लिए नदी के किनारे गया ॥२०॥ उस दुष्ट ने उस नदी में अनेक भगवान् की सेवा करने वाले ब्राह्मणों के देखा ॥२१॥ उसके पश्चात् वे सभी ब्राह्मण भगवान् जनार्दन की पूजा करके परस्पर में किए कार्यों को अत्यन्त कौतुक के साथ कह रहे थे ॥२२॥ कोई कहा आज मैंने चम्पा के फूलों का परित्याग कर दिया। किसी ने कहा मैंने आज श्रीभगवान् को ताम्बूल समर्पित किया है ॥२३॥ अतएव मैं जीवन भर ताम्बूल नहीं खऊँगा । किसी ने कहा मैंने आज केले के फल को त्याग दिया अतएव मुझे जन्म जन्मान्तर तक केले के फल को नहीं खाना है ॥२४-२५॥ किसी ने कहा कौन कहता है कि आम का फल उत्तम होता है उसे मैं इस जन्म में कभी भी नहीं खाऊँगा ॥२६॥ किसी ने कहा मैं भी जीवन भर उसे नहीं खाऊँगा।

नहि शक्नामि सन्त्यक्तुं किं दास्यामि मुरारये ।
नित्यंवनान्तरस्थोऽहं चौरोराजभयाकुलः ॥
शकटारोहणे नास्ति ह्यधिकारः कदापि मे ॥२९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दस्युना तेन भूयोभूयो द्विजोत्तम ! ।
शकटं हरये दत्तं चतुर्वर्गप्रदायिने ॥३०॥
अथ ते ब्राह्मणाःसर्वे जग्मुर्विप्र ! यथागताः ।
सोऽपिदस्युर्दस्युभिश्च जगाम निजमाश्रमम् ॥३१॥
एकदा गुडकण्डोलं तेनैव खलुवर्त्मना। गृहीत्वा पथिकः कश्चिदेकाकी चसमागतः ॥३२॥
ततोऽसौ सहसा दस्युर्निर्भयः परहिंसकः। जहार गुडकण्डोलमध्वनीनस्य तस्य च॥३३॥
अथते दस्यवश्चक्रुर्गुडकण्डोलभञ्जनम्। उर्वीशुश्चापतद्भागे शकटं गुडनिर्मितम् ॥३४॥
उर्वीशुः शकटं गौडं समासाद्य द्विजोत्तम ! ।
मनसा चिन्तयामास वचःस्मरणपूर्वकम् ॥३५॥
अनो मया पुरा दत्तं स्वयमेव मुरारये। तस्मादनो न मे ग्राह्यं कदाचिदिह जन्मनि ॥३६॥
विचिन्त्येति हृदा दातुं तदनो गुडपूरितम्। दत्तं विप्राय कस्मैचिन्माधवप्रीतिहेतवे॥३७॥
तां भक्तिं तस्य विज्ञाय महापातकिनो द्विज ! ।
जहार सकलं पापं सद्यः प्रीतो जनार्दनः ॥३८॥
तस्मिन्नेव दिने विप्र ! प्रविश्य च महावनम् ।
हतः पौरजनैः सर्वैरथ क्रुद्धैः स उर्वीशुः ॥३९॥

परस्पर में इस तरह से कहने वाले उन सबों की बातों को सुनकर ॥२७॥ उर्वीशु ने सोचा मैं भगवान् विष्णु को क्या प्रदान करूँगा ? संसार में जितने भी भक्ष्य वस्तु हैं उन सबों को तो मैं त्याग नहीं सकता हूँ। मैं भगवान् को क्या प्रदान करूँगा। राजा के भय से व्याकुल मैं सदा वन में रहकर चोरी करता हूँ। मेरा गाड़ी पर चढ़ने का कोई भी अधिकार नहीं है ॥२८-२९॥ इस तरह से कहकर उस लुटेरे ने हे द्विजोत्तम ! बार-बार चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले श्रीहरि को गाड़ी प्रदान कर दिया ॥३०॥ हे विप्र! इसके पश्चात् वे सभी ब्राह्मण जैसे आये थे वैसे ही चले गये। वह दस्यु भी दस्युओं के साथ अपने आश्रम में चला गया ॥३१॥ एक बार गुड़ का पात्र लेकर कोई पथिक अकेले उसी मार्ग से आया ॥३२॥ उस साहसी और दूसरों को मारने वाला दस्यु निर्भय होकर उस पथिक के गुड़ के पात्र को लूट लिया ॥३३॥ उसके बाद वे दस्युगण गुड़ के उस पात्र को तोड़ दिए। उर्वीशु के हिस्से में गुड निर्मित गाड़ी पड़ी॥३४॥ हे द्विजोत्तम ! उर्वीशु गुड़ की गाड़ी को पाकर अपनी बात को याद करके मन में सोचा ॥३५॥ मैंने गाड़ी को तो स्वयं श्रीभगवान् को दे दिया है। अतएव इस जन्म में मुझे गाड़ी को कभी भी नहीं लेना चाहिए॥३६॥ इस तरह से गाड़ी को दान करने के लिए सोचकर उसने श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए उस गाड़ी को किसी ब्राह्मण को दे दिया ॥३७॥ उसकी उस भक्ति को देखकर भगवान् उसके सभी पापों

भगवानथ तं नेतुं विमानं स्वर्णनिर्मितम्। दूतांश्च प्रेषयामास नानावरणभूषितान् ॥४०॥
अथ ते भगवद्दूतास्तमुर्वीशुं गतैनसम् । समारोप्य विमाने ते सद्यो जग्मुः पुरं हरे ! ॥४१॥

ततोऽसौ हरिसान्निध्यं प्राप्य पुण्यात्मनां वरः ।
पुनर्मन्वन्तरशतं स्थित्वा केशवसन्निधौ ॥
परमं ज्ञानमासाद्य स विवेश तनुं हरेः ॥४२॥

व्यास उवाच

येन केनाप्युपायेन हरिभक्तिकरो नरः। संसारजलधेः पारं राजहंस इव व्रजेत् ॥४३॥
क्षणमेव हरेर्भक्तिर्वर्तते यस्य चेतसि। तत्पदं परमं याति स पापात्माऽपि गच्छति ॥४४॥
एकमप्युत्तमं वस्तु दत्त्वाऽसौ तन्मुरारये। स्वयमेव हि भोक्तव्यं पश्चात्पापोपशान्तये॥४५॥
यद्वस्त हरये दत्तं तच्च दद्याद् द्विजातये। किंचिच्छेषं भोक्तव्यं तस्याऽवश्यं स्वयंबुधैः ॥४६॥
वस्तूनि ब्राह्मणश्रेष्ठ मिष्टानि यानि कानिच। अदत्त्वाविष्णवे तानि न भोक्तव्यानि वैष्णवैः ॥४७॥
विष्णुनैवेद्यमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। सेतिहासं पुनर्वच्मि शृणु विप्र समाहितः ॥४८॥
आसीत्सर्वजनिर्नाम ब्राह्मणःशुद्धवंशजः। शान्तो दान्तो दयायुक्तो गुरुब्राह्मणपूजकः ॥४९॥
हरेःपूजापरश्चैव हरिस्मरणतत्परः। प्रपन्नक्लेशविध्वंसी सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥५०॥
प्रातःकालेनिजाचारग्राही हिंसाविवर्जितः। एकादशीव्रतरतो ज्ञातिपूजापरायणः ॥५१॥

कदाचित्सद्द्विजश्रेष्ठः स्वप्नेऽपश्यच्चकेशवम् ।
श्यामंविरजपद्माक्षं स्मेरास्यंपीतवाससम् ॥५२॥

को हर लिए ॥३८॥ हे विप्र ! उसी दिन उस महावन में प्रवेश करके क्रुद्ध परिजन उर्वीशु को मार डाले॥३९॥ उसके पश्चात् उसको लाने के लिए श्रीभगवान् सुवर्ण निर्मित विमान और अपने दूतों को भेजे। जो अनेक प्रकार के आभरणों से अलंकृत थे ॥४०॥ उसके पश्चात् वे दूत उस निष्पाप उर्वीशु को उस विमान पर बैठाकर शीघ्र ही श्रीहरि के लोक में उसे ले गये ॥४१॥ उसके पश्चात् निष्पाप और पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ उर्वीशु श्रीहरि के सान्निध्य को प्राप्त करके श्रीभगवान् की सन्निधि में सौ मन्वन्तरों तक रहकर॥४२॥ परम ज्ञान प्राप्त करके श्रीहरि के शरीर में प्रवेश कर गया ॥४३॥ **व्यासजी ने कहा—** जिस किसी भी प्रकार से श्रीहरि की भक्ति करने वाला मनुष्य राजहंस के समान अपार संसार सागर के पार चला जाता है ॥४४॥ जिसके हृदय में क्षणभर भी श्रीहरि की भक्ति रहती है वह पापी भी श्रीभगवान् के परम पद में जाता है ॥४५॥ वह एक भी उत्तम वस्तु को श्रीहरि को प्रदान करके ही उसे पापों की शान्ति के लिए स्वयं भोग नहीं करना चाहिए ॥४६॥ श्रीभगवान् को जो वस्तु प्रदान की जाय उसको किसी ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए । बुद्धिमानों को उसका बचा हुआ शेष भाग थोड़ा सा भी नहीं खाना चाहिए ॥४७॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वस्तुएँ जो मिठी हो उनको भगवान् को दिए बिना नहीं खाना चाहिए ॥४८॥ भगवान् विष्णु के नैवेद्य की महिमा है कि वह सभी पापों का नाश करने वाला होता है । हे विप्र ! मैं पुनः इतिहास को कहता हूँ उसे सुनो ॥४९॥ शुद्ध ब्राह्मणों के वंश में उत्पन्न सर्वजनि नामक एक ब्राह्मण था । वह शान्त, दान्त, दयालु तथा गुरुओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला था ॥५०॥ वह श्रीहरि की पूजा करता

स्वर्णकुण्डलमञ्जीरकिरीटोज्ज्वलविग्रहम् । कौस्तुभोद्भासितोरस्कं वनमालाविभूषितम् ॥५३॥
चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदापद्मधरं प्रभुम् । समस्तैर्लक्षणैयुक्तं स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् ॥५४॥
संप्राप्य दर्शनं स्वप्ने स विप्रो जगतीपतेः । कृताञ्जलिस्तमस्तौषीद्रोमाञ्चिततनुर्मुदा ॥५५॥

तुभ्यं नमोऽस्तु जगतः सकलस्य भर्त्रे सल्लोकशोकभयरोगविनाशनाय ।
नारायणाय कमलाहृदयप्रियाय धर्मार्थकामपरमामृतदाय तुभ्यम् ॥५६॥
पापानि चैव सकलानि मया कृतानि मत्तेन मोहवशगेन सदा मुरारे ! ।
तस्माद्बिभेमि जगदम्बुनिधेर्गभीरान्मामुद्धरस्व निजभक्तितरीं प्रदाय ॥५७॥
जानामि यद्यपि हरे ! दुरितं मनुष्यो व्यामोहमाशु च लभे भुवि कैटभारे ! ।
पापं तथाऽपि च मुदासततं करोमि तस्मान्न कोऽप्यहमिवाऽस्तिजनोविमूढः ॥५८॥
पुण्यद्रुमः सुखफलं सहसैव धत्ते किंवेद्मिनेति नृहरे कृतपातकोऽहम् ।
पुष्पद्रुमार्पणविधौ न ममाऽस्ति वित्तं नाथ प्रसीद भगवन्किमहं करोमि ॥५९॥
त्वत्पादपद्मयुगलं परमामृतस्य स्थानं विहाय मम चित्तमधुव्रतोऽयम् ।
नारीमुखं व्रजति देव मृतिप्रदंयच्छ्लेष्मप्रकीर्णमनिशं कमलभ्रमेण ॥६०॥
पाणिःप्रदानरहितोऽनृतभाषि वक्त्रं कर्णौ च पापश्रवणाय सदैव दक्षौ ।
दोषानिमान्मम हरे ! हर सेवकस्य यस्मान्नु नाथ ! शरणागतदोषहन्ता ॥६१॥

था और सदा श्रीहरि का स्मरण करता था । शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाला सत्यवादी और जितेन्द्रिय था ॥५१॥ वह प्रात:काल अपने आचार का पालन करता था और किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं करता था । वह एकादशी व्रत करता था और अपने ज्ञातियों की पूजा करता था ॥५२॥ एक बार उस ब्राह्मण ने स्वप्न में श्याम वर्ण के कमल के समान नेत्र वाले मुस्कान पूर्ण मुख वाले, तथा पीताम्बरधारी श्रीहरि को देखा ॥५३॥ सुवर्ण के कुण्डल, नूपुर तथा किरीट से उनका शरीर सुशोभित था । कौस्तुभ मणि से उनका वक्ष:स्थल प्रकाशित होता था । तथा वे वनमाला से वे अलंकृत थे ॥५४॥ श्रीभगवान् अपनी चारो भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए थे । सभी लक्षणों से युक्त वे सुवर्ण के यज्ञोपवीत को धारण किए थे ॥५५॥ वे विप्र स्वप्न में श्रीहरि का दर्शन प्राप्त करके हाथ जोड़कर उनकी स्तुति किए उस समय उनको रोमाञ्च हो गया था । सम्पूर्ण जगत् के स्वामी आप को नमस्कार है । सज्जनों के लोक जन्य शोक को आप विनष्ट करने वाले हैं । आपके हृदय में लक्ष्मीजी का निवास है ऐसे आप नारायण भगवान् को नमस्कार है । आप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाले आपको नमस्कार है ॥५६-५७॥ हे मुरारे ! अज्ञानवशात् मैंने सभी पापों को किया है इसीलिए मैं गम्भीर संसार सागर से डरता हूँ अतएव आप मुझको अपनी भक्ति रूपी नौका को प्रदान करके मेरा उद्धार करें ॥५८॥ हे कैटभारे! श्रीहरे ! मैं पापों को जानता हूँ फिर भी मनुष्य होने के कारण मुझको शीघ्र ही व्यामोह हो जाता है । फिर भी मैं प्रसन्नता पूर्वक पापों को काटता रहता हूँ अतएव मुझ जैसा कोई भी मूर्ख नहीं है ॥५९॥ हे नृसिंह! पापी मैं यह नहीं जानता हूँ क्योंकि पुण्य रूपी वृक्ष में सुख रूपी फल शीघ्र ही आ जाते हैं । हे नाथ! पुण्य रूपी द्रुम देने के लिए मेरे पाप सम्पत्ति नहीं हैं अतएव आप प्रसन्न हो जायँ मैं क्या करूँ ॥६०॥

संसारघोरजलधौ नृहरे ! कदाचित्त्वद्भक्तिनौरिह मया सुदृढा च लब्धा ।
तत्राऽपि दैववशगोऽहमहो दुरात्मा वर्तेत एव सततं मम दुःखकालः ॥६२॥
संसारपारगमनाय लसत्पथोऽस्ति किं सर्वदुःखरहितः सदयः प्रसन्नः ।
अन्धीकृतस्य मम मोहमहातमिस्रैर्दृष्टिस्त्वयीह न कदापिच याति विष्णो ! ॥६३॥
पापात्मनोऽपि मम चित्तमिदं मुरारे नष्टं विनष्टजनकष्टविनष्टकारि ।
यस्त्वां समस्तसुरवन्दितपादपद्मस्वप्नेऽपि केशिमथनाऽद्यविभो ! समीक्षे ॥६४॥

व्यास उवाच

इति तेन स्तुतो देवो भगवान्कमलापतिः। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः संसारार्णवतारकः॥६५॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तिभिस्तव विप्रेन्द्र ! तुष्टोऽहं नित्यमेवच। तस्मात्तवाऽचिरेणैव सर्वं भद्रं भविष्यति ॥६६॥
पापिनोऽपि तवोद्धारो मया पूर्वं कृतो द्विज ! ।
अधुना मम भक्तोऽसि न विपत्तिर्भविष्यति ॥६७॥

ब्राह्मण उवाच

कोऽहं तस्थौ पुरा विष्णो किं वा पापं मया कृतम् ।
पापिनोऽपि ममोद्धारः कथं पूर्वं त्वया कृतः ॥६८॥
संसारेऽस्मिनकथंजातोजनितोऽहं कथं त्वया ।
एतत्सर्वं विभो ! ब्रूहि यतस्त्वं सदयः सदा ॥६९॥

परम अमृत के आश्रयभूत आपके चरण युगल को त्यागकर मेरा यह मनरूपी भ्रमर, मृत्यु प्रदान करने वाले कमल के भ्रम से नारी के मुख की ही ओर जाता है ॥६१॥ मेरे हाथ दान नहीं करते हैं, मुख से झूठ ही निकलता है । मेरे दोनों कान पाप को ही सुनने में सदा दक्ष हैं । हे हरे ! आप मेरे इन दोषों को दूर करें मैं आपका सेवक हूँ । हे नाथ ! क्योंकि आप तो शरणागतों के दोषों को विनष्ट करने वाले हैं ॥६२॥ हे नरसिंह ! इस भयङ्कर संसार सागर में कभी मैंने आपकी भक्ति रूपी नाव को प्राप्त नहीं किया । फिर भी दैवाधीन रहने वाला मैं पापी सदा दुःख में पड़ा रहता हूँ ॥६३॥ संसार सागर से पार जाने का कौन सा सुन्दर मार्ग हैं ? दया से युक्त, दुःख रहित तथा प्रसन्न रहने वाले आप पर हे विष्णो ! अत्यन्त मोहरूपी अन्धकार से लुप्त हुयी मेरी दृष्टि कभी जाती नहीं है ॥६४॥ हे मुरारे ! पापी भी मेरा यह विनष्ट लोगों के कष्ट को दूर करने वाला चित्त है; क्योंकि हे केशी नामक राक्षस को मारने वाले विभो ! स्वप्न में भी मैं आपके समस्त देवताओं से वन्दित चरण का मैं दर्शन कर रहा हूँ ॥६५॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से उस ब्राह्मण के द्वारा स्तुति किए गये संसार सागर से पार करने वाले लक्ष्मीपति ने कहा ॥६६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे विप्रेन्द्र ! मैं तुम्हारी भक्ति से सदैव सन्तुष्ट रहता हूँ । अतएव आपको शीघ्र ही सम्पूर्ण कल्याण प्राप्त हो जायेगा ॥६७॥ हे द्विज ! तुम पहले पापी थे फिर भी मैंने तुम्हारा उद्धार किया। इस समय तुम मेरे भक्त हो अतएव कोई भी विपत्ति तुम पर नहीं आयेगी ॥६८॥ हे विष्णो ! मैं पहले कौन था ? और कौन सा पाप मैंने किया था ? पूर्वकाल में मुझ पापी का उद्धार आपने क्यों किया

श्रीभगवानुवाच

अप्रकाश्यमिदं गुह्यं यद्यपि द्विजसत्तम ! । तथाऽपि तव वात्सल्यान्निगदामि निशामय ॥७०॥
पुरा त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! पक्षिवंशसमुद्भवः । भूतोऽसि भूमिभागेषु निजकर्मविपाकतः ॥७१॥
क्षुधयातृषया वाऽपि सततं व्याकुलोभवान् । बभ्राम भक्षयन्कीटान्निर्झरोष्णोदकं तथा ॥७२॥
नानादुःखं सदा भुञ्जन्पक्षियोनिसमुद्भवः । चतुवर्षसहस्राणि ! स्थितोऽसि त्वं पुरा क्षितौ ॥७३॥
एकदा कुलभद्राख्यो ब्राह्मणःसर्वतत्त्ववित् । पूजयामास मां भक्तया नैवेद्याद्यैर्नदीतटे ॥७४॥
समभ्यर्च्य स विप्रेन्द्रो मम नैवेद्य तण्डुलम् ।
ययौ तत्रैव निक्षिप्य भूय एव निजंगृहम् ॥७५॥
ततोवृक्षात्समागत्य क्षुधितेन विना त्वया । मम नैवेद्यसम्बन्धि भक्षितं सर्वतण्डुलम् ॥७६॥
भुक्त्वैवसद्योमुक्तोऽसि पातकैरतिदारुणैः । कदाचित्प्राप्तकालस्त्वं कालाधर्मंगतोद्विज ! ॥७७॥
त्वामानेतुं मया दूताः प्रेषिताः सर्वथानिजाः ।
ततोरथे समारोप्य भवन्तं नष्टकल्मषम् ॥७८॥
सद्यो दूतगणाः सर्वे समायाताः परं पदम् ।
युगकोटिसहस्राणि स्थितोऽसि मम सन्निधौ ॥७९॥
भुञ्जन्सुखानिसर्वाणि दुर्लभानिसुरैरपि । ततोयातोऽसि विप्रेन्द्र ! विशुद्धे ब्राह्मणान्वये ॥८०॥
तत्राऽपि मयिभक्तिस्ते जाताऽतिसुदृढापुनः । क्रियायोगेन मां नित्यं समाराध्यद्विजोत्तम ! ॥८१॥
आयुषोऽन्ते मत्प्रसादान्मामकं पदमाप्स्यसि ।
यस्य तुष्टोऽस्म्यहं विप्र ! स पापात्माऽपि मुक्तिभाक् ॥८२॥

था ? ॥६९॥ मैं संसार में क्यों उत्पन्न हुआ ? और आपने मुझे क्यों जन्म दिया ? हे विभो ! आप इन सारी बातों को बतलायें क्योंकि आप दयालु हैं ॥७०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे द्विज ! यद्यपि ये सारी बातें रहस्यमय होने के कारण अप्रकाश्य हैं फिर भी तुम्हारे वत्सल्य के कारण मैं कह रहा हूँ तुम सुनो॥७१॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम पूर्वकाल में पक्षी थे । तुम अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप ऐसा हुए थे ॥७२॥ तुम भूख तथा प्यास से सदा व्याकुल रहते थे । सदा कीड़ों को खाते हुए और गर्म जल पीते हुए सदा तुम घूमते रहते थे ॥७३॥ पक्षी योनि में उत्पन्न अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते हुए चार हजार वर्षों तक पृथिवी पर रहे ॥७४॥ एक बार कुल भद्र नामक ब्राह्मण जो सभी तत्त्वों के ज्ञाता थे, उन्होंने नैवेद्य आदि के द्वारा मेरी पूजा भक्ति पूर्वक नदी के तट पर की ॥७५॥ वे विप्र मेरी पूजा करके मेरे नैवेद्य के चावल को वहीं पर छोड़कर अपने घर चले गये ॥७६॥ उसके पश्चात् वृक्ष से उतरकर तुम भूखे पक्षी के द्वारा मेरे नैवेद्य के सम्पूर्ण चावल खा लिए गये ॥७७॥ उसको खाकर तुम शीघ्र ही अत्यन्त भयङ्कर पापों से मुक्त हो गये । हे द्विज तुम समय आ जाने के कारण मर गये ॥७८॥ तुमको लेने के लिए मैंने अपने दूतों को भेजा । निष्पाप आपको रथ पर बैठाकर ॥७९॥ शीघ्र ही मेरे दूत परम्पद में आ गये । तुम मेरे पास अनेक हजार करोड़ युगों तक रहे ॥८०॥ वहाँ पर देवताओं को भी दुर्लभ सभी सुखों को भोगते हुए तुम रहे । उसके बाद तुम विशुद्ध ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न हुए ॥८१॥ वहाँ भी तुम्हारी मुझमें सुदृढ भक्ति

कदाचिद् यस्य रुष्टोऽस्मि पुण्यात्माऽपि च पापभाक् ।
तस्माद्ब्राह्मणभद्रन्ते भक्तोऽसि मम सुव्रत ! ॥८३॥
दास्यामि ते परं स्थानं यदलभ्यं सुरैरपि ॥८४॥

ब्राह्मण उवाच

त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं नाथ ! पूर्ववृत्तान्तमात्मनः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यत्किञ्चिद्‌ब्रूहि तत्प्रभो ! ॥८५॥
कस्यतुष्टोऽसि देवेन्द्र ! कस्य रुष्टोऽसि वा प्रभो ! ।
महत्या कृपया सर्वमेतन्मेवक्तुमर्हसि ॥८६॥

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा येन विप्रेन्द्र ! तुष्टिर्मे हृदि जायते । क्रोधश्च तत्समस्तं च कथयामि समासतः ॥८७॥
यो दयावान्द्विजश्रेष्ठ ! सर्वभूतेषु सर्वदा । अहङ्कारविहीनश्च तस्य तुष्टोऽस्म्यहं सदा ॥८८॥
कर्मकुर्यान्मदर्थं यो धर्मभक्तिसमन्वितः । ब्रूते मदर्थं यः शान्तं तस्य तुष्टोऽस्म्यहं सदा॥८९॥
मिष्टंवस्तुसमासाद्य दद्यान्मे यश्चमानवः । मानापमाने सदृशस्तस्य तुष्टोऽस्म्यहं सदा॥९०॥
सर्वभूतशरीरस्थं यो मां जानाति मानवः । परहिंसाविहीनो यस्तस्य तुष्टोऽस्म्यहंसदा ॥९१॥
कर्माणि कुरुते यस्तु सुविचार्य पुनःपुनः । गोब्राह्मणहितैषी यस्तस्यतुष्टोऽस्म्यहंसदा ॥९२॥
स्वयंनिरुक्तं वचनं यत्नाद्यःपरिपालयेत्। प्रपन्नान्पाति यत्नाद्यस्तस्य तुष्टोऽस्म्यहंसदा ॥९३॥
ददात्यनुपकारिभ्यो दानानि द्विजसत्तम ! । मयि चित्तं सदा यस्य तस्य तुष्टोऽस्म्यहं सदा॥९४॥

थी । हे द्विजोत्तम ! क्रियायोग के द्वारा मेरी आराधना करकें अपनी आयु के अन्त में मेरी कृपा से मेरे लोक में आए हो । हे विप्र ! मैं जिस पर रुष्ट हो जाता हूँ वह पुण्यात्मा भी पापी हो जाता है । इसीलिए हे ब्राह्मण ! तुम्हारा कल्याण हो क्योंकि तुम मेरे भक्त हो ॥८२-८४॥ तुमको मैं देवताओं के लिए दुर्लभ पद प्रदान करूँगा ॥८५॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे नाथ ! मैंने आपकी कृपा से अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त को सुना । हे प्रभो ! अब मैं जो सुनना चाहता हूँ उसका आप बतलायें ॥८६॥ हे देवेश ! आप किस पर सन्तुष्ट रहते हैं और किससे रुष्ट होते हैं ? आप अत्यधिक कृपा करके इन सारी बातों को मुझे बतलायें॥८७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे विप्रेन्द्र ! जिन कर्मों को करने से मुझको सन्तोष होता है और जिन कर्मों को करने से मुझे क्रोध होता है उन सभी कर्मो को मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥८८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो सभी जीवों पर दया रखता है तथा जो अहङ्कारों से रहित होता है उस पर मैं सदा सन्तुष्ट रहता हूँ ॥८९॥ जो मेरी प्रसन्नता के लिए धर्म और भक्ति से युक्त होकर कर्मों को करता है और जो मेरे लिए शान्त होकर बोलता हैं, मैं उससे प्रसन्न रहता हूँ ॥९०॥ जो अच्छी वस्तु प्राप्त करके मुझे समर्पित कर देता है तथा मान एवं अपमान में एक समान जो रहता है उससे मैं प्रसन्न रहता हूँ ॥९१॥ जो मुझको सभी जीवों के शरीर में रहने वाला जानता है, तथा जो दूसरों की हिंसा नहीं करता है मैं उस पर प्रसन्न रहता हूँ ॥९२॥ जो बार-बार अच्छी तरह से विचार करके कर्मों को करता है तथा जो गौ तथा ब्राह्मण का हितकारी होता है, मैं उस पर प्रसन्न रहता हूँ ॥९३॥ जो अपनी बातों का प्रयास करके पालन करता है तथा जो प्रयास करके

कर्मणा येन तुष्टोऽस्मि निरुक्तं तत्समासतः ।
रुष्टोऽस्मि कर्मणा येन विप्र ! वच्मि शृणुष्व तत् ॥९५॥
परहिंसारतो यस्तु निर्दयः सर्वजन्तुषु। अहंयुः सर्वदा क्रुद्धः स मां नयति शत्रुताम् ॥९६॥
असत्यभाषीक्रूरश्चपरनिन्दापरस्तु यः । कविवर्तनविध्वंसी समां नयति शत्रुताम्॥९७॥
अदृष्टदोषौ पितरौ स्त्रीभ्रातृभगिनीस्तथा । मोहात्त्यजति यो मूढः स मां नयति शत्रुताम् ॥९८॥
पित्रोस्तु भर्त्सनं यश्च कुरुते मूढधीर्नरः । गुर्ववज्ञाकरो विप्र ! स मां नयति शत्रुताम् ॥९९॥
आरामच्छेदिनो ये च जलाशयविलायिनः । ग्रामनाशकरा ये च ते मां नयन्तिशत्रुताम्॥१००॥
परस्त्रियं समालोक्य विषादं यान्ति ये जनाः ।
शृण्वन्ति पापचर्चां च तेषां रुष्टोऽस्म्यहं सदा ॥१०१॥
द्विषन्ति नाथ ये मूढा अनाथस्वंहरन्तिये। विश्वासघातिनो येच तेषां रुष्टोस्म्यहं सदा ॥१०२॥
ये च गोवीर्यहन्तारो वृषलीपतयश्च ये। अश्वत्थघातिनो ये च तेषां रुष्टोऽस्म्यहं सदा॥१०३॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेदकारिणः । परदारातिरक्ता ये तेषां रुष्टोऽस्म्यहं सदा ॥१०४॥
एकादश्यां भुञ्जते ये लोभात्पापधियो नराः ।
वेदनिन्दाकरा ये च तेषां रुष्टोऽस्म्यहंसदा ॥१०५॥
पापबुद्धिरता ये च मित्रद्रोहरतास्तथा । धात्रीतरुं च ये घ्नन्ति तेषां रुष्टोऽस्म्यहं सदा॥१०६॥
दिवसे मैथुनं ये च कुर्वते काममोहिताः । रजस्वलास्त्रियं चैव तेषां रुष्टोऽस्म्यहं सदा ॥१०७॥

शरणागत की रक्षा करता है मैं उससे प्रसन्न रहता हूँ ॥९४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो अनुपकारियों को मुझमें अपने मन को लगाकर दान देता है, उसके ऊपर मैं प्रसन्न रहता हूँ ॥९५॥ मैं जिन कर्मों को करने से सन्तुष्ट होता हूँ उन सबों को मैंने संक्षेप में कहा हे विप्र ! मैं जिस कर्म से रुष्ट होता हूँ उन सबों को बतलाता हूँ ॥९६॥ जो सदा दूसरों की हिंसा करता है और सबों के प्रति जो निर्दय रहता है, अहङ्कारी और सदा क्रुद्ध रहता है वह मुझसे शत्रुता करता है ॥९७॥ जो झूठ बोलता है करता है तथा दूसरों की निन्दा तथा ब्रह्मज्ञानियो के मार्ग को विध्वंस करता है वह मुझसे शत्रुता करता है ॥९८॥ निर्दोष माता-पिता और बहन को जो अज्ञान वशात् त्यागता है वह मुझको शत्रु बनाता है ॥९९॥ जो मूर्ख मनुष्य माता-पिता को डाँटता है तथा हे विप्र ! जो अपने गुरु का अपमान करता है वह मुझको अपना शत्रु बनाता है॥१००॥ जो उद्यान को काटता है और जलाशय को विनष्ट करते हैं, जो ग्रामों को विनष्ट करते हैं वे मुझको अपना शत्रु बनाते हैं ॥१०१॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को देखकर विषाद करते हैं । जो पापों की चर्चा को सुनते हैं उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ ॥१०२॥ जो अपने स्वामी से द्वेष करते हैं तथा अनाथों की सम्पत्ति का हरण करते हैं । जो विश्वासघात करते हैं उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ ॥१०३॥ जो लोग गौ के वंश का हरण करते है तथा जो वेश्या के पति हैं । जो लोग पिप्पल के वृक्ष को काटते हैं उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ ॥१०४॥ जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में भेद दृष्टि रखते हैं तथा जो दूसरों की पत्नी में अत्यन्त आसक्त रहते हैं मैं उन सबों से रुष्ट रहता हूँ ॥१०५॥ जो मनुष्य एकादशी के दिन भोजन करते हैं तथा जो लोभ के कारण पाप करते हैं । तथा जो वेदों की निन्दा करते हैं, उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ । जो सदा पाप बुद्धि बनाये रहते है तथा जो अपने मित्रों से द्रोह करते हैं तथा जो आँवले

ये चाऽदृष्ट्वार्तवां नारीं मोहाद्गच्छन्ति सत्तम ! ।
व्रतस्थां च सदा जाल्मास्ते मां नयन्ति शत्रुताम् ॥१०८॥
अमावास्यातिथौ ये च कुर्वते निशि भोजनम् ।
भोजनद्वयमेवाऽर्केतेषां रुष्टोऽस्म्यहंसदा ॥१०९॥
आमिषं मैथुनं तैलममावास्यादिनेद्विजाः ।
न ये त्यजन्ति विप्रेन्द्र ! तेषां रुष्टाऽस्म्यहं सदा ॥११०॥
बहुनाऽत्रकिमुक्तेन संक्षेपात्तेवदाम्यहम्। निन्दन्तिवैष्णवान्ये च तेषांरुष्टोऽस्म्यहंसदा ॥१११॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुरदृश्यःसहसाऽभवत्। सच विप्रःसमुत्तस्थौत्यक्तनिद्रस्तुमञ्चतः॥११२॥
केशवोक्तेन वाक्येन सविप्रो हरिभक्तिकृत्। सन्त्यज्यसकलं कार्यं क्रियायोगरतोऽभवत्॥११३॥
नारायणस्य नैवेद्यं भुञ्जतोऽपि फलं त्विदम् ।
हरिपूजाकृतां पुंसां न जाने किं भवेदिति ॥११४॥
समासेन ब्रवीमि त्वां श्रृणु सत्तमजैमिने ! । सकृत्कृत्वा हरेः पूजां प्राप्यते परमं पदम्॥११५॥
मानुष्यं दुर्लभं लोके पूजा तत्राऽपि चक्रिणः ।
भक्तिस्तत्राऽपि विप्रेन्द्र ! दुर्लभापरिकीर्तिता॥११६॥

के वृक्ष को काटते हैं जो मेरे भक्त को सदा रुष्ट बनाते हैं ॥१०६-१०७॥ जो लोग कामार्त होकर दिन में मैथुन करते है तथा जो रजस्वला स्त्री से मैथुन करते हैं उन सबों से सदा रुष्ट रहता हूँ ॥१०८॥ जो अभी तक ऋतुमती नारी नहीं हुयी है उसको देखकर अज्ञानवशात् उसके साथ सङ्गम करते हैं । तथा जो पापी व्रत करने वाली स्त्री के साथ मैथुन करते हैं वे मुझको अपना शत्रु बनाते हैं ॥१०९॥ जो अमावस्या तिथि को रात्रि में भोजन करते हैं, तथा सूर्य के रहने पर ही दो बार भोजन करते हैं, उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ ॥११०॥ हे विप्रेन्द्र ! जो अमावस्या के दिन मांस, मैथुन तथा तेल को नहीं त्यागते हैं, उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ ॥१११॥ इस विषय में बहुत क्या कहना हैं मैं तुमको संक्षेप में बतलाता हूँ कि जो वैष्णवों की निन्दा करते हैं उन सबों से मैं सदा रुष्ट रहता हूँ ॥११२॥ **व्यासजी ने कहा**— इस तरह से कहकर भगवान् एकाएक अन्तर्धान हो गये । वह ब्राह्मण भी निद्रा का परित्याग करके अपनी खाट से उठे ॥११३॥ भगवान् केशव के कहने के अनुसार वे ब्राह्मण श्रीहरि की भक्ति करते थे सभी कार्यों को त्यागकर क्रियायोग में रत हो गये ॥११४॥ भगवान् नारायण के नैवेद्य को जो खाता है उसको भी इस फल की प्राप्ति हो जाती है । तो जो श्रीहरि की जो पूजा करते हैं उनको न जाने से कौन सा फल होगा ॥११५॥ हे जैमिने ! मैं संक्षेप में तुम्हे बतलाता हूँ उसे तुम सुनो । जो एक बार भी श्रीहरि की पूजा कर लेता है उसको परम्पद की प्राप्ति होती है ॥११६॥ संसार में मनुष्यत्व की प्राप्ति दुर्लभ है

संसाराब्धिं सर्वदुःखप्रपूर्णं कर्तुं वाञ्छा यस्य चित्तेऽस्ति पुंसः ।
भक्त्या नित्यं वासुदेवस्य पूजां कुर्यादार्यः कर्मणां सोऽखिलानाम् ॥११७॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
विष्णुपूजाफलकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

विष्णुपूजाफलं विप्र ! संक्षेपात्कथितं मया। इदानीं वच्मि दानानि निशामय समाहितः॥१॥
दानं तपो द्वयोर्मध्ये दानमेकं परं स्मृतम् । तपसा पापमित्युक्तं न पापो दानकर्मणि॥२॥
तपः कृतयुगे श्रेष्ठं त्रेतायां ध्यानमेव च । सपर्या द्वापरे श्रेष्ठा दानं श्रेष्ठं कलौ युगे ॥३॥
तस्मात्कलियुगे दानं प्रीतये कमलापतेः। कर्तव्यं सततं प्राज्ञैरिच्छद्भिः परमं पदम्॥४॥
कलया कलया चन्द्रकला सम्वर्धते तथा। दानस्य सा गतिः प्रोक्ता तपसश्च मनीषिभिः॥५॥
पणदपि द्विजश्रेष्ठ ! कर्तव्यो वित्तसंग्रहः। सञ्चितं तु धनं प्राज्ञो दानकर्मणि संक्षिपेत् ॥६॥
धनेस्थितेऽपि यो मर्त्यो नाऽश्नातिन ददातियः ।
दरिद्रःस च विज्ञेयो दानभोगविवर्जितः ॥७॥

और श्रीहरि की पूजा भी दुर्लभ है । हे विप्रेन्द्र ! श्रीभगवान् में भक्ति का होना भी दुर्लभ बतलायी गयी है ॥११७॥ जिस मनुष्य की इच्छा सभी दुःखों से भरे हुए संसार सागर को पार करने का इच्छा हो तो उस आर्य को अपने समस्त कर्मों के द्वारा भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥११८॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोग सार नामक खण्ड के श्रीविष्णु भगवान् की पूजा वर्णन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

दान का माहात्म्य वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे विप्र ! मैंने संक्षेप में भगवान् विष्णु की पूजा के फल को बतलाया । अब मैं दानों का वर्णन करता हूँ उसे तुम सावधान होकर सुनो ॥१॥ दान तथा तपस्या दोनों में से दान को ही श्रेष्ठ बतलाया गया है । तपस्या करने से पाप भी होता है, किन्तु दान करने से पाप नहीं होता है ॥२॥ सत्ययुग में तपस्या श्रेष्ठ होती है, त्रेता में ध्यान को श्रेष्ठ बतलाया गया है । द्वापर युग में पूजा को श्रेष्ठ बतलाया गया है और कलियुग में दान ही श्रेष्ठ होता है ॥३॥ इसलिए लक्ष्मीपति की प्रसन्नता के लिए कलियुग में परम्पद चाहने वाले मुमुक्षुओं को सदा दान करना चाहिए ॥४॥ जिस तरह एक-एक कला से चन्द्रमा की कला पुरी होती है, इसी तरह मनीषियों के दान और तपस्या की भी गति बतलायी गयी है।॥५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! एक-एक पल के द्वारा धन का संग्रह करना चाहिये । प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि संचित धन

वित्तं तेन सहाऽऽयाति याति तेन तु को द्विज ! ।
आयाति तत्पुरा दत्तमिह पञ्चत्वमागते ॥८॥
दत्त्वा दत्त्वा सदा दानं मानवा ये दरिद्र्यति ।
न ते दरिद्रा विज्ञेयाः परलोके महेश्वरः ॥९॥
धनं रक्षन्ति कार्पण्याद्ये ते ज्ञेयाः सुदुःखिताः ।
अन्ते त्यक्त्वा च तत्सर्वं निराशा यान्ति जैमिने ! ॥१०॥
परलोके द्विजश्रेष्ठ ! साधुसद्बलवर्जितः। निर्धने बन्धुहीने च नादत्तमुपतिष्ठते॥११॥
स्तोकंस्तोकं च विप्रेन्द्र ! भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
नित्यं देयानि दानानि वैष्णवैर्निजभक्तितः ॥१२॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं द्विजोत्तम ! । जलदानं च तत्त्वज्ञैरतिश्रेष्ठं प्रकीर्तितम् ॥१३॥
विनाऽन्नेन न तिष्ठन्ति प्राणा देहेषु देहिनाम् ।
अन्नदः प्राणदो ज्ञेयः प्राणदः सकलप्रदः ॥१४॥
तस्मात्समस्तदानानामन्नदो लभते फलम्। अन्नदानसमं दानं जलदानं च जैमिने !॥१५॥
विना तोयेन नान्नं स्यादतस्तोयं प्रदीयते। क्षुधातृषाऽपि विप्रेन्द्र ! द्वे तुल्ये तु प्रकीर्तिते ॥१६॥
तस्माद्दत्वा च तोयंच श्रेष्ठंप्रोक्तं मनीषिभिः ।
जीवनंजीवनं नृणां जीवनं न चजीवनम् ॥१७॥
अतोजीवनरक्षार्थं जीवनं प्राज्ञ उत्सृजेत् । अन्नं तोयं च विप्रेन्द्र ! दत्तं येन महीतले ॥१८॥

का उपयोग दान में करे ॥६॥ जो मनुष्य धन रहने पर भी न तो उसका उपभोग करता है और न तो उसका दान करता है उस दान तथा भोग से रहित मनुष्य को दरिद्र समझना चाहिए ॥७॥ हे द्विज ! दान न तो किसी के साथ आता है और न उसके साथ जाता है । जिसने जो पूर्वजन्म में दान किया है वही उसको मिलता है । संसार में ही मर जाने पर सारी वस्तुएँ रह जाती है ॥८॥ जो मनुष्य बार-बार दान करके दारिद्र हो जाते है, उन लोगों को दरिद्र नहीं समझना चाहिए क्योंकि परलोक में वे महेश्वर हो जाते हैं ॥९॥ जो लोग कृपणता के द्वारा धन की रक्षा करते हैं, उनको अत्यन्त दुःखी समझना चाहिए । क्योंकि हे जैमिने ! वे अन्त में सबकुछ छोड़कर निराश होकर चले जाते हैं ॥१०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! परलोक में साधु तथा सज्जन के बल से रहित दान नहीं करने वाले को परलोक में नहीं दी गयी वस्तुएँ नहीं प्राप्त होती हैं ॥११॥ हे विप्र श्रेष्ठ ! वैष्णवों के प्रतिदिन भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक थोड़ा-थोड़ा दान देना चाहिए ॥१२॥ हे द्विजोत्तम ! सभी दानों में अन्न के दान तथा जल के दान को श्रेष्ठ बतलाया है ॥१३॥ शरीरधारियों के शरीर में अन्न के बिना प्राण नहीं रह सकते हैं । अतएव अन्न दान करने वाले को प्राण देने वाला समझना चाहिए और प्राण देने वाला सबकुछ देने वाला होता है ॥१४॥ अतएव सभी दानों में अन्नदान करने वाला फल प्राप्त करता है । हे जैमिने ! अन्न दान और जलदान दोनों एक समान हैं ॥१५॥ जल के बिना अन्न नहीं हो सकता है इसीलिए जल दिया जाता है । हे विप्रेन्द्र! भूख तथा प्यास दोनों को एक समान बतलाया गया है ॥१६॥ इसीलिए मनीषियों ने इसीलिए जलदान को श्रेष्ठ बतलाया है । मनुष्यों का जल ही जीवन है ओर केवल जीवन ही जीवन नहीं है ॥१७॥ अतएव प्राज्ञ पुरुष को जीवन की रक्षा करने के लिए जल

तेनसर्वाणि दानानि कृतानि नाऽत्रसंशयः। अन्नदानस्य माहात्म्यं जलदानस्यवैशृणु ॥१९॥
बभूव हास्तिनपुरे कुबेरइव वित्तवान्। तस्मिन्नेव पुरे वेश्या बभूव सुरसुन्दरी ॥२०॥
ख्याता रतिविदग्धेति सर्वलक्षणसंयुता। तत्र क्षेमङ्करी नाम ब्राह्मणीश्रेष्ठवंशजा॥२१॥
समस्तगुणसम्पन्ना विधवाऽऽसीद् द्विजात्मजा ।
सा ब्राह्मणी द्विजश्रेष्ठ ! जारानुरक्तमानसा ॥२२॥
निषिद्धं कर्म कुर्वन्ती त्यक्त्वा यात्यविवेकताम् ।
तया संनिहिता विप्र ! वेश्याऽपि ब्राह्मणी च सा ॥२३॥
चकारसख्यं स्नेहेने वेश्यावृत्तिमुपेत्य सा। सावेश्या ब्राह्मणीचाऽपि द्वे चैकत्र दिनेदिने ॥२४॥
पापानि चक्रतुःप्रीत्या असङ्ख्यातानि जैमिने ! ।
ततोरतिविदग्धा सा वृद्धभावमुपागता ॥२५॥
ब्राह्मणी चाऽपि विप्रेन्द्र ! दुःशीलाऽत्यन्तपापिनी ।
कदाचिद्वारमुख्या सा जरती तां निजां सखीम् ॥२६॥
प्राहेति विस्मिता विप्र ! वचनं विनयान्विता ॥२७॥

रतिविदग्धोवाच

सखि त्वया सहाऽनेकं दारुणं पातकं कृतम् ।
अद्याऽपि पातके दृष्टिर्महती वर्तते मम ॥२८॥
सौन्दर्यञ्च बलञ्चैव सर्वं मे जरया हृतम्। इत्थमस्वास्थ्यकृन्नित्यमाशा त्यक्तुंन शक्यते ॥२९॥
स्थाविरं सुमहत्प्राप्तं कृतपातकया मया। समागतमिवैतर्हि समीक्ष्य मरणं गतम्॥३०॥

का दान करना चाहिए। हे विप्रेन्द्र ! पृथिवी पर जिसने अन्न और जल का दान किया है ॥१८॥ उसने सब कुछ दान दे दिया इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। अब आप अन्न तथा जल के दान का माहात्म्य सुनें ॥१९॥ हस्तिनापुर में एक कुवेर के समान धनवान था। उसी नगर में देवताओं के लिए भी एक सुन्दरी वेश्या थीं ॥२०॥ सभी लक्षण से युक्त वह रति कला में निपुणता के लिए प्रख्यात थी। वहाँ पर क्षेमङ्करी नाम वाली श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न एक विधवा थी। वह ब्राह्मण पुत्री भी सभी गुणों से संपन्न थी। हे द्विजश्रेष्ठ ! वह ब्राह्मणी जार पुरुषों में अनुरक्त थी ॥२१-२२॥ वह विवेक हीन होने के कारण निषिद्ध कर्मों को करती थी। हे विप्र ! वह वेश्या के सन्निकट में ही ब्राह्मणी भी रहती थी ॥२३॥ वेश्या वृत्ति को अपनाकर उसने प्रेम पूर्वक मित्रता कर ली। वह वेश्या और ब्राह्मणी दोनों प्रतिदिन ॥२४॥ हे जैमिने ! असंख्य पापों को करती थी। उसके पश्चात् रतिकला में निपुण वह वृद्धा हो गयी ॥२५॥ हे विप्रेन्द्र ! अत्यन्त दुःशील और पापिनी ब्राह्मणी भी अपनी बुढ़ी सखी से एकबार नम्रता पूर्वक कही ॥२६-२७॥ **रतिविदग्धा ने कहा—** हे सखि ! तुम्हारे साथ मैंने अनेक भयङ्कर पापों को किया है और आज भी मेरी दृष्टि भयङ्कर पाप करने में बनी रहती है ॥२८॥ बुढ़ापा ने मेरे सौन्दर्य और बल दोनों का अपहरण कर लिया है। इस तरह से अस्वस्थ बना देने वाली आशा को मैं नहीं त्यागती हूँ ॥२९॥ पापिनी मैंने बहुत अधिक वृद्धत्व को प्राप्त कर लिया है इसको देखकर मुझे लगता है कि मेरी मृत्यु आ गयी है ॥३०॥

उपार्जितानि पापेन यानि वित्तानि वै मया । रक्षिष्यन्त्यनपत्यायां मृतायां मयि तानि के ॥३१॥
तस्मात्सर्वाणि वित्तानि अन्यायोपार्जितानि च ।
दातुमिच्छामि विप्रेभ्यो यदि त्वं मन्यसे सखि ! ॥३२॥

ब्राह्मण्युवाच

मया यावन्ति वित्तानि पश्येतिसंचितानिच। असत्पात्रेषु दत्तानि तानि सर्वाणि नित्यशः ॥३३॥
तस्मादहं धनैहीना किं दास्यामि द्विजातये । अस्तिचेद्यदि वित्तं ते दानमाशु तदा कुरु॥३४॥
तस्या एवं वचः श्रुत्वा सा वेश्याऽत्यन्तहर्षिता ।
वित्तेन सकलेनैव अन्नदानंचकारह ॥३५॥
हरिशर्मा च विप्रेन्द्रो धनवानतिभक्तितः । पूजयामास सततं भगवन्तं जनार्दनम्॥३६॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो हिंसादम्भविवर्जितः । प्रीतये कमलाभर्तुः स तेपे सुमहत्तपः ॥३७॥
गन्धपुष्पैश्च बलिभिर्घृतधूपैः प्रदीपकैः । पूजयामास देवेशं नित्यमेव जनार्दनम् ॥३८॥
धनवानपि विप्रोऽसौ वित्तस्य क्षयशङ्कितः । पिपीलिकामूषिकाश्च तथान्येऽपि च जन्तवः ॥३९॥
कृपणस्य द्विजश्रेष्ठ ! गृहे नित्यं बुभुक्षिताः ।
उपार्जितं धनं सर्वं स्वयमेव दिनेदिने ॥४०॥
बुभुजे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दानकर्मविवर्जितः। सुहृदां ब्राह्मणानाञ्च बान्धवानां कदाऽपि सः ॥४१॥
चकार न च सम्भाषामर्थप्रार्थनशङ्कया। विगणय्य स्ववित्तानि सुबहूनि निजालये ॥४२॥
मत्वा श्रेष्ठमिवाऽऽत्मानं मोदतेऽसौ द्विजोत्तम ! ।
कदाचित्प्राप्तकालोऽसौ ब्राह्मणोऽत्यन्तवित्तवान् ॥४३॥

पाप के द्वारा मैंने जिन धनों को प्राप्त किया है मैं तो नि:सन्तान हूँ उन धनों की रक्षा कौन करेगा ?॥३१॥ अतएव अन्याय पूर्वक अर्जित उन सम्पूर्ण धनों की यदि तुम रक्षा करो तो मैं उन सबों को ब्राह्मणों को दान कर देना चाहती हूँ ॥३२॥ **ब्राह्मणी ने कहा—** मैंने तो जिन धनों को संचित किया था उसको असत्पात्रों को प्रतिदिन दे देती थी ॥३३॥ अतएव मैं तो धनहीन हूँ ब्राह्मणों को क्या दूँगी ? यदि तुम्हारे पास धन है तो उसका शीघ्र दान कर दो ॥३४॥ उसकी इस तरह की वाणी को सुनकर वह वेश्या अत्यन्त हर्षित हुयी । सम्पूर्ण धनों के द्वारा अन्नदान की ॥३५॥ हरिशर्मा नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण अत्यन्त धनवान् थे वे भक्ति पूर्वक श्रीहरि की सदा पूजा करते थे ॥३६॥ क्रोध को वश में रखने वाले जितेन्द्रिय वे हिंसा तथा दम से रहित थे वे श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त तप किए ॥३७॥ वे गन्ध, धूप से पूजा करके घृत मिश्रित धूप तथा प्रदीप से नित्य ही देवेश भगवान् जनार्दन की पूजा करते थे ॥३८॥ धनवान् भी ये विप्र धनक्षय होने की शङ्का से शंकित होकर किसी को कुछ नहीं देते थे । चींटी, चूहिया तथा दूसरे जीव ॥३९॥ उस कृपण ब्राह्मण के घर में सदा भूखे रहते थे । अर्जित किया गया सम्पूर्ण धन प्रतिदिन स्वयं ही ॥४०॥ खाते थे दान नहीं करते थे । वे कभी भी मित्रों ब्राह्मणों तथा अपने बन्धुओं से कभी भी ॥४१॥ इसलिए बातें नहीं करते थे कि कहीं वे सब धन माँग न लें । अपने घर में सम्पूर्ण धन को गिनकर ॥४२॥ अपने को श्रेष्ठ के समान मानकर वे बहुत प्रसन्न रहते थे एक बार समय आने पर

गणिका ब्राह्मणीसाच एककालेमृताद्विज !। अथदूता: समायातास्तान्तेतुमतिभीषाणा: ॥४४॥
धर्मराजस्य देवस्य पाशमुद्गरपाणय: । ते च चण्डादयो दूतास्तान्समादाय जैमिने !॥
ययुर्धर्मपुरं सद्यो दुर्गमेन पथा तत: ॥४५॥

चण्ड उवाच

आनीतोहरिशर्मा च वेश्या च ब्राह्मणीच सा ।
तवाऽऽज्ञयाजीवितेश पश्यैतान्पुरत:स्थितान् ॥४६॥
तान्समालोक्य जीवेश: प्रहस्य द्विजसत्तम ! ।
चित्रगुप्तमिति प्राह सर्वकार्यविचक्षणम् ॥४७॥

यम उवाच

एतेषां सर्वकार्याणि शुभदान्यशुभानि च । मूलाद्विचारय प्राज्ञ चित्रगुप्त महामते ! ॥४८॥
यमादेशात्ततस्तेषां चित्रगुप्तो विचक्षण: । सर्वं विचारयामास शुभकर्माऽशुभं तथा ॥४९॥

चित्रगुप्त उवाच

देवाऽऽकर्णयवक्ष्यामि पुण्यंच पातकं तथा ।
इयंवेश्या ब्राह्मणीचहरिशर्मा चकार यत् ॥५०॥
एषा रतिविदग्धाख्या गणिकाऽतिदुराशया । चकार यानि पापानि वक्तुं तानि न शक्यते॥५१॥
अन्यायोपार्जितैर्वित्तैरखिलैरेव सूर्यज !। अन्नदानं चकारेयं गणिका गतयौवना॥५२॥
अन्नदानप्रभावेण यातना गृहवासदै: । त्यक्तेयं पातकै: सर्वै: कोटिजन्मार्जितैरपि ॥५३॥
अन्नदानंमहाराज ! ये कुर्वन्तिजना:क्षितौ । तेपापिनोऽपि गच्छन्ति तद्विष्णो: परमंपदम्॥५४॥
यावन्त्यन्नापि यच्छन्ति मानवा: क्षितिमण्डले ।
तावन्त्यो ब्रह्महत्याश्च तस्य नश्यन्त्यसंशयम् ॥५५॥

ये धनिक ॥४३॥ वेश्या और ब्राह्मणी सबके सब एक साथ ही मरे उसके बाद अत्यन्त भयङ्कर चण्ड आदि दूत उन सबों को लेने के लिए आये और उन सबों को दुर्गम मार्ग से लेकर यमपुरी में गये ॥४४-४५॥ **चण्ड ने कहा—** मैं हरिशर्मा, वेश्या तथा ब्राह्मणी को लाया हूँ । जीवितेश इन तीनों को मैंने आपकी आज्ञा से लाया हूँ आप इन सबों को देखिये ये आपके समाने हैं । हे द्विज श्रेष्ठ ! उन सबों को देखकर यमराज जोर से हंसे और सभी कामों में निपुण चित्रगुप्त से कहे ॥४६-४७॥ **यम ने कहा—** इन सबों के शुभ तथा अशुभ कर्मों को हे प्राज्ञ ! चित्रगुप्त आदि से अन्त तक आप विचार करें । उसके पश्चात् यमराज के आदेश को प्राप्त करके उन सबों को शुभ तथा अशुभ कर्मों का विचार चित्रगुप्त ने किया ॥४८-४९॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** हे देव ! मैं इन सबों के पुण्यों तथा पापों को बतला रहा हूँ उसे सुनियें । यह वेश्या, ब्राह्मणी तथा हरिशर्मा ने जिन कर्मों को किया है, उन कर्मों को मैं बतला रहा हूँ॥५०॥ इस रति विदग्धा नामक वेश्या ने जिन पाप कर्मों को किया है उन सबों को नहीं गिना जा सकता है ॥५१॥ हे यमराज ! अन्याय पूर्वक कमाये गये समपूर्ण धन से इसने बुढ़ापे में अन्नदान किया है॥५२॥ अन्न दान के प्रभाव से इसको नरकों में ले जाने वाले पापों ने इसको छोड़ दिया । और इसके करोड़ों जन्मों के पापों ने भी इसको छोड़ दिया ॥५३॥ हे महाराज ! जो पापी भी अन्न दान करते हैं वे भी भगवान्

अन्नानियच्छतां त्यक्त्वाशरीराणिच पातकम्। गृह्णतामेवपात्राणि सहसा यातिसूर्यज ! ॥५६॥
अन्नानि पापिनां तस्मान्न गृह्णन्ति विचक्षणाः ।
मोहाद्‌गृह्णन्तिये मूढास्तएवपापभागिनः ॥५७॥
शुभकर्माऽशुण वाऽपि वेश्यायाः कथितं प्रभो ! ।
ब्राह्मण्याः श्रृणु कर्माणि शुभानिचाऽशुभानिच ॥५८॥
इयं क्षेमङ्करी नाम ब्राह्मणी शुद्धवंशजा। भद्रकीर्तिप्रिया सर्वं चकार दुरितं प्रभो ! ॥५९॥
त्यक्त्वानिजाश्रमाचारं निजयौवनगर्विता। बभूवाऽत्यन्तपापिष्ठा जारसङ्गमलोलुपा ॥६०॥
कदाचिच्छैशवे राजन्खेलन्ती शिशुभिःसह। रथ्यायांखननं चक्रे चतुष्कोणसमन्वितम्॥६१॥
तस्मिन्नेव दिने मेघउदकानि ववर्ष च ।
पूरितं तज्जलैः खातं (मे) तया विनिर्मितं प्रभो ! ॥६२॥
ततोमध्याह्नसमये गौरेका तृषिता नृप !। अपिबत्तत्र पानीयं तापिता तपनातपैः॥६३॥
तेनैव सर्वपापानिविनष्टानि महान्ति वै। तस्याः सूर्यसुत ! प्राज्ञ ! जलदानप्रभावतः ॥६४॥
विमुक्ता सकलैः पापैर्व्रजेन्नरायणालयम्। कृतपापा हि देवेश ब्राह्मणीयंदुराशया॥६५॥
विमुक्ता सकलैः पापैर्जलदानप्रभावतः। अयंविप्रोमहाभक्तो देवदेवस्य चक्रिणः ॥६६॥
ततोऽस्योपरि जीवेश ! प्रभुरेकोऽच्युतः स्मृतः ॥६७॥

व्यास उवाच

चित्रगुप्तस्य तद्वाक्यं समाकर्ण्य स दण्डभृत् ।
तां वेश्यां ब्राह्मणीं चापि ववन्दे ब्राह्मणं च तम् ॥६८॥

विष्णु के परम्पद में जाते हैं ॥५४॥ मनुष्य पृथिवी पर जितने अन्नों का दान करते हैं, उनके उतने ही ब्राह्मणहत्या जन्य पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५५॥ जो लोग अन्नदान करते हैं उनके पाप उनके शरीर को छोड़कर अन्नदान लेने वालों को ही लग जाते हैं ॥५६॥ इसीलिए विचक्षण पुरुष पापियों के अन्न को नहीं लेते हैं और जो लोग लेते हैं उनको ही वे पाप लग जाते हैं । हे विभो ! मैंने वेश्या के शुभ तथा अशुभ कर्मों को बतलाया अब आप ब्राह्मणी के शुभ तथा अशुभ कर्मों को सुनें ॥५७-५८॥ यह शुद्ध वंश में उत्पन्न क्षेमङ्कारी नामक ब्राह्मणी है । यह भद्र कीर्ति की पत्नी है और इसने सभी पापों को किया है ॥५९॥ इसने अपने आश्रम के आचार को त्यागकर अपनी जवानी के मद से गर्वित होकर जार पुरुषों के सङ्गम के लोभी अत्यन्त पापिनी हो गयी ॥६०॥ एक बार बच्चों के साथ अपनी बाल्यावस्था में गली में इसने चतुष्कोण गड्ढ़ा बनाया ॥६१॥ हे देव ! उसी दिन मेघ ने वर्षा किया और वह वर्षा के जल से गढ़ा भर गया जिसको इसने बनाया था ॥६२॥ हे राजन् ! उसी समय मध्याह्न की बेला में प्यासी हुयी एक गौ जो सूर्य के सन्ताप से संतप्त थी उसने उस जल को पी लिया ॥६३॥ उसी के कारण इसके महान् पाप हे यमराज! उस जल दान के प्रभाव से विनष्ट हो गये ॥६४॥ अतएव सभी पापों से रहित हे महाराज ! भगवान् नारायण के लोक में यह जाय । हे देवेश ! दुष्ट अन्तःकरण वाली पापिनी भी जल दान के प्रभाव से भगवान् नारायण के लोक में जाती है । हे महाराज ! हे ब्राह्मण ! देवदेव भगवान् विष्णु के महान भक्त हैं ॥६५-६६॥ अतएव इनके एक मात्र स्वामी श्रीभगवान् ही है ॥६७॥ **व्यासजी ने कहा—** चित्रगुप्त के

दिव्यैः सुवर्णालङ्कारै र्वस्त्रैर्नानाविधैस्तथा । तेषां पूजा यमः कृत्वाकुटुम्बीनां च जैमिने ! ॥
उवाच प्रहसन्वाक्यं सुप्रीतो मृदुलाक्षरम् ॥६९॥

यम उवाच

यूयं सर्वे महात्मानो विनष्टाखिलपातकाः । समस्तसुखदस्थानं गच्छत श्रीपतेः प्रभो ! ॥७०॥
तानारोप्य ततो दिव्ये यमः काञ्चननिर्मिते । राजहंसयुते स्थानं प्रेषयामास चक्रिणः ॥७१॥
ततोदिव्यरथारूढाः सर्वाभरणभूषिताः । पुरं भगवतो जग्मुस्ते सर्वे गतपातकाः ॥७२॥

गणिका ब्राह्मणी सा च विनष्टाऽखिलकल्मषा ।
सान्निध्यं प्राप्य देवस्य तस्थौ विप्र ! चिरं सुखम् ॥७३॥

हरिशर्माणमालोक्य समायान्तं जनार्दनः । ददौ वरासनं तस्मैस्नेहात्कनकनिर्मितम् ॥७४॥
पाद्यार्ध्याचमनीयैश्च तमभ्यर्च्य द्विजोत्तमम् । वरासनोपविष्टञ्च पप्रच्छेति मुदा हरिः ॥७५॥

श्रीभगवानुवाच

द्विजन्मन्कुशलं ब्रूहि मद्भक्तप्रवरोऽसि यत् । चिरं मे मन्दिरे तिष्ठ सर्वोपद्रववर्जिते ॥७६॥
स्नेहवाक्यं भगवतः श्रुत्वा हृष्टमना द्विजः । प्रणम्य शिरसा विष्णुमुवाच नतकन्धरः ॥७७॥

ब्राह्मण उवाच

त्वां स्मृत्वाऽपि क्षितौ देवलभते कुशलं प्रभो ! ।
त्वत्सान्निध्यं मया प्राप्तं कुशलं किमतःपरम् ॥७८॥

व्यास उवाच

एतस्य वचनं श्रुत्वा भगवान्प्रणयोदितम् । दत्तवान्निजसारूप्यं प्रीतस्तस्मै द्विजन्मने ॥७९॥

उस वाक्य को सुनकर दण्डधारी यम ने वेश्या, ब्राह्मणी और ब्राह्मण इन तीनों की वन्दना की और उन्होंने उन तीनों की दिव्य सुवर्णालङ्कारों तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों से पूजा की और प्रसन्न होकर कुटुम्बियों के सामने ही मृदु शब्दों में हँसते हुए कहे ॥६८-६९॥ आप सभी महात्मा हैं आप लोगों के पाप विनष्ट हो गये हैं आपलोग सभी प्रकार के सुख देने वाले श्रीभगवान् के लोक में जायँ ॥७०॥ उन सबों को यमराज दिव्य तथा सुवर्ण निर्मित विमान पर बैठाकर जिसमें राजहंस लगे थे ऐसे विमान से श्रीभगवान् के लोक में भेज दिये ॥७१॥ उसके बाद दिव्य रथ पर बैठे हुए तथा सभी भूषणों से भूषित निष्पाप वे सब श्रीभगवान् के धाम में चले गये ॥७२॥ वेश्या और ब्राह्मणी जिनके सब पाप विनष्ट हो गये थे श्रीभगवान् के सन्निध्य को प्राप्त करके वहाँ पर दीर्घकाल तक सुख पूर्वक रहे ॥७३॥ आते हुए हरिशर्मा को देखकर श्रीहरि उनको सुर्वण निर्मित श्रेष्ठ आसन प्रेम पूर्वक प्रदान किए ॥७४॥ पाद्य अर्घ्य तथा आचमन से उनकी पूजा करके श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए उनका श्रीहरि ने प्रेम से कुशल पूछा ॥७५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे ब्राह्मण! आप मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं आप अपना कुशल बतलायें । आप सभी उपद्रवों से रहित मेरे लोक में दीर्घकाल तक आप निवास करें ॥७६॥ श्रीभगवान् के स्नेहपूर्ण वाक्य को सुनकर प्रसन्न मन वाले वे ब्राह्मण कन्धा झुकाकर उनको प्रणाम किए ॥७७॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे प्रभो ! आपको स्मरण करके मनुष्य पृथिवी पर भी कुशल प्राप्त करता है । मैंने आपका सान्निध्य प्राप्त किया अब इससे बड़ी बात क्या होगी ?॥७८॥

ददौ तस्मैसुखंसर्वं दुर्लभं कमलापतिः। आहारमात्रं न ददौ तत्कार्पण्यं स्मरन्प्रभुः ॥८०॥
दिनद्वयान्तरे विप्रो निराहारः क्षुधाकुलः । प्रोवाच विष्णुं देवेशं विनयावनतः स्थितः ॥८१॥

ब्राह्मण उवाच

प्रभो ! प्राप्तं तवस्थानमनेकतपसां फलम् । अत्राऽपि क्षुधया नित्यं विफलोऽस्मिकथं प्रभो॥८२॥
देवकन्यागणैर्दिव्यैः संप्राप्तनवयौवनैः । श्वेतचामरवातेन मञ्चेष्वपि निवीजितः ॥८३॥
सुगन्धनां प्रसूनानां महास्त्रग्भिरलङ्कृतः। चन्दनैर्लिप्तसर्वाङ्गो राजश्रेष्ठ इव प्रभो !॥८४॥
चार्वङ्गीभिः कामिनीभिर्नित्यं मत्पुरतः प्रभो ।
गीतेननृत्यते चापिनारायण ! तवाज्ञया ॥८५॥
वासवाद्याः सुरा सर्वेरजांसिममपादयोः । शिरः किरीटशोभीनि नित्यमेव वहन्तिवै ॥८६॥
देव ! देवर्षयश्चाऽपि मुनयश्च जगत्पते !। स्तुवन्ति मांस्तवैर्नित्यं किङ्करा इव सर्वदा ॥८७॥
चतुर्बाहुरहं श्यामः शङ्खचक्रगदाब्जभृत् । प्रफुल्लपुण्डरीकाक्षः पीतवासाः सुकुण्डलः ॥८८॥
स्वर्णयज्ञोपवीती च किरीटी कुण्डली तथा ।
दृश्ये त्वमिवदेवाद्यैर्दितीयोगरुडध्वजः ॥८९॥
सुखान्येतानि दत्तानि दुर्लभानि त्वया प्रभो ! ।
ददासि कथमाहारं न मह्यं परमेश्वर ॥९०॥
क्षुधाग्निना च सुमहच्छरीरं मम दह्यते। यथैवज्वलितो वृक्षः कोटरस्थेन वह्निना ॥९१॥
सुखमेतत्त्वया दत्तं हरे ! मह्यं न रोचते। प्रज्वलनजठराग्नौतु विह्वलाङ्गाय केशव !॥९२॥

व्यासजी ने कहा— ब्राह्मण के प्रेम पूर्वक वचनों को सुनकर श्रीभगवान् प्रसन्न होकर उनको अपना सारूप्य प्रदान किए ॥७९॥ लक्ष्मीपति ने उसको समस्त दुर्लभ सुखों को प्रदान किया । उनके कार्पण्य का स्मरण करते हुए श्रीभगवान् उनको केवल भोजन नहीं प्रदान किए ॥८०॥ दो दिन के बाद भूख से व्याकुल होकर वे ब्राह्मण नम्रता पूर्वक देवेश श्रीभगवान् विष्णु से नम्रता पूर्वक कहे ॥८१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे प्रभो! अनेक प्रकार की तपस्याओं के फलस्वरूप मैंने आपके लोक को तो प्राप्त कर लिया । किन्तु यहाँ भी भूख के कारण मैं कैसे विफल हूँ ॥८२॥ हे देव ! नवीन जवानी से युक्त कन्याओ का समूह मेरी खाट पर श्वेत चामरों से मुझे हवा करती हैं ॥८३॥ मैं सुगन्धित पुष्पों की माला से अलंकृत हूँ । हे प्रभो ! श्रेष्ठ राजा के समान मेरे सारे अङ्गों में चन्दन लगे हैं ॥८४॥ हे नारायण ! आपकी आज्ञा से सुन्दर कामिनियाँ मेरे समक्ष गीत तथा नृत्य भी करती हैं ॥८५॥ इन्द्र आदि देवता मेरे चरणों की धूलि को सदा अपने किरीट से सुशोभित शिर पर धारण करते हैं ॥८६॥ हे देव ! सभी देवर्षि एवं सभी मुनिगण ! अपनी स्तुतियों से सदा मेरी स्तुति भक्तों के समान करते हैं ॥८७॥ शङ्ख, चक्र, गदा तथा कमल धारण करने वाला मैं चतुर्भुज हो गया हूँ । विकसित कमल के समान मेरे नेत्र हैं और मैं पीताम्बरधारी हूँ । मेरे सुन्दर कुण्डल हैं ॥८८॥ मेरा यज्ञोपवीत सुवर्ण सूत्रों वाला है, किरीट और कुण्डल धारण किए हुए हूँ । देवता आदि मुझको भी आपके ही समान दूसरे गरुड़ध्वज के तरह देखते हैं ॥८९॥ हे प्रभो ! आपने मुझे इन सभी सुखों को मुझे प्रदान किया है । हे परमेश्वर ! आप आहार क्यों नहीं देते हैं ॥९०॥ भूख की अग्नि

कर्मणामनसा वाचा त्वां विना जगदीश्वरम्। न पूजितो मया कश्चिद्देवदेवगणार्चितः ॥९३॥
स्वप्नेनाऽपि जगन्नाथ ! तस्य भक्तिःकृता नहि ।
आहारं केनदोषेणददासि नहि मे प्रभो ! ॥९४॥

व्यास उवाच

अथाऽसौ भगवान्विष्णुः कौतुकीसमुवाच तम् ।
गच्छब्राह्मणभद्रन्ते ब्राह्माणं प्रतिसत्वरम् ॥९५॥
इतिश्रुत्वा वचो विप्रः शीघ्रं ब्रह्माणमाययौ। ब्रह्माणं प्रतिप्रोवाच कार्पण्यं तस्य दर्शयन्॥९६॥

ब्रह्मोवाच

दुःखादुपार्जितंद्रव्यं दीयते यन्न भूसुरे। स्वयं न भुज्यते तच्च नष्टमेव न संशयः ॥९७॥
कारणं तव दुःखस्य सर्वमेव मयोदितम्। गच्छब्राह्मण ! भद्रन्ते निःसंदेहोऽयमागतः ॥९८॥

ब्राह्मण उवाच

निजकर्मविपाकोऽयं त्वत्प्रसादाच्छ्रुतोऽखिलः ।
इदानीं ब्रूहि दानानि कानि देयानि मानवैः ॥९९॥

ब्रह्मोवाच

बहूनि सन्ति दानानि तानि वक्तुं न शक्यते ।
संक्षेपात्कथ्यते विप्र निशामय समाहितः ॥१००॥
भूमिदानं द्विजश्रेष्ठ ! सर्वदानोत्तमोत्तमम्। कृतं पुण्यात्मना येन स ज्ञेयः सर्वदानकृत्॥१०१॥
गोचर्ममात्रां भूमिं यो ददाति द्विजसत्तम !। स गच्छेत्परमंस्थानं विमुक्तः सर्वपातकैः ॥१०२॥

से मेरा शरीर उसी तरह जलता रहता है जैसे खोंढरे में विद्यमान अग्नि के द्वारा वृक्ष जलता है ॥९१॥ हे हरे ! आपके द्वारा प्रदत्त सारे सुख मुझको अच्छे नहीं लगते हैं। भूख की अग्नि से हे केशव मेरे सारे अङ्ग जल रहे हैं ॥९२॥ हे जगदीश्वर ! मैंने मन, वाणी और कर्म के द्वारा आपको छोड़कर किसी भी दूसरे देवता की पूजा नहीं की है ॥९३॥ हे जगन्नाथ ! मैंने स्वप्न में भी किंसी दूसरे देवता की भक्ति नहीं की है । हे प्रभो ! किस दोष के कारण आप मुझे आहार नहीं देते हैं ॥९४॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके पश्चात् कौतुक करने वाले श्रीभगवान् ने उनसे कहा हे ब्राह्मण ! आप शीघ्र ब्रह्माजी के पास चले जाइये॥९५॥ इस बात को सुनकर वे शीघ्र ही ब्रह्माजी के पास गये । अपनी कृपणता को प्रदर्शित करते हुए वे ब्रह्माजी से कहे ॥९६॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे ब्राह्मण ! सप्रयास उपर्जित अन्न का जो दान नहीं करता है तथा जो स्वयं भी उसको नहीं खाता है वह नष्ट हो जाता है ॥९७॥ हे ब्राह्मण ! तुम्हारे दुःख का कारण मैंने तुम्हें बतला दिया । आप यहाँ से जाइये आपका कल्याण हो ॥९८॥ **ब्राह्मण ने कहा**— आपकी कृपा से मैंने अपने कर्मों का परिणाम सुन लिया । आप अब बतलायें कि मनुष्यों को किन-किन वस्तुओं का दान करना चाहिए ॥९९॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— दान तो बहुत प्रकार के हैं उन सबों को नहीं कहा जा सकता है । हे विप्र ! मैं संक्षेप में कह रहा हूँ उसे सावधान होकर सुनो ॥१००॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! भूमि का दान सर्वोत्तम है । जो पुण्यात्मा उसको करता है उसे समस्त दानों का फल प्राप्त होता है ॥१०१॥ जो गोचर्म

भूमिं सस्यसमेतां यो दरिद्राय द्विजातये। ददातिब्राह्मणश्रेष्ठ तस्य पुण्यं निशामय ।।१०३।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नारायणपुरं ब्रजेत्। तत्रभुङ्क्तेसुखंसर्वं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।१०४।।
भूयो भूमिंसमासाद्यसार्वभौमोनृपोभवेत्। चिरंभुक्त्वामहीं कृत्स्नांनरोनारायणोभेवत् ।।१०५।।
यस्माद्भूमिर्द्विजैर्ग्राह्यात्यक्त्वादानशतान्यपि । भूमिदोभूमिनेताचद्वावपिस्वर्गगामिनौ ।।१०६।।
मन्दबुद्धिर्द्विजो यस्तु भूमिदानं परित्यजेत्। प्रतिजन्मनि विप्रेन्द्र ! स भवेदतिदुखितः ।।१०७।।
अन्येभ्योऽपिसमादाय भूमिदानं य आचरेत्। तस्य विष्णुरतिप्रीतो ददाति परमंपदम् ।।१०८।।

ग्रामं यच्छति यो विप्र ! दरिद्राय द्विजातये ।
दापयत्यपि वा तस्यपुण्यं वाऽपि निशामय ।।१०९।।

यावन्तोरेणवोभूमौयावन्तो वृष्टिबिन्दवः। मन्वन्तराणितावन्ति विष्णुलोकेवसेत्सुधीः ।।११०।।

धेनुंपयस्विनीं यस्तु सवत्सां यच्छति द्विज ! ।
तस्य ब्रवीम्यहं पुण्यमाकर्णयमहात्मनः ।।१११।।
सप्तद्वीपां महीं दत्त्वाससस्यां यत्फलं लभेत् ।
तत्फलं लभते मर्त्योधेनुं यच्छन्द्विजातये ।।११२।।

ददाति वृषभं यस्तु ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। विमुक्तः पातकैस्सर्वै रुद्रलोकं स गच्छति।।११३।।
तस्ययावन्ति रोमाणि शरीरेवृषभस्य च। तावत्कल्पसहस्राणि रुद्रेण स च मोदते ।।११४।।
यस्तु वेदविदे धेनुंदद्यादुभयतो मुखीम्। न तस्य पुनरावृत्तीरुद्रलोकात्कदाचन।।११५।।

मात्रा भी भूमि का दान करता है, वह सभी पापों से रहित होकर परम पद को प्राप्त करता है ।।१०२।। जो फसल से परिपूर्ण भूमि दरिद्र ब्राह्मण को देता है उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उसे आप सुनें।।१०३।। वह सभी पापों से रहित होकर भगवान् नारायण के लोक में जाता है । वह वहाँ पर चौदह इन्द्रों के काल तथा सभी सुखों को भोगता है ।।१०४।। पुनः वह भूमि को प्राप्त करके सार्वभौम राजा होता है । दीर्घकाल तक पृथिवी का भोग करके वह मनुष्य नारायण हो जाता है ।।१०५।। चूकि ब्राह्मणों को सैकड़ों दानों को छोड़कर भूमि का दान लेना चाहिए । भूमि देने वाले और भूमि लेने वाले दोनों स्वर्ग में जाते हैं ।।१०६।। जो मूर्ख ब्राह्मण भूमि दान को नहीं लेता है हे विप्र ! वह प्रत्येक जन्मों में अत्यन्त दरिद्र होता है ।।१०७।। जो दूसरों से भी भूमिदान लेकर उसका व्यवहार करता है, उस पर भगवान् विष्णु अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे परम्पद प्रदान करते हैं ।।१०८।। हे विप्र ! जो दरिद्र ब्राह्मण को ग्राम दान करता है अथवा दिलवाता है, उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उसे आप सुनें ।।१०९।। पृथिवी पर जितने धूलिकण होते हैं अथवा वर्षा की जितनी बुन्दें होती है वह बुद्धिमान उतने मन्वन्तरों तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ।।११०।। जो दूध देने वाली गौ को बछड़े के साथ दान देता है उस महात्म को प्राप्त होने वाले पुण्यों को मैं बतलाता हूँ उसे आप सुनें ।।१११।। फसल से भरी हुयी सप्तद्वीपा पृथिवी का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल को वह ब्राह्मण गौ का दान करके प्राप्त कर लेता है ।।११२।। जो परिवार द्वारा ब्राह्मण को बैल का दान करता है वह सभी पापों से रहित होकर रुद्र के लोक में जाता है ।।११३।। उस बैल के शरीर में जितने रोएँ होते हैं वह उतने हजार कल्पों तक रुद्र के

वृषंतिलसमायुक्तं कृष्णं यस्तु प्रयच्छति। स रुद्रभवने तिष्ठेद् द्विजेन्द्र ! तिलसङ्ख्यया॥११६॥
तिलप्रमाणमपि च स्वर्णं दद्याद्द्विजातये। स याति विष्णुभवनं कुलकोटिसमन्वितः॥११७॥
यो भक्त्या रजतं यच्छेद्दरिद्राय द्विजातये। चन्द्रलोकं समासाद्य सुधापानं करोति सः॥११८॥
हीरकं मौक्तिकं चाऽपि प्रवालंचमणिंतथा। यो ददाति द्विजश्रेष्ठ ! शक्रलोकं स गच्छति॥११९॥
अश्वदानं द्विजश्रेष्ठ!यः करोति महाशयः। गन्धर्वराजराजत्वं स प्राप्नोति न संशयः॥१२०॥
ददाति वारणं यस्तु युवानं दोषवर्जितम्। देवराज्ये विभागी स भवेदिन्द्रइव द्विज ! ॥१२१॥
नरदोलाञ्च योदद्याद्ब्राह्मणाय सदक्षिणाम्। सोऽपीन्द्रपदमासाद्य वसेत्कल्पचतुष्टयम्॥१२२॥
शालग्रामशिलादानं यो ददाति द्विजातये। तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि समासेन शृणु द्विज !॥१२३॥
सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा सशैलवनकाननाम्। यत्फलं तच्च लभते शालग्रामशिलाप्रदः॥१२४॥
तुलापुरुषदानेन यत्फलं प्राप्यते नरैः। शालग्रामशिलां यच्छंस्तस्मात्कोटिगुणं लभेत्॥१२५॥
शालग्रामशिला येन प्रदत्ता द्विजसत्तम !। नूनं तेन प्रदत्तानि भुवनानि चतुर्दश॥१२६॥
तुलापुरुषदानं यः प्रकरोति नरोत्तम !। दिवि दिव्याम्बरधरश्चिरं स च महीपतिः॥१२७॥
जननीजठरे भूयस्तस्य जन्म न विद्यते। ददाति यस्तु वै कन्यां सालङ्कारां नरोत्तमः॥१२८॥
सगच्छेद्विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितः। यः कन्याविक्रयं मूढो मोहात्प्रकुरुते नरः॥१२९॥
स गच्छेन्नरकं घोरं पुरीषह्रदसञ्ज्ञकम्। विक्रीतायाश्च कन्याया यः पुत्रो जायतेद्विज !॥१३०॥

साथ आनन्दानुभव करता है॥११४॥ जो व्यायी हुयी गौ को वेदज्ञ ब्राह्मण को दान देता है। वह रुद्र लोक से कभी भी इस लोक में नहीं आता है ॥११५॥ जो तिल के साथ काले बैल का दान करता है हे द्विजेन्द्र! वह रुद्र के लोक में जितनी तिलों की संख्या होती है उतने कालतक रुद्र के लोक में निवास करता है ॥११६॥ जो तिल के भी बराबर ब्राह्मण को सुवर्ण दान देता है, वह अपने करोड़ों वंशों के साथ विष्णु लोक में जाता है ॥११७॥ जो भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को चाँदी का दान देता है वह चन्द्रमा के लोक में जाकर अमृत का पान करता है ॥११८॥ जो हीरा, मोती, मूँगा तथा मणि का दान करता है हे द्विजश्रेष्ठ! वह इन्द्र के लोक में जाता है ॥११९॥ जो महान् अन्त:करण वाला अश्व का दान करता है वह निश्चित रूप से गन्धर्व राज होता है ॥१२०॥ जो निर्दोष और युवा हाथी का दान करता है वह देवराज्य का विभाग करके इन्द्र लोक के समान हो जाता है ॥१२१॥ जो ब्राह्मण को दक्षिणा के साथ झूला दान करता है वह भी इन्द्र को प्राप्त करके वहाँ चार कल्पों तक निवास करता है ॥१२२॥ जो ब्राह्मण को शालग्राम शिला का दान करता है। हे द्विजश्रेष्ठ ! उसको प्राप्त होने वाले पुण्य को मैं संक्षेप में कहता हूँ सुनो॥१२३॥ पर्वत तथा वन से युक्त सप्तद्वीपा पृथिवी का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसी फल को शालग्राम शिला का दान करने वाला भी प्राप्त करता है ॥१२४॥ मनुष्य तुला पुरुष का दान करके जिस फल को प्राप्त करता है, शालग्राम शिला का दान करने वाले को उसके करोड़ गुणा अधिक फल मिलता है ॥१२५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिसने शालग्राम शिला का दान किया है। उसने निश्चित रूप से चौदहों भुवनों का दान कर दिया ॥१२६॥ जो मानव श्रेष्ठ तुला पुरुष का दान करता है वह दिव्य वस्त्रों को धारण किए हुए स्वर्ग में चिरकाल तक निवास करके पृथिवी पर राजा होता है ॥१२७॥ उसको

स चाण्डाल इव ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः। कन्याविक्रयिणः पुंसो मुखंपश्येन्न शास्त्रवित्॥१३१॥
पश्येदज्ञानतो वाऽपि कुर्याद्भास्करदर्शनम्। यत्किञ्चित्क्रियते कर्म कन्याविक्रयिणःपुरः ॥१३२॥
शुभं तत्सकलं कर्म गच्छैद्विफलतां द्विज ! ।
कन्याविक्रयिणो नास्ति नरकान्निष्कृतिः पुनः ॥१३३॥
कन्यादानकृतो नास्ति स्वर्गादागमनं पुनः। बहुनाऽत्र किमुक्तेन सङ्क्षेपेण ब्रवीमि ते ॥१३४॥
हीरकक्षितिकन्यानां फलं स्याच्चशताधिकम् ।
उपानहं चाऽऽतपत्रं यस्तुयच्छतिभूतले ॥१३५॥
श्रृणु तस्य तु वै पुण्यं संक्षेपेण ब्रवीमि ते ।
इह वर्षशतं जीवेत्सर्वसम्पत्समन्वितः ॥१३६॥
मृतः शक्रपुरं प्राप्य शतकल्पचतुष्टयम् । ददाति नूतनं वस्त्रं स याति परमां गतिम् ॥१३७॥
वस्त्रं पुरातनं यच्छेद्धेनुं च जरतीं तथा । कन्यां रजस्वलां यस्तु स सदा नरकं व्रजेत्॥१३८॥
फलदो मानवो विप्र ! गच्छतित्रिदशालयम् ।
भुङ्क्ते कल्पसहस्राणि फलं तत्राऽमृतोपमम् ॥१३९॥
शाकप्रदो याति विप्र ! शम्भोर्भगवतः पदम् ।
तत्र कल्पद्वयं भुङ्क्ते पायसं दुर्लभं सुरैः ॥१४०॥
दुग्धदो दधिदश्चैव धृतस्तकदस्तथा । प्राप्नोति वैसुधापानं पुरो भगवतो हरेः॥१४१॥
पुष्पदो मनुजो विप्र ! गन्धदश्च सुरालये । तिष्ठेद्युगसहस्राणि पुष्पगन्धविभूषितः ॥१४२॥

पुनः माता के गर्भ में नहीं आना पड़ता है । जो अलङ्कारों से अलंकृत कन्या का दान करता है ॥१२८॥ वह पुनरावृत्ति से रहित विष्णु लोक में जाता है । जो मूर्ख मनुष्य लोभ के कारण कन्या को बेचता है॥१२९॥ वह पुरुष भयङ्कर पुरीष हृद नामक नरक में जाता है । हे द्विज ! बेंची हुयी कन्या का जो पुत्र होता है ॥१३०॥ वह सभी धर्मों से बहिष्कृत चाण्डाल के समान होता है । शास्त्रज्ञ को कन्या बेचनें वाले का मुख नहीं देखना चाहिए ॥१३१॥ यदि अज्ञान वशात् उसको देख भी ले तो उसे सूर्य का दर्शन करना चाहिए । उस कन्या विक्रय करने वाले के समक्ष जो कुछ भी कर्म किया जाता है ॥१३२॥ वे सभी शुभ कर्म व्यर्थ हो जाते हैं । जो कन्या को बेंचता हैं वह कभी भी नरक से नहीं निकल पाता है ॥१३३॥ कन्यादान करने वाला स्वर्ग में ही सदा रहता है । तुमको बहुत क्या कहना है ? संक्षेप में बतलाता हूँ॥१३४॥ हीरा, पृथिवी तथा कन्या के दान के फल से सौ गुना फल अधिक हो जाता है जो दाता पृथिवी पर उपानह और छाता का दान करता है ॥१३५॥ उसका दान देने वाले को जिस फल की प्राप्ति होती है उसको मैं कहता हूँ । वह इस लोक में सौ वर्ष तक सभी सम्पत्तियों से समन्वित होकर जीवित रहता है॥१३६॥ मृत्यु के पश्चात् वह इन्द्र की नगरी में जाता है । और वह वहाँ चार सौ कल्पों तक निवास करता है । जो नवीन वस्त्र दान करता है वह परम गति को प्राप्त करता है ॥१३७॥ जो पुराना वस्त्र देता है बूढ़ी गायों को देता है और रजस्वला कन्या का दान करता है, वह सदा नरक में जाता है ॥१३८॥ हे विप्र ! जो मनुष्य फल का दान करता है वह स्वर्ग में जाता है । वहाँ पर अमृत के समान हजारों कल्पों तक फलों को खाता है ॥१३९॥ हे विप्र ! जो शाक का दान करता है वह शिवजी के लोक में जाता

शय्यादानं द्विजश्रेष्ठ ! यः करोति द्विजोत्तम ! ।
स ब्रह्मलोकमागत्य पर्यङ्कशयनश्चिरम् ॥१४३॥

दीपदः पीठदश्चैव सर्वपापविवर्जितः । दिव्यसिंहासनस्थश्च जलदीपावलीवृतः ॥१४४॥

ताम्बूलो नरो राजन्भुविभुङ्क्तेऽखिलंशुभम् । दिविदेवाङ्गनाक्रोडे सुप्तस्ताम्बूलमत्ति वै ॥१४५॥

विद्यादानं द्विजश्रेष्ठ ! यः करोति नरोत्तम ! ।
सम्प्राप्य सन्निधिं विष्णोस्तिष्ठेद्युगशतद्वयम् ॥१४६॥

ततो ज्ञानं समासाद्य तत्रैव द्विजसत्तम ! । प्राप्नोति दुर्लभं मोक्षं प्रसादात्कमलापतेः ॥१४७॥

अनाथं ब्राह्मणं यस्तु पाठयत्यतिदुःखितम् । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१४८॥

कुलीनोऽपि द्विजश्रेष्ठो न भाति विद्यया विना ।
तस्माद्द्विजं पाठयन्तः प्रयान्ति परमं पदम् ॥१४९॥

भुवि प्रत्यक्ष देवोऽपि ब्राह्मणो देवताश्रयः । सर्ववर्णगुरुर्नैव विद्याहीनो विराजते ॥१५०॥

संसारे यानि दानानि सन्ति हेमादिकानि च ।
तानि तेन प्रदत्तानि ब्राह्मणो येन पाठितः ॥१५१॥

कुर्यात्पुस्तकदानं यो नरो भक्तिसमन्वितः । तस्य पुण्यं द्विजश्रेष्ठ ! संक्षेपात्ते वदाम्यहम् ॥१५२॥

तत्राऽक्षराणि यावन्ति पत्रे पत्रे च पुस्तके । प्रत्यक्षरे लभतेत्पुण्यं कपिलाकोटिदानजम् ॥१५३॥

है । वहाँ पर वह दो कल्पों तक देवताओं को भी दुर्लभ पायस का भोग करता है ॥१४०॥ दुग्ध, दही, घी ओर तक्र का जो दान करता है, वह श्रीहरि के समक्ष अमृत पान करने के लिए प्राप्त करता है॥१४१॥ हे विप्र ! जो पुष्प तथा चन्दन प्रदान करता है वह देवलोक में हजारों युगों तक पुष्प तथा चन्दन से अलंकृत होकर रहता है ॥१४२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो शय्यादान करता है वह ब्रह्मलोक में आकर चिरकाल तक पर्यङ्क पर शयन करता है ॥१४३॥ दीपक तथा पीठ (चौकी) दान करने वाला समस्त पापों से रहित होकर दिव्य सिंहासन पर बैठता है तथा जल दीपावली से घिरा रहता है ॥१४४॥ हे राजन् ! ताम्बूल दान करने वाला पृथिवी पर समस्त कल्याणों को प्राप्त करता है और स्वर्ग में देवाङ्गनाओं की गोद में सोकर सदा पान खाता रहता है ॥१४५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो नरोत्तम ! विद्यादान करता है वह भगवान् विष्णु के सान्निध्य को प्राप्त करके वहाँ पर दो सौ युगों तक निवास करता है ॥१४५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके बाद वहीं ज्ञान प्राप्त करके वह लक्ष्मीपति की कृपा से देवताओं को भी दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है॥१४७॥ जो अनाथ तथा अत्यन्त दुःखी ब्राह्मण को पढ़ाता है वह पुनरावृत्ति से रहित भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१४८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! कुलीन भी ब्राह्मण विद्या के बिना नहीं सुशोभित होता है । अतएव ब्राह्मण को पढ़ाने वाले परम पद को प्राप्त करते हैं ॥१४८-१४९॥ पृथिवी पर प्रत्यक्ष देव ब्राह्मण विद्याहीन होने के कारण किसी भी वर्ण का गुरु नहीं हो सकता है ॥१५०॥ संसार में जितने भी सुवर्ण आदि के दान बतलाये गये हैं, उन सभी दानों का फल ब्राह्मण को पढ़ाने वाले ब्राह्मण को प्राप्त हो जाते हैं ॥१५१॥ जो भक्ति पूर्वक पुस्तकों का दान देता है हे द्विजश्रेष्ठ उसको प्राप्त होने वाले फल को मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥१५२॥ उन पुस्तकों के प्रत्येक पन्ने में जितने भी अक्षर होते हैं उसको उतने करोड़ कपिला गौ के दान का फल प्राप्त होता है ॥१५३॥ उन पुस्तकों को जितने दिन तक ब्राह्मण पढ़ते हैं । पुस्तक

यावद्दिनं पुस्तकं तत्प्रपठन्ति द्विजातयः । तावन्मन्वन्तरं तिष्ठेद्वैकुण्ठे पुस्तकप्रदः ॥१५४॥
एवमादीन्यनेकानि सन्तिदानानि भूसुर !। सम्यग्वक्तुं जगत्यस्मिन्कः शक्तो द्विशतैरपि॥१५५॥
ब्रह्महत्यादिपापानि क्रियन्ते यानि मानवः । हन्यन्ते तानि पापानि तस्माद्दानं समाचरेत् ॥१५६॥
आत्मपुण्येन यद्दानं दीयते च त्रिभिर्जनैः । यावद्द्रव्यं फलं तस्मात्तस्य दानस्यलभ्यते॥१५७॥
प्रीतये कमलाभर्तुर्यद्दानं दीयते जनैः । तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते नाऽत्र संशयः॥१५८॥
तस्मान्नारायणप्रीतिहेतवे मतिमान्नरः । दानं समाचरेद्विप्र ! भक्तिकर्मसमन्वितः ॥१५९॥
तपसोऽपि परं दानं निरुक्तं तत्त्वदर्शिभिः । अतो यत्नादपि प्राज्ञो दानकर्म समाचरेत् ॥१६०॥
दानं तपो द्वेअपि यः प्रकरोति नरोत्तमः । तस्य तुल्यो जगत्यस्मिन्विद्यते नहि भूसुर !॥१६१॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
सर्वदानमाहात्म्यं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

देने वाला उतने मन्वन्तर तक वैकुण्ठ में निवास करता है ॥१५४॥ हे ब्राह्मण ! इस तरह बहुत से दान हैं उन सबों को दो सौ भी लोग मिलकर नहीं कर सकते हैं ॥१५५॥ मनुष्य ब्राह्मण इत्यादि जितने भी पापों को करते हैं, वे सब दान के द्वारा विनष्ट हो जाते हैं अतएव दानों को करना चाहिए ॥१५६॥ लोगों द्वारा अपने पुण्य के कारण जो मन, कर्म और वाणी से दान दिया जाता है वह द्रव्य के बराबर फलों को प्राप्त करते हैं ॥१५७॥ जो दान श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए दिया जाता है, उसके द्वारा करोड़ों गुना फल की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है ॥१५८॥ अतएव बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह भगवान् नारायण की प्रसन्नता के लिए ही भक्ति तथा कर्म के साथ दान दे ॥१५९॥ तत्त्वदर्शी पुरुषों ने तपस्या से भी दान को श्रेष्ठ बतलाया है । अतएव प्राज्ञ पुरुष को प्रयास करके दान देना चाहिए ॥१६०॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ तपस्या और दान दोनों को करता है हे ब्राह्मण ! उसके समान इस संसार में कोई भी नहीं है॥१६१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार नामक सर्वदान माहात्म्य वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

इक्कीसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा हरिशर्मा द्विजोत्तमः। भूयोऽपि तं नमस्कृत्य भक्त्या प्राहेति जैमिने !॥१॥

हरिशर्मोवाच

प्रोक्तानि यानि दानानि सुबहूनि त्वया प्रभो ! ।
कस्मै देयानि दानानि तन्मे गदितुमर्हसि ॥२॥

ब्रह्मोवाच

सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः। तस्मै देयानि दानानि भक्तिश्रद्धासमन्वितैः॥३॥
सर्वदेवाश्रयो विप्रः प्रत्यक्षस्त्रिदशो भुवि। स तारयति दातारं दुस्तरे विश्वसागरे॥४॥

ब्राह्मण उवाच

सर्वसर्वगुरुर्विप्रस्त्वया प्रोक्त सुरोत्तम !। तेषां मध्ये तु कः श्रेष्ठः कस्मै दानं प्रदीयते॥५॥

ब्रह्मोवाच

सर्वेऽपि ब्राह्मणाः श्रेष्ठाःपूजनीयाः सदैव हि ।
स्तेयादिदोषतप्ता ये ब्राह्मणा ब्राह्मणोत्तम ! ॥६॥
अस्माकं द्वेषिणस्ते च परेभ्यो न कदाचन ।
अनाचारा द्विजाः पूज्या न च शूद्रा जितेन्द्रियाः ॥७॥
अभक्ष्यभक्षका गावो लोकानां मातरः स्मृताः ।
माहात्म्यं भूमिदेवानां विशेषादुच्यते मया ॥८॥

अन्नदान और जल दान के माहात्म्य के प्रसङ्ग में ब्राह्मण के पैर धोए हुए जल से भषक की मुक्ति और उसके पूर्वजन्म की कथा पूर्वक हरिशर्मा नामक ब्राह्मण के वृत्तान्त का वर्णन

व्यासजी ने कहा— ब्रह्माजी की वाणी सुनकर द्विजश्रेष्ठ हरिशर्मा पुनः उनको प्रणाम करके भक्ति पूर्वक कहे ॥१॥ **हरिशर्मा ने कहा—** हे प्रभो ! आपने जिन अनेक प्रदेय दानों का वर्णन किया है उन सबों को किसको देना चाहिए यह मुझे आप बतलायें ॥२॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** सभी वर्णों के गुरु ब्राह्मण होते हैं। उन सबों को ही भक्ति एवं श्रद्धा के साथ दानों को देना चाहिए ॥३॥ ब्राह्मण सभी देवताओं के आश्रय हैं, वे पृथिवी पर प्रत्यक्ष देवता हैं। वे दान करने वाले को इस दुस्तर संसार सागर से पार कर देते हैं ॥४॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे सुरोत्तम ! आपने कहा है कि ब्राह्मण सभी वर्णों का गुरु होता है। उन सबों में कौन श्रेष्ठ ब्राह्मण है जिसको दान दिया जाय ॥५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** सभी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और सदा पूजनीय हैं। चोरी आदि के दोष से रहित जो ब्राह्मण हैं वे उत्तम ब्राह्मण हैं ॥६॥ जो हमलोगों से द्वेष करते हैं किन्तु दूसरों से कभी भी द्वेष नहीं करते हैं। आचार हीन भी ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए तथा जितेन्द्रिय भी शूद्र पूजनीय नहीं हैं ॥७॥ जो ब्राह्मण अभक्ष्य भक्षण करने वाले हैं वे भी पूजनीय हैं। गौओं को लोकों की माता कहा गया है अन्त में विशेष रूप से ब्राह्मणों का माहात्म्य

तवस्नेहाद् द्विजश्रेष्ठ ! निशामय समाहितः ।
क्षत्रियाणां च वैश्यानां शूद्राणां गुरवो द्विजाः ॥९॥
अन्योन्यं गुरवो विप्राः पूजनीयाश्च भूसुराः ।
ब्राह्मणं पूजयेद्यस्तु विष्णुबुद्ध्या नरोत्तम ! ॥१०॥
आयुःपुत्रश्च कीर्तिश्च सम्पत्तिस्तस्य वर्धते। सञ्चिनोति द्विजं यस्तु मूढधीर्मानवो भुवि ॥११॥
सुदर्शनेन तच्छीर्षं हन्तुमिच्छति केशवः । पुष्पहस्तं पयोहस्तं देवहस्तं च जैमिने ! ॥१२॥
न नमेद् ब्राह्मणं प्राज्ञस्तैलाभ्यक्तस्वविग्रहम्। जलस्थं देववेश्मस्थंध्यानमज्जितचेतसम् ॥१३॥
देवूपजां प्रकुर्वन्त न नमेद् ब्राह्मणं बुधः । बहिष्क्रियां प्रकुर्वन्तं भुञ्जानं च द्विजोत्तम ! ॥१४॥
तथा सामानि गायन्तं न नमेद् ब्राह्मणं बुधः ।
ब्राह्मणा यत्र तिष्ठन्ति बहवो द्विजसत्तम ! ॥१५॥
प्रत्येकन्तुनमस्कारस्तत्र कार्यो न धीमता। कृताभिवादनं विप्र ! भक्त्या योनाऽभिवादयेत्॥१६॥
स चाण्डालसमो ज्ञेयो नाऽभिवाद्यः कदाचन ।
कृतप्रणामं तनयं नमेतां पितरौ नच ॥१७॥
कृतप्रणामाः सर्वेऽपि नमस्कार्या द्विजैर्द्विजाः ।
कृतदोषान्द्विजान्गाश्च न द्विषन्ति विचक्षणाः ॥१८॥
द्वि षन्ति वाऽपि मोहेने तेषां रुष्टः सदा हरिः ।
याचकान्ब्राह्मणान्यस्तु कोपदृष्ट्या प्रपश्यति ॥१९॥

बतलाता हूँ ॥८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपके प्रति स्नेह होने के कारण कहता हूँ सावधान होकर आप सुनें॥९॥ परस्पर में श्रेष्ठ ब्राह्मण पूजनीय हैं । जो उत्तम मनुष्य भगवान् विष्णु की बुद्धि से ब्राह्मण की पूजा करता है ॥१०॥ उसकी आयु, कीर्ति, पुत्र तथा सम्पत्ति बढ़ते हैं । जो मूर्ख मनुष्य ब्राह्मण को चुनता है॥११॥ भगवान् केशव उसके शिर को चक्र से काट देना चाहते हैं । हे जैमिने पुष्प हाथ में लिए हुए या जल लिए हुए, देवता को हाथ में लिए हुए ॥१२॥ ब्राह्मण को नमस्कार न करे तथा स्वयं तेल लगाकर भी ब्राह्मण को नमस्कार न करे । जल में, या मन्दिर में, या ध्यान मग्न ॥१३॥ या देवता की पूजा करते हुए ब्राह्मण को नमस्कार न करे । बाहर की क्रिया को करते हुए अथवा भोजन करते हुए भी ब्राह्मण को नमस्कार न करे ॥१४॥ सामगान करते हुए ब्राह्मण को नमस्कार न करे । हे द्विज श्रेष्ठ ! जहाँ पर बहुत से ब्राह्मण स्थित हों वहाँ पर बुद्धिमान व्यक्ति को प्रत्येक को अलग प्रणाम नहीं करना चाहिए। जिस ब्राह्मण को प्रणाम किया जाय वह यदि भक्ति पूर्वक अभिवादन न करे ॥१५-१६॥ उसे चाण्डाल के समान जानना चाहिए उसे कभी भी प्रणाम न करे । प्रणाम करने वाले पुत्र के सामने माता-पिता को नमस्कार नहीं करना चाहिए ॥१७॥ ब्राह्मणों के द्वारा प्रणाम किए जाने पर उन ब्राह्मणों को भी नमस्कार करना चाहिए । विज्ञ पुरुष अपराध करने वाले गौ तथा ब्राह्मण से द्वेष नहीं करते हैं ॥१८॥ यदि वे अज्ञान

सूचिप्ररोपणं तस्य नेत्रयोः कुरुते यमः। विप्रनिर्भर्त्सनं मूढा येन वक्त्रेण कुर्वते ॥२०॥
तस्मिन्वक्त्रे यमस्तप्तं लोहदण्डं ददाति वै। ब्राह्मणो यद्गृहे भुङ्क्ते तद्गृहे केशवःस्वयम् ॥२१॥
देवताः सकला ये च पितरश्च सुरर्षयः। विप्रपादोदकं यस्तु कणमात्रं बहेद् बुधः ॥२२॥
देहस्थं पातकं तस्य सर्वमेवाऽऽशु नश्यति।
कोटिब्रह्माण्डमध्येषु सन्ति तीर्थानि यानि वै ॥२३॥
तीर्थानि तानि सर्वाणि विप्रपादे तु दक्षिणे।
विप्रपादोदकैर्नित्यं सिक्तं स्याद्यस्य मस्तकम् ॥२४॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सर्वपापानि घोराणि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥२५॥
सद्यस्तस्य विनश्यन्ति विप्रपादाम्बुधारणात्। पित्रर्थं यानि तोयानि दीयन्ते विप्रपादयोः॥२६॥
गच्छन्ति विलयं सद्यो विप्रपादाम्बुधारणात्। पित्रर्थं यानितोयानि दीयन्ते विप्रपादयोः॥२७॥
तैस्तृप्ताः पितरः स्वर्गेतिष्ठन्त्याचन्द्रतारकम्।
प्रक्षाल्य विप्रचरणौ दूर्वाभिर्योऽर्चयेद् बुधः ॥२८॥
तेनाऽर्चितो जगत्स्वामी विष्णुः सर्वसुरोत्तमः।
विप्राणां पादनिर्माल्यं यो मर्त्यः शिरसा वहेत् ॥२९॥
सत्यं सत्यमहं वच्मि तस्यमुक्तिर्हि शाश्वती। विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य वन्दते यो नरोत्तमः ॥३०॥
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा। प्राप्यन्ते सर्वकामास्तु विप्राणां पादसेचनात्॥३१॥

वशात् उनसे द्वेष करते हैं तो उनसे श्रीहरि सदा रुष्ट रहते हैं याचना करने वाले ब्राह्मणों को जो क्रोध पूर्वक देखता है ॥१९॥ उसके नेत्रों में यमराज सूई डाल देते हैं। मूर्ख लोग जिस मुख से ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं ॥२०॥ उस मुख में यमराज प्रतप्त लोहे के दण्डे को डाल देते हैं। जिस घर में ब्राह्मण भोजन करते हैं, उस घर में स्वयं भगवान् केशव निवास करते हैं ॥२१॥ सभी देवता तथा पितृगण और देवर्षि भी निवास करते हैं। जो ज्ञानी मनुष्य ब्राह्मण के चरणोदक का कणमात्र भी अपने शिर पर धारण करता है ॥२२॥ उसके देह में विद्यमान सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं। करोड़ों ब्रह्मण्डों में जितने भी तीर्थ हैं॥२३॥ वे सभी तीर्थ ब्राह्मण के दाहिने पैर में निवास करते हैं। जो नित्य ही ब्राह्मण के चरणोदक से अपने शिर को सींचता है ॥२४॥ उसको सभी तीर्थों में स्नान करने और सभी यज्ञों में दीक्षित होने का फल प्राप्त होता है। सभी ब्रह्म हत्या इत्यादि भयङ्कर पाप भी ॥२५॥ ब्राह्मण के चरणोदक धारण से शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। अत्यधिक क्लेश देने वाली क्षय आदि व्याधियाँ ॥२६॥ ब्राह्मण के चरणोदक धारण करने से विनष्ट हो जाती है। पितरों के लिए जो ब्राह्मण चरणोदक दिए जाते हैं ॥२७॥ उससे तृप्त होकर पितृगण स्वर्ग में रहते हैं जब तक सूर्य्र और चन्द्रमा रहते हैं ब्राह्मण के दोनों चरणों को धोकर जो ब्राह्मण की पूजा दुर्वा से करता है ॥२८॥ उस व्यक्ति को देवताओं में श्रेष्ठ तथा जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु की अर्चना करने का फल प्राप्त होता है। विप्रों के चरण का निर्माल्य जो अपने शिर पर चढ़ाता है ॥२९॥ मैं यह परमसत्य कहता हूँ कि उसको शाश्वत मुक्ति की प्राप्ति होती है। जो मानवश्रेष्ठ ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके उसकी वन्दना करता है ॥३०॥ उसको सप्तद्वीपा वसुन्धरा की प्रदक्षिणा करने का फल

रोगीरोगात्प्रमुच्येत पापीमुच्येत पातकात्। मुच्यते बन्धनाद् बद्धो विप्राणां पादसेचनात् ॥३२॥
अनपत्याश्च या नार्यो मृतपत्याश्चया:स्त्रियः । बह्वपत्या जीववत्सा विप्रपादस्य सेचनात् ॥३३॥
माहात्म्यं शृणु विप्रेन्द्र ! सर्वपापप्रणाशनम्। द्विजाङ्घ्रिसेचनस्याऽहं समासेन ब्रवीमिते ॥३४॥
पूर्वं भद्रक्रियो नाम पवित्रकुलसम्भवः । बभूव ब्राह्मणो विष्णोः परिचर्यापरायणः ॥३५॥
वेदवित्सदयः शान्तः पितृभक्तिपरायणः। अतिथीनां पूजकश्च ज्ञातिपूजाकरस्तथा ॥३६॥
एकदा स द्विजश्रेष्ठस्तैलाभ्यक्तस्वविग्रहः । जगाम सरसीं स्नातुं गृहीतस्नानवस्त्रकः ॥३७॥
कृतस्नानः स विप्रेन्द्रो विधिना तर्पणादिकम् ।
चकार सर्वशास्त्रज्ञः सर्वलोकहिते रतः ॥३८॥
समाप्य स्नानकर्माणि हरिनामानि कीर्तयन्। आजगाम स्वके गेहे हरिपूजापरोऽभवत् ॥३९॥
पादौ प्रक्षालयामास पानीयैरतिशीतलैः ।
प्रक्षालिताङ्घ्रिहस्तोऽसौ ब्राह्मणो ब्राह्मणार्चकः ॥४०॥
स्थापयामास सर्वाणि स्नानोपकरणानि च । द्वारदेशे द्विजश्रेष्ठ ! निदाघतपनातपैः ॥४१॥
तपितो भषकः कश्चिदंग्निकल्पैः समागतः । विप्रापादोदके तस्मिन्प्रसुप्तोऽत्यन्तशीतले ॥४२॥
विप्रपादोदकस्पर्शाद्भषकोऽत्यन्तपातकी । विमुक्तः पातकैः सर्वैः कोटिजन्मकृतैरपि ॥४३॥
स सुप्तो मन्दिरद्वारि भषको विकलस्तृषा । पानीयं याचयामास ताडितो द्विजकिङ्करैः ॥४४॥

प्राप्त होता है । ब्राह्मणों के पैर धोने से सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है ॥३१॥ रोगी रोग से मुक्त हो जाता है और पापी पाप से मुक्त हो जाता है । विप्रों के पैरों को धोने से बद्ध बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥३२॥ जिस नारी की कोई सन्तान न हो अथवा जिस नारी का पति मर जाता है वह नारी क्रमशः अनेक सन्तानों वाली और जीवित पति वाली हो जाती है, यह ब्राह्मणों के पैरों के धोने का महत्त्व है॥३३॥ हे विप्र श्रेष्ठ ! सभी पापों को विनष्ट करने वाले ब्राह्मणों के पाद प्रक्षालन का माहात्म्य संक्षेप में कहता हूँ उसे आप सुनें ॥३४॥ पूर्वकाल में पवित्र वंश में उत्पन्न एक भद्रक्रिय नामक ब्राह्मण था वह भगवान् विष्णु की सेवा मे लगा रहता था ॥३५॥ वह ब्राह्मण वेदज्ञ, दयालु, शान्त, और अपने माता-पिता की सेवा में लगे रहने वाला था । वह अतिथियों और अपने दायादों की पूजा करता था ॥३६॥ एक बार वह श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने शरीर में तेल लगाकर स्नान के वस्त्रों को लेकर सरोवर में स्नान करने गया॥३७॥ सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने वाला तथा शास्त्रज्ञ वह एक बार विधि पूर्वक तर्पण इत्यादि किया ॥३८॥ वह स्नान कर्मों को करके, श्रीहरि के नामों का कीर्तन करते हुए, अपने घर आया और श्रीहरि की पूजा में लग गया ॥३९॥ ब्राह्मणों की पूजा करने वाला ब्राह्मण अत्यन्त शीतल जल से पैरों को तथा हाथों को धोकर वह ब्राह्मण गर्मी के धूप से संतप्त वह स्नान के सभी उपकरणों को अपने द्वार पर रख दिया ॥४०-४१॥ अग्नि के समान धूप से संतप्त कोई भषक आया । वह ब्राह्मण के पैरों को धोने के अत्यन्त शीतल जल में सो गया ॥४२॥ अत्यन्त पापी वह भषक ब्राह्मण के चरणोदक के स्पर्श से अपने करोड़ों जन्मों के पापों से मुक्त हो गया ॥४३॥ मन्दिर के द्वार पर सोया हुआ वह भषक प्यास से व्याकुल होकर पानी माँगा तो ब्राह्मणों के किङ्करों ने उसको मारा ॥४४॥ ब्राह्मण के चरणोदक के स्पर्श

जगाम पञ्चतां सद्यो बभूव भषको द्विजः । द्विजाङ्घ्रिसेचनस्पर्शाद्भषको वीतकल्मषः ॥४५॥
तमालोक्य महात्मानं मूर्तिमन्तमिवेश्वरम् । विनयावनतः प्राह ब्राह्मणोऽसौ तपोधनः ॥४६॥

ब्राह्मण उवाच

कस्त्वं ब्रूहि महाभाग ! केन दुःखी तु कर्मणा ।
भषकस्य कुले जातोनानादुःखसमाकुले ॥४७॥
वचनं तस्य विप्रर्षेः समाकर्ण्य महायशाः । कथयामास वृत्तान्तं मूलतः सर्वमात्मनः ॥४८॥
अहमासं सार्वभौमः शङ्खनामा महाबलः । चतुर्वर्षसहस्राणि महीं कृत्स्नामपालयम् ॥४९॥
मयाऽऽज्ञायां कृताः सर्वे जिताश्चरिपवो युधि ।
दत्तानि सर्वदानानि पालिता ज्ञातयो निजाः ॥५०॥
एकदाऽहं महाभाग ! ताडितः स्मरसायकैः ।
बलाज्जनवधूं काञ्चिज्जहार भृशसुन्दरीम् ॥५१॥
तेन पापप्रभावेण मम श्रीः संशयं गता। ततः समस्तैर्लोकैश्च निरस्तोऽहं महाबलः ॥५२॥
ततस्तु भ्रष्टराज्योऽहं काननाभ्यन्तरे स्थितः ।
क्षुधातृषापरिश्रान्तःकदाचित्पञ्चतां गतः ॥५३॥
अन्तकस्य पुरं गत्वा दुःखं भुक्तं मया चिरम् ।
तदाकर्णय विप्रन्द्र ! शृण्वतां चित्तदुःखदम् ॥५४॥
सन्तप्तलोहशस्त्रौघां तप्तां ताम्रमयींमहीम् । प्रापितोऽहं ज्वलद्वह्निशिखातितिसुभीषणाम् ॥५५॥
ततस्तु शमनादेशाल्लोहस्तम्भं सुभीषणम् ।
ज्वलता वह्निना तप्तं समालिङ्ग्य स्थितोऽस्म्यहम् ॥५६॥

से निष्पाप वह भषक शीघ्र ही मरकर ब्राह्मण हो गया ॥४५॥ उस महात्मा को मूर्तिमान परमात्मा के समान देखकर तपस्वी ब्राह्मण विनयावनत होकर कहा ॥४६॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे महाभाग ! आप कौन हैं? किस कर्म के करने से आप दुःखी हैं? और अनेक दुःखों से परिपूर्ण भषकों के वंश में उत्पन्न हुए हैं ॥४७॥ उस विप्रर्षि की वाणी को सुनकर वह महायशस्वी प्रारम्भ से अपने सम्पूर्ण वृत्तान्त को बतलाया ॥४८॥ मैं शङ्ख नाम वाला महाबलवान् पहले सार्वभौम राजा था । चार हजार वर्षों तक मैंने सम्पूर्ण पृथिवी का पालन किया ॥४९॥ युद्ध में मैंने समस्त शत्रुओं को जीतकर उन्हें अपना आज्ञा पालक बना दिया । मैंने सभी प्रकार के दानों को किया और अपने ज्ञातियों का पालन किया ॥५०॥ हे महाभाग ! मैं एक बार कामार्त होकर बल पूर्वक किसी व्यक्ति की सुन्दरी पत्नी का अपहरण कर लिया ॥५१॥ उस पाप के प्रभाव से मेरी सारी सम्पत्ति विनष्ट हो गयी उसके बाद महाबलवान् मुझको सभी लोगों ने त्याग दिया ॥५२॥ उसके पश्चात् भ्रष्ट राज्य वाला मैं वन में चला गया और भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर मैं मर गया॥५३॥ यमलोक में जाकर मैंने दीर्घकाल तक दुःखों को भोगा । हे विप्रेन्द्र ! सुनने वालों के चित्त को दुःख देने वाले मेरे उस समय के वृत्तान्त को आप सुनें । सन्तप्त लोहे के शस्त्र समूह से युक्त ताम्बे वाली भूमि पर लाया गया । जलती हुयी अग्नि की ज्वाला से वह भूमि अत्यन्त भयङ्कर थी ॥५४-५५॥ उसके बाद

अतिशीताम्बुधाराभिः सक्तोऽहं यमकिङ्करैः ।
दुःखमन्यच्च सुमहद्भुक्तं तत्र यमालये ॥५७॥

ततो नरकशेषे च जन्माऽऽसाद्य मुहुर्मुहुः। पापयोनौ मया दुःखमनुभूतं चिरं महत्॥५८॥
त्वत्पादजलसंसर्गान्मुक्तोऽहं पापरज्जुना। गच्छामि परमं धाम दुर्लभं योगिनामपि॥५९॥

त्वं मे गुरुर्द्विजश्रेष्ठ ! नमस्तेऽस्तु महात्मने ।
त्वत्प्रसादाद्विमुक्तोऽहं पापैर्यामि पुरं हरेः ॥६०॥

भद्रक्रिय उवाच

पूर्वजन्मकथा राजन्मनुष्यो न कदाचन। अतस्त्वविनयं त्यक्त्वा सर्वदा नीतिमाचरेत् ॥६१॥
नीतिग्राहीनृपो यस्तु विपत्तिर्नास्ति तस्य वै। चिरं भुनक्ति पृथिवीं कण्टकैःपरिवर्जिताम् ॥६२॥
यस्मै न रोचते नीतिर्भूपालाय दुरात्मने। भ्रष्टश्रीरचिरेणाऽपि स भवेन्नाऽत्रसंशयः ॥६३॥
आयुर्बलं यशो मित्रं विजयं सुखमिच्छता। मन्त्रिणःपण्डिता राज्ञा नियोज्याः सर्वदैवहि ॥६४॥
अवज्ञाय महीभर्तुस्त्यजन्ते ये सभां बुधाः। सभायां बुधहीनायां नीतिर्बलवती नहि॥६५॥
ततो नीतौ विनष्टायां सहसा धरणीपतेः। राजश्रियो विनश्यन्ति सकोशबलवाहनाः ॥६६॥

ब्राह्मणान्गणकांश्चैव वैद्यांश्च बान्धवांस्तथा ।
नृपाः कल्याणमिच्छन्तो न द्विषन्ति कदाचन ॥६७॥
गतश्रीर्गणकद्वेष्टा वैद्यद्वेष्टाऽऽयुवर्जितः ।
ज्ञातिद्वेष्टा निष्कुलः स्याद्दिजद्वेष्टाऽखिलार्तिभाक् ॥६८॥

यमराज की आज्ञा से मैं जलती हुयी अग्नि से संतप्त अत्यन्त भयङ्कर लोहे के स्तम्भ का आलिङ्गन करके पड़ा रहा ॥५६॥ अत्यन्त शीतल जल की धाराओं में मुझको यमदूतों ने डाल दिया। मैंने दूसरे भी महान दुःखों को यमलोक में भोगा ॥५७॥ उसके पश्चात् बचे हुए नरकों में बार-बार जन्म लेकर मैं पाप योनियों में गया हुआ मैं दीर्घ काल तक दुःखों को भी भोगा ॥५८॥ आपके चरणों के जल का स्पर्श होने के कारण मैं पाप के बन्धन से मुक्त हो गया हूँ। मैं योगियों के लिए भी दुर्लभ परम धाम में जा रहा हूँ॥५९॥ हे महात्मन् ! आप मेरे गुरु हैं आपको नमस्कार है। आपकी कृपा से मैं पापों से मुक्त हो गया और श्रीहरि के लोक में मैं जा रहा हूँ ॥६०॥ **भद्रक्रिय ने कहा—** हे राजन् ! मनुष्य अपने पूर्व जन्म की कथा को नहीं जानता है अतएव अविनय को त्यागकर सदा नीतिका का आचरण करना चाहिए ॥६१॥ नीति का पालन करने वाले राजा पर कभी विपत्ति नहीं आती है। वह शत्रु से रहित पृथिवी का दीर्घकाल तक भोग करता है ॥६२॥ जिस दुष्ट राजा को नीति अच्छी नहीं लगती है। वह निश्चित रूप से शीघ्र ही राज्य हीन हो जाता है ॥६३॥ आयु, बल, यश तथा मित्र एवं विजय का सुख चाहने वाले राजा को सदा नीतिज्ञ ही मन्त्रियों को नियुक्त करना चाहिए ॥६४॥ विद्वान राजा की सभा का अपमान करके उसका त्याग कर देते है; क्योंकि बुद्धि विहीन सभा में नीति बलवती नहीं रहती है ॥६५॥ उसके नीति के विनष्ट हो जाने पर सहसा राजा की राजश्री कोश, सेना और वाहन के साथ विनष्ट हो जाती है ॥६६॥ अपना कल्याण चाहने वाले राजागण, ब्राह्मण, ज्योतिषी, वैद्य तथा बन्धुओं से कभी भी द्वेष नहीं करते है ॥६७॥

राजानः पितरःप्रोक्ताःपुत्राः जानपदास्तथा । ततो भूप ! पालयन्ति प्रजाःपुत्रमिवौरसान् ॥६९॥
पौरलोके तथा कुर्याद्यथा स्नेहोनिजात्मजे। प्रजापीडाकरा ये च भूपाला अति पापिनः ॥७०॥
शिरःस्था विपदस्तेषां विज्ञेया दीर्घदर्शिभिः ।
विवेकिनो महीपालाः पालयन्ति यथाप्रजाः ॥७१॥
तथा तानपिदेवेशः पालयत्यनिशं हरिः । प्रजानां पालनं दण्डं द्वे च राज्ञः शुभावहे॥७२॥
द्वाम्यां विवर्जिता भूपास्ते विज्ञेया नृपाधमाः ।
दुष्टानां शासनंचैवशिष्टानांप्रतिपालनम् ॥७३॥
प्रकुर्वन्तो महिपालाश्चिरंनन्दन्ति भूतले । न्यायेनोपार्जितं वित्तं यत्नाद्रक्षेन्महीपतिः ॥७४॥
दुर्वृत्तो हि महीपालो विपत्तौ नहि विस्तरेत् ।
नृपाः कल्याणमिच्छन्तो निजराज्यशुभाशुभम् ॥७५॥
पश्यन्ति नित्यं विप्रेन्द्र ! सत्वराश्चारचक्षुषा ।
परचक्रभयं यावन्नायाति चिन्तयेद्भयम् ॥७६॥
आगते तू भये भूप आचरेन्निर्भयोऽपिच । ज्ञातौ वापि मित्रेव पुत्रेवाऽपि चमन्त्रिणि ॥७७॥
कुर्यान्मुखेन गाम्भीर्यं मनसा प्रेमकेवलम् । मन्त्रिणो ज्ञातयः पुत्राः प्रजाश्च भ्रातरस्तथा ॥७८॥
गाम्भीर्यहीनं भूपालं मन्यन्ते नहि भूपवत्। तिष्ठन्ति प्रथमं दूरे न सन्ति पुरतस्तथा॥७९॥
लोकाश्रयं न हीच्छन्ति त्यक्तगाम्भीर्यभूपतेः ।
एकश्च मन्त्री राज्ञा वैचिरं राजत्वमिच्छता ॥८०॥

राज्यहीन, ज्योतिषी से द्वेष करने वाले, वैद्य से द्वेष करने वाला आयु हीन हो जाता है; तथा बान्धवों से द्वेष करने वाला तथा ब्राह्मण से द्वेष करने वाला वंश विहीन हो जाता है तथा दुःखों का पात्र हो जाता है ॥६८॥ राजाओं को पिता कहा गया है और नागरिकों को पुत्र कहा गया है । हे राजन् ! इसीलिए राजागण प्रजाओं का अपने पुत्र के समान पालन करते है ॥६९॥ उसे अपने पुत्रों के ही समान प्राजाओं के साथ व्यवहार करना चाहिए । प्रजा को दुःख देने वाले राजा अत्यन्त पापी हैं ॥७०॥ दीर्घदर्शियों को जानना चाहिए कि ऐसे राजा के ऊपर विपत्ति आने वाली है । विवेकशील राजा जिस तरह अपनी प्रजाओं का पालन करते हैं ॥७१॥ उसी तरह से श्रीहरि भी उन राजाओं का पालन करते हैं । प्रजा का पालन करना और दण्ड देना ये दोनों राजा के लिए कल्याणकारी हैं ॥७२॥ इन दोनों से रहित राजाओं को अधम जानना चाहिए । दुष्टों को दण्ड देने वाले और शिष्ट पुरुषों का पालन ॥७३॥ करने वाले राजा दीर्घ काल तक भूमि पर सुखी रहते हैं । राजा को चाहिए कि वह प्रयास पूर्वक उपार्जित धन की सावधानी से रक्षा करे ॥७४॥ दुर्वृत्त राजा विपत्ति में नहीं बढ़ते हैं कल्याण चाहने वाले राजागण अपने राज्य के शुभ तथा अशुभ को ॥७५॥ जानते हैं और शीघ्रता से उसे उसका पता लगते हैं । राजा को चाहिए कि जब तक कोई आक्रमण नहीं होता है तब तक उससे होने वाले भय का विचार करे ॥७६॥ विपत्ति के आ जाने पर तो उसको निर्भय होकर उचित व्यवहार करना चाहिए । दायाद या मित्र या पुत्र या मन्त्रि से उसे गम्भीर रहकर ही मन से प्रेम करना चाहिए । मन्त्रीजन, दायाद, पुत्र तथा प्रजायें स्वंभ्रातागण ॥७७-७८॥ गम्भीर्य हीन राजा को राजा के समान नहीं मानते हैं । वे उससे दूरी बनाये रखते हैं, राजा के सन्निकट आते ही

कर्तव्यः सकले राज्ये वृद्धये नहि भूसुर ! ।
अत्यन्तबुद्धिवृत्तीनां भृत्यानां सपदं हरेत् ॥८१॥
तस्मात्संसदि भूपालो भृत्यमन्यं नियोजयेत्। मूर्खस्त्रीविजितो राजा गीतवाद्यरतः सदा ॥८२॥
तुरङ्गवाहनैर्हीनः सहसा विपदं व्रजेत्। आचारग्रहणं सत्यं स्ववाक्यप्रतिपालनम्॥८३॥
गाम्भीर्यं चेति भूपानां लक्षणानि द्विजोत्तम ! ।
स कथं नृपतिर्यस्तुप्रतापेन विवर्जितः ॥८४॥
स कथं नृपतिर्येनाऽनिर्जिताऽपरमेदिनी। जितायां परमेदिन्यां यावत्पादं ब्रजेन्नृपः ॥८५॥
प्रतिपादेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति चाऽक्षयम् ।
परभूमिजयाङ्क्षी हतो नृपतिभिर्युधि ॥८६॥
तदागच्छेत्परं स्थानं विमुक्तः सर्वपातकैः। युधि प्राप्तजयो राजा प्राप्नोतिपरमंपदम्॥८७॥
सङ्ग्रामे प्राप्तमृत्युर्वादिवीन्द्रसम्पदं लभेत्। त्यक्तशस्त्रं त्यक्तसत्त्वं पलायनपरायणम् ॥८८॥
योद्धारं यदि यो हान्ति स भूपो यात्यधोगतिम् ।
पलायनपरो युद्धे तद्धन्ता चद्विजोत्तम ! ॥८९॥
तिष्ठेतां तावपि स्वर्गे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपादुच्यते मया ॥९०॥
प्रजापालनकृद्राजा कदाचिन्नावसीदति ॥९१॥

ब्रह्मोवाच

इति ब्रुवति भूपाले तस्मिन् गलितकल्मषे। पुष्पवृष्टिरभूत्तस्मिन्महती गगनाद् द्विज ! ॥९२॥

नहीं है ॥७९॥ प्रजा भी उस राजा के आश्रय को नहीं प्राप्त करना चाहती हैं। दीर्घ काल तक राजा बने रहने की इच्छा वाले राजा को एक ही मन्त्री को ॥८०॥ सम्पूर्ण रूप में वृद्धि करने के लिए नहीं नियुक्त करना चाहिए। अत्यन्त बुद्धि तथा वृत्त अपनाने वाले भृत्यो की सम्पत्ति को राजा ले ले ॥८१॥ और उसी धन से राजा दूसरे भृत्य को नियुक्त करे। मूर्ख स्त्री के वश में हुआ राजा सदा गीत एवं वाद्य में रत रहता है ॥८२॥ वह अश्व तथा बाहनों से रहित होकर विपत्ति में फँस जाता है। आचार का पालन सत्य भाषण तथा अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह ॥८३॥ तथा गम्भीर्य हे द्विजोत्तम ! ये राजाओं के लक्षण है। प्रताप से रहित कोई राजा कैसे हो सकता है ?॥८४॥ वह राजा कैसे है जो अपने शत्रुओं की पृथिवी को जीत नहीं लेता है ? जिती हुयी पृथिवी पर राजा जितने डग चलता है, वह उतने ही अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है। दूसरों की भूमि को जितने की इच्छा वाला युद्ध में राजाओं द्वारा मारा जा कर ॥८५-८६॥ सभी पापों से रहित होकर परम्पद को प्राप्त करता है। युद्ध में विजयी राजा परम पद को प्राप्त करता है ॥८७॥ संग्राम में मरने वाला राजा स्वर्ग में इन्द्र की सम्पत्ति को प्राप्त करता है। साहस और शस्त्र को त्यागकर भाग जाने वाले ॥८८॥ योद्धा को जो मारता है वह राज अधोगति को प्राप्त करता है। मारने वाले और युद्ध में मरने वाले हे द्विजोत्तम ! ये दोनों तब तक स्वर्ग में रहते हैं जब तक कि सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। इस विषय में बहुत अधिक क्या कहना हैं मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥८९-९०॥ प्रजाओं का पालन करने वाला राजा कभी भी दुःखी नहीं होता है ॥९१॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** निष्पाप उस राजा

अथ दूताः समायाताः केशवस्य महात्मनः ।
राजहंसयुतं दिव्यं रथमादाय सुन्दरम् ॥९३॥

रथं स तं समारुह्य दिव्यं कनकनिर्मितम् । जगाम विष्णुभवनं स राजा गतकल्मषः ॥९४॥

विप्रपादोदकस्यैतन्माहात्म्यं ते प्रकीर्तितम् । यच्छ्रुत्वा भक्तिभावेन नरो निर्वाणमाप्नुयात् ॥९५॥

इति ते कथितं सर्वं श्रोतुं यद्वाञ्छितं त्वया ।
गच्छ ब्राह्मण ! भद्रं ते चक्रिणो निलयं प्रति ॥९६॥

हरिशर्मोवाच

क्षुधानलेन महता शरीरं मम दह्यते । केनोपायेन भगवन्क्षुधाशान्तिर्भवेन्मम ॥९७॥

एतन्मे वद देवेश ! भक्तस्य भक्तवत्सल। प्राप्नोमि सुमहद्दुःखं नित्यं दग्धक्षुधानलैः ॥९८॥

ब्रह्मोवाच

यच्छरीरं त्वया पुष्टं सततं भोजनैःकृतम् । भुङ्क्ष्व तस्य शरीस्य मांसानि द्विजसत्तम ॥९९॥

आत्मतृप्तिं प्रकुर्वन्ति भोजनेन परस्य ये । मांसानि स्वशरीराणां भुञ्जते ते परत्र हि ॥१००॥

व्यास उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा निष्ठुरं द्विजसत्तमः । पुनस्तुष्टाव तं देवं वचनैःकोमलाक्षरैः ॥१०१॥

ब्राह्मण उवाच

प्रसीद देवदेवेश शरणागतपालक !। क्षमस्व सकलं दोषं सुरश्रेष्ठ नमोऽस्तुते ॥१०२॥

मलमूत्रप्रकीर्णानि वपूंषि वहतां नृणाम् । सर्व एव प्रभो दोषाः सन्ति केचिद्गुणा न च॥१०३॥

कृतं मया मोहवता दूषणं क्षन्तुमर्हसि । शरणापन्नलोकानां सद्भिर्दोषो न चेक्ष्यते ॥१०४॥

को इस तरह से कहने पर हे देवि ! आकाश से बहुत अधिक पुष्पों की वर्षा हुयी ॥९२॥ उसके पश्चात वहाँ भगवान् केशव के दूत आये वे राजहंस से युक्त सुन्दर विमान लेकर आये थे ॥९३॥ वह दिव्य तथा सुवर्ण निर्मित रथ पर चढ़कर निपाप राजा भगवान् विष्णु के लोक में चला गया ॥९४॥ इस तरह से मैंने तुमको ब्राह्मण के चरणोदक का माहात्म्य सुनाया । उसको भक्ति भाव से सुनकर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥९५॥ इस तरह से तुमने जो सुनना चाहा था उसे मैंने कह दिया हे ब्राह्मण जाओ । तुम्हारा कल्याण हो तुम भगवान् के लोक में जाओ ॥९६॥ **हरिशर्मा ने कहा—** मेरा शरीर भूख के कारण अत्यन्त सन्तप्त होता रहता है । हे भगवान् किस उपाय से मेरे भूख शान्ति होगी ॥९७॥ हे भक्त वत्सल! देवेश भगवन् ! हे केशव ! आप इसी बात को मुझे बतलाइये । मैं सदा भूख की अग्नि से सदैव अत्यन्त दुःख भोगता हूँ ॥९८॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** तुमने सदा भोजन करके जिस शरीर को पुष्ट किया है हे द्विज श्रेष्ठ ! उसी शरीर के मांसों को तुम खाओ ॥९९॥ जो लोग दूसरे के भोजन से अपनी आत्मा की तृप्ति करते है वे परलोक में अपने शरीर के ही मांसों को खाते हैं ॥१००॥ **व्यासजी ने कहा—** ब्रह्माजी के निष्ठुर वचन को सुनकर वे फिर अपने कोमल वचनों से उनकी स्तुति किए ॥१०१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे शरणागत पालक ! देवदेवेश आप प्रसन्न होइये । हे सुरश्रेष्ठ आपको नमस्कार है । आप मेरे समस्त अपराधों को क्षमा करें ॥१०२॥ मल एवं मूत्र से भरे हुए शरीर को धारण करने वाले मनुष्यों में सभी दोष

आत्मदेहस्य मांसानि भोक्तुं ब्रह्मन्न शक्यते। देहिनां वद यद्योग्यं संतुष्टिर्जायते यतः ॥१०५॥
इत्येवमुक्तं वचनं भक्त्या तेनाऽग्रजन्मना। उवाच सदयो ब्रह्मा सर्वज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥१०६॥

ब्रह्मोवाच

शोकं मा कुरु विप्रेन्द्र ! शृणु मे वचनं शुभम् ।
आहारो लभते येन प्रकारेणाऽत्रसम्प्रति ॥१०७॥
आत्मनो जायते पुत्रो यथैवाऽऽत्मा तथा सुतः ।
तस्मात्पुत्रकृतं कर्म लभन्ते पितरःखलु ॥१०८॥
चिरं तिष्ठसि देवस्य भवनेऽत्यन्तशोभने। एवमुक्तस्ततस्तेन स विप्रः क्षुधयाकुलः ॥
स्वप्ने संदर्शनं दत्त्वा पुत्रं वचनमब्रवीत् ॥१०९॥

ब्राह्मण उवाच

दीक्षितोऽसि सुतश्रेष्ठ तथाऽस्तु परमं शिवम् ।
तवाऽस्मि जनकःसौम्य ! ममदुःखं निशामय ॥११०॥
तपः प्रभावैः परमं धामप्राप्तं मयासुत !। क्षुधानलेन संतप्तस्तत्र सीदाम्यहं सदा॥१११॥
यदा मयि पितृस्नेहस्तवाऽस्ति सुत ! सम्प्रति ।
तदान्नमुदकं चाऽपि मदर्थं दीयतां द्विज ! ॥११२॥
यत्किञ्चिद्दीयते पुत्रैः पित्रर्थं क्षितिमण्डले। लभन्ते पितरस्तच्च यत्पुत्राः पितृदेहजाः ॥११३॥
पुरा परमया भत्तया पूजितो भगवान्मया। गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च स्तवपाठैश्च शोभनैः ॥११४॥
गन्धैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्घृतपूर्णप्रदीपकैः। पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च ध्यानैरावाहनादिभिः ॥११५॥

ही होते हैं उनमें कोई भी गुण नहीं होता है ॥१०३॥ अज्ञानी मैंने पाप किया है उसको आप क्षमा करें। सज्जन पुरुष शरणागत जीवों के दोषों को नहीं देखते हैं ॥१०४॥ हे ब्रह्मन ! अपने देह के मांसों को नहीं खाया जा सकता है । आप बतलायें कि शरीर धारियों की सन्तुष्टि कब होती हैं ॥१०५॥ उस ब्राह्मण के द्वारा भक्ति पूर्वक इस तरह से कहे जाने पर सर्वज्ञ दयालु तथा ब्राह्मण प्रिय ब्रह्माजी ने कहा ॥१०६॥ **ब्रह्माजी बोले—** हे विप्रेन्द्र ! शोक न करो मेरी बात सुनो, जिससे कि यहाँ पर आहार मिलता है॥१०७॥ पुत्र आत्मा से उत्पन्न होता है । अतएव आत्मा और पुत्र दोनों एक समान होते हैं । इसीलिए पुत्र के द्वारा किए गये कर्म को पितृगण प्राप्त करते हैं ॥१०८॥ तुम दीर्घकाल तक देवेश के अत्यन्त सुन्दर भवन में रहते हो । इस तरह से ब्रह्माजी के कहने पर भूख से व्याकुल वह ब्राह्मण अपने पुत्र को स्वप्न में दर्शन देकर कहे ॥१०९॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे पुत्र ! तुम दीक्षित हो, तुम्हारा परम कल्याण हो । हे सौम्य! मैं तुम्हारा पिता हूँ तुम मेरे दुःख को सुनो ॥११०॥ पुत्र मैंने तपस्या के प्रभाव से परम धाम को प्राप्त किया है । किन्तु वहाँ भी मैं भूख की अग्नि से सन्तप्त रहता हूँ ॥१११॥ हे पुत्र ! यदि तुमको मुझसे प्रेम है तो तुम मेरे लिए ब्राह्मण को अन्न और जल का दान दो ॥११२॥ पुत्रगण पृथिवी पर जो कुछ भी पिता की तृप्ति के लिए दान करते हैं । उसे पितृगण इस लिए प्राप्त करते हैं कि पुत्र पिता से उत्पन्न होते हैं ॥११३॥ पूर्वजन्म में मैंने भगवान् की भक्ति पूर्वक पूजा गीत, वाद्य, नृत्य तथा स्तोत्र पाठ से की॥११४॥

न दत्तं जगदीशाय कृपणेन मयाऽऽत्मज ! ।
अन्नमात्रमपि क्वाऽपि नैवेद्यं पापहारिणे ॥११६॥
अतिथेर्न कृतापूजा तोयैरन्यैः कदाचन । ज्ञातीनां याचकानां च संतुष्टिर्न कृता मया ॥११७॥
तेनैव कर्मणा पुत्र नारायणगृहेऽपि च। क्षुधानलेनसन्तप्तः सीदामि प्रतिवासरम्॥११८॥
अतोऽन्नतोयदानानि दरिद्राय द्विजातये ।
दत्त्वा क्षिप्रं द्विजश्रेष्ठ ! प्राणरक्षां कुरुष्व भोः ॥११९॥
अथवा न करोषि त्वं निष्ठुरत्वादिदं यदि । स्वमांसान्येव भोक्ष्यामि तदा वै विष्णुमन्दिरे॥१२०॥
अथाऽऽसौ क्षुधितो विप्रः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
इत्युक्त्वा दीक्षितं पुत्रमदृश्यः सहसाऽभवत् ॥१२१॥
ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे। स्वप्ने यदुक्तं पित्रा तु चिन्तयामास दीक्षितः॥१२२॥
आत्मनः कर्मदोषेण परलोकेऽपि मत्पिता । क्षुधया दग्धसर्वाङ्गः सीदति प्रतिवासरम्॥१२३॥
धिगस्तु मां मन्दधियं कृपणप्रवरं जनम्। मयाऽपि पितृपुण्येन न किञ्चिदपि दीयते ॥१२४॥
इति सञ्चिन्त्य बहुधा दीक्षितोऽपि द्विजोत्तम ! ।
ददौ दानानि विप्रेभ्यःश्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥१२५॥
तेन पुण्यप्रभावेन तृषया रहितः क्षुधा। तस्थौ नारायणागारेयावत्कालं श्रृणुष्व तत् ॥१२६॥
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणोऽहः प्रकीर्तितम् । भवन्ति तस्मिन्नेवाऽह्नि मनवश्च चतुर्दश॥१२७॥
इन्द्राश्चतुर्दशप्रोक्तास्तस्मिन्नेव दिने च ते । भुञ्जते ब्राह्मणश्रेष्ठ विषयान्स्वान्पृथक्पृथक् ॥१२८॥

गन्ध, चूर्ण, नैवेद्य तथा घृत पूर्ण दीपक से तथा पाद्य, अर्घ्य, आचमन ध्यान तथा आवाहन से की॥११५॥ हे पुत्र ! कृपण मैंने पाप विनाशक श्रीभगवान् को अन्न का नैवेद्य नहीं प्रदान किया ॥११६॥ न तो मैंने अतिथि की पूजा की और न किसी दूसरे को अन्न दिया । मैंने अपने ज्ञातियों और याचकों को कभी सन्तुष्ट नहीं किया ॥११७॥ हे पुत्र ! उसी कर्म के कारण भगवान् नारायण के गृह में भी भूख की अग्नि से संतप्त होकर प्रतिदिन कष्ट में रहता हूँ ॥११८॥ इसलिए किसी दरिद्र ब्राह्मण को तुम, अन्न और जल दान करे । हे द्विजश्रेष्ठ ! शीघ्र दान करके मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥११९॥ यदि निष्ठुर होने के कारण तुम नहीं करोगे तो मैं अपने मांसों को ही विष्णु लोक में खाऊँगा ॥१२०॥ उसके पश्चात् भूख से व्याकुल होने के कारण सूखे कण्ठ, ओष्ठ और तालु वाले वे ब्राह्मण इस तरह से अपने पुत्र को कहकर अचानक अदृश्य हो गये ॥१२१॥ इसके बाद प्रातःकाल होने पर उस दीक्षित पुत्र ने पिता ने जो स्वप्न में कहा था उस पर विचार किया ॥१२२॥ अपने ही कर्मों के दोष के कारण मेरे पिता परलोक में भी भूख से व्याकुल होकर प्रतिदिन दुःखी रहते हैं ॥१२३॥ मुझ मूर्ख तथा श्रेष्ठ पुत्र को भी धिक्कार है कि मैं भी पुण्य करके अपने पिता को कुछ भी नहीं देता हूँ ॥१२४॥ इस तरह से बहुत विचार करके दीक्षित भी वह भक्ति तथा श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों को अनेक प्रकार का दान दिया ॥१२५॥ उस पुण्य के प्रभाव से वह भूख तथा प्यास से रहित होकर ब्राह्मण विष्णु लोक में जितने दिनों तक रहा उसे तुम सुनो ॥१२६॥ चार हजार युगों का ब्रह्माजी का एक दिन बतलाया गया है । उस एक-एक दिन में चौदह मनु होते हैं और

एकस्मिन्ब्रह्मदिवसे भुक्तवा स्वान्विषयाञ्छुभान् ।
इन्द्राश्च मनवश्चैव विनश्यन्ति चतुर्दश ।।१२९।।
विष्णुलोके स्थिते तस्मिन्हरिशर्मणि भास्वरे ।
समस्तसुखदे रम्ये ब्रह्मणो दिवसो गतः ।।१३०।।
तत्राऽसौ कालमेतावद्भुक्तवा भोगान्मनोरमान् ।
परमं ज्ञानमासद्य प्रविवेश हरेस्तनुम् ।।१३१।।

व्यास उवाच

अन्नतोयसमं दानं संसारे नास्ति जैमिने ! । सर्वदानफलान्येव अन्नतोयप्रदानतः ।।१३२।।
न च पात्रपरीक्षा च न कालनियमः क्वचित् ।
अन्नतोयप्रदानेषु निरुक्तस्तत्त्वदर्शिभिः ।।
अन्नतोयप्रदायानि कर्तव्यानि सदैव हि ।।१३३।।
एतत्पठन्ति मनुजाः परमादरेण माहात्म्यमन्नजलयोश्च तथा द्विजानाम् ।
ते प्राप्य चान्नजलदानफलं ततोऽन्ते नारायणस्यनिलयं सुखदं प्रयान्ति ।।१३४।।

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
अन्नदानजलदानमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

उसी दिन भर में चौदह इन्द्र भी होते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ वे अलग-अलग अपने राज्य का भोग करते हैं ।।१२७-१२८।। ब्रह्माजी के एक ही दिन में अपने-अपने राज्यों का भोग करके चौदहों मनु और चौदहों इन्द्र मर जाते हैं ।।१२९।। समस्त सुख देने वाले मनोहर इस देदीप्यमान विष्णुलोक मे गये हुए विष्णुशर्मा को ब्रह्माजी का एक दिन बीत गया ।।१३०।। उतने समय तक वे वहाँ मनोहर भोगों को भोगकर परम ज्ञान प्राप्त करके श्रीहरि के शरीर में प्रवेश कर गये ।।१३१।। **व्यासजी ने कहा**— अन्न तथा जल के दान के समान कोई भी दान नहीं है । अन्न और जल के दान से सभी दानों का फल प्राप्त हो जाता है ।।१३२।। इसमें न तो पात्र की परीक्षा की जाती है और न किसी काल का नियम है । यह अन्न और जल के दान के विषय में तत्त्वज्ञों ने कहा है । अन्न और जल का दान सर्वदा करना चाहिए ।।१३३।। ब्राह्मणों को अन्न तथा जल के दान से सम्बन्धित इस अध्याय की जो मनुष्य अत्यन्त आदर पूर्वक पढ़ते हैं वे अन्न और जल के दान के फल को प्राप्त करके अन्त में सुख पूर्वक विष्णु लोक में जाते हैं ।।१३४।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के अन्नदान तथा जलदान के माहात्म्य वर्णन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

बाइसवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच

गङ्गायाः शुभमाहात्म्यं विष्णुपूजाफलं तथा । अन्नदानस्य माहात्म्यं जलदानस्य चोत्तमम् ॥१॥
विप्रपादोदकस्याऽपि माहात्म्यं पापनाशनम् । त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं सर्वं सेतिहासं गुरो ! मया ॥२॥
इदानीं मुनिशार्दूल ! श्रोतुमिच्छामि सादरम् ।
एकादश्याः फलं सर्वं सर्वपातकनाशनम् ॥३॥
कस्मादेकादशी श्रेष्ठा तस्याः को वा विधिः स्मृतः ।
कदा च क्रियते किं वा फलं तस्या वदस्व मे ॥४॥
कावा पूज्यतमा तत्र देवता सद्गुणार्णव !। अकुर्वतःस्यात्को दोषस्तन्मे वक्तुमिहाऽर्हसि ॥५॥

व्यास उवाच

एकादश्याः फलं सर्वं वक्तुं नारायणादृते । शक्नोति नान्यो विप्रर्षे ! तस्माद्वच्मि समासतः ॥६॥
सृष्ट्वाऽऽदौ पुरुषश्रेष्ठः संसारं सचराचरम् ।
सर्वेषां दमनार्थाय सृष्टवान्पापपूरुषम् ॥७॥
द्विजाति हत्यामूर्धानं मदिरापानलोचनम् । स्वर्णस्तेयं च वदनं गुरुतल्पगतिः श्रुतिः ॥८॥
स्त्रीहत्यानासिकं चैव गोहत्या दोषबाहुकम् । न्यासापहरणग्रीवं भ्रूणहत्यागलं तथा ॥९॥
परस्त्रीगतिबुक्काग्रं सुहृल्लोकवधोदरम् । शरणापन्नहत्यादिनाभिगर्तावधिंकटिम् ॥१०॥
गुरुनिंदासक्थिभागं कन्याविक्रयशेफसम् । विश्वासवाक्यकथनं पायुं प्रीतिवधाङ्गिकम् ॥११॥

एकादशी के श्रेष्ठत्व के प्रतिपादन पूर्वक उसके व्रत की विधि तथा फल का वर्णन

जैमिनि महर्षि ने कहा— हे गुरो ! आपकी कृपा से मैंने गङ्गा का माहात्म्य, विष्णु भगवान् की पूजा का फल, उत्तम अन्न तथा जल दान का माहात्म्य, ब्राह्मण के चरणोदक का पाप विनाशक माहात्म्य सुना ॥१-२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस समय मैं एकादशी के सर्व पाप विनाशक फल के आदर पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥३॥ एकादशी किस कारण से श्रेष्ठ है और उसकी विधि क्या है ? उस व्रत को कब करना चाहिए तथा उसका फल क्या है ? इसे आप मुझे बतलाइये ॥४॥ हे सद्गुणार्णव उस व्रत के देवता कौन है ? आप यह भी बतलायें कि एकादशी व्रत नहीं करने वाले को कौन सा दोष होता हैं ?॥५॥ **व्यासजी ने कहा—** हे विप्रर्षे ! एकादशी के सम्पूर्ण फल को भगवान् नारायण से भिन्न कोई भी नहीं कह सकता है, अतएव उसे मैं संक्षेप में कहता हूँ ॥६॥ पुरुष श्रेष्ठ परमात्मा ने प्रारम्भ में संसार की सृष्टि करके सबों का दमन करने के लिए पाप पुरुष की रचना की ॥७॥ ब्राह्मण की हत्या ही उसका शिर है, मदिरा पान उसके नेत्र है, सुवर्ण चुराना ही उसका मुख है तथा गुरु की शय्या पर जाना ही उसके कान हैं ॥८॥ स्त्री की हत्या ही उस पाप पुरुष की नाक है, गोहत्या जन्य पाप उसकी भुजाएँ हैं । घरोहर को हड़पना ही उसका कण्ठ है तथा भ्रूण हत्या पाप पुरुष की गला है ॥९॥ परस्त्री गमन ही उसका ठुढी है मित्र को मारना ही उसका पेट है । शरणागत को मारना नाभि से लेकर कमर पर्यन्त है ॥१०॥ गुरु की निन्दा ही

उपपातकरोमाणं महाकार्यं भयङ्करम्। कृष्णवर्णपिङ्गनेत्रं स्वाश्रयात्यन्तदु:खदम्॥१२॥
तं दृष्ट्वा पापपुरुषमत्युग्रं पुरुषोत्तमः। सदयश्चिन्तयामास प्रजाक्लेशहरः प्रभुः॥१३॥
सृष्टोऽयं दुर्जन क्रूरःस्वाश्रयक्लेशदायकः। प्रजानां दमनार्थाय सृजाम्येतस्य कारणम्॥१४॥
अथाऽसौ भगवान्विष्णुर्बभूव स्वयमन्तकः। ससर्ज रौरवादींश्च निरयान्पापिदु:खदान्॥१५॥
पापं यः सेवते मूढो न याति परमं पदम्। यमाज्ञया व्रजेत्तत्र नरकं रौरवादिकम्॥१६॥

एकदा भगवान्विष्णुः प्रजानां दु:खनाशनः।
वैनतेयं समारुह्य जगाम यममन्दिरम्॥१७॥

तं दृष्ट्वा जगतामीशं नारायणमनामयम्। धूपाद्यैः पूजयामास भास्करिस्तुष्टमानसः॥१८॥

यमेनाऽभ्यर्चितो विष्णुः सर्वलोकैकनायकः।
उवास द्विजशार्दूल ! पीठे कनकनिर्मिते॥१९॥

तत्रोपविष्टो भगवान्यमेन सह दैत्यहा। शुश्राव क्रन्दनध्वानं दक्षिणस्यां दिशि प्रभो !॥२०॥

अथाऽसौ कमलाकान्तो विस्मयाविष्टमानसः।
उवाचेति यमं केषां कुतोऽयं क्रन्दनध्वनिः॥२१॥

यम उवाच

देव ! पातकिनो मर्त्या निरयेऽन्यन्तदु:खदे। स्वहस्तार्जितदोषेण सीदन्ति च यमाऽऽलये॥२२॥
पापवृक्षफलंविष्णो ! भोक्तुमत्यन्तदु:खदम्। रुदन्ति पापिनस्तस्मात्तेषां ध्वनिरसौ महान्॥२३॥

उसका पृष्ठभाग है, कन्या का विक्रय ही पाप पुरुष का शेफस है। विश्वास के वाक्य को कह देना ही उसका पायुभाग है। प्रीति का वध ही उसका शरीर हैं॥११॥ उप पातक ही उसके रोम हैं और वह पाप पुरुष विशाल काय तथा भयङ्कर है। उसका रङ्ग काला है और नेत्र पीले हैं। वह जिसको लग जाता है उसको दु:ख देता है॥१२॥ उस अत्यन्त भयंकर पाप पुरुष को देखकर भगवान् दया युक्त, प्रजाओं के कष्ट को दूर करने वाले श्रीभगवान् पुरुषोत्तम विचार किए॥१३॥ इस दुष्ट क्रूर तथा अपने आश्रय को कष्ट देने वाले इसकी रचना मैंने प्रजाओं का दमन करने के लिए की है॥१४॥ उसके बाद वे श्रीभगवान् स्वयं ही यमराज हो गये और दु:ख देने वाले रौरव आदि नरकों की भी सृष्टि किए॥१५॥ जो मूर्ख पाप का सेवन करता है वह परमगति को नहीं प्राप्त करता है। वह यम की आज्ञा से रौरव आदि नरकों में जाता है॥१६॥ एक बार प्रजा के कष्ट को दूर करने वाले भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़कर यमलोक में गये॥१७॥ संसार के स्वामी अनामय उन भगवान् नारायण को देखकर प्रसन्न होकर यम प्रसन्न मन से श्रीभगवान् की धूप आदि से पूजा किए॥१८॥ यम के द्वारा पूजित तथा सम्पूर्ण संसार के स्वामी भगवान् विष्णु सुवर्ण निर्मित सिंहासन पर बैठे॥१९॥ दैत्यों को मारने वाले भगवान् वहाँ बैठकर यमराज के साथ दक्षिण दिशा में रोने की ध्वनि को सुने॥२०॥ उसके पश्चात् आश्चर्यित श्रीभगवान् यम से पूछे यह किसकी रोने की ध्वनि है और कहाँ से आ रही है॥२१॥ **यम ने कहा—** हे देव ! अत्यन्त दु:ख देने वाले नरक में अपने हाथ से किए गये पाप के कारण पापी पुरुष यमलोक में कष्ट भोगते हैं॥२२॥ वे अपने पाप रूपी वृक्ष के अत्यन्त दु:ख देने वाले फल को भोगने के कारण रो रहे हैं, वहीं से यह ध्वनि आ रही

इत्युक्तः सूर्यपुत्रेण कृष्णः कमललोचनः। जगाम सहसा यत्र पापवन्तो रुदन्ति ते॥२४॥

तान्दृष्ट्वा पापिनो मर्त्यान्नौरवादिषु संस्थिताम् ।
भगवांश्चिन्तयामास हृदि जातदयःप्रभुः ॥२५॥
मया सृष्टाः प्रजाः सर्वादोषेण निजकर्मणाम् ।
मयि स्थितेऽपि नरके सीदन्त्येकान्तदुःखदे ॥२६॥
एतच्चाऽन्यच्च विप्रेन्द्र ! विचिन्त्य करुणामयः ।
बभूव सहसा तत्र स्वयमेकादशीतिथिः ॥२७॥

ततस्तान्पापिनः सर्वान्कारयामास तच्छुतम् । ते च सर्वे परं धाम ययुर्गलितकल्मषाः ॥२८॥
तस्मादेकादशीं विष्णोमूर्तिंविद्धि परात्मनः। समस्तदुष्कृतिध्वंसि व्रतानां व्रतमुत्तमम्॥२९॥
एकदशीं तिथिं कृत्वा पावयन्ती जगत्त्रयम्। शङ्कितः पापपुरुषो विष्णुं स्तोतुमुपाययौ ॥३०॥

ततो बद्धाञ्जलिर्भक्त्या स पापपुरुषो द्विज ! ।
तुष्टाव कमलाकान्त भगवन्तं जनार्दनम् ॥३१॥
तस्य स्तवं समाकर्ण्य प्रसन्नः परमेश्वरः ।
उवाचाऽहं प्रसन्नोऽस्मि किन्तेऽभिमतमुच्यताम् ॥३२॥

पापपुरुष उवाच

सृष्टो भगवता विष्णो ! निजानुग्रहदुःखदः। एकादश्याःप्रभावेण क्षयं प्राप्नोमि साम्प्रतम्॥३३॥
मृते मयि जगत्यस्मिन्सर्वे ते च शरीरिणः। भविष्यन्ति विनिर्मुक्ता भवबन्धैः शरीरिणः ॥३४॥
सर्वेषु च विमुक्तेषु देहि श्रेष्ठेषु पूरुष ! । संसारकौतुकागारे कैस्त्वं क्रीडिष्यसे प्रभो ! ॥३५॥

हैं॥२३॥ इस तरह से सूर्य पुत्र के कहने पर कमलनयन भगवान् जहाँ पर पापी पुरुष रो रहे थे वहाँ गये॥२४॥ उन रौरव आदि नरकों में विद्यमान उन पापी मनुष्यों को देखकर हृदय में दया उत्पन्न हो जाने के कारण विचार किए ॥२५॥ मेरे द्वारा सृजित अपने कर्मों के दोष के कारण प्रजायें मेरे रहते हुए भी नरक में कष्ट का अनुभव कर रही हैं ॥२६॥ हे व्रिपेन्द्र ! इस बात को तथा दूसरी बातों को विचार करके करुणामय श्रीभगवान् सहसा स्वयम् एकादशी तिथि बन गये ॥२७॥ उसके पश्चात् उन सभी पापियों को वे उसे बतला भी दिये । वे पापी भी पापों के विनष्ट हो जाने से परंधाम में चले गये ॥२८॥ अतएव एकादशी को परमात्मा की मूर्ति समझो । यह व्रत सभी पापों को विनष्ट करने वाला तथा सभी व्रतों में उत्तम हैं ॥२९॥ त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली एकादशी तिथि का निर्माण करने पर भयभीत होकर पाप पुरुष होकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने के लिए गया ॥३०॥ हे द्विज ! पाप पुरुष भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दन की स्तुति किया ॥३१॥ उसकी स्तुति को सुनकर प्रसन्न हुए श्रीभगवान् कहे कि मैं प्रसन्न हूँ बतलाओं तुम क्या चाहते हों ?॥३२॥ **पाप पुरुष ने कहा**— हे विष्णो ! आपने कृपा करके दुःख देने वाले मेरी सृष्टि की । किन्तु एकादशी के प्रभाव से इस समय मेरा क्षय हो रहा है॥३३॥ मेरे मर जाने पर संसार के सभी शरीरधारी संसार के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे ॥३४॥ हे प्रभों! सभी शरीरधारियों में श्रेष्ठ पुरुष सबों के मुक्त हो जाने पर इस संसार रूपी लीला गृह में आप किसके साथ

क्रीडितुं यदि ते वाञ्छा जगत्कौतुकमन्दिरे। एकदशीतिथिभयात्तदा मां त्राहि केशव ! ॥३६॥

अन्यैः पुण्यसहस्रैस्तु मां हन्तुं नहि शक्यते ! ।
शक्नोत्येकादशी पुण्या मां हन्तुं वरदो भव ॥३७॥

मनुष्यपशुकीटेषु तथाऽन्येषु च जन्तुषु। पर्वतेषु च वृक्षेषु स्थानेषु च जलेषु च ॥३८॥

नदीषु च समुद्रेषु वनेषु प्रान्तरेषु च। स्वर्गे मर्त्ये च पाताले देवगन्धर्वपक्षिषु ॥३९॥

एकादशीतिथिभयाद्भयान्विष्णो ! पलायितः ।
कुत्राऽपि निर्भयस्थानं न च तेन च कुत्रचित् ॥४०॥

कोटिब्रह्माण्डमध्येषु देवदेव सनातन !। एकादश्यां तिथौ स्थातुं मया स्थानं न लभ्यते॥४१॥

एकादश्यामहं कुत्र वत्स्यामि निर्भयःप्रभो ! ।
तन्मे कथय देवेश त्वया सृष्टोऽस्म्यहेतुकः ॥४२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा पापपुरुषः क्लेनाशनमच्युतम्। भूमौ निपत्य चक्रन्द स्त्रवद्बाष्पविलोचनः ॥४३॥

ततः प्रहस्य भगवान्मधुकैटभमर्दनः । एकादशीभयात्त्रस्तमुवाच पापपूरुषम्॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ पापपुरुष ! त्यज शोकं मुदं कुरु ।
एकादश्यां तिथौयत्र तव स्थानं वदामि ते ॥४५॥

एकादश्यां समायान्त्यां प्रपुनन्त्यां जगत्त्रयम्। स्थातव्यमन्नमाश्रित्य भवता पापपूरुष॥४६॥

अन्नमाश्रित्यतिष्ठन्तं भवन्तं पापपूरुषम्। न हनिष्यति मन्मूर्तिरियमेकादशी तिथिः ॥४७॥

क्रीड़ा करेंगे ॥३५॥ यदि संसार रूपी क्रीड़ा गृह में आपकी यदि क्रीड़ा करने की इच्छा हो तो हे केशव! एकादशी तिथि के भय से आप मेरी रक्षा करे ॥३६॥ दूसरे हजारों पुण्यों से मुझको नहीं मारा जा सकता है । एकादशी तो मुझे मारने में समर्थ हैं, अतएव आप मुझे वरदान दें ॥३७॥ मनुष्य, पशु, कीट तथा दूसरें जीवों में पर्वतों, वृक्षों, स्थानों तथा जलों में ॥३८॥ नदियों, समुद्रों, वनों तथा प्रान्तरों में, स्वर्ग, मृत्यु लोक, पाताल, देवता, गन्धर्व, एवं पक्षियों में एकादशी के भय से मैं भागा; किन्तु कहीं भी मुझे निर्भय स्थान नहीं प्राप्त हुआ ॥३९-४०॥ हे सनातन ! हे देवदेव ! करोड़ों ब्रह्माण्डों में एकादशी तिथि के दिन रहने के लिए मुझे कहीं भी स्थान नहीं मिलता हैं ॥४१॥ हे प्रभो ! हे देवेश ! आप मुझे बतलायें कि एकादशी तिथि को मैं कहाँ निर्भय होकर रहूँ । आपने व्यर्थ ही मेरी सृष्टि की है ॥४२॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से क्लेश विनष्ट करने वाले भगवान् अच्युत से कहकर पाप पुरुष आँखों से आँसू बहाते हुए पृथिवी पर गिर कर जोर-जोर से रोने लगा ॥४३॥ उसके पश्चात् मधु एवं कैटभ को मारने वाले भगवान् जोर से हँसकर एकादशी के भय से भयभीत पाप पुरुष को कहे ॥४४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे पाप पुरुष ! उठो, शोक छोड़ो, प्रसन्न हो जाओ । एकादशी के दिन जो तुम्हारा स्थान होगा उसे मैं बतलाता हूँ ॥४५॥ त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली एकादशी तिथि के आने पर हे पाप पुरुष ! तुम अन्न में रहा करो ॥४६॥ अन्न के भीतर रहने वाले तुम्हें मेरी मूर्ति एकादशी तिथि तुमको नहीं मारेगी ॥४७॥

ततो देवोऽपि विप्रर्षे तत्रैवाऽन्तर्हितोऽभवत्। कृतार्थः पापपुरुषो ययौ च स यथागतः ॥४८॥
तस्मादन्नं न भोक्तव्यं कदाचिदपि सत्तमैः । आत्मनो हितमिच्छद्भिः सप्राप्ते हरिवासरे ॥४९॥
संसारे यानि पापानि तान्येवैकादशीदिने। अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति श्रीमन्नारायणाज्ञया ॥५०॥
कुर्वतां सर्वपापानि नरकान्निष्कृतिर्भवेत्। ये चान्नं भुञ्जतेऽत्रापि ते ज्ञेयाः पापिनाम्बराः ॥५१॥
भूयो भूयो दृढं वच्मि श्रूयतां श्रूयतां जनाः ।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं कदाचन ॥५२॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्च्छूद्रैरन्यैश्च द्विजसत्तम । सर्वैरेकादशी कार्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥५३॥
अष्टादशनिमेषास्तु काष्ठाप्रोक्ता मनीषिभिः । त्रिंशत्काष्ठाभिरुक्ता च कला सर्वार्थदर्शिभिः ॥५४॥
क्षणं त्रिंश्कलाभिःस्यान्मुहूर्तो द्वादशक्षणैः। त्रिंशन्मुहूर्ताल्लोकानामहोरात्रःप्रकीर्तितः ॥५५॥
तैः पञ्चदशभिःपक्षो विज्ञेयो द्विजसत्तम ! । पक्षाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मासस्तु परिकल्पितः॥५६॥
तस्मिन्मासे द्विजश्रेष्ठ ! पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
महापातकयुक्तोऽपि करोत्येकादशीं यदि ॥५७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्। माता न प्रोच्यते माता माता ह्येकादशी तिथिः॥५८॥
इहैवपालयेन्माता सर्वत्रैकादशी तिथिः। एकादशीव्रतं त्यक्त्वा व्रतमन्यत्करोति यः ॥५९॥
स्वकरस्थं मणिं त्यक्त्वा लोष्टं गृह्णाति मूढधीः ।
एकादशीव्रतं यैस्तु कृतं भक्तिसमन्वितैः ॥६०॥

हे विप्रर्षे ! उसके पश्चात् श्रीभगवान् भी वहीं अन्तर्धान हो गये और कृतार्थ होकर पाप पुरुष भी चला गया॥४८॥ अतएव श्रेष्ठ पुरुषों को चाहिए कि वे आत्मकल्याण के लिए एकादशी तिथि के आने पर कभी अन्न न खायँ ॥४९॥ संसार के सभी पाप एकादशी के दिन भगवान् श्रीमन्नारायण की आज्ञा से अन्न के भीतर निवास करते हैं ॥५०॥ सभी पापों को करने वालों की कभी भी नरक से छुटकारा मिलती हैं । जो लोग एकादशी के दिन भी अन्न खाने वाले सबसे बड़े पापी हैं ॥५१॥ मैं बार-बार इस बात को कहता हूँ कि ऐ लोगों ! आप लोग मेरी बात सुनें एकादशी के दिन कभी नहीं भोजन करना चाहिए ॥५२॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी लोगों को चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली एकादशी व्रत को करना चाहिए ॥५३॥ मनीषियों ने बतलाया है कि अठारह निमेषों की एक काष्ठा होती है । तीस काष्ठाओं की एक कला होती हैं ॥५४॥ तीस कलाओं का एक क्षण होता है और बारह क्षणों का एक मुहूर्त होता है । तीस मुहूर्तों का संसारियों का एक दिन और एक रात होती है ॥५५॥ पन्द्रह अहोरात्रों का एक पक्ष होता है, शुक्ल और कृष्ण इन दो पक्षों का एक मास होता है ॥५६॥ उस महीने के शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों की एकादशी को जो व्रत करता है यदि वह महापातकी भी हो तो भी वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में जाता है । माता को माता नहीं कहा जाता है माता तो वस्तुतः एकादशी तिथि ही होती है ॥५७-५८॥ माता इस लोक में ही पालन करती है किन्तु एकादशी तिथि सर्वत्र पालन करती है जो एकादशी व्रत को छोड़कर दूसरा व्रत करता हे ॥५९॥ वह मूर्ख अपने हाथ में विद्यमान मणि को छोड़कर मिट्टी का ढेला लेने का काम करता है । जो लोग भक्ति पूर्वक एकादशी व्रत करते हैं ॥६०॥ उन

तैस्तु यज्ञा:कृता:सर्वेव्रतानि सकलानिच। एकादश्यांच भुञ्जन्तिये मोहात्पापिनो नरा: ।।६१।।
शुक्लायां वाऽपि कृष्णायां तेषां रुष्ट: सदा हरि: ।
तेनाऽधर्मा: कृता: सर्वे लङ्घिता येन सा (चैव) तिथि: ।।६२।।
यथासमस्तदेवानां श्रेष्ठो विष्णु: प्रकीर्तित:। तथा सर्व व्रतानां च श्रेष्ठमेकादशीव्रतम् ।।६३।।
आदित्यानां यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।
तथा सर्वव्रतश्रेष्ठं प्रोक्तमेकादशीव्रतम् ।।६४।।
वृक्षाणां च यथाऽश्वत्थो वेदानां सामकीर्तितम् ।
तथा सर्वव्रतश्रेष्ठं प्रोक्तमेकादशीव्रतम् ।।६५।।
कवीनामुशना:श्रेष्ठो वर्णानां ब्राह्मणो यथा। तथा सर्वव्रतश्रेष्ठं प्रोक्तमेकादशीव्रतम् ।।६६।।
व्यास: श्रेष्ठो मुनीनां च देवर्षीणां च नारद: ।
तथा व्रतानां सर्वेषां श्रेष्ठमेकादशीव्रतम् ।।६७।।
यथासमस्तदानानामन्नदानं वरं स्मृतम्। तथा सर्वव्रतश्रेष्ठं प्रोक्तमेकादशीव्रतम् ।।६८।।
यथा पुण्यसमं मित्रं नास्ति शास्त्रसमो गुरु: ।
तथैवैकादशीतुल्यं व्रतं नास्ति जगत्त्रये ।।६९।।
इन्द्रियाणां यथा श्रेष्ठं मन: प्रोक्तं मनीषिभि: ।
मासानां कार्तिक: श्रेष्ठ: पाण्डवानां यथाऽर्जुन: ।।७०।।
यथा समस्तशास्त्राणां श्रेष्ठा वेदा:प्रकीर्त्तिता: ।
तथा व्रतनां प्रवरं स्मृतमेकादशीव्रतम् ।।७१।।

लोगों को सभी यज्ञों तथा सभी व्रतों को करने का फल प्राप्त हो जाता है। अज्ञानवशात् जो पापी मनुष्य एकादशी के दिन भोजन करते हैं ।।६१।। चाहे वह शुक्ल पक्ष की एकादशी हो कृष्ण पक्ष की हो उससे श्रीभगवान् सदा रुष्ट ही रहते हैं। जो मनुष्य उस तिथि का उल्लंघन करता है। उसको सभी अधर्मों को करने का पाप लगता है ।।६२।। जिस तरह सभी देवताओं में भगवान् विष्णु को श्रेष्ठ कहा गया है। उसी तरह सभी व्रतों में एकादशी को श्रेष्ठ कहा गया है ।।६३।। जिस तरह आदित्यों में सूर्य प्रधान हैं और नक्षत्रों में चन्द्रमा प्रधान हैं उसी तरह सभी व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ है ।।६४।। जिस तरह वृक्षों में अश्वस्थ वृक्ष श्रेष्ठ है और वेदों में सामवेद को श्रेष्ठ कहा गया है उसी तरह सभी व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ हैं ।।६५।। जिस तरह कवियों में शुक्राचार्य श्रेष्ठ हैं और वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत को श्रेष्ठ कहा गया है ।।६६।। जिस तरह मुनियों में व्यासजी श्रेष्ठ हैं और देवर्षियों में नारदजी श्रेष्ठ हैं उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत को श्रेष्ठ कहा गया है ।।६७।। जिस तरह समस्त दानों में अन्नदान को श्रेष्ठ कहा गया है उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत को श्रेष्ठ कहा गया हैं ।।६८।। जिस तरह पुण्य के समान कोई मित्र नहीं है और शास्त्र के समान कोई गुरु नहीं हैं उसी तरह एकादशी के समान त्रैलोक्य में कोई व्रत नहीं है ।।६९।। जिस तरह मनीषियों ने इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन को कहा है और मासों में कार्तिक का महीना श्रेष्ठ हैं और तथा जैसे पाण्डवों में अर्जुन श्रेष्ठ हैं ।।७०।। जिस तरह सभी

वेदागमपुराणेषु शास्त्रेष्वन्येषु च द्विज !। कुत्राऽप्येकादशीतुल्यं व्रतं प्रोक्तं न कोविदैः ॥७२॥

निर्भया मानवाः सर्वे तिष्ठन्ति क्षितिमण्डले ।
एकादशीव्रतं कृत्वा किं करिष्यति भास्करिः ॥७३॥

एकामेकादशीं सम्यक् कुर्वतां किङ्करो यमः ।
एकादशीव्रतं तस्मात्कर्तव्यं हि शुभप्रदम् ॥७४॥

एकादशीव्रतविधिं संक्षेपात्कथयाम्यहम् । समाहितमना भूत्वा श्रृणु सत्तम जैमिने ! ॥७५॥
दशम्याम्प्रातरुत्थाय कर्तव्यं दन्तधावनम्। ततस्तैलादृते स्नानं कर्तव्यं मन्त्रवज्जलैः ॥७६॥
ततो विष्णुं समभ्यर्च्य पाद्याद्यैर्जगदीश्वरम्। हरिध्यानपरो भूत्वा एकभोजनमाचरेत्॥७७॥
आमिषं लवणं चैव तथा मांसं मसूरकम् । वृहन्माषं तथा शाकं दशम्यां परिवर्जयेत् ॥७८॥
द्विर्भोजनं परान्नं च मधूनि मैथुनं तथा । भोजनं कांस्यपात्रेषु दशम्यां परिवर्जयेत् ॥७९॥
निम्बपत्रं च वृन्ताकं दग्धं जम्बीरमेवच। वृतहीनं तथा गव्यं दशम्यां परिवर्जयेत्॥८०॥
अत्यन्तभोजनं चैव अत्यन्ताशनभोजनम्। ताम्बूलभक्षणञ्चैव दशम्यां परिवर्जयेत्॥८१॥

दशम्यां यानि वस्तूनिन षिद्धानि द्विजोत्तम ! ।
द्वादश्यामपि तान्येव निषिद्धानि न संशयः ॥८२॥

दशम्यां विप्रशार्दूल द्वादश्यामपि वैष्णवः । सम्यग्व्रतफलप्रेप्सुर्न कुर्यान्निशि भोजनम् ॥८३॥

अतो हविष्यं कृत्वा तु दशम्यां सत्वरो व्रतिः ।
अपराह्णे पुनः कुर्याद्विधिना दन्तधावनम् ॥८४॥

शास्त्रों में वेद को श्रेष्ठ कहा गया है उसी तरह व्रतों में श्रेष्ठ एकादशी को कहा गया है ॥७१॥ हे द्विज! वेदों आगमों तथा पुराणों में तथा अन्यशास्त्रों में कही भी एकादशी के समान व्रत को विज्ञ पुरुषों ने नहीं कहा है ॥७२॥ एकादशी व्रत को करके मनुष्य पृथिवी पर यह सोचकर निर्भय रहते हैं कि हमलोगों का यमराज क्या कर सकते हैं ?॥७३॥ केवल एकादशी व्रत करने वालों का यम किङ्कर हो जाते हैं । इसलिए कल्याणप्रद एकादशी व्रत को करना चाहिए ॥७४॥ हे श्रेष्ठ जैमिने ! मैं एकादशी व्रत की विधि को कहता हूँ उसे आप सावधान होकर सुनें ॥७५॥ दशमी तिथि को प्रातःकाल उठकर दतौन करना चाहिए । उसके पश्चात् बिना तेल लगाये मन्त्र के साथ जल से स्नान करना चाहिए ॥७६॥ उसके पश्चात् पाद्य इत्यादि से जगदीश्वर भगवान् विष्णु की पूजा करके श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए एक बार भोजन करे ॥७७॥ मांस, नमक, उड़द तथा मसूर, वृहत मांस तथा शाक एकादशी को न खाय ॥७८॥ दो बार भोजन करना, परान्न, मधु, मैथुन तथा कांसे के पात्र में भोजन भी दशमी के दिन न करे ॥७९॥ नीम का पत्ता, वैगन, दग्ध जम्बीर, धृत रहित गव्य का भी दशमी के दिन परित्याग करे ॥८०॥ अत्यन्त भोजन तथा अत्यन्त भोजन करना तथा ताम्बूल भक्षण का एकादशी के दिन त्याग दे ॥८१॥ हे द्विजोत्तम ! दशमी के दिन जिन वस्तुओं को निषिद्ध कहा गया है वे सारी वस्तुएँ द्वादशी के भी दिन निषिद्ध हैं ॥८२॥ हे विप्रश्रेष्ठ ! दशमी तथा द्वादशी को भी अच्छी तरह से फल प्राप्त करने की इच्छा वाले वैष्णव को रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए ॥८३॥ अतएव व्रती को चाहिए कि वह दशमी के दिन जल्दी से हविष्य बनाकर फिर

सायं देवालयं गत्वा गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम् ।
केशवं मनसा ध्यायन्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥८५॥
एतद्गृहीतं गोविन्द ! मयात्वत्पुरतो व्रतम् । सिद्धिं गच्छतु निर्विघ्नं तव पादानुकम्पया ॥८६॥
अतिचञ्चलचित्तोऽहं लोभमोहमयो नरः । शक्नोम्येतद्व्रतं कर्तुंकिंतवानुग्रहादृते ॥८७॥
इमौ मन्त्रौ पठित्वा तु तमेव कुसुमाञ्जलिम् ।
दत्त्वा नारायणायाथ दण्डवत्प्रणमेद्भुवि ॥८८॥
तस्मिन्नेव गृहे विष्णोर्विष्णुस्मरणतत्परः । कुशेन शय्यामास्तीर्य भूमौ शयनमाचरेत् ॥८९॥
ततः प्रभाते विमले न कुर्याद्दन्तधावनम् । गण्डूषैर्मुखशुद्धिं तु कुर्याद् द्वादशभिर्बुधः ॥९०॥
नित्यक्रियां प्रकुर्वीत विष्णुपूजादिकक्रियाम् । ततोनिशायां विप्रेन्द्र ! सकलैर्व्रतिभिर्जनैः ॥९१॥
एकत्र जागरं कुर्यात्पुरतो जगतां पतेः । समातृकः सभार्यश्च सभ्राता सपिता तथा ॥९२॥
तथा सपुत्रमित्रश्च कुरुते जागरं हरेः । सतिष्ठेद्विष्णुभवने चिरं व्रतकरो द्विज ! ॥९३॥
शङ्खचक्रादिकं चित्रं यो लिखेद्विष्णुमन्दिरे । बहुजन्मकृतं पापं हरेत्तस्य जनार्दनः ॥९४॥
तण्डुलचूर्णपङ्केन विष्णोरायतनेषु च । अन्यैर्वन्यैश्च वा चित्रं लिखेत्तस्य फलं शृणु ॥९५॥
पुत्रपौत्रप्रपौत्रैश्च भुङ्क्तेच सकलं शुभम् । शेषे विष्णुपुरं गत्वा तत्र मोक्षमवाप्नुयात् ॥९६॥
वासरे कमलाभर्तुर्ध्वजारोपणकृन्नरः । उद्धृत्य कोटिपुरुषान्नारायणपुरं व्रजेत् ॥९७॥
पताकावल्लिभिर्युक्तं विष्णोरायतनं जनः । मण्डयत्यवनीपालः स भवेत्परजन्मनि ॥९८॥

दोपहर के बाद विधि पूर्वक दतौन करे ॥८४॥ सायंकाल मन्दिर में जाकर और अञ्जलि में पुष्पों को लेकर मन से भगवान् केशव का ध्यान करके इस मन्त्र का उच्चारण करें ॥८५॥ हे गोविन्द ! मैं आपके समक्ष इस व्रत को कर रहा हूँ यह आपके चरणों की कृपा से सिद्ध हो जाय ॥८६॥ मैं अत्यन्त चञ्चल चित्त वाला और लोभ तथा मोहमय मनुष्य हूँ अतएव आप की कृपा के बिना मैं इसे कैसे कर सकता हूँ?॥८७॥ इन दोनों मन्त्रों को पढ़कर भगवान् नारायण को पुष्पाञ्जलि समर्पित कर दे ॥८८॥ भगवान् विष्णु के ही मन्दिर में उनका स्मरण करते हुए कुश की शय्या बिछाकर पृथिवी पर सोए ॥८९॥ फिर प्रातःकाल होने पर दतौन न करे बाहर बार कुल्ला करके मुखकी शुद्धि कर ले ॥९०॥ फिर नित्य क्रिया करके भगवान् विष्णु की पूजा इत्यादि क्रियाओं को करे । उसके बाद रात्रि में सभी व्रत करने वाले लोगों को ॥९१॥ एकत्रित होकर श्रीहरि के समक्ष जागरण करना चाहिए । माता, पत्नी भाई तथा पिता के साथ एवं पुत्रों, मित्रों के साथ जागरण करना चाहिए । हे द्विज ! वह व्रत करने वाला दीर्घकाल तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ॥९२-९३॥ जो भगवान् विष्णु के मन्दिर में शङ्ख, चक्र इत्यादि का चित्र बनाता है श्रीभगवान् उसके अनेक जन्मों के पाप को हर लेते हैं ॥९४॥ चावल के चूर्ण को घोल बनाकर तथा दूसरे वन्य पदार्थों से जो चित्र बनाता है उसको प्राप्त होने वाले फलों को आप सुनें ॥९५॥ वह पुत्रों पौत्रों तथा प्रपोत्रों के साथ सम्पूर्ण शुभों को प्राप्त करता हे । अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में जाकर वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥९६॥ जो एकादशी के दिन ध्वजारोपण करता है । वह अपने करोड़ों पूर्वजों का उद्धार करके अन्त में भगवान् नारायण के लोक में जाता है ॥९७॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर को जो

पताका प्रचलन्ती च यावद्भवति वायुना। तत्कर्तुः पातकं सर्वं तावदेव विनश्यति ॥९९॥
पताकावलयाः प्राज्ञैर्नानावर्णा हरेर्गृहे। स्थापितव्याः परं स्थानमिच्छद्भिर्हरिवासरे ॥१००॥
विष्णोः शिरसि यच्छत्रं धत्ते चारुतरं जनः ।
परजन्मनि विप्रर्षे ! छत्रीभवति सः क्षितौ ॥१०१॥
वासरे वासुदेवस्य पुष्पमण्डपकृन्नरः। प्रतिपुष्पं लभेत्पुण्यं वाजिमेधशतोत्तरम् ॥१०२॥
वासुदेवदिने पुष्पैः सुगन्धधैर्मण्डनं बुधैः। यत्नादपि च कर्तव्यं चतुर्वर्गफलाप्तये ॥१०३॥
यो वस्त्रगृहनिर्माणं कुरुते हरिवासरे। स सौधवासी विप्रर्षे ! भवति त्रिदशालये ॥१०४॥
निर्माय वस्त्रभवनं तत्र बध्नाति मानवः ।
श्वेतं वा लोहितं वाऽपि कृष्णं वा सोऽच्युतप्रियः ॥१०५॥
शालग्रामशिलां तत्र प्रतिमां वा श्रियः पतेः ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य स्थापयेद्भक्तितो व्रती ॥१०६॥
आदौ स्वस्त्ययनं कुर्यात्सङ्कल्पं च तथा बुधः ।
यत्नादपि च कर्तव्यं चतुर्वर्गफलाप्तये ॥१०७॥
भूतशुद्धिं निजां विप्र ! विधिना शास्त्रभाषितैः ।
ततश्चैकमना भूत्वा गृहीत्वा पुष्पमुत्तमम् ॥१०८॥
ध्यायन्नारायणं देवं हृदयाम्भोजवासिनम्। आसीनं हेमपीठे च तथा मणिमयेऽपि च॥१०९॥
आसीनं हेमपीठे मणिमयज्वलनालङ्कृतं क्रीडवेशं-
विभ्रल्लेखोज्ज्वलभ्रद्युतिरुचिरतनुं दीर्घदोर्भिश्चतुर्भिः ।
नित्यं विभ्राजमानं सकलकरलयैः सायुधैः पद्मनेत्रैः-
पश्यन्तं श्रीमुखं तच्छ्रमनुदमनिशं तं भजेऽपाङ्गदृष्ट्या ॥११०॥

बल्लियों तथा पताकाओं से अलंकृत करता है वह दूसरे जन्म में राजा होता है ॥९८॥ वायु के द्वारा कँपायी गयी पताका जितने बार काँपती है उस पताका को लगाने वाले के उतने सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥९९॥ परम पद को चाहने वाले प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि वे श्रीहरि के मन्दिर में अनेक रङ्गों वाले पताकाओं को एकादशी के दिन लगायें ॥१००॥ जो मनुष्य भगवान् विष्णु के शिर पर मनोहर छत्र को लगाता हैं हे विप्रर्षे वह दूसरे जन्म में छत्रधारी राजा होता है ॥१०१॥ जो श्रीहरि के मन्दिर में एकादशी के दिन पुष्प मण्डप बनाता है, वह प्रत्येक पुष्पों के द्वारा उत्तरोत्तर सौ-सौ अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है ॥१०२॥ एकादशी के दिन सुगन्धित पुष्पों के द्वारा भगवान् को अलंकृत चारो पुरुषोर्थों की प्राप्ति के लिए करना चाहिए ॥१०३॥ हे विप्रर्षे ! जो एकादशी के दिन श्रीभगवान् के लिए वस्त्र गृह का निर्माण करता है वह स्वर्गलोक के महल में निवास करता है ॥१०४॥ जो मनुष्य श्वेत या लाल या काला वस्त्र का गृह बनाकर श्रीभगवान् को स्थापित कर देता है वह भगवान् अच्युत का प्रिय होता है ॥१०५॥ व्रती को चाहिए कि वह उस वस्त्र गृह में शालग्राम शिला या श्रीभगवान् की प्रतिमा को पञ्चामृत से स्नान कराकर स्थापित करे ॥१०६॥ विद्वान् को चाहिए कि वह पहले स्वस्ति वाचन करे उसके बाद सङ्कल्प करे। ऐसा करने से उसे चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है ॥१०७॥ उसके बाद शास्त्रीय विधि से अपनी

आगच्छ भगवन्देव ! सहित:श्रीपते:प्रिय ! ।
कर्तव्या हि मया भक्त्या सपर्याऽस्मिन्व्रते तव ।।१११।।
सर्वलक्षणसम्पन्न लक्ष्म्या सह जगद्गुरो !। अस्मिन्वरासने तिष्ठ यावत्पूजां करोमि ते।।११२।।
समस्तलोकविख्यातकीर्ते ! नारायण ! प्रभो ! ।
कच्चिते कुशलं सर्वं सर्वं वद सुरार्चित ।।११३।।
पाद्यं गृहाण देवेश ! नारायणसुवासितम्। पादद्वयरजोहारिं पवित्रमतिशीतलम्।।११४।।
अर्घ्यं ददामि ते विष्णो ! दूर्वापल्ल्वसंयुतम् ।
अखण्डतण्डुलोपेतं पुण्डरीकनिभेक्षण ! ।।११५।।
इदमाचमनीयन्ते सुपवित्रं ददाम्यहम् । गृहाण परमानन्द ! परमानन्दवर्धनम् ।।११६।।
मया दत्तेन गन्धेन जरासन्धविनाशन ! । तवाऽस्तु भूषितं गात्रं लक्ष्मीनाथ ! सुगन्धिना।।११७।।
ददाम्यहं पवित्रार्थं जगतामादिकारक !। इदमाचमनं देव ! तद् गृहाण सुरेश्वर !।।११८।।
सृष्टोऽयं विधिना पूर्वं देवानान्तुष्टिवृद्धये। अतस्तुभ्यं सुरश्रेष्ठ ! धूपोऽयं दीयते मया ।।११९।।
तमसः स्तोमसंहर्ता घृतपूर्णो ! जनार्दन ! । तवाऽस्तु प्रीतये देव ! एष दीपो जनार्दन ।।१२०।।
सोत्तरीयमिदं वस्त्रं बस्तिश्रोणिसुशोभनम् । ददाम्यहं ते देवेश ! सोपवीतं जगद्गुरो !।।१२१।।

भूतशुद्धि करे पुन: एकाग्रचित्त होकर हाथ में पुष्प लेकर ।।१०८।। हृदय कमल में निवास करने वाले तथा सुवर्ण सिंहासन पर उपविष्ट भगवान् नारायण का ध्यान करते हुए ।।१०९।। सुवर्ण पीठ पर बैठे हुए तथा मणिमय अग्नि से अलंकृत श्रीभगवान् बिजली की रेखा से युक्त मेघ की कान्ति के समान शरीर वाले लक्ष्मी तथा चार भुजाओं को धारण किए हुए नित्य ही सम्पूर्ण भुजाओं में आयुध धारण किए हुए तथा कमल के समान मनोहर नेत्रों से सम्पूर्ण श्रम को दूर करने वाले लक्ष्मीजी के मुख को अपने कटाक्षपात के द्वारा देखते हुए श्रीहरि का मैं भजन करता हूँ ।।११०।। हे देव ! आप श्रीभगवान् के साथ आयें इस रात में मुझे आपकी भक्ति पूर्वक पूजा करनी है ।।१११।। हे सभी लक्षणों से सम्पन्न जगद्गुरो जब तक मैं आपकी पूजा करता हूँ तब तक आप लक्ष्मीजी के साथ इस श्रेष्ठ आसन पर विराजें ।।११२।। हे सम्पूर्ण लोकों में विख्यात कीर्ति वाले भगवान् नारायण ! हे सभी देवताओं से पूजित आप अपना कुशल बतलायें।।११३।। हे देवेश नारायण ! आप सुगन्धित पाद्य को ग्रहण करें । यह आपके दोनों चरणों की धूलि को दूर करने वाला पवित्र तथा अत्यन्त शीतल जल है ।।११४।। हे विष्णो ! मैं दुर्वा तथा पल्लव के साथ अहर्य कहर्य दे रहा हूँ हे कमल के समान नेत्र वाले यह अखण्ड अक्षतों से युक्त हैं ।।११५।। मैं यह आपको अत्यन्त पवित्र आचमन प्रदान कर रहा हूँ । हे परमानन्द ! परम आनन्द को बढ़ाने वाले इसे आप स्वीकार करें।।११६।। हे जरासन्ध का विनाश करने वाले ! मेरे द्वारा प्रदत्त सुगन्धित चन्दन के द्वारा आप का शरीर अलंकृत हो जाय ।।११७।। हे जगत् के आदि कारण देव ! मैं पवित्र करने के लिए यह आचमन प्रदान कर रहा हूँ, इसे आप स्वीकार करें ।।११८।। हे सुरश्रेष्ठ ! इसका पहले निर्माण देवताओं की तुष्टि के लिए हुआ है इसीलिए मैं आपको यह धूप प्रदान करता हूँ ।।११९।। हे जनार्दन ! अन्धकार समूह को विनष्ट करने वाला तथा घृत से पूर्ण यह दीपक प्रसन्न करे ।।१२०।। हे जगद्गुरों ! हे देवेश ! कमर तथा वस्ती प्रदेश को

अन्नं चतुर्विधं स्वादुरसैः षड्भिःसमन्वितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वर ! ॥१२२॥
मुखदुर्गन्धहरणं कर्पूरखादिरान्वितम् ।
गृहाण विष्णो ! ताम्बूलं कैवल्यद ! महामते ! ॥१२३॥
विधिनाऽनेन गोविन्दमुपहारैरनुत्तमैः । पूजयेत्सम्वृतो भक्तया प्रहरेषु चतुर्ष्वपि ॥१२४॥
नानोपहारान्हरये यो यच्छेद्धरिवासरे । वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कर्मणां फलमिच्छता॥१२५॥
ततस्तु व्रतिभिः सर्वैर्नारायणपरायणैः । निशि जागरणं कार्यं नृत्यगीतस्तवादिभिः॥१२६॥
प्रदक्षिणं द्विजश्रेष्ठ ! नामानि कमलापतेः । सर्वपापविनाशीनि स्मर्तव्यानि व्रते रतः॥१२७॥
स्फुरन्तं प्रतिवक्त्रेभ्यो हरिनामध्वनिं जनाः । शृण्वन्ति ते विमुक्ताः स्युर्महद्भिः पापसञ्चयैः॥१२८॥
न पाखण्डजनालापः कर्तव्यो हरिवासरे । पाखण्डालापमात्रेण सर्वधर्मो विनश्यति ॥१२९॥
नारायणयशोगीतं प्रतिकण्ठं वनिःसृतम् ।
श्रुत्वा मूढा न तृप्यन्ति श्वानोवीणाक्वणं यथा ॥१३०॥
सन्तो हर्षं समायान्ति श्रुत्वा गीतं जगत्पतेः ।
समस्तपापविध्वंसि वीणाक्वाणंयथामृगाः ॥१३१॥
गायन्तं हरिगीतानि नृत्यन्ति नृत्यमुत्तमम्। तृप्यन्ति व्रतिनो दृष्ट्वा तृप्यन्ति कमलापतेः ॥१३२॥

सुशोभित करने वाला इस उत्तरीय के साथ वस्त्र को तथा यज्ञोपवीत के साथ मैं आप को प्रदान करता हूँ॥१२०॥ हे देवेश मै यह बस्ति तथा श्रोणी प्रदेश को सुशोभित करने वाले इस उत्तरीय के साथ तथा यज्ञोपवीत के साथ इस वस्त्र को समर्पित कर रहा हूँ ॥१२१॥ छहो रसों में समन्वित यह चारो प्रकार का स्वादिष्ट अन्न मैं भक्ति पूर्वक आपको समर्पित करता हूँ । हे परमेश्वर ! इसे आप स्वीकार करें ॥१२२॥ मुख की दुर्गन्धि को दूर करने वाला कर्पूर तथा खैर से युक्त इस ताम्बूल को हे कैवल्य पद प्रदान करने वाले भगवन् ! इसे आप स्वीकार करें ॥१२३॥ इस तरह सर्वोत्तम उपहारों से रात्रि के चारो प्रहरों में भक्ति से सम्पन्न होकर भगवान् गोविन्द की पूजा करे॥१२४॥ जो एकादशी के दिन अनेक प्रकार के उपहारों को प्रदान करता है । अपने कर्मों का पूर्ण फल नहीं करनी चाहिए चाहने वाले को इसमें कंजूसी न करे ॥१२५॥ उसके पश्चात् भगवान् के भक्त सभी व्रत करने वालों को रात्रि में नृत्य, गीत तथा स्तोत्र पाठ आदि के द्वारा रात्रि में जागरण करना चाहिए ॥१२६॥ हे द्विजश्रेष्ठ! प्रदक्षिणा तथा श्रीभगवान् के सर्वपाप विनाशक नामों का स्मरण करना चाहिए ॥१२७॥ प्रत्येक मुखों से निकलते हुए श्रीहरि के नामों की ध्वनि को जो लोग सुनते हैं वे लोग महान् पाप समूह से मुक्त हो जाते हैं ॥१२८॥ एकादशी के दिन पाखण्डी लोगों से बात नहीं करना चाहिए । उन सबों से बात करने से सम्पूर्ण धर्म विनष्ट हो जाता है ॥१२९॥ प्रत्येक कण्ठ से निःसृत भगवान् नारायण के यशोगान को सुनकर अज्ञानी जीव उसी तरह नही तृप्त होते हैं जिस तरह कुत्ते वीणा की ध्वनि सुनकर नहीं तृप्त होते हैं ॥१३०॥ सन्त पुरुष जगत् के स्वामी का सभी पापों को विनष्ट करने वाले गीत को सुनकर उसी तरह सन्तुष्ट हो जाते हैं जैसे मृग वीणा की ध्वनि को सुनकर सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥१३१॥ श्रीहरि के गीतों को गाते हुए व्रत करने वाले, उत्तम नृत्य करते हैं और तृप्त होते हैं । उन लक्ष्मीपति के व्रतियों को तृप्त करते हैं ॥१३२॥ हे द्विज ! जो व्रती श्रीहरि के मन्दिर में नहीं तृप्त होते हैं वे निरन्तर प्रत्येक जन्मों में

व्रतिनो ये न तृप्यन्ति विष्णोरायतने द्विज ! ।
प्रतिजन्मनि वै तेषां पशुता शाश्वती भवेत् ॥१३३॥
न ये गीतानि गायन्ति व्रतिनो हरिवासरे। विहीना वचनैस्ते च भ्रमन्ति प्रतिजन्मनि ॥१३४॥
मृदङ्गादीनिवाद्यानि कर्तव्यानि हरेः पुरः । यतोवाद्यैर्भवेत्तुष्टो भगवान्मधुसूदनः ॥१३५॥
कुर्वन्निर्जागरं विष्णोर्वेदाध्ययनमुत्तमम्। पुराणपठनं वाऽपि कर्तव्यं वैष्णवैर्जनैः ॥१३६॥
रामायणं भागवतं भारतं व्यासभाषितम् । अन्यानि च पुराणानि पाठ्यानि हरिवासरे ॥१३७॥
ये पठन्ति पुरो विष्णो र्ये शृण्वन्ति हरेर्दिने ।
प्रत्यक्षरं लभन्ते ते कपिलादानजं फलम् ॥१३८॥
निशिजागरणं कुर्यात्सानन्दो वैष्णवो जनः। जितनिद्रो भवेत्सम्यग्ध्यायते केशवं हृदा ॥१३९॥
प्रदक्षिणाकारतयाभूयोभूयो हरेर्दिने। निपत्य दण्डवद्भूमौ प्रणमेच्च जनार्दनम् ॥१४०॥
ततः प्रभातेविमले कृतपञ्चमहाध्वरः। हरिंसंस्नाप्य दुग्धेन पूजयेद्भक्तिमान्व्रती ॥१४१॥
व्रतस्य दक्षिणां दद्यान्निजशक्त्या द्विजन्मने। ततस्तुद्वादशीमध्ये व्रती पारणमाचरेत् ॥१४२॥
पारणंकुरुतेयस्तु विलङ्घ्य द्वादशीतिथिम्। जन्मकोट्यर्जितं पुण्यं तस्य चैव विनश्यति ॥१४३॥
द्वादशीतिथिमध्ये तु कर्तव्यं पारणं बुधैः। न कदाचित्त्रयोदश्यां व्रतस्यफलमिच्छुभिः ॥१४४॥
उपवासदिनेविप्र ! निशायामपि वैष्णवः। उपवासफलप्रेत्सुर्यत्नात्स्वापंविवर्जयेत् ॥१४५॥
विनाजागरणंनूनमुपवासो निरर्थकः। अतोजागरणं कार्यमुभयोरपिपक्षयोः ॥१४६॥

पशुत्व को प्राप्त करते हैं ॥१३३॥ जो व्रती एकादशी के दिन गीतों को नहीं गाते हैं वे प्रत्येक जन्म में गूङ्गे होकर भ्रमण करते हैं ॥१३४॥ चूकि वाद्यों के द्वारा श्रीहरि की सन्तुष्टि होती है अतएव श्रीहरि के समक्ष मृदङ्ग आदि वाद्यों को बजाना चाहिए ॥१३५॥ जागरण करने वालों के लिए वेदाध्ययन उत्तम होता है अथवा वैष्णवों को पुराणों का पाठ करना चाहिए ॥१३६॥ रामायण, भागवत, महाभारत तथा महर्षि व्यास कृत दूसरे पुराणों को एकादशी के दिन पढ़ना चाहिए ॥१३७॥ जो लोग एकादशी के दिन श्रीभगवान् विष्णु के समक्ष पढ़ते हैं और जो लोग उसे सुनते हैं वे प्रत्येक अक्षरों से कपिला गौं के दान से होने वाले फल को प्राप्त करते हैं ॥१३८॥ वैष्णवों को रात्रि में आनन्द पूर्वक जागरण करना चाहिए और हृदय में भगवान् केशव का ध्यान करते हुए निद्रा का त्याग कर देना चाहिए ॥१३९॥ एकादशी के दिन बार-बार प्रदक्षिणा करते हुए पृथिवी पर दण्डे के समान गिरकर श्रीजनार्दन भगवान् को प्रणाम करना चाहिए ॥१४०॥ उसके पश्चात् स्वच्छ प्रभात के हो जाने पर पञ्चमहायज्ञों को करके श्रीहरि को दुग्ध से स्नान कराकर व्रती को विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥१४१॥ अपनी शक्ति के अनुसार व्रत की दक्षिणा देनी चाहिए । फिर द्वादशी में व्रती को पारण करना चाहिए ॥१४२॥ जो द्वादशी तिथि के समाप्त हो जाने पर पारण करता है उसके करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्य विनष्ट हो जाते हैं ॥१४३॥ अतएव विद्वानों को द्वादशी तिथि में ही पारण करना चाहिए । व्रत का फल चाहने वालों को त्रयोदशी में पारण नहीं करना चाहिए ॥१४४॥ हे विप्र ! उपवास के दिन रात्रि में भी जो उपवास का फल चाहता हो उसे रात्रि में निद्रा का त्याग कर देना चाहिए ॥१४५॥ नारायण के बिना उपवास करना व्यर्थ है अतएव दोनों ही पक्षों में जागरण करना

एकादशीव्रतं ये च विधिनाऽनेन कुर्वते। सत्यंसत्यं द्विजश्रेष्ठ ! सर्वेते मोक्षगामिनः ॥१४७॥

जन्ममृत्युहरणैकनिदानं सेन्द्रदेवनिकरैरपि कार्यम् ।

वासुदेवदिवसव्रतसारं जैमिने ! त्वमनिशं कुरु यत्नात् ॥१४८॥

इति श्रीपद्मेमहापुराणेपञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे एकादशीमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तेइसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

पूर्वं कोचरशो नाम राजाऽभूत्क्षितिमण्डले। शान्तः परमधर्मज्ञो राजनीतिविदाम्बरः ॥१॥

सत्यवादी जितक्रोधो जितवैरिसमुच्चयः। नारायणार्चनपरो हरिसेवारतः परः ॥२॥

सुप्रज्ञा नाममहिषी तस्याऽसीत्प्रियवादिनी । सर्वलक्षणसंपन्ना पतिसेवापरायणा॥३॥

एकादशीव्रतरता सर्वप्राणिहितैषिणी। जातिस्मरा महाभागा सुशीला वरवर्णिनी॥४॥

स राजा दशमीं कृत्वा सदारः परमार्थवित् ।

एकादशीं निशीथिन्यां जागरं कर्तुमुद्यतः ॥५॥

तत्रान्तरे द्विजः कश्चिच्छौरिर्नाम महीपतेः। आजगाम महातेजास्तस्य जागरमण्डपम्॥६॥

चाहिए ॥१४६॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! इस विधि से जो लोग एकादशी व्रत को करते हैं । वे सत्य है कि वे सभी लोग मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥१४७॥ जन्म तथा मृत्यु को विनष्ट करने का एकमात्र साधन व्रतों के सार स्वरूप भगवान् वासुदेव के व्रत को इन्द्र आदि देव समूह को भी करना चाहिए । हे जैमिने ! तुम भी प्रयास पूर्वक इस व्रत को किया करो ॥१४८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के एकादशी माहात्म्य वर्णन नामक बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

एकादशी माहात्म्य के प्रसङ्ग में कोचरश राजा की पटरानी और सुप्रज्ञा के पूर्व जन्म के वृत्तान्त का वर्णन तथा धर्मात्माओं और पापात्माओं की भक्ति का निरूपण

व्यासजी ने कहा— पूर्वकाल में कोचरश नामक पृथिवी मण्डल का राजा हुआ । वह शान्त, परम धार्मिक और राजनीतिज्ञों में श्रेष्ठ था ॥१॥ वह सत्यवादी, क्रोध रहित था और उसने अपने सम्पूर्ण शत्रुओं को भी जित लिया था । वह सदा नारायण की पूजा करने वाला श्रीहरि की पूजा में रत रहता था ॥२॥ उसकी सुप्रज्ञा नामकी रानी प्रियवादिनी थी । सभी लक्षणों से सम्पन्न वह सदा पति की सेवा करने में लगी रहती थी ॥३॥ वह एकादशी का व्रत करने वाली तथा सभी जीवों की हितैषिणी थी । वह महाभागा जातिस्मरा, सुन्दरशील वाली और सुन्दरी थी ॥४॥ वह परमार्थ वेत्ता राजा अपनी पत्नी के साथ दशमी

तमायान्तं स भूपालो नारायणपरायणः । पाद्याद्यैः पूजयामास सदारोऽत्यन्तहर्षितः ॥७॥
तेषां मध्ये सूपविष्टः स विप्रोऽखिलतत्त्ववित् ।
विष्णुपूजापरांस्तत्र ददर्श व्रतिनो बहून् ॥८॥
पूजयन्ति हरिं केचिन्नानापुष्पैर्मनोरमैः। गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैरुपहारैरनुत्तमैः ॥९॥
गङ्गामृद्भूषिताः केचित्तुलसीपत्रमालया । अलङ्कृता हरेरग्रे नृत्यन्ति व्रतिनो मुदा ॥१०॥
केचिद्गायन्ति गीतानि ललितानि हरेः पुनः। करतालं समादाय व्रतिनो भगवत्प्रियाः ॥११॥
स्तवैरनुत्तमैः केचिन्नारायणमनामयम् । स्तुवन्ति जगतामीशं दिव्यार्थैर्मृदुलाक्षरैः ॥१२॥
श्वेतचामरवातेन शीतलेन जगत्पतिम् । वीजयन्ति हरेः प्रीताः केचिच्च व्रतिनस्तदा ॥१३॥
केचिद्वीणादिकं वाद्यं ललितं शुचिमङ्गलम्। वादयन्तो महात्मानः केचिद्गायन्ति केशवम् ॥१४॥
स राजा राजमहिषी द्वावप्यत्यन्तहर्षितौ । गायतो ललितं गीतं नृत्यतो नृत्यमुत्तमम् ॥१५॥
तौ दम्पती महात्मानौ नृत्यगीतादिकारिणौ । वाचा मधुरया प्राह स शौरिर्ब्राह्मणोत्तमः ॥१६॥

शौरिरुवाच

धन्योऽसि त्वं महीपाल ! धन्या च महिषी तव ।
चरित्रंयुवयोरेतन्मङ्गलं भुविदुर्लभम् ॥१७॥
त्वां वक्ष्यामि यतः कश्चिन्न दृष्टो वैष्णवोत्तमः ।
त्वया भूमिभुजा पृथ्वी धन्येयं नात्रसंशयः ॥१८॥

को उपवास करके एकादशी के दिन रात्रि में जागरण करने के लिए उद्यत थे ॥५॥ वहाँ पर कोई शौरि नामक्र महातेजस्वी ब्राह्मण राजा के जागरण मण्डप में आया ॥६॥ आते हुए उस ब्राह्मण को देखकर भगवान् नारायण का भक्त राजा अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी पत्नी के साथ उस ब्राह्मण की पाद्य इत्यादि से पूजा की ॥७॥ उन सबों के बीच में अच्छी तरह से बैठा हुआ, तत्त्वज्ञ ब्राह्मण वहाँ पर भगवान् विष्णु की पूजा करने वाले बहुत से व्रत करने वालों को देखा ॥८॥ कुछ लोग अनेक प्रकार के मनोहर पुष्पों से तथा चन्दन, धूप, दीप तथा सर्वोत्तम उपहारों से पूजा करते थे ॥९॥ कुछ लोग गङ्गाजी की मिट्टी से अलंकृत थे तो कुछ लोग तुलसी दल की माला से भूषित थे और प्रसन्नता पूर्वक श्रीहरि के समक्ष नृत्य कर रहे थे ॥१०॥ कुछ लोग श्रीहरि के मनोहर गीतों को गाते थे । हाथ में करताल लेकर श्रीभगवान् के प्रिय व्रती गण ॥११॥ उत्तम स्तोत्र से अनामय संसार के स्वामी श्रीभगवान् की मृदुल अक्षरों तथा दिव्य अर्थ वाले स्तोत्रों से स्तुति करते थे ॥१२॥ उस समय कुछ व्रती श्वेत चामर के शीतल वायु से जगत् के स्वामी को हवा प्रेम पूर्वक कर रहे थे ॥१३॥ कुछ लोग मनोहर तथा मङ्गलमय वीणा इत्यादि वाद्यों को बजा रहे थे और भगवान् केशव के गीतों को गा रहे थे ॥१४॥ वह राजा और राजरानी दोनों अत्यन्त हर्ष पूर्वक मनोहर गीत गा रहे थे और उत्तम रीति से नृत्य कर रहे थे ॥१५॥ उन महात्मा पति-पत्नी को जो नृत्य तथा गीत कर रहे थे उनसे मनोहर वाणी से शौरि नामक ब्राह्मण कहे ॥१६॥ **शौरि ने कहा—** हे राजन् ! आप धन्य हैं आपकी रानी भी धन्य है तुम दोनों का चरित्र मङ्गल मय तथा पृथिवी पर दुर्लभ है ॥१७॥ मैं तुमको इसलिए कह रहा हूँ कि तुम जैसा उत्तम वैष्णव नहीं दिखायी देता है निश्चित रूप

एकादशीव्रतमिदं पवित्रं भगवत्प्रियम्। सदारः कुरुषे भूप ! तस्मात्त्वं वैष्णवाग्रणीः ॥१९॥
सप्तद्वीपैकनाथश्च सदारस्त्वं नृपोत्तम ! । नारायणाग्रतः प्रीत्या यतो नृत्यसि गायसि॥२०॥
चरित्रं युवयोरेतद्दम्पत्योर्दृष्टमद्भुतम्। कस्माद् बुद्धिरियं जाता युवयोरतिनिर्मला॥२१॥

व्यास उवाच

तस्येदं वाक्यमाकर्ण्य शौरिनाम्नो द्विजन्मनः ।
ईषद्धास्यमुखीप्राह सुप्राज्ञा तमथो द्विजम् ॥२२॥

सुप्राज्ञोवाच

एकादशीप्रभावेण पूर्वमावां द्विजोत्तम !। अतिपातकिनौ मुक्तौ सूर्यजेन महात्मनाः ॥२३॥
जातिस्मृतिप्रभावेण दिव्यमेकादशीव्रतम् । कुर्वःसम्प्रति विप्रेन्द्र परमस्थानकाङ्क्षया ॥२४॥

शौरिरुवाच

यदि नूनं वरारोहे ! पूर्वांजातिं त्वमात्मनः । वेत्सि मे ब्रूहि तां श्रोतुं जायते कौतुकं हृदि ॥२५॥
पूर्वं स्थिता का भवती पतिर्वा कः स्थितस्तव ? ।
कथं भास्करिणा त्यक्तौ युवां पातकिनावपि ॥२६॥

सुप्राज्ञोवाच

अप्रकाश्यमिदं वाक्यं यद्यपि द्विजसत्तम !। स्थिताऽस्मि वारमुख्याऽहं रतिशास्त्रविशारदा ॥२७॥
तस्मिञ्जन्मनि पापानि घोराणि सुबहूनि च । मया कृतानि विप्रेन्द्र नरकक्लेशदानिवै॥२८॥
अयं नित्योदयो नाम शूद्रः स्वाचारवर्जितः ।
परदारहरः क्रूरः परद्रव्यापहारकः ॥२९॥

से तुम जैसे राजा से यह पृथिवी धन्य हैं ॥१८॥ यह एकादशी का व्रत पवित्र तथा श्रीभगवान् को प्रिय हैं। हे राजन् ! तुम अपनी पत्नी के साथ इसे करते हो अतएव तुम उत्तम वैष्णव हो ॥१९॥ हे राजश्रेष्ठ! तुम सप्तद्वीपा पृथिवी के अकेले स्वामी हों क्योंकि तुम अपनी पत्नी के साथ श्रीभगवान् नारायण के समक्ष प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करते हो और गीत गाते हो ॥२०॥ तुम दोनों पति-पत्नी का अद्भुत चरित्र दिखायी पड़ता है । तुम दोनों की किस कारण से अत्यन्त निर्मल बुद्धि हो गयी हैं ॥२१॥ **व्यासजी ने कहा—** उस शौरि नामक ब्राह्मण के इस वाक्य को सुनकर थोड़ी सी मुस्काती हुयी सुप्रज्ञा ने उस ब्राह्मण से कहा॥२२॥ **सुप्रज्ञा बोली—** हे द्विजोत्तम ! पूर्व जन्म में हम दोनों को यमराज ने एकादशी के प्रभाव से अत्यन्त पापी हम दोनों को मुक्त कर दिया था ॥२३॥ पूर्व जन्म की स्मृति होने के कारण हमदोनों परम स्थान प्राप्ति की आकांक्षा से इस दिव्य एकादशी व्रत को करते हैं ॥२४॥ **शौरि ने कहा—** हे सुन्दरि ! यदि तुम पूर्व जन्म की बातों को जानती हो तो तुम मुझे अपने पूर्व जन्म को बतलाओं मैं उसे सुनने की लिए उत्कण्ठित हूँ ॥२५॥ पूर्वजन्म में तुम और तुम्हारे पति कौन थे ? और अत्यन्त पापी तुम दोनों को यमराज ने कैसे छोड़ दिया ?॥२६॥ **सुप्रज्ञा ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! यद्यपि यह बात कहने योग्य नहीं है फिर भी कहती हूँ । मैं रति शास्त्र में निपुण वेश्या थी ॥२७॥ उस जन्म में मैंने घोर पापों को किया। हे विप्रेन्द्र ! वे सारे कर्म नारकीय कष्ट देने वाले थे ॥२८॥ ये नित्योदय नामक शूद्र थे और अपने आचार

सुरापो मित्रहन्ता च भ्रूणहा परहिंसकः। अत्यहङ्कारयुक्तश्च धर्मनिन्दाकरः सदा ॥३०॥
एकदा ज्ञातिभिःसर्वैःपरित्यक्तो हि सद्व्रतैः ।
आजगाम ममाऽऽगारं वेश्याविभ्रमलोलुपः ॥३१॥
युवानं सुन्दरं दृष्ट्वा तमेनं द्विजसत्तम !। मयाऽपि प्रीतिमत्याऽयं तोषितःसुरतैरपि॥३२॥
ततोऽनुभूय सुरतं मया सह तपोधन !। अयमाह च मां प्रेम्णा विनयावनतो वचः ॥३३॥
अहं सुरतशास्त्रज्ञः परित्यक्तः स्वबन्धुभिः । यदि त्वं मन्यसे तस्मिंस्तिष्ठाम्यत्र त्वया सह ॥३४॥
विनयोपनतं वाक्यमिदं श्रुत्वा त्वहं द्विज !। दम्पतीभावमासाद्य सहानेनस्थिताऽस्म्यहम्॥३५॥
कदाचिद्द्विजशार्दूल ! एकादश्यां तिथौ हरेः ।
रोगेण पीडिताऽहं च सर्वदेहावधातिना ॥३६॥
तस्मिन्नेव द्विजश्रेष्ठ ! ज्वरजर्जरदेहया। न पीतमुदकं नान्नं भुक्तं च परया भिया ॥३७॥
मयि स्नेहादयंचापि तस्मिन्नेव दिने हरेः। तत्याजाऽन्नं च तोयंच विषण्ण इव जन्मना॥३८॥
अथ रात्रौ द्विजश्रेष्ठ ! दीपं प्रज्वाल्य सर्पिषा ।
मया कृतं जागरणं ज्वरापहतचेतसा ॥३९॥
नारायण ! हरे कृष्ण ! रक्षमामिति जल्पता ।
मुहुर्मुहुरनेनापि कृतं जागरणं निशि ॥४०॥
उपवासप्रभावेण केशवोच्चारणेन च। आवयोः सकलं पापं विनष्टमभवद् द्विज ॥४१॥

का पालन नहीं करते थे । ये क्रूर दूसरे की स्त्री का अपहरण करने वाले तथा दूसरों के द्रव्य को चुराने वाले थे ॥२९॥ मदिरा पीने वाले, अपने मित्रों का वध करने वाले, गर्भ नष्ट करने वाले तथा दूसरों की हिंसा करने वाले थे । अत्यन्त अहङ्कार से युक्त ये सदा धर्म की निन्दा करने वाले थे ॥३०॥ सुन्दर व्रत करने वाले अपने सभी दयादों से परित्यक्त तथा वेश्या के हावभाव के लोलुप ये एक बार मेरे घर आये॥३१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ऐसे इनको युवा तथा सुन्दर देखकर मैंने भी अत्यन्त प्रेम पूर्वक इनको अपनी सुरत क्रिया के द्वारा सन्तुष्ट किया ॥३२॥ हे तपोधन ! मेरे साथ सुरत क्रिया का अनुभव करके ये प्रेम पूर्वक मुझसे नम्रता भरे वचनों से कहे ॥३३॥ मैं सुरत शास्त्र के तत्त्व को जानता हूँ मेरे बान्धवों ने मुझे त्याग दिया है, यदि तुम अच्छा मानो तो मैं तुम्हारे साथ यहाँ रहूँ ॥३४॥ हे द्विज ! नम्रता युक्त वाणी को सुनकर मैं इनके साथ पति-पत्नी के भाव को अपनाकर मैं इनके साथ रहने लगी ॥३५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! एक बार एकादशी के दिन सम्पूर्ण शरीर को कष्ट देने वाले रोग के कारण पीड़ित ॥३६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसी दिन ज्वर में जर्जर शरीर वाली मैं अत्यन्त भयभीत होकर न तो जल और न अन्न खायी ॥३७॥ मुझसे स्नेह होने के कारण उसी एकादशी के दिन ये भी जन्म से उदास होने के कारण न जल पीये और न अन्न खाये ॥३८॥ उसके पश्चात् हे द्विजश्रेष्ठ ! रात्रि में घी का दीपक जलकर मैं ज्वर के कारण रात्रि भर जागती रही ॥३९॥ ये हे नारायण ! हे हरे ! हे कृष्ण ! आप मेरी रक्षा करें इस तरह से बार-बार कहते हुए रात्रि में जागते रहे ॥४०॥ हे द्विज ! उपवास के प्रभाव से तथा रात्रि जागरण के कारण हम दोनों का सारा पाप विनष्ट हो गया ॥४१॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! प्रातःकाल सूर्योदय हो जाने पर ज्वर से

ततः प्रभाते विमले भगवत्युदिते रवौ। ज्वरार्दिताऽहं पञ्चत्वं गता ब्राह्मणसत्तम ! ॥४२॥
संप्राप्तपञ्चतां दृष्ट्वा मामयं च सुदुःखितः। सहैव मरणं भेजे निन्दितः सकलैर्जनैः ॥४३॥
सूर्यजस्य ततः प्रेष्यैर्ज्वलदग्निनिभेक्षणैः। बद्ध्वा दृढेन पाशेनानीतौ दुर्गमवर्त्मना ॥४४॥
शुभकर्माशुभं वापि चित्रगुप्तो यमाज्ञया। सर्वं विचारयामास मूलात्स तु विचक्षणः ॥४५॥

चित्रगुप्त उवाच

यद्यप्येतौ महाबाहो ! महापातकिनाम्बरौ। तथापि पातकैर्मुक्तौ ह्येकादश्यामुपोषणात्॥४६॥
अीनच्छयाऽपि यः कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम् ।
सोऽपि गच्छेत्परं स्थानं सर्वपापविवर्जितः ॥४७॥
इत्युक्तश्चित्रगुप्तेन धर्मराजो महायशाः। आसनात्सहसोत्थाय ववन्दे माममुं च सः ॥४८॥
सुगन्धैश्चन्दनैर्दिव्यैर्धूपैः पुष्पैश्च मृत्युना। सुवर्णाभरणैरेव मण्डितौ पापवर्जितौ॥४९॥
फलैर्नानाविधैस्तत्र मधुरैरमृतोपमैः। भास्करिः कारयामास प्रीत्या भोजनमावयोः ॥५०॥
अथस्तुत्वा स्तवैर्दिव्यैः स्वयमावां यमः प्रभुः ।
समारोप्य रथे दिव्ये प्रोवाचेति कृताञ्जलिः ॥५१॥

यम उवाच

युवां पुण्यवतां श्रेष्ठौ सर्वपापविवर्जितौ। यत्राऽऽस्तेभगवान्विष्णुर्गच्छतं तत्र सम्प्रति ॥५२॥
इत्युक्तौ धर्मराजेन विनयावनतेन वै। अथैतदुक्तमावाभ्यां नत्वा तत्पादपङ्कजे॥५३॥
गन्तव्यं नान्यथा देव ! तद्विष्णोःपरमंपदम्। किंत्वस्तिनरकं द्रष्टुं त्वद्गृहस्थं स्पृहाऽऽवयोः॥५४॥

पीड़ित मैं मर गयी ॥४२॥ मुझको मरी हुयी देखकर अत्यन्त दुःखी तथा सभी लोगों से निन्दित ये भी सहसा मर गये ॥४३॥ उसके पश्चात् यमराज के जलती हुयी अग्नि के समान नेत्रों वाले दूतों के द्वारा हम दोनों अत्यन्त मजबूत पाश से बाँधकर दुर्गम मार्ग से ले जाये गये ॥४४॥ यम की आज्ञा प्राप्त करके निपुण चित्रगुप्त हमदोनों के प्रारम्भ से लेकर सभी शुभ तथा अशुभ कर्मों का विचार किए ॥४५॥ **चित्रगुप्त ने कहा—** हे महाबाहो ! यद्यपि ये दोनों पापियों में श्रेष्ठ हैं फिर भी एकादशी के दिन उपवास करने के कारण पापों से मुक्त हो गये हैं ॥४६॥ जो बिना इच्छा के भी पवित्र एकादशी व्रत को करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है ॥४७॥ इस तरह से चित्रगुप्त के द्वारा कहे जाने पर महायशस्वी धर्मराज सहसा अपने आसन से उठकर मेरी और इनकी वन्दना किए ॥४८॥ यमराज ने हमदोनों को सुगन्धित चन्दन, दिव्य धूप, पुष्प तथा सुवर्ण के भूषणों से हम दोनों को अलंकृत किए।॥४९॥ यमराज वहाँ पर अमृत के समान मधुर अनेक प्रकार के फलों से हम दोनों को प्रेम पूर्वक भोजन कराये।॥५०॥ उसके पश्चात् हम दोनों की दिव्य स्तुतियों से स्तुति करके दिव्य रथ पर बैठाकर तथा हाथ जोड़कर कहे।॥५१॥ **यमराज ने कहा—** तुम दोनों पुण्यवानों में श्रेष्ठ तथा सभी पापों से रहित हो । अतएव इस समय आप दोनों भगवान् विष्णु के लोक में जाओ ॥५२॥ इस तरह से विनयावनत धर्मराज के द्वारा कहे जाने पर हमदोनों उनके चरण कमलों में नमस्कार करके कहे ॥५३॥ हे देव ! हमदोनों भगवान् विष्णु के परम्पद में जायेंगे ही किन्तु हम दोनों आपके लोक में विद्यमान नरकों को देखना चाहते हैं ॥५४॥ हे विप्र!

यमाज्ञया ततोविप्र ! रथमारुह्यशोभनम्। दुष्प्रेक्ष्या निरया दृष्टा आवाभ्यां तत्रविस्तरा:॥५५॥

ब्राह्मण उवाच

तत्रावस्था पापवतां या या दृष्टा:पतिव्रते। विस्तरेणसामाख्यातुंतास्ता: सर्वास्त्वमर्हसि॥५६॥

पुण्यात्मान: पथा येन व्रजन्ति यममन्दिरम्। पापात्मानश्च सुश्रोणि ! तन्मे कथयविस्तरात्॥५७॥

पुण्यात्मा कीदृशं पश्येत्तत्रवैवस्वतं प्रभुम्। पुण्यात्मनां पापिनां च पन्थानं सुखदु:खदम्॥५८॥

सुप्राज्ञोवाच

आदौ ब्रवीमि पन्थानं नृणां पुण्यवतामहम्। शृणुष्व द्विजशार्दूल शृण्वतां प्रीतिवर्धनम्॥५९॥

प्रस्तरर्विस्तरैर्बद्धो दिव्यवस्त्रै: समावृत:। भाति पुण्यवतां पन्था: सर्वोपद्रववर्जित:॥६०॥

क्वचिद्गन्धर्वकन्याभिर्गीयते गानमद्भुतम्। क्वचिन्मञ्जुशरीराभिरप्सरोभिच्च नृत्यते॥६१॥

क्वचिद्वीणाक्वणं नानावाद्यं चक्रुर्मनोरमम्। क्वचित्कुसुमवृष्टिश्च क्वचिद्वायुश्च शीतल:॥६२॥

क्वचित्प्रपाशीततोया क्वचिच्च भुक्तिशालिका: ।
क्वचिद्देवाश्च गन्धर्वा: पठन्ति स्तवमुत्तमम्॥६३॥
क्वचित्क्वचिद्दीर्धिकाश्च फुल्लपद्मा:सुशोभना: ।
सुच्छाया:पादपा:क्वपिपुष्पिता वञ्जुलादय:॥६४॥

ततस्तुसुखसम्पन्ना:पथि गच्छन्ति मानवा:। पुण्यात्मानो द्विजश्रेष्ठ सुखमृत्युमवाप्य च॥६५॥

केचित्तुरङ्गमारुढा नानालङ्कारभूषिता:। उद्दण्डधवलच्छत्रैर्गच्छन्त्यावृत्यमस्तकम्॥६६॥

केचिद्यान्ति गजारूढा रथारूढाश्च केचन। यानारूढा जना:केचित्सुखेन यमन्दिरम्॥६७॥

यमराज की आज्ञा से सुन्दर रथ पर चढ़कर वहाँ पर हमदोनों दुष्प्रेक्ष्य तथा विस्तृत नरकों को देखे ॥५५॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे पतिव्रते ! वहाँ पर विद्यमान पापियों के जो जिन नरकों को तुमने देखा उन सबों को तुम विस्तार पूर्वक बतलाओ ॥५६॥ पुण्यवान मनुष्य जिस मार्ग से यमलोक में जाते हैं तथा पापी जीव जिस मार्ग से जाते हैं उन सबों को तुम विस्तार से बतलाओ ॥५७॥ पुण्यवान् पुरुष यम को किस प्रकार का देखते है ? पुण्यात्माओं और पापियों के मार्ग क्रमश: सुख और दु:ख देने वाले हैं ॥५८॥ **सुप्रज्ञा ने कहा—** पहले में पुण्यवान् लोगों के मार्ग को बतलाती हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ ! उसे आप सुनें उसको सुनने से सुनने वालों को सुख मिलता है ॥५९॥ वह विस्तृत तथा प्रस्तर से बद्ध है तथा दिव्य वस्त्र से ढँका रहता है। पुण्यवानों का मार्ग सभी उपद्रवों से रहित होने के कारण सुशोभित होता है ॥६०॥ कहीं पर तो गन्धर्वों की कन्यायें अद्भुत गीतों को गाती हैं तथा कहीं पर देखने में सुन्दर लगने वाली अप्सराएँ नृत्य करती हैं ॥६१॥ कहीं पर तो वीणा तथा अनेक प्रकार के वाद्यों की मनोहर ध्वनि होती है और कहीं पर शीतल वायु पुष्पों की वृष्टि करती है ॥६२॥ कहीं पर ठंढे जल का प्याऊँ है तथा कहीं पर भोजन शाला है। कहीं पर देवता तथा गन्धर्व दिव्य तथा उत्तम स्तोत्रों को पढ़ते हैं ॥६३॥ कहीं-कहीं पर विकसित कमलों से सुशोभित सरोवर हैं और कहीं पर सुन्दर पुष्पित बञ्जुल आदि के वृक्ष हैं ॥६४॥ उस मार्ग से सुख सम्पन्न मनुष्य जाते हैं। वे पुण्यात्मा हे द्विजश्रेष्ठ ! सुख पूर्वक मृत्यु प्राप्त करके जाते हैं ॥६५॥ कुछ मनुष्य घोड़े पर बैठे हुए अलङ्कारों से भूषित ऊँचे श्वेत छत्र से जिनके मस्तक ढँके रहते हैं वे जाते हैं॥६६॥

केचिद्देवाङ्गनाहस्तन्यस्त चामरवायुभिः। गच्छन्ति वीजिता मर्त्याःस्तूयमानाःसुरर्षिभिः ॥६८॥
केचिद्दिव्यायुधधराःस्त्रक्चन्दनविभूषिताः। भुञ्जन्तो यान्ति ताम्बूलं पुण्यात्मानो यमालयम्॥६९॥
निजगात्रत्विषा केचिज्ज्वालयन्तो दिशो दश।
व्रजन्तिशमनागारं जलग्रहनिवासिनः ॥७०॥
केचिच्चपायसंदिव्यंभुञ्जन्तो यान्ति सत्तम !। सुभक्षणं प्रकुर्वन्तः पथि यान्तःसुखेन च॥७१॥
केचिद्दुग्धं पिबन्तश्च केचिदिक्षुरसं तथा। केचित्तक्रं पिबन्तश्च गच्छन्ति यममन्दिरम्॥७२॥
केचिद्दधीनि भक्षन्तः केचिन्नानाफलानिच। केचिन्मधु पिबन्तश्च पुण्यवन्तो व्रजन्ति वै ॥७३॥
तानागतांस्ततो दृष्ट्वा बहून्धर्मपरायणान्। भास्करिःप्रीतिमासाद्य स्वयं नारायणो भवेत् ॥७४॥
चतुर्बाहुः श्यामवर्णः प्रफुल्लकमलेक्षणः। शङ्खचक्रगदापद्मधारी गरुडवाहनः ॥७५॥
स्वर्णयज्ञोपवीती च स्मरचारुमहाननः। किरीटी कुण्डली चैव वनमालाविभूषितः ॥७६॥
चित्रगुप्तो महाप्राज्ञश्चण्डाद्या यमकिङ्कराः। सर्वे नारायणाकारा बभूवुर्मधुरोक्तयः ॥७७॥
ततःस्वयं धर्मराजस्तान्सर्वान्मनुजोत्तमान्। परमाम्प्रीतिमासाद्य मित्रवच्चाऽर्चयेद द्विज !॥७८॥
दिव्यगन्धैःफलैश्चैव तेषां पुण्यवतां नृणाम्। भोजनं कारयित्वा तु तानुवाचाऽथ भास्करिः॥७९॥

यम उवाच

यूयं सर्वे महात्मानो नरकक्लेशभीरवः। निजकर्मप्रभावेण गम्यतां परमं पदम् ॥८०॥

कुछ हाथी पर चढ़कर कुछ रथ पर बैठकर तथा कुछ विमान पर बैठकर सुख पूर्वक यमलोक में जाते हैं॥६७॥ कुछ मनुष्यों के देवाङ्गनायें हाथ में चामर लेकर डुलाती है उसकी वायु से सेवित तथा सुरर्षियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए जाते हैं ॥६८॥ कुछ पुण्यात्मा पुरुष दिव्य आयुधों को अपने हाथ में धारण करके माला तथा चन्दन से अलंकृत होकर, ताम्बूल खाते हुए यमलोक जाते हैं ॥६९॥ पुण्यात्मा अपने शरीर की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जो समुद्र में निवास करते हैं ऐस लोग यमलोक में जाते हैं ॥७०॥ हे श्रेष्ठ ! कुछ मनुष्य दिव्य पायस का भोग करते हैं। वे मार्ग में सुन्दर भोजन करते हुए जाते हैं ॥७१॥ कुछ लोग दुग्धपान करते हुए तथा कुछ ईख का रस पीते हुए तथा कुछ तक्र पीते हुए यमलोक में जाते हैं ॥७२॥ कुछ लोग दही तथा अनेक प्रकार के फलों को खाते हुए यमलोक में जाते हैं। कुछ पुण्यवान् पुरुष मधु पीते हुए जाते हैं। उन बहुत से धार्मिक पुरुषों को आये हुए देखकर यमराज प्रेम पूर्वक स्वयं नारायण हो जाते हैं ॥७३-७४॥ वे चारभुजाओं वाले, श्याम वर्ण वाले, विकसित कमल के समान नेत्र वाले, शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए तथा गरुड़ वाहन हो जाते हैं ॥७५॥ सुवर्ण के यज्ञोपवीत पहने हुए तथा काम देव के समान सुन्दर मुख वाले हो जाते हैं। किरीट तथा कुण्डल धारण किए हुए वे वनमाला से विभूषित हो जाते हैं ॥७६॥ महाप्राज्ञ चित्रगुप्त और चण्ड आदि सभी यमदूत नारायण के आकार वाले तथा मधुर बोलने वाले हो जाते हैं ॥७७॥ उसके पश्चात् स्वयं धर्मराज उन सभी उत्तम मनुष्यों की अत्यन्त प्रेम पूर्वक मित्र के समान अर्चना करते हैं ॥७८॥ उन पुण्यवान् मनुष्यों की दिव्य, गन्ध तथा फलों से भोजन कराकर यम स्वयं कहते हैं ॥७९॥ **यमराज ने कहा**— आप सभी महात्मा तथा नरक के क्लेश से डरने वाले हैं। आपलोग अपने कर्मों के प्रभाव से परम पद में जायँ॥८०॥

संसारे जन्म संप्राप्य पुण्यं यः कुरुते नरः ।
स मे पिता स मे भ्राता समेबन्धु समःसुहृत् ॥८१॥

इत्युक्ता धर्मराजेन ते सर्वे द्विजसत्तम !। दिव्यं रथं समारुह्य नारायणपुरं गताः ॥८२॥
पुण्यात्मनां गतिःप्रोक्तासमासेनद्विजोत्तम !। पापात्मनां शृणुगतिं विस्तरेण वदाम्यहम् ॥८३॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानि दुरात्मनाम्। प्रोक्तो मार्गस्य विस्तारःसर्वदुःखान्वितः स च॥८४॥

क्वचित्क्वचिद् द्विजश्रेष्ठ ! सन्तप्तं तप्तवालुकम् ॥८५॥
क्वचित्क्वचित्तीक्ष्णशिलाःक्वचित्तप्तशिलास्तथा ।
क्वचित्क्वचिच्छस्त्रवृष्टिःक्वचिदङ्गारवर्षणम् ॥८६॥
क्वचिदग्निरिवाऽतीव सन्तप्ता वान्ति मारुताः ।
गम्भीरान्धकाराःक्वाऽपितृणावर्तमुखाद्विज ! ॥८७॥

क्वचित्कण्टकवृष्टिश्च नाराचमयकण्टकैः। पाषाणश्रेणयःक्वाऽपि दुःखरोहाःसपन्नगाः ॥८८॥

गच्छन्ति पापिनस्तत्र शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ।
एवंबहुविधक्लेशे छायाजलविवर्जिते ॥८९॥
तस्मिन्मार्गे द्विजश्रेष्ठ ! पापिनोयान्ति दुःखिता ।
नग्ना विमुक्तकेशाश्च प्रेताकारा भयङ्कराः ॥९०॥
रुधिरौघप्लुताः केचित्केचित्कर्दमभूषिताः ।
केचित्केचिच्च कृष्णाङ्गाः पथि गच्छन्ति पापिनः ॥९१॥
क्रन्दन्तो व्यथया केचित्स्रवद्वाष्पाकुलेक्षणाः ।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि केचिद्गच्छन्ति पापिनः ॥९२॥

संसार में जन्म प्राप्त करके जो मनुष्य पुण्य करता है । वही मेरा पिता, भाई, बन्धु तथा सुहृत् हैं ॥८१॥ इस तरह से यमराज द्वारा कहे गये वे सभी हे द्विजश्रेष्ठ ! दिव्य रथ पर बैठकर नारायण भगवान् के लोक में चले जाते हैं ॥८२॥ मैने पुण्यात्माओं के मार्ग का वर्णन संक्षेप में किया अब मैं पापियों की गति को विस्तार से कहती हूँ उसे आप सुनें ॥८३॥ पापियों के मार्ग का विस्तार छियासी हजार योजन कहा गया है । वह सभी प्रकार के कष्टों से युक्त है ॥८४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! कहीं-कहीं पर तप्त बालू है ॥८५॥ कहीं-कहीं पर तीक्ष्ण शिलाएँ हैं और कही तप्त शिलाएँ हैं, कहीं पर शस्त्रों की वर्षा होती है तो कहीं पर अङ्गार की वृष्टि होती हैं ॥८६॥ कहीं पर अग्नि के समान अत्यन्त गर्म वायु बहती है, कहीं पर घोर अन्धकार होता है और कहीं पर तृणावर्त (बवण्डर) के समान वायु चलती हैं ॥८७॥ कहीं पर बाणों के समान काँटों की वर्षा होती है, कहीं पर चढ़ने में कठिन पाषाण समूह हैं और उन पर सर्प विद्यमान रहते हैं ॥८८॥ पापी मनुष्य जिनके कण्ठ और तालु सुख जाते हैं उसी पर चलते हैं इस तरह से अनेक प्रकार के कष्ट भरे छाया तथा जल से रहित ॥८९॥ मार्ग पर दुःखी पापी मनुष्य चलते हैं । वे नग्न रहते है उनके केश खुले रहते हैं और प्रेत के समान भयङ्कर होते हैं ॥९०॥ कुछ खून से भिंगे हुए तथा कुछ कीचड़ से लेटे हुए रहते हैं। कुछों के शरीर काले होते हैं इस तरह से वे पापीजन जाते हैं ॥९१॥ कुछ कष्ट के मारे रोते

कस्यचिच्चर्मपाशस्य बन्धनं पापिनां गले। कङ्काल कस्यचिद्बद्धाः कस्यचिच्चपदद्वये॥९३॥
गले सूचीसमुत्कीर्णो पाशं दत्त्वा दृढं रुषा ।
आकृष्यन्ते यमप्रेष्यैः केषांचिच्च कृतैनसाम् ॥९४॥
वर्त्मस्थान्गुरुपाषाणान्वहन्तः कर्णरन्ध्रकैः। अयोभारांश्चशीर्षाग्रै व्रजन्ति पथि पापिनः॥९५॥
पाशाबद्धभुजान्कांश्चिन्नयन्ति यमकिङ्कराः। ग्रीवासु पापिनःकेचित्करप्रहरणैर्दृढैः ॥९६॥
क्षिप्तक्षिप्ता यमप्रेष्या नयन्ति यमकिङ्कराः। यान्त्यधः शिरसः केचिदूर्ध्वपादास्तथाऽपरे॥९७॥
गच्छन्ति बाहुभिः केचिदेकपादाश्च केचन। इत्येवं विकृताकारा आर्तरावविरावणाः॥९८॥
यमदूतैस्ताड्यमानाः पापिनो यान्ति तत्पथे। तेष्वागतेषु सर्वेषु पापात्मसु रुषा यमः ॥९९॥
दिव्यां मूर्तिंपरित्यज्य बभूवात्यन्तभैरवः। त्रिंशद्योजनदीर्घाङ्गो वापीसदृशलोचनः॥१००॥
धूम्रवर्णो महातेजाः प्रलम्बोघर्घरध्वनिः। सुदीर्घदशनश्रेणिःशूर्पोपमनखावलिः ॥१०१॥
प्रचण्डमहिषारूढः संदष्टदशनच्छदः। दण्डहस्तश्चर्मपाशो भ्रकुटीकुटिलाननः ॥१०२॥
चित्रगुप्तोमहामायः क्रोधारुणितलोचनः। अट्टाट्टहासं कुर्वाणः समवर्ती विराजते॥१०३॥
चण्डाद्याःकिङ्कराः सर्वे पाशमुद्गरपाणयः। बभूवुर्भैरवाः क्रुद्धागर्जन्तो जलदाइव॥१०४॥
जहि जह्याशुपापिष्ठान्भिन्धिछिन्धि विदारय। समन्तादेवधावन्तावल्गान्ति यमकिङ्कराः ॥१०५॥
तानाह पततः सर्वान्पापिनो धर्मराट्प्रभुः। तर्जयेत्कालदण्डेन त्यजन्हुङ्कारनिःस्वनम् ॥१०६॥

हैं और कुछ के आँखों से आँसू बहते रहते हैं। कुछ पापी अपने कर्मों के विषय में शोक करते हुए जाते हैं ॥९२॥ किसी पापी के गले में चमड़े का पाश रहता है किसी के गले में कङ्काल बंधा रहता है और किसी के दोनों पैर में ॥९३॥ गले में सूई से छेद कर क्रोध पूर्वक पाश बाँधकर यमदूत खींचते हैं और किसी पापी के कान के छिद्र में मार्ग के पाषाणों को डाल देते हैं। कुछ पापी ललाट पर लोहे के भार को रखकर जाते हैं ॥९४-९५॥ कुछ पापियों के हाथ को यमदूत पाश में बाँध कर ले जाते हैं। कुछ पापियों के गले में हाथ से शस्त्रों को डालकर उन सबों को बार-बार फेंककर यमदूत ले जाते हैं। कुछ पापी शिर नीचे और पैर ऊपर करके जाते हैं ॥९६-९७॥ कुछ पापी अपने हाथ के सहारे तथा कुछ एक पैर वाले विकृत आकार वाले होकर जाते हैं और अत्यन्त दुःखी होकर रोते हैं ॥९८॥ उस मार्ग पर यमदूतों से मारे जाते हुए पापी जाते हैं। उन सबों के आ जाने पर यमराज क्रोध करके अपने दिव्य शरीर को त्यागकर अत्यन्त भयङ्कर हो जाते हैं। उनका शरीर तीस योजन लम्बा तथा बावली के समान उनके नेत्र हो जाते हैं ॥९९-१००॥ धूम्रवर्ण वाले महातेजस्वी अत्यन्त लम्बे और घर्घर ध्वनि वाले वे हो जाते हैं। उनके दाँत अत्यन्त लम्बे और नख सूप के समान हो जाते हैं ॥१०१॥ भयङ्कर भैंसे पर सवार तथा क्रोध के कारण अपने ओष्ठों को चबाते हुए वे हाथ में दण्ड और चर्म पाश को लिए रहते हैं। उनकी भृकुटी टेढ़ी हो जाती है ॥१०२। महामायी चित्रगुप्त क्रोध से आँखें लाल कर लेते हैं। अट्टहास करते हुए यम के सन्निकट विराजते हैं ॥१०३॥ चण्ड आदि सभी किङ्कर अपने हाथ में पाश एवं मुद्गर धारण किए हुए भयङ्कर आकार वाले होकर मेघ के समान गर्जना करते हैं ॥१०४॥ वे यमदूत इन पापियों को मार दो काट दो, छेद दो, और चीर दो यह कहते हुए चारो ओर से दौड़ पड़ते हैं ॥१०५॥ उन आये

यम उवाच

रेरे पापादुराचारा युष्माभिरविवेकिभिः । अहो कृतनि पापानि आत्मपीडाकराण्यपि॥१०७॥

मस्तकोपरि तिष्ठन्तं नेक्षध्वं समवर्तिनम् ।
ज्ञात्वाऽपि मां जीवितेशं युष्माभिःपातकंकृतम् ॥१०८॥

पुण्यात्मनामहं बन्धुरहं पापात्मनां रिपुः । इति कुत्राऽपि युष्माभिर्न श्रुतं श्रवणैःस्वकैः॥१०९॥

निरया दुःसहाःसन्ति नानादुःखसमन्विताः । पापिनो भुञ्जतेतांश्च युष्माभिर्नेति विश्रुतम् ॥११०॥

मत्वा मिथ्यैव युष्माभिश्चर्चांमम दुराशयाः । अद्यसैव स्वकैर्नेत्रैर्दृश्यतां कृतपातकाः ॥१११॥

वित्तान्ध्येन वचो मत्ता यूयं सर्वे सदैव हि । चक्रिरे पापजालानि युष्माभिः सततं यथा ॥
तथापापफलं दुष्टा भुज्यतां क्रन्दनेन किम् ॥११२॥

सुप्राज्ञोवच

इत्युक्त्वा भास्करिर्देवश्चित्रगुप्तमुवाच ह। एतेषां पापकर्माणि महाभाग ! विचारय॥११३॥

धर्मराजवचःश्रुत्वा चित्रगुप्तो महायशाः । तेषां यावन्ति पापानि तावन्ति ! प्राह चोदितः॥११४॥

ततस्ते पापिनः सर्वे क्रन्दन्ति द्विजसत्तम !। इत्यूचुः शमनं भीताश्चर्मपाशे नियन्त्रिताः ॥११५॥

पापिनऊचुः

अस्माभिर्यानि पापानि कृतानि भास्करात्मज ! ।
के स्थितः साक्षिणस्तत्र कैर्वा यूयं निवेदिताः ?॥११६॥
अशुभं वाशुभंवाऽपि यतोऽस्माभिःकृतम्पुरा ।
तथाच दृष्टंकेनाऽत्र पुरोऽस्माकं निगद्यताम् ॥११७॥

हुए पापियों से यम ने कहा इन सबों को हुङ्कार ध्वनि करते हुए कालदण्ड से डराना चाहिए ॥१०६॥ **यमराज ने कहा—** अरे दुराचारी पापियों तुम अज्ञानी लोगों ने अपने को दुःख देने वाले पापों को किया है ॥१०७॥ मुझको जीवों का स्वामी मुझको जानकर भी तुमलोगों ने पाप किया है समवर्ती मुझको अपने शिर पर विद्यमान मुझको नहीं देखा ॥१०८॥ मैं पुण्यात्माओं का बन्धु तथा पापियों का शत्रु हूँ । इस बात को तुमलोगों ने कहीं भी अपने कानों से नहीं सुना है ॥१०९॥ तुमलोगों ने नही सुना है कि नरक दुःसह हैं और दुःख देने वाले हैं । पापी लोगों को उसे भोगना पड़ता है हमलोगों को नहीं ॥११०॥ दुष्ट अन्तःकरण वाले तुम लोगों ने मेरी चर्चा को मिथ्या माना है पापियों आज तुमलोग अपने नेत्रों से मुझे देख लो ॥१११॥ धन के मद में अन्धे बने हुए तुमलोगों ने सदा पापों को ही किया है । अतएव तुम लोग पाप के फलों को भोगों रोने से क्या होता है ॥११२॥ **सुप्रज्ञा ने कहा—** इस तरह से कहकर यमराज ने चित्रगुप्त से कहा हे महाभाग ! इन सबों के पाप कर्मों का आप विचार करें ॥११३॥ धर्म राज की वाणी सुनकर चित्रगुप्त उन सबों के जितने पाप थे उन सबों को बतलाये ॥११४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! उस समय वे सभी पापी रोने लगे और चर्म पाश में बँधे हुए भयभीत वे यमराज से कहे ॥११५॥ **पापियों ने कहा—** हे भास्करात्मज ! हमलोगों ने जिन पापों को किया है उन सबों को देखने वाले वहाँ कौन थे और किन सबों ने उसे आपलोगों को बतलाया ॥११६॥ हमलोगों ने पहले जो अच्छा अथवा बुरा कर्म किया

ततः प्रहस्य भगवान्कोपेन महता द्विज ! । आहूय साक्षिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥११८॥

यम उवाच

यूयं सर्वे यथावृत्तं सन्निधौ साक्षिणस्तथा। आकाशं पृथिवीं चैव जलञ्च तिथयस्तथा॥११९॥
दिनं रात्रिरुभे सन्ध्ये धर्मश्चैते तु साक्षिणः। तेषां पापात्मनामूचुः सर्वंकर्मशुभाशुभम् ॥१२०॥
यस्यां यस्यां च वेलायां कर्म यद्यच्च वै कृतम् ।
स स साक्षीतस्य तस्य जगाद यमसन्निधौ ॥१२१॥
तच्छ्रुत्वा पापिनः सर्वे साध्वसाः क्लिष्टमानसाः ।
सकम्पहृदयास्तस्थुर्मेघं दृष्ट्वा मृगा इव ॥१२२॥
ततस्तु दन्तावलिभिः कुर्वन्कडकडध्वनिम् । धर्मराट्कालदण्डेन ताञ्जघान पृथक्पृथक् ॥१२३॥
ताडिता धर्मराजेन तेसर्वे कृतपातकाः । क्रन्दन्ति निजकर्माणि शोचन्तःप्राप्तसाध्वसाः॥१२४॥
ततस्तान्पापिनः सर्वान्दूताश्चण्डादयो रुषा । नरकेषु यमादेशाद्रौरवादिषु चिक्षिपुः ॥१२५॥
तपने चिक्षिपुः कांश्चिदवीचौ कृतपातकान्। सङ्घाते कालसूत्रे च महारौरवके तथा ॥१२६॥
सन्तप्ते वालुकाकुण्डे कुम्भीपाके तथाऽपरान् ।
निरुच्छ्वासे महाघोरे चिक्षिपुश्च प्रमर्दने ॥१२७॥
असिपत्रवने घोरे नानाभक्षेषु पापिनः । वैतरण्यां तथा कांश्चिच्चिक्षिपुर्यमकिराः ॥१२८॥
घोरे विष्ठाह्रदे कांश्चित्तुषाङ्गारास्थिकण्टकैः ।
पूर्णे नितान्तसन्तप्ते चिक्षिपुर्यमकिङ्कराः ॥१२९॥
पुरीषलेपने चैव पुरीषभोजने तथा । स्वमांसभोजने चैव स्थापिता यमकिङ्करैः॥१३०॥

है, उसको कौन देखा है इस बात को आप हमलोगों को बतलायें ॥११७॥ हे द्विज ! उसके बाद जोर से हँसकर यमराज क्रोध करके सभी पापियों को बुलाकर कहे ॥११८॥ **यम ने कहा—** तुम सभी सन्निकट में रहकर जो साक्षी हैं आकाश, पृथिवी, जल, तिथियाँ, दिन और रात्रि तथा दोनों सन्ध्यायें तथा धर्म ये सभी साक्षी हैं उन पापियों के सभी पुण्य और कर्मों को जिस-जिस समय में तथा जो-जो कर्म किए थे । उन सबों के साक्षी वे यम को बतलाये ॥११९॥ उसको सुनकर भयभीत सभी पापी दुःखी होकर काँपते हुए हृदय वाले उसी तरह भयभीत हो गये जैसे मेघ को देखकर मृग भयभीत हो जाते हैं ॥१२०॥ उसके बाद दाँतों को कड़कड़ाते हुए धर्मराज उन सबों को कालदण्ड से अलग-अलग मारा ॥१२३॥ यमराज के द्वारा मारे गये वे सभी पापी अपने कर्मों को सोचते हुए भयभीत होकर सोचने लगे ॥१२४॥ उसके पश्चात् उन सभी पापियों को चण्ड आदि यमदूत क्रोध पूर्वक यमराज की आज्ञा से रौरव आदि नरकों में डाल दिए॥१२५॥ कुछ को अवीचि नरक की आग में डाल दिये तथा कुछ को संघात, कालसूत्र तथा महारौरव आदि नरकों में डाल दिये ॥१२६॥ दूसरों को तपाते हुए बालू के कुण्ड में कुम्भीपाक नरक में निरुच्छवास तथा अत्यन्त भयङ्कर प्रमर्दन नरक में डाल दिए ॥१२७॥ उन पापियों को असिपत्र वन में एवं लालाभक्ष कुण्डों में डाले तथा कुछ पापियों को वैतरणी में यमदूतों ने डाल दिया ॥१२८॥ कुछ को भयङ्कर विष ह्रद में तथा कुछ को तुषाग्नि में तथा कुछ को काँटो से परिपूर्ण तथा सन्तप्त कुण्ड में यमदूतों ने डाल

श्लेष्माणं भुञ्जते केचित्केचिद्वीर्यं च भुञ्जते ।
पिबन्ति केचिन्मूत्राणि केचिद्रक्तानि पापिनः ॥१३१॥
केषाञ्चिद्वदनेष्वेव जलौकाः पन्नगोपमाः । पूर्यन्ते पन्नगाश्चैव यमदूतैर्भयङ्करैः ॥१३२॥
उत्पाद्यन्तेऽतिसन्तप्तैर्जिह्वाश्च द्विजसत्तम ! । केषाञ्चित्कर्णरन्ध्रेषु मुखेषु च कृतैनसाम् ॥१३३॥
तप्ततैलानि पूर्यन्ते निर्दयैर्यमकिङ्करैः । केषांचित्खड्गधाराभिर्बाहुं च चरणं तथा ॥१३४॥
कर्णादिनासिकाश्चैव च्छिन्दन्ति च दुरात्मनाम् ।
शयनंकुर्वते केचिज्ज्वलदङ्गारसञ्चये ॥१३५॥
केचिन्नाराचतुल्येषु शयनंकण्टकेषुच । कर्दमेषु च तप्तेषु कांश्चिच्छमनकिङ्कराः ॥१३६॥
पातयन्तिद्विजश्रेष्ठ ! केशेष्वाकृष्य पापिनः । वमनेषु च केषाञ्चिन्नखसन्धिषुपापिनाम् ॥१३७॥
तप्तसूचिसहस्राणि प्रक्षिपन्ति मुहुर्मुहुः । संतप्तलोहशूलाग्रे कांश्चिदारोपयन्ति वै ॥१३८॥
क्रदन्तिकण्टकैस्तीक्ष्णैःकेषांचिन्मस्तकानिवै । गृहीत्वा हस्तपादेषु शाल्मलिद्रुमकण्टकैः ॥१३९॥
निष्कुषन्ति रुषा कांश्चिदार्तरावविराविणः । बद्ध्वागलेषु पाषाणंकांश्चिच्छमनकिङ्कराः ॥१४०॥
रक्तगर्ते पयोगर्ते पातयन्ति पुनःपुनः । क्रूराः केषाञ्चिदन्येषांशिरांसि पापिनां नृणाम् ॥१४१॥
चूर्णयन्त्युपलैर्याम्या मुहुर्मुहुरतिक्रुधा । वक्षोमध्येषु केषांचिल्लोहकीलकसञ्चयान् ॥१४२॥
आरोपयन्ति लोकानां क्रन्दतां दुरितात्मनाम् ।
चक्षूंषि बडिशैः केषामुत्पाट्यन्ते कृतैनसाम् ॥१४३॥
केषाञ्चिन्नास्तिका एव पूयेन्तेवृश्चिकैर्द्विज ! ।
केषांचिद् वृक्षशाखायां बद्ध्वापादांश्च पाशकैः ॥१४४॥

दिया ॥१२९॥ कुछ को पुरीष लेपन में तथा कुछको पुरीष भोजन नरक में तथा एवं मांस भोजन नरक में यमदूतों द्वारा डाले गये ॥१३०॥ कुछ कफ खाते थे तो कुछ वीर्य खाते थे कुछ पापी मूत्र पीते थे तो कुछ रक्त पीते थे ॥१३१॥ अतिसन्तप्त नरक में हे द्विजश्रेष्ठ ! कुछ के जीभ उखाड़ लिए जाते थे । कुछ पापियों के कान के छिद्र में तथा मुख में निर्दय यमदूत तप्त तेल डाल देते थें । कुछों के तीक्ष्ण धार से हाथ और पैर को काट लिया जा रहा था ॥१३२-१३४॥ उनके नाक और कान काट लिए जाते थे । कुछ पापियों को जलते हुए अङ्गार समूह पर सुलाया जा रहा था ॥१३५॥ कुछ पापी को बाणों के समान काण्टों पर सुलाया जा रहा था । कुछ पापियों को यमदूत संतप्त कीचड़ में सुला रहे थे ॥१३६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! कुछ पापी के बाल को पकड़ कर वमन में गिरा दिया जाता था । कुछ पापियों के नखों में और जोड़ों में बार-बार हजारो सूइयाँ चुभायी जाती थी । कुछ को जलते हुए त्रिशूल के ऊपर बैठाया जा रहा था ॥१३७-१३८॥ कुछ के मस्तक में तीक्ष्ण शूल चुभाया जा रहा था वे चिल्ला रहे थे । उनके हाथ पैर पकड़कर सेमर के पेड़ के काण्टे को क्रोध पूर्वक यमदूत चुभा रहे थे । और वे करुण क्रन्दन कर रहे थे । कुछ पापियों के गले में पत्थर बाँधकर यमदूत ॥१३९-१४०॥ रक्त के गढे में तथा जल के गढे में बार-बार गिराते थे । क्रूर यमदूत कुछ पापियों के शिर को पत्थर से चूर-चूर बार-बार कर रहे थे । कुछ के हृदय में लोहे के कील गाड़े जा रहे थे ॥१४१-१४२॥ कुछ रोते हुए पापियों के नेत्र वंशी से निकाले

ज्वलयन्ति तले वह्निं सधूमं यमकिङ्कराः। धूमपानं प्रकुर्वन्ति ते तत्र कृतकिल्बिषाः॥१४५॥
अधोमुखा ऊर्ध्वपादास्तस्थुराचन्द्रतारकम्। मुसलैर्मुद्गरैः केचित्ताड्यमानाः पुनः पुनः ॥१४६॥
यामैर्दूतैरुद्गिरन्ति शोणितानि व्यथाकुलाः ।
अन्धकारमये गेहे पूतिगन्धवति द्विज ! ॥१४७॥
दंशैश्च मशकैश्चैव केचित्सीदन्ति पापिनः। भस्मानि भुञ्जते केचित्कृमीन्केचिच्च भुञ्जते॥१४८॥
केचिद्दुर्गन्धिमांसानि केचिच्च पूतिमृत्तिकाम्। श्वभिर्व्याघ्रैः शृगालैश्चवज्रदन्तनखैस्तथा ॥१४९॥
ऋक्षैः केचिद्भक्ष्यमाणाः क्रन्दन्ति रुधिराप्लुताः ।
नितान्तोग्रविषैः सर्पैर्भक्ष्यमाणास्तथाऽपरे ॥१५०॥
अन्ये महिषशृङ्गाग्रनिर्भिन्नवासो द्विज !। पतन्ति मूर्च्छिताः पृथ्व्यां सिञ्चन्तो रुधिरैर्महीम्॥१५१॥
यमदूतधनुर्मुक्तैश्शरैराशीविषोपमैः । जर्जराखिलदेहाश्च लुठन्त्यन्ये महीतले॥१५२॥
तप्तायःपिण्डनिलयं तप्तपाषाणमेव च। दंशस्त्रेण केषाचित्कृष्णान्तदवदनेषु च ॥१५३॥
नासारन्ध्रेषु केषाञ्चिद्यमदूता मुखेषु च। श्वासानिलनिरोधार्थं नासारन्ध्रं वयन्तिवै॥१५४॥
केषांचित्तीक्ष्णधाराभिर्यमशक्तिभिरुद्धतैः । उत्पाट्यन्तोऽङ्गचर्माणि यमदूतैर्महाबलैः ॥१५५॥
कांश्चिद्गृहीत्वा केशेषु निपात्य पृथिवीतले। कीलैः पादादिभिघतिस्ताडयन्ति सदैव हि॥१५६॥
केचित्क्षाराम्बुधाराभिःसन्तप्ताःकृतपातकाः। क्षाराम्बु पानं कुर्वन्ति क्रन्दन्तो बहुधा द्विज !॥१५७॥

जा रहे थे ॥१४३॥ कुछ पापियों की नाक में बिच्छी डाली जा रही थीं। कुछ पापियों के पैरों को वृक्ष की शाखा में पाश से बाँधकर ॥१४४॥ धूम से युक्त आग को उनके नीचे जला रहे थे। वे पापी वहाँ पर धूमपान करते हैं ॥१४५॥ नीचे मुख तथा ऊप पैर करके वहाँ तब तक रहते हैं जब तक चन्द्रमा और तारे रहते हैं। कुछ पापी मुसर तथा मूशल से बार-बार मारे जाते हुए ॥१४६॥ व्यथा से व्याकुल वे बार-बार खून उगलते हैं। हे द्विज ! अन्धकार भरे तथा सड़े मासं से युक्त गृह में ॥१४७॥ कुछ पापी दंश तथा मच्छर से पीड़ित होते हैं। कुछ भस्म खाते है और कुछ कृमियों को खाते हैं ॥१४८॥ कुछ दुर्गन्ध युक्त मांसों को तथा कुछ सड़ी मिट्टी को खाते हैं। कुत्ते व्याघ्र शृङ्गालों के वज्र के समान नखों से॥१४९॥ तथा कुछ ऋक्षों से खाये जाते हुए खून से लथपथ होकर चिल्लाते हैं। तथा कुद उग्र विष वाले सर्पों से खाये जाते हैं ॥१५०॥ हे द्विज ! दूसरे पापी भैंसे के सींग के अग्रभाग से विदीर्ण वक्षःस्थल वाले मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर जाते हैं और रक्त से पृथिवी को सींचते हैं ॥१५१॥ यमदूतों के धनुष से छोड़े गये सर्प के समान बाणों से जर्जर शरीर वाले कुछ पापी पृथिवी पर लोटते हैं ॥१५२॥ तप्त लोहे के घर में तप्त पाषाण हैं दंश शस्त्र के द्वारा कुछों के काले दाँत और मुख में ॥१५३॥ कुछ पापियों के नाक के छिद्र में तथा मुख में श्वास वायु को रोक देने के लिए सी देते हैं ॥१५४॥ किन्हीं पापियों के तीक्ष्ण धार वाली यम की शक्तियों के द्वारा महाबलवान् यमदूत उनके शरीर के चमड़े को निकालते हैं ॥१५५॥ कुछ पापियों के केश को पकड़कर पृथिवी पर गिराया जाता है तथा यमदूत उन सबों को कील के द्वारा तथा पैरों के प्रहार से सदैव मारते रहते हैं ॥१५६॥ कुछ पापी गर्म नमकीन पानी की धारा से संतप्त होकर क्षार पानी को बहुत अधिक रोते हुए पीते हैं ॥१५७॥ कुछ पापी हे महाभाग ! पित्त को पीते हैं। कुछ

पित्तपानं महाभाग ! केचित्कुर्वन्ति पापिनः ।
स्नुहीक्षीराणिकेचिच्च पिबन्ति पापिनांवराः ॥१५८॥
केषांचित्स्वपतांभूमौ वक्षःसु यमकिङ्करैः । दीयन्ते गुरुपाषाणाः संतप्ताः पर्वतोपमाः ॥१५९॥
काष्ठखण्डद्वयं दत्त्वा ग्रीवायाञ्च गले तथा ।
उदग्रमुखं बध्नन्ति केषाञ्चिद्दृढपाशकैः ॥१६०॥
आरोप्यवृक्षशाखायां कांश्चिद्भूमौ क्षिपन्ति च ।
उत्थापयन्ति भूमौ च प्रक्षिपन्ति पुनःपुनः ॥१६१॥
एवं ते पापिनःसर्वे क्षुधितास्तृषितास्तथा । त्राहि त्राहीति जल्पन्तो रुदन्ति यातनागृहे ॥१६२॥
युगकल्पान्तपर्यन्तं भुक्त्वा निरययातनाम् । नातिभुक्त्वा पापशेषे जायन्ते पापयोनिषु॥१६३॥
पापयोनौ समुत्पन्ना भवन्ति व्याधिपीडिताः । हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च दुःखिनःपापसेवकाः ॥१६४॥
अपुत्रा अतिमूर्खाश्च पर हिंसापरायणाः । अल्पायुषोऽल्पमतयः कुभार्यापतयस्तथा ॥१६५॥
नित्यं पापानि कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ।
पुनः पापप्रभावेण निरयं यान्ति पूर्ववत् ॥१६६॥
तस्मात्पापं न कर्त्तव्यं कदाचिदपि सत्तम । नराणां कृतपापानां नरकान्नास्तिनिष्कृतिः ॥१६७॥
संक्षेपात्पापिंना दुःखं निरुक्तंद्विजसत्तम ! । सम्यग्वक्तुं कः क्षमोऽस्ति वर्षायुतशतैरपि॥१६८॥
कल्पकोटिसहस्राणि भुक्त्वा भोगान्हरेर्गृहे । जातौ वै राजवंशेऽस्मिन्विशुद्धे द्विजसत्तम ॥१६९॥
अत्रभुक्त्वाऽखिलान्भोगान्सर्वसंपत्समन्वितान् ।
सुखमृत्युं समासाद्य गन्तव्यं परमम्पदम् ॥१७०॥

श्रेष्ठ पापी मेंढ़की के दुग्ध को पीते हैं ॥१५८॥ कुछ भूमि पर सोने वाले पापियों को छाती पर यमदूत पर्वत के समान भारी पत्थरों को रख देते हैं ॥१५९॥ कुछ यमदूत पापियों के मुख को ऊपर की ओर करके काठ को दो खण्डों में करके गले तथा कण्ठ में सुदृढ पाश से बाँध देते हैं ॥१६०॥ कुछ पापियों को वृक्ष की शाखा पर रखकर यमदूत पृथिवी पर फेंक देते हैं और उन सबों पृथिवी पर को बार-बार उठाकर पृथिवी पर पटकते रहते हैं ॥१६१॥ इस तरह वे भूखे तथा प्यासे हुए पापी यातना गृह में रक्षा करो- रक्षा करो कहते हुए रोते रहते हैं ॥१६२॥ इस तरह से युगों तथा कल्पों पर्यन्त नारकीय यातना को भोगकर पूर्ण रूप से नहीं भोगकर भोगने से बचे हुए पापों के कारण पाप योनियों में उत्पन्न होते हैं॥१६३॥ पाप योनियों में उत्पन्न होकर वे व्याधि से पीड़ित हो जाते हैं और हीनाङ्ग अथवा अधिकाङ्ग वे पापी दुःखी होते हैं ॥१६४॥ पुत्रहीन, अत्यन्त मूर्ख दूसरों की हिंसा करने वाले, अल्पायु, अल्पमति वाले तथा कुमारियों के पति हो जाते हैं ॥१६५॥ और मन, कर्म तथा वाणी से नित्य ही पापों को करते हैं। और फिर पाप के प्रभाव से पहले के ही समान नरक में जाते हैं ॥१६६॥ इसीलिए श्रेष्ठ पुरुषों को कभी भी पाप नहीं करना चाहिए । पापी मनुष्य कभी भी नरकों से नहीं निकल पाते हैं ॥१६७॥ हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने पापियों को मिलने वाले दुःखों का संक्षेप में वर्णन किया । उन सबों का अच्छी तरह से वर्णन कोई सौ वर्ष की आयु से भी नहीं कर सकता है ॥१६८॥ हम दोनों पापियों के पापों को देखकर वहाँ से रथ

एकादशीव्रतसमं व्रतं नास्ति जगत्त्रये ॥१७१॥
अनिच्छयापिऽयत्कृत्वा गतिरेवं विधाऽऽवयोः ।
एकादशीव्रतं ये तु भक्तिभावेन कुर्वते ॥१७२॥
न जाने किं भवेत्तेषां वासुदेवानुकम्पया। इति ते कथितं सर्वं पृष्टं ब्राह्मणसत्तम ! ॥१७३॥
विष्णोर्दिवसमाहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥१७४॥

व्यासउवाच

तस्यैतद्ववचनं श्रुत्वा स विप्रः परमार्थवित्। एकादशीव्रते चित्तं चकार सुदृढं निजम्॥१७५॥
सराजाराजमहिषी चिरं भुक्त्वा वसुन्धराम् ।
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा प्राप्तवन्तौ परंपदम् ॥१७६॥
व्रतराजस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च ।
पापज लैर्विनिर्मुक्ता लभन्ते हरिसिन्निधिम् ॥१७७॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
एकादशीमाहात्म्यं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

पर चढ़कर भगवान् नारायण के लोक में गये ॥१६९॥ श्रीहरि के गृह में हजारों कल्पों पर्यन्त भोगों को भोगकर हे द्विज श्रेष्ठ इस विशुद्धवंश में उत्पन्न हुए ॥१७०॥ यहाँ पर सभी सम्पत्तियों से सम्पन्न सभी भोगों को भोगकर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करके हमलोगों को परम्पद में जाना है ॥१७१॥ त्रैलोक्य में एकादशी व्रत के समान कोई भी व्रत नहीं है । उस व्रत को विना इच्छा के करने पर भी हम दोनों की इस प्रकार की गति प्राप्त हुयी । जो लोग भक्तिभाव पूर्वक एकादशी व्रत को करते हैं ॥१७२॥ उन सबों का भगवान् वासुदेव कृपा से न जाने क्या होगा ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आपने जो पूछा उसको मैने पूर्ण रूप से बतला दिया ॥१७३॥ भगवान् विष्णु के दिवस का (एकादशी का) माहात्म्य कहा अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥१७४॥ **व्यासजी ने कहा—** इस तरह से उसके वचन को सुनकर वह ब्राह्मण भी एकादशी व्रत में अपने मन को लगाये ॥१७५॥ राजाओं के भी राजा और वह रानी दीर्घकाल तक पृथिवी के भोगों को भोगकर अन्त में विष्णु लोक में जाकर परम्पद को प्राप्त किए ॥१७६॥ इस व्रत राज के माहात्म्य को जो लोग पढ़ते हैं अथवा सुनते हैं वे पाप समूह से मुक्त होकर श्रीहरि के सान्निध्य को प्राप्त करते हैं ॥१७७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के एकादशी माहात्म्य वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवपप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

चौबीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

एकादश्याः फलं श्रुत्वा सुप्रीतो जैमिनिस्ततः ।
कृताञ्जलिरुवाचेदंकृष्णद्वैपायनम्प्रभुम् ॥१॥

जैमिनिरुवाच

विष्णोर्दिनस्यमाहात्म्यं त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं मया। तुलस्या ब्रूहि माहात्म्यं शृण्वतां पापनाशनम् ॥२॥

व्यास उवाच

इन्द्राद्यैर्दैवतैः सर्वैस्तुलसी भगवत्यसौ। संसेव्या सर्वदा विप्र ! चतुर्वर्गफलप्रदा ॥३॥
स्वर्गे मर्त्येच पाताले तुलसी दुर्लभा सताम् ।
चतुर्वर्गफलप्राप्तिं तस्यां भक्तिःकरोति वै ॥४॥
यत्रैकस्तुलसीवृक्षस्तिष्ठत्यपि च सत्तम ! । तत्रैव त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥५॥
केशवः पत्रमध्ये च पत्राग्रे च प्रजापतिः। पत्रवृन्ते शिवस्तिष्ठेत्तुलस्याः सर्वदैव हि॥६॥
लक्ष्मीःसरस्वती चैव गायत्री चण्डिका तथा ।
सर्वाश्चान्या देवपत्न्यस्तत्पत्रेषु वसन्ति च ॥७॥
इन्द्रोऽग्निः शमनश्चैव नैर्ऋतिर्वरुणस्तथा। पवनश्च कुबेरश्च तच्छाखायां वसन्त्यमी ॥८॥
आदित्यादिग्रहाः सर्वे विश्वेदेवाश्च सर्वदा। वसवो मुनयश्चैव तथा देवर्षयोऽखिलाः ॥९॥
कोटिब्रह्माण्डमध्येषु यानि तीर्थानि भूतले। तुलसीदलमाश्रित्य तान्येव निवसन्ति वै॥१०॥
तुलसीं सेवते यस्तु भक्तिभावसमन्वितः। सेवितास्तेन तीर्थाश्च देवा ब्रह्मादयस्तथा॥११॥

तुलसी माहात्म्य

सूतजी ने कहा— उसके बाद एकादशी के माहात्म्य को सुनकर जैमिनि ने श्रीव्यासजी से हाथ जोड़कर कहा ॥१॥ **जैमिनि ने कहा—** आपकी कृपा से मैंने एकादशी के माहात्म्य को सुना अब आप सुनने वालों के पाप को विनष्ट करने वाले तुलसी के माहात्म्य को बतलायें ॥२॥ भगवती तुलसी इन्द्र इत्यादि देवताओं के द्वारा संसेव्य हैं क्योंकि ये चारो प्रकार के पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली हैं ॥३॥ स्वर्गलोक में, मर्त्य लोक में तथा पाताल लोक में तुलसी दुर्लभ हैं । जो तुलसी की भक्ति करता है उसको चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥४॥ हे सत्तम ! जहाँ कहीं भी एक भी तुलसी का वृक्ष रहता है वहीं पर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी इत्यादि सभी देवताओं का निवास होता है ॥५॥ तुलसी के पत्ते के बीच में भगवान् केशव, पत्ते के अग्रभाग में ब्रह्माजी तथा पत्तके के मूल में सदा शिवजी का निवास होता है॥६॥ लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री तथा चण्डिका तथा दूसरे सभी देवताओं की पत्नियों का निवास तुलसी के पत्ते में रहता है ॥७॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, पवन तथा कुबेर का निवास तुलसी की शाखा में होता है ॥८॥ सूर्य इत्यादि सभी ग्रह, तथा विश्वेदेव सदैव ही वसुगण तथा मुनिगण एवं सभी देवर्षिगण॥९॥ करोडों ब्रह्माण्डों में पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं वे सब तुलसी दल में निवास करते हैं ॥१०॥ जो भक्ति

छिन्दन्ति तृणजालानि तुलसीमूलजानि ये। तद्देहस्थां ब्रह्महत्यां क्षिणत्ति तत्क्षणाद्धरिः ॥१२॥
ग्रीष्मकाले द्विजश्रे!ष्ठसुगन्धैः शीतलैर्जलैः। तुलसीसेचनं कृत्वा नरो निर्वाणमाप्नुयात्॥१३॥
चन्द्रातपं वा छत्रं वा तस्यै यस्तु प्रयच्छति।
विशेषतो निदाघेषु स मुक्तः सर्वपातकैः ॥१४॥
वैशाखेऽक्षतधाराभरद्भिर्यस्तुलसीं जनः। सेचयेत्सोऽश्वमेधस्य फलंप्राप्नोति नित्यशः ॥१५॥
प्रसृतोदकमात्रेण तुलसीं यस्तु सेचयेत्। सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥१६॥
कदाचित्तुलसीं दुग्धैः सेचयेद्यो नरोत्तमः। तस्य वेश्मनि विप्रर्षे! लक्ष्मीर्भवति निश्चला ॥१७॥
गोमयैस्तुलसीमूले यः कुर्यादुपलेपनम्। सम्मार्जनञ्च विप्रर्षे! तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१८॥
रजांसि तत्र यावन्ति दूरीभूतानि जैमिने!। तावत्कल्पसहस्राणि मोदते विष्णुना सह ॥१९॥
प्रदीपं यस्तुसन्ध्यायास्थापयेत्तुलसीतले। सयातिमन्दिरंविष्णोः कुलकोटिसमन्वितः॥२०॥
गोभ्यःश्वभ्यःखरेभ्यश्च मनुष्येभ्यश्च रक्षति। शिशुभ्यस्तुलसीं यस्तुतं रक्षेत्केशवःसदा॥२१॥
तुलस्यारोपणं यस्तु भक्तितः कुरुते नरः। स मृतः परमं मोक्षं प्राप्नोत्येव न संशयः॥२२॥
प्रभाते तुलसीं पश्येद्भक्तिमान्यो नरोत्तमः। सविष्णुदर्शनस्यैव फलं प्राप्नोति चाऽक्षयम्॥२३॥
तुलसीं प्रणमेद्यस्तु नरो भक्तिसमन्वितः। आयुर्बलं यशोवित्तं सन्ततिस्तस्य वर्धते॥२४॥
तुलसीस्मरणे नैव सर्वपापं विनश्यति। तुलसीस्पर्शने नैव नश्यन्ति व्याधयो नृणाम्॥२५॥

भाव पूर्वक तुलसी की सेवा करता है, उसको सभी तीर्थों तथा सभी देवताओं की सेवा का फल प्राप्त होता है ॥११॥ तुलसी के मूल में निकली हुयी घासों को जो निकाल देता है उसके देह में स्थित ब्रह्म हत्या को श्रीहरि क्षणभर में विनष्ट कर देते हैं ॥१२॥ हे द्विज श्रेष्ठ! ग्रीष्म काल में सुगन्धित शीतल जल से तुलसी को सींचकर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१३॥ जो तुलसी को चन्द्रमा की चाँदनी को तथा छत्र को विशेष रूप से गर्मी के दिन में प्रदान करता है वह सभी पापों से छूट जाता है ॥१४॥ जो व्यक्ति वैशाख के महीने में अखण्ड शीतल जल की धारा से तुलसी को सींचता है वह नित्य ही अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥१५॥ जो बहे हुए जल से तुलसी को सीचता हैं वह भी सभी पों से रहित होकर स्वर्ग में जाता है ॥१६॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य कभी तुलसी को दुग्ध से सींचता है उसके घर में निश्चल लक्ष्मी का निवास होता है ॥१७॥ जो तुलसी के मूल में गोबर से लिपने का काम करता है तथा उसको झाड़ता है हे विप्र! उसको प्राप्त होने वाले पुण्यों को आप सुनें ॥१८॥ हे जैमिने! वहाँ से जितने धूलिकण को साफ किया जाता है वह उतने हजार कल्पों तक भगवान् विष्णु के साथ आनन्दानुभव करता है ॥१९॥ जो तुलसी के मूल में दीपक जलाता है वह अपने करोड़ों कुल वालों के साथ भगवान् विष्णु के लोक में जाता है जो गौओ, गधों, मनुष्यों तथा बच्चों से तुलसी की रक्षा करता है, उसकी रक्षा सदा भगवान् केशव करते हैं ॥२०-२१॥ जो मनुष्य भक्ति पूर्वक तुलसी को रोपता है वह मरने के बाद निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करता है ॥२२॥ जो भक्ति सम्पन्न मनुष्य प्रातःकाल तुलसी का दर्शन करता है वह भगवान् विष्णु के ही दर्शन का अक्षय फल प्राप्त करता है ॥२३॥ जो मनुष्य भक्ति पूर्वक तुलसी को प्रणाम करता है उसकी आयु, धन, बल, यश तथा सन्तान बढ़ते हैं ॥२४॥ जो तुलसी का स्मरण करता

योऽश्नाति तुलसीपत्रंसर्वपापहरंशुभम् । तच्छरीरान्तरस्थायि पापंनश्यति तत्क्षणात् ॥२६॥
तुलसीकाष्ठसम्भूतां मालां वहति यो नरः । तद्देहे पातकं नास्ति सत्यमेतन्मयोच्यते॥२७॥
तुलसीपत्रगलितं यस्तोयं शिरसावहेत् । गङ्गायाः स्नानजं पुण्यं लभतेनाऽत्रसंशयः ॥२८॥
दूर्वाभिरक्षतैःपुष्पैर्नैवेद्यैस्तुलसीं शुभाम् । समाराध्य नरो भक्तया विष्णुपूजाफलं लभेत् ॥२९॥

येनाऽर्चिता भगवती तुलसी कदाचिन्नैवेद्यपुष्पवरधूपघृतप्रदीपैः ।
धर्मार्थकामपरमामृतदायिविप्राः किं तस्य विष्णुचरणापचितिप्रयोगैः ॥३०॥
स्थानेषु दोषरहितेषु सुरौघसेव्यामारोपयन्ति तुलसीं हरितुष्टिकर्त्रीम् ।
तुष्टो हरिस्त्रिजगतामधिपो मुरारिस्तेभ्यो ददाति परमं पदमाशु विप्र ! ॥३१॥
यज्ञं व्रतं च पितृपूजनमच्युतार्चां दानं यदन्यदपि कर्मशुभं मनुष्याः ।
कुर्वन्तिदोषरहितेतुलसीतले च तान्यक्षयाणि सकलानि भवन्ति नूनम् ॥३२॥
यद्धर्मकर्म कुरुते मनुजः पृथिव्यां नारायणप्रियतमां तुलसीं बिना च ।
तत्सर्वमेव विफलं भवति द्विजेन्द्र ! पद्मेक्षणोऽपि न हि तुष्यति देवदेवः ॥३३॥
यात्रासु पश्यति शुभां तुलसीं पवित्रां यो भक्तिभावसहितो मनुजो हिनूनम् ।
यात्राफलं सकलमेव हरिप्रसादात्तस्याऽऽशु सिध्यति वचः सुदृढं ममैतत् ॥३४॥
त्यक्त्वा सुगन्धि कुसुमं भुवनैकनाथो मन्दारकुन्दनलिनादिकमप्यनन्तः ।
गृह्णाति सद्गुणमयीं तुलसींप्रमोदैः शुष्कामपि प्रचुरपपविनाशदक्षाम् ॥३५॥

है उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । तुलसी का स्पर्श मात्र करने से सभी व्याधियाँ विनष्ट हो जाती हैं।।२५।। जो सभी पापों को विनष्ट करने वाले तुलसी पत्र को खाता है उसका शरीरान्तर पर्यन्त रहने वाला पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है ॥२६॥ जो मनुष्य तुलसी की लकड़ी से बनी हुयी माला को धारण करता है उसके शरीर में पाप नहीं रहता है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥२७॥ जो गिरे हुए तुलसी पत्र को अपने शिर पर धारण करता है वह निश्चित रूप से गङ्गा स्नान जन्य पुण्य को प्राप्त करता है ॥२८॥ दुर्वा, अक्षत, पुष्प तथा नैवेद्य से कल्याणकारिणी तुलसी की पूजा करके मनुष्य भगवान् विष्णु की पूजा का फल प्राप्त करता है ॥२९॥ जो भगवती तुलसी की नैवेद्य, पुष्प, धूप और दीप के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली पूजा करता है उसको भगवान् विष्णु के चरणों की पूजा से कोई मतलब नहीं है ॥३०॥ जो निर्दोष स्थानों में देव समूह से सेवनीय श्रीहरि को प्रसन्न करने वाली तुलसी को रोपते हैं, उन पर त्रैलोक्य के स्वामी श्रीभगवान् प्रसन्न होकर उन सबों को परमपद प्रदान करते हैं ॥३१॥ जो मनुष्य यज्ञ, व्रत, पितृपूजा, श्रीभगवान् की पूजा, दान तथा दूसरे शुभ कर्मों को तुलसी के मूल में करते हैं वे सब निश्चित रूप से अक्षय हो जाते हैं ॥३२॥ जो मनुष्य नारायण भगवान् की प्रियतमा तुलसी के बिना धर्म कर्म को करते हैं, हे द्विजेन्द्र वह सब व्यर्थ हो जाता है और भगवान् कमल नयन भी नहीं प्रसन्न होते हैं ॥३३॥ जो मनुष्य भक्ति भाव पूर्वक यात्रा में पवित्र तुलसी का दर्शन करते है उसको श्रीहरि की कृपा से यात्रा के सारे फल मिल जाते हैं । यह मेरा सुदृढ वचन है ॥३४॥ श्रीभगवान् मन्दार, कुन्द, कमल आदि के सुगन्धित पुष्पों को त्यागकर प्रचुर पापों को विनष्ट करने वाली सद्गुणों से परिपूर्ण सूखी भी

उत्पाट्य चैव तुलसीं भुवि निक्षिपन्ति पापाशया मृतलताभनिदानभूताम् ।
अज्ञानतो नरहरिस्तुलसीप्रियोऽसौ तेषां श्रियं हरति सन्ततमेव सत्यम् ॥३६॥

मूत्रंपुरीषं तुलसीतलेषु कुर्वन्ति ये वै सततं मनुष्याः ।
देवाश्रये सञ्चितपातकानां तेषां हरत्याशु हरिर्धनानि ॥३७॥
नारायणस्य पूजार्थं चिनोमि त्वां नमोऽस्तु ते ।
कुसुमैःपारिजाताद्यैर्गन्धाद्यैरपिकेशवः ॥३८॥
त्वया विना नैति तृप्तिं चिनोमित्वामतःशुभे ! ।
त्वया विना महाभागे समस्तं कर्म निष्फलम् ॥३९॥

अतस्तु तुलसी देवी चिनोमि वरदा भव। चयनोद्भवदुःखं ते यद्देवि ! हृदि जायते॥४०॥
तत्क्षमस्व जगन्नाथे तुलसीं त्वांनमाम्यहम्। कृताञ्जलिरिमान्मन्त्रान्पठित्वा वैष्णवो जनः॥४१॥
करतालद्वयं दत्त्वा चिनोति तुलसीदलम्। यथा न कम्पते शाखा तुलस्याद्विजसत्तम !॥४२॥
पत्रस्य चयने देवी भग्नशाखा यदा भवेत्। तदा हृदि व्यथा विष्णोर्जायते तुलसीपतेः ॥४३॥
शाखाग्रात्पतितं भूमौ पत्रं पत्रं पुरातनम्। तेनाऽपि पूज्यो गोविन्दो मधुकैटभमर्दनः॥४४॥
कोमलैस्तुलसीपत्रैर्योऽर्चयेदच्युतं प्रभुम्। सर्वं स लभते शीघ्रं यद्यदिच्छति चेतसा॥४५॥

जैमिनिरुवाच

तुलसीवृक्षसदृशः को वृक्षोऽस्तिद्विजर्षभ ! ।
तमहं ज्ञातुमिच्छामि ब्रूहि सत्यवतीसुत ! ॥४६॥

तुलसी को प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करते हैं ॥३५॥ जो पापी अमृत लता के समान अमृत स्वरूप तुलसी को उखाड़कर पृथिवी पर अज्ञान के कारण फेंक देते हैं उनकी लक्ष्मी को तुलसी के प्रिय नृसिंह भगवान् हर लेते हैं ॥३६॥ जो मनुष्य देवताओं के आश्रय दाता तुलसी के मूल में मल-मूत्र का परित्याग करते हैं उन सभी पापों से युक्त मनुष्य के धन को श्रीहरि शीघ्र हर लेते हैं ॥३७॥ हे तुलसी ! भगवान् नारायण की पूजा करने के लिए मैं तुमको ले रहा हूँ आपको नमस्कार है सुगन्धित पारिजात आदि के पुष्पों से भी भगवान केशव तुम्हारे बिना तृप्त नहीं होते हैं, इसीलिए मैं तुमको ले रहा हूँ। हे महाभागे ! आपके बिना सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ॥३८-३९॥ इसीलिए हे तुलसी देवि ! मैं आपका चयन करता हूँ अतएव आप वरदान देने वाली हो जायँ। हे देवी ! तोड़ने के कारण आपके हृदय में जो दुःख होता है ॥४०॥ हे जगत् के स्वामिनि ! उसे क्षमा करें मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णवजन को चाहिए कि वे इन मन्त्रों को पढ़कर हाथ-जोड़कर तथा दो बार ताली बजाकर तुलसीदल को ऐसे तोड़े जिससे कि तुलसी की शाखा न हिले ॥४१-४२॥ देवी तुलसी के पत्ते के लेने में यदि कोई उसकी शाखा टूट जाय तो उससे श्रीभगवान् के हृदय में कष्ट होता है। शाखा के अग्रभाग से यदि पुरा पत्ता पृथिवी पर गिर जाय तो उससे ही भगवान् की पूजा कर लेनी चाहिए ॥४३-४४॥ जो कोमल तुलसी पत्र से भगवान् विष्णु की पूजा करता है तो वह अपने मन में जो-जो इच्छा करता है, उन सारी वस्तुओं को वह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥४५॥ **जैमिनि ने कहा—** हे द्विज श्रेष्ठ ! तुलसी के वृक्ष के समान कौन सा वृक्ष है ? उसको मैं

व्यास उवाच

यथाप्रियतमा विष्णोस्तुलसी सततं द्विज !। तथाप्रियतमा धात्रीसर्वपापप्रणाशिनी ॥४७॥
तुलसीवृक्षमासाद्ययायास्तिष्ठन्तिदेवताः । आमलक्यास्तलेतास्ता निवसन्ति द्विजोत्तम ! ॥४८॥
गङ्गादीनि च तीर्थानि तत्रैव द्विजसत्तम !। विष्णुप्रियतमा धात्री पवित्रा यत्र तिष्ठति॥४९॥
अशुभं वाशुभंवाऽपि यत्कर्माऽऽमलकीतले ।
क्रियतेमानवैर्विप्र भवेत्तत्सत्यमक्षयम् ॥५०॥
पवित्रैर्नूतनैः पत्रैर्धात्र्या यः पूजयेद्धरिम् । स मुक्तः पापजालेन सायुज्यं लभते हरेः ॥५१॥
धात्री च तुलसी देवी न तिष्ठेद्यत्र जैमिने । स्थानं तदपवित्रंस्यान्नच क्रियाफलं लभेत् ॥५२॥
नतिष्ठत्याश्रमे यस्य धात्री च तुलसीशुभा । तेनकर्म कृतं सर्वं नूनं भवति निष्फलम् ॥५३॥
धात्र्या तुलस्या हीनं च निलयं यस्य भूसुर ! ।
अलक्ष्मीः पातकं सर्वं कलिश्च तेन तोषिताः ॥५४॥
स्थानेयस्मिन्द्विजश्रेष्ठ!न धात्री तुलसी न च ।
श्मशानतुल्यं स्थानं तद्विज्ञेयं तत्त्वदर्शिभिः ॥५५॥
धात्रीच तुलसी यत्रतिष्ठेत्तत्राखिला सुराः। नधात्री तुलसी यत्र तत्रैवाखिलपातकम् ॥५६॥
धात्रीफलस्रजं यस्तु पापहर्त्रीं वहेद्बुधः ।
तस्याऽऽश्रित्य तनुं विष्णुःसदा तिष्ठेच्छ्रिया सह ॥५७॥
धात्रीकाष्ठस्ममालां च धारयेन्मतिमान्नरः। तास्मदेहंसमाश्रित्म तिष्ठन्ति सर्वदेवताः॥५८॥
धात्रीफलस्त्रजंगृह्णन्यत्कर्मकुरुतेनरः । तत्सर्वमक्षयं प्रोक्तंशुभंवायदि वाऽशुभम् ॥५९॥

सुनना चाहता हूँ हे सत्यवती माता के पुत्र ! मुझे बतलाइये ॥४६॥ **व्यासजी ने कहा—** भगवान् विष्णु को जैसे तुलसी अत्यन्त प्रिय है उसी तरह से सभी पापों को विनष्ट करने वाली धात्री (आँवला) है ॥४७॥ तुलसी वृक्ष में जो-जो देवता रहते हैं हे द्विजोत्तम ! आमलकी के भी नीचे वे सभी देवता रहते हैं ॥४८। हे द्विजश्रेष्ठ ! गङ्गा आदि जितने भी तीर्थ हैं वे सब वहीं रहते हैं । धात्री भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय है । वह जहाँ रहती है वह स्थान पवित्र होता है ॥४९॥ आँवला के नीचे मनुष्य जो कोई भी अशुभ अथवा शुभ कर्म को करता है हे विप्र ! वह सत्य तथा अक्षय हो जाता है ॥५०॥ आँवला के पवित्र और नये पत्तो से जो श्रीहरि की पूजा करता है; वह पाप समूह से मुक्त होकर श्रीहरि के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥५१॥ हे जैमिने ! जहाँ आवला और तुलसी नहीं रहते हैं वह स्थान अपवित्र होता है, वहाँ पर की गयी क्रियाओं का फल नहीं मिलता है ॥५२॥ जिसके आश्रम में तुलसी और आँवला नहीं रहते हैं उसके द्वारा किया गया सारा शुभ कर्म व्यर्थ हो जाता है ॥५३॥ हे ब्राह्मण ! जिसका घर तुलसी और आँवला से रहित होता है उसके द्वारा अलक्ष्मी, सारे पाप तथा कलियुग तुष्ट होते हैं ॥५४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस स्थान में आँवला और तुलसी नहीं रहते हैं वह स्थान श्मशान के समान तत्त्वदर्शियों को जानना चाहिये॥५५॥ जहाँ पर आँवला और तुलसी रहते हैं वहाँ पर सभी देवता रहते हैं । जहाँ पर तुलसी और आँवला नहीं रहते हैं वहाँ सभी पाप रहते हैं ॥५६॥ जो विद्वान् पाप विनाशक धात्री फल की माला को धारण करता है उसके शरीर में भगवान् विष्णु सदा लक्ष्मीजी के साथ निवास करते हैं ॥५७॥ बुद्धिमान मनुष्य को

यस्तु धात्रीफलं भुङ्क्ते मानवोऽखिलतत्त्ववित् ।
तद्देहाभ्यन्तरस्थायी सर्वं पापं विनश्यति ।।६०।।
धात्रीफलमयीमालां यो दद्याद्द्विजसत्तम !। ब्रवीमिश्रृणुमाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ।।६१।।
श्मशानेऽपियदामृत्युतस्य स्याद्दैवयोगतः। गङ्गामरणजं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ।।६२।।
तं दृष्ट्वा पापिनः सर्वे पापजालैः सुदारुणैः ।
सद्य एव प्रमुच्यन्ते जन्मोटिकृतैरपि ।।६३।।
नित्यं गृह्णाति विप्रेन्द्र यो धात्रीफलकर्दकम् ।
दिने दिने लभेत्पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ।।६४।।
धात्रीतरुं च यो हन्ति सर्वदेवागणाश्रयम्। स ददाति हरेरङ्गे घातं नास्त्यत्रसंशयः ।।६५।।
सर्वदेवमयीधात्री विशेषात्केशवप्रिया। सम्यग्वक्तुं गुणं तस्या ब्रह्मणाऽपि न शक्यते।।६६।।
धात्र्यास्तुलस्या विदधाति भक्तिं यो मानवो ज्ञातसमस्ततत्त्वः ।
भुक्त्वा च भोगान्सकलांस्ततोऽन्ते स मुक्तिमाप्नोति हरेः प्रसादात् ।।६७।।

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
धात्रीतुलस्योर्महात्म्यं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

आँवले की लकड़ी की माला धारण करना चाहिए उस मनुष्य के शरीर में सभी देवताओं का निवास होता है ।।५८।। आँवले के फल की माला लेकर मनुष्य जिस कर्म को करता है उसके सभी शुभ तथा अशुभ कर्मों को अक्षय कहा गया हैं ।।५९।। सर्व तत्त्ववेत्ता जो मनुष्य आँवले के फल को खाता है उसके शरीर में रहने वाले सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ।।६०।। आँवले के फल की माला का जो दान करता है उसके सर्व पाप विनाशक माहात्म्य को मैं बतलाता हूँ उसे आप सुनें ।।६१।। यदि दैवयोग से उसकी मृत्यु शमशान में भी हो जाती है तो वह निश्चित रूप से गङ्गा में होने वाली मृत्यु के फल को प्राप्त करता है।।६२।। उसको देखकर सभी पापी अपने सभी भयङ्कर पापों से करोड़ों जन्मों में किए गये रहते हैं उनसे मुक्त हो जाते हैं ।।६३।। हे विप्र ! जो नित्य ही धात्री फल के चन्दन को धारण करता है वह प्रत्येक दिन पुण्य को प्राप्त करता है इसमें कोई संशय नहीं है ।।६४।। सभी देव समूह के आश्रय आँवले के पेड़ को जो काटता है वह निश्चित रूप से श्रीहरि के अङ्गों को काटता है ।।६५।। धात्री सर्वदेवमयी है और विशेष रूप से श्रीहरि को प्रिय है । ब्रह्माजी भी उसके गुणों को अच्छी तरह से कहने में समर्थ नहीं है ।।६६।। जो समस्त तत्त्वों का ज्ञाता मनुष्य आँवले और तुलसी की भक्ति करता है वह सभी भोगों को भोगकर श्रीहरि की कृपा से अन्त में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।।६७।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के तुलसी और आँवला के माहात्म्य वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

पचीसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

माहात्म्यं तुलसीधात्र्याः प्रोक्तमेतत्समासतः। जैमिने द्विजशार्दूल ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१॥

जैमिनिरुवाच

भूयएवमहाभाग ! तुलस्याः पापनाशनम्। अतिथेःपूजनस्याऽपि माहात्म्यं ब्रूहिविस्तात् ॥२॥

सूत उवाच

ततोव्यासोमहातेजास्तुलस्या द्विजसत्तम !। माहात्म्यं वक्तुमारेभे शृण्वतां पापनाशनम् ॥३॥

व्यास उवाच

इयं साक्षान्महालक्ष्मीस्तुलसीभगवत्प्रिया। तस्मादिमां न पश्यन्ति वृक्षज्ञानेन जैमिने !
सदैव तुलसीं मर्त्यो यथैव भुवि सेवते। तथैव सेन्द्रा विवुधाः सेवन्ते तां सुरालये॥४॥
परंब्रह्मस्वरूपेयं तुलसी यत्र तिष्ठति। तत्रैव कुशलं सर्वं सुदृढं प्रोच्यते मया॥५॥
प्राप्नोति मृत्युकाले यस्तोयं पातकवानपि। तुलसीपत्रगलितं स याति हरिसन्निधिम् ॥६॥
तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं यो मृत्युसमये वहेत्। समुक्तःसकलःपापैःपुरं गच्छति चक्रिणः ॥७॥
यस्यस्यात्तुलसीपत्रंमुखेशिरसिकर्णयोः । मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ तस्य स्वामी न भास्करिः ॥८॥
इतिहासमहंवच्मि तुलस्या गुणसंयुतम्। आकर्णय द्विजश्रेष्ठ ! चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥
आर्यावर्त्ते द्विजः कश्चित् पवित्रकुलसम्भवः।
पवित्रनामा सुमतिर्बभूव परमार्थवित्। बभूव ब्राह्मणी तस्य बहुला नामधारिणी ॥९॥

अतिथि पूजन के प्रसङ्ग में लोमश ब्राह्मण की कथा का वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ जैमिने ! मैंने यह तुलसी और धात्री के माहात्म्य को तुम्हें बतलाया है अब दूसरा क्या सुनना चाहते हो ? **जैमिनि ने कहा—** हे महाभाग ! आप पुनः तुलसी के पाप नाशक माहात्म्य को तथा अतिथि पूजन के माहात्म्य को कहें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** उसके पश्चात् महातेजस्वी व्यासजी ने हे द्विजश्रेष्ठ ! तुलसी के माहात्म्य को कहना प्रारम्भ किए यह सुनने वालों के पापों को विनष्ट करने वाला है ॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** भगवान् की प्रिया तुलसी साक्षात् महालक्ष्मी हैं । हे जेमिने ! वृक्ष जानने के कारण इसको लोग नहीं जान पाते हैं ॥३॥ मनुष्य जिस तरह से स्वयं सदा तुलसी की सेवा करते हैं । उसी तरह से स्वर्ग में इन्द्र आदि देवता भी सेवा इसकी करते हैं ॥४॥ यह परंब्रह्म स्वरूपा तुलसी जहाँ रहती हैं वहीं पर सभी प्रकार के कुशल रहते हैं यह मैं सुदृढ रूप से कहता हूँ ॥५॥ जो मनुष्य मृत्यु के समय तुलसीपत्र से गिरे जल को प्राप्त कर लेते हैं, वे श्रीहरि के सन्निकट जाते हैं ॥६॥ जो मृत्यु के समय तुलसी के मूल की मिट्टी से बने हुए तिलक को धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥७॥ मृत्यु के समय जो शिर पर तथा दोनों कानो में तुलसी पत्र को धारण किए रहता है हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके स्वामी यमराज नहीं होते हैं ॥८॥ (हे द्विजश्रेष्ठ ! तुलसी के गुणों से युक्त इतिहास को मैं कहता हूँ । यह चारो पुरुषार्थों को देने वाला है इसे आप सुनें आर्यावर्त

सद्वंशप्रभवा साध्वी पतिसेवापरायणा । अनायन्तमतिर्नामतत्रैकोऽस्तिद्विजोत्तमः ॥१०॥
सख्यंतेनपवित्रोऽसौ चकारद्विजसेविना । ततोऽनपत्यपतिना कथालापेनसत्तम ॥११॥
उपविष्टःपवित्रोऽसौ स्नेहादेकवरासने । अत्रान्तरे महातेजा लोमशो नाम स द्विजः ॥१२॥
कथयन्तौ कथाश्चित्राः समागत्य ददर्शतौ । अथतं लोमशं विप्रं विप्रमुत्थायपीठतः ॥१३॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयामासतुश्च तौ । सुप्रीतोलोमशस्ताभ्यां नारायणपरायणः ॥१४॥
उवासब्राह्मणश्रेष्ठ आसने कीर्तयन्हरिम् । आसनस्थं महात्मानं लोमशन्तं कृताञ्जलिम् ॥१५॥
पवित्रानायन्तमतीभक्त्या प्राहतुरुत्तमौ । पवित्रानायन्तमती ऊचतुः ॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञत्वत्पादयुगलाम्बुभिः ॥१६॥
सद्भिर्ग्राह्यैराश्रमोऽयंपूतोऽभून्नूनमावयोः । कृतानि यानि पापानि आवाभ्यां मोहतः पुरा॥१७॥
तानि सर्वाणि नष्टानि त्वत्पादयुगदर्शनात् । भवान्नारायणः साक्षात्पूजनीयोऽमरैरपि ॥१८॥
सम्यक्ते पूजनं कर्तुं किमावां मानुषौ क्षमौ । अतिथेर्याकृता पूजातेऽस्माभिर्निजशक्तितः ॥१९॥
अनया भव सुप्रीतः क्षमस्व दोषमावयोः । इत्युक्त्वा तौ महात्मानौ तस्यागन्तोः पदद्वये ॥
निपेततुर्द्विजश्रेष्ठ ! वयस्यौ गृहमेधिनौ ॥२०॥

व्यास उवाच

तयोर्भक्त्या सुसंतुष्टो लोमशो मुनिरब्रवीत् । युवांविनयिनां श्रेष्ठौ द्विजात्यौ धर्मतत्परौ ॥२१॥

में कोई पवित्र वंश में उत्पन्न ब्राह्मण था ।) उसका नाम पवित्र था सुमति और परमार्थ वेत्ता था । उसकी ब्राह्मणी का नाम बहुला था ॥९॥ वह साध्वी पवित्र वंश में उत्पन्न और पतिव्रता थी ॥१०॥ वहाँ एक अनायन्त मति नामक ब्राह्मण था ॥११॥ उस ब्राह्मण सेवी के साथ पवित्र ने मित्रता की । उसके पश्चात् नि:सन्तान उसके साथ वार्तालाप करते हुए उसके साथ पवित्र एक श्रेष्ठ आसन पर बैठा था । उसी बीच महातेजस्वी लोमश नामक ब्राह्मण आकर विचित्र बातें करते हुए उन दोनों को देखे । उसके पश्चात् वे दोनों आसन से उठकर उस लोमश नामक ब्राह्मण की ॥१२-१३॥ पाद्य, अर्घ्य आचमन आदि से पूजा किए। नारायण भक्त लोमश अत्यन्त प्रसन्न होकर ॥१४॥ श्रीहरि का कीर्तन करते हुए उस श्रेष्ठ आसन पर बैठ गये । आसन पर बैठे उस लोमश नामक ब्राह्मण को हाथ जोड़कर ॥१५॥ पवित्र तथा अनायन्त मती ये दोनों उत्तम ब्राह्मण उनसे कहे । पवित्र तथा अनायन्तमती ने कहा, हे सभी धर्मों को जानने वाले भगवन् आपके चरण युगल के ॥१६॥ सज्जन जन से निश्चित रूप से हम दोनों का आश्रम पवित्र हो गया । अज्ञान वशात् हमदोनों ने जो पहले पाप किया था ॥१७॥ वे सबके सब आपके दोनों चरण कमलों के दर्शन से विनष्ट हो गये । आप साक्षात् नारायण हैं और देवताओं द्वारा भी पूजनीय हैं ॥१८॥ आपकी अच्छी तरह से पूजा करने में हम दोनों मनुष्य कैसे समर्थ हो सकते हैं । आप अतिथि की हम लोगों ने अपनी शक्ति के अनुसार जो पूजा की है ॥१९॥ इसी के द्वारा आप प्रसन्न हो जायँ और हमदोनों के अपराधों को क्षमा करें । इस तरह से कहकर वे दोनों गृहस्थ महात्मा उन आगन्तुक के चरण युगल पर हे द्विजश्रेष्ठ ! गिर पड़े ॥२०॥ **व्यासजी ने कहा—** उन दोनों की भक्ति से अत्यन्त सन्तुष्ट लोमश महर्षि ने कहा । तुम दोनों नम्रो में श्रेष्ठ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ और धर्म परायण हो ॥२१॥ मैं आप दोनों की विनीतता

आप्यायितोस्मि सुतरां युवयोर्विनयोक्तिभिः। साक्षाद्ब्रह्माशिवोविष्णुरतिथिःप्रोच्यते बुधैः ॥२२॥
तस्मिन्नेतावती भक्तिर्युवयोरस्तु मङ्गलम्। आराधितोऽस्म्यहंसम्यगतिथिर्भूरिभोजनैः ॥२३॥

व्यास उवाच

ततउत्थाय तौ विप्रौ तत्पादकमलद्वयम्। भूयोऽपि तं नमस्कृत्य प्राहतुर्लोमशं मुनिम् ॥२४॥

ब्राह्मणावूचतुः

ब्रह्मन्नतिथिपूजाया माहात्म्यं वक्तुमर्हसि। यां कृत्वा प्राप्यते मुक्तिर्दुःखलभ्याऽपिमानवैः ॥२५॥
कोऽतिथिःप्रोच्यते लोके तस्यपूजाच कीदृशी।
आतिथेयोऽतिथिश्चेमौ लभेतेकामुभौ गतिम् ॥२६॥

लोमश उवाच

वानप्रस्थो ब्रह्मचारीभिक्षुश्चैषां प्रपूजनात्। निरुच्यते गृहं श्रेष्ठमाश्रमेषु चतुर्ष्वपि॥२७॥
चतुराश्रममध्ये तु प्रधाना गृहिणो मताः। तैश्चाऽतिथीनां कर्तव्या पूजाभक्तिसमन्वितैः॥२८॥
गृहीणां परमो धर्मःप्रोक्तश्चाऽतिथिगूजनम्। आश्रमाचारतोभ्रष्टास्तदृते गृहिणो मताः ॥२९॥
वहन्त्यतिथिपूजायां दक्षतां गृहिणोयदा। तदाप्रयोजनंतेषांकिमन्यैः पुण्यकर्मभिः ॥
यस्य न श्रूयते नाम न च गोत्रं न च स्थितिः ॥३०॥
अकस्माद्गृहमागच्छेत्सोऽतिथिःप्रोच्यतेबुधैः। चाण्डालप्रमुखा येऽन्येहीनवर्णसमुद्भवाः॥३१॥
गृहागताः पूजिताश्च विष्णुवत्तत्त्वदर्शिभिः। चाण्डालप्रमुखा येऽन्येहीनवर्णसमुद्भवाः॥३२॥
विष्णुवत्पूजितव्यास्ते पाद्यार्घ्यैर्भूरिभोजनैः। समागतेष्वतिथिषु प्रयाणं कुरुते गृही ॥३३॥

पूर्ण उक्ति से सन्तुष्ट हूँ। विद्वान् पुरुष अतिथि को स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं ॥२२॥ उसमें आपदोनों में इतनी भक्ति है। आप दोनों का मङ्गल हो अतिथि मैं भूरि भोजन के द्वारा पूजित हूँ ॥२३॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके बाद उठकर वे दोनों ब्राह्मण उनके दोनों चरण कमल में नमस्कार करके लोमश मुनि से कहे ॥२४॥ **दोनों ब्राह्मणों ने कहा**— हे ब्रह्मन्! आप अतिथि पूजन का माहात्म्य बतलायें जिसको करके कठिनाई से प्राप्त होने वाली भक्ति को मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं ॥२५॥ लोक में किसको अतिथि कहा जाता है, उनकी पूजा कैसी होती है? अतिथि और आतिथेय दोनों कौन सी गति प्राप्त करते हैं ॥२६॥ **लोमश महर्षि ने कहा**— बानप्रस्थ, ब्रह्मचारी तथा संन्यासी इन सबों की पूजा करने से चारो आश्रमों में गृहस्थ को श्रेष्ठ कहा जाता है ॥२७॥ चारो आश्रमों में गार्हस्थ्य को प्रधान कहा गया है। उन सबों को भक्ति पूर्वक अतिथियों की पूजा करनी चाहिए ॥२८॥ गृहस्थों का सर्वश्रेष्ठ धर्म अतिथि पूजा को बतलाया गया है। उसके बिना गृहस्थ को आश्रमाचार से भ्रष्ट कहा गया है ॥२९॥ यदि गृहस्थ अतिथि पूजा में दक्ष होते है तो उनको दूसरे पुण्य कर्मों को करने से कोई लाभ नहीं है। अश्रुत, गोत्र, नाम और स्थिति वाला यदि कोई अकस्मात् घर आ जाय तो उसको अतिथि कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के घर पर आ जाने पर उनकी पूजा भगवान् विष्णु के समान करना चाहिए। चाण्डाल आदि हीन वर्ण वाले ॥३०-३२॥ अतिथि की भी पाद्य, अर्घ्य, और भूरि भोजन के द्वारा भगवान् विष्णु के समान पूजा करनी चाहिए। अतिथ के आनें पर यदि गृहस्थ कहीं जा रहा हो तो ॥३३॥ शीघ्रता पूर्वक उसे पाद्य

अपि स त्वरया दद्यात्पाद्यार्घ्यादीनि चद्विजः ।
कुर्याच्चकुशलप्रश्नं वचनैः कोमलाक्षरैः ॥३४॥
कारयेद्भोजनं वापि दिव्यैरन्नैर्मुदा गृही। सुखदे मन्दिरे तस्य शयनं कारयेद्बुधः ॥३५॥
प्रातर्जिगमिषुं भक्त्या समागन्तुं विसर्जयेत्। यदि कर्मविपाकेन वित्तशून्यो गृही भवेत् ॥३६॥
आतिथ्येनातिथिःपूज्यस्तदहं वच्मि सत्तमौ। समागतेष्वतिथिषुभक्त्यादद्यात्तृणासनम् ॥३७॥
तृणाभावेन वै ब्रूयाद्भूमौ तिष्ठेति भक्तितः। पादप्रक्षालनार्थं तु दद्यादुदकमुत्तमम्॥३८॥
ततो मधुरया वाचा पृच्छेच्च कुशलादिकम् ।
फलादिकं ततो दद्याद्भक्त्याभोजनहेतवे ॥३९॥
तदभावेन मतिमान्स्वदारिद्र्यं प्रकाशयेत्। वदेच्चाऽहं महापापी दरिद्रप्रवरोऽतिथे !॥४०॥
कर्त्तुमिच्छामिभक्तिं ते दैवं तत्र विरोधकम्। अनेन विधिना दीनः सत्कृत्यातिथिपूजनम् ॥४१॥
स्वाचारात्पतितो न स्याद्यथोक्तं फलमाप्नुयात् ।
अनर्चितोतिथिर्यस्यगच्छेद्वैगृहिणोगृहात् ॥४२॥
जन्मकोट्यर्जितं पुण्यं तस्य गच्छति संक्षयम् ।
एकएवाऽतिथिर्येनभक्तिभावेन पूज्यते ॥४३॥
हरेत्तस्य हरिःसद्यः पातकं कोटिजन्मजम्। सत्यं वच्मि हितं वच्मि दृढं वच्मि प्रयत्नतः ॥४४॥
विनाऽतिथिसपर्याभिर्गृहिणोनास्ति वै गतिः। सत्यं सत्यं पुनःसत्यमागन्तुःपूजया विना ॥४५॥
गतिर्नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गृहधर्मिणाम् ।
ज्ञातिधर्म इतिख्यातो बल्लवो द्वापरेयुगे ॥४६॥

अर्घ्य आदि देना चाहिए और कोमल शब्दों से उससे कुशल प्रश्न करना चाहिए ॥३४॥ अथवा प्रसन्नता पूर्वक दिव्य अन्नों से उसको भोजन कराना चाहिए। और उसको सुख पूर्वक घर में सुलाना चाहिये ॥३५॥ प्रातःकाल जाने वाले अतिथि को भक्ति पूर्वक विदा करे। इन कर्मों के परिणाम स्वरूप गृहस्थ धनहीन हो तो ॥३६॥ उस अतिथि की पूजा जैसे करे उसे मैं बतलाता हूँ। अतिथि के आ जाने पर उन्हें तृण का आसन दे ॥३७॥ यदि तृण न हो तो भक्ति पूर्वक कहे कि आप भूमि पर बैठें। पैर धोने के लिए उत्तम जल दें ॥३८॥ उसके बाद मधुर वाणी से उसका कुशल पूछे। उसके बाद भोजन के लिए फल आदि प्रदान करे ॥३९॥ उसका भी अभाव होने पर वह बुद्धिमान व्यक्ति कहे कि मैं महापापी और अत्यन्त दरिद्र हूँ ॥४०॥ मैं आपकी भक्ति तो करना चाहता हूँ किन्तु भाग्य उसका विरोधी है। इस तरह से दीन व्यक्ति सत्कार करके अतिथि पूजन कर लेता है ॥४१॥ वह अपने आचार से भ्रष्ट नहीं होता है और अतिथि पूजन का फल प्राप्त कर लेता है। जिस गृहस्थ के घर से बिना पूजित हुए अतिथि चला जाता है ॥४२॥ उसके करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्य विनष्ट हो जाता है। जो केवल अतिथि का ही भक्तिभाव से पूजन करता है ॥४३॥ उसके करोड़ों जन्मों के पापों को श्रीहरि हर लेते हैं। यह मैं सत्य तथा कल्याणकारी बात बड़ी ही दृढ़ता के साथ कहता हूँ ॥४४॥ अतिथि की पूजा के बिना गृहस्थ की सद्गति नहीं होती है। यह परम सत्य है कि अगन्तुक की पूजा के बिना ॥४५॥ गृहस्थों की सद्गति नहीं ही होती है। बल्लभ

बभूव सर्वधर्मज्ञः पत्नीश्रीवल्लभाह्वया । तेन सर्वाणि कर्माणि कृतानि ज्ञातिसेविना ॥४७॥
सौराष्ट्रे वसतिं चक्रे तया सह सभार्यया । तत्र दुर्ग्रहसंचारा द्वादशाब्दं च वासवः ॥४८॥
न ववर्षाऽम्बुतेनासीद्दुर्भिक्षं सुमहद्द्विज ! । तस्मिन्महति दुर्भिक्षे लोकास्तद्देशवासिनः ॥४९॥
बभूवुर्दुःखिताः सर्वे मर्यादामपि तत्यजुः । ज्ञानभद्रो महायोगी युगे द्वापरसञ्ज्ञके ॥५०॥
दुर्भिक्षहृतसंपत्तिर्वभूवाऽत्यन्तदुःखितः । क्षुधाकुलान्सुतान्दृष्ट्वा दारांश्च द्विजसत्तमौ ॥५१॥
फलमूलादनार्थाय जागामोपत्यकां गिरेः । गिरेरुपत्यकाप्रान्ते चिरायुः च बुभुक्षितः ॥५२॥
कूष्माण्डफलमेकं च लेभे ब्राह्मणसत्तमौ । समादायफलं तच्च हर्षितोऽसौ निजालयम् ॥५३॥
जवैर्जगाम विप्रेन्द्रो ज्ञानभद्रो महायशाः । एतस्मिन्नन्तरे विप्र ! मेघैर्न्नीलपदैरिव ॥५४॥
आवृते गगने वृष्टिर्महासारैर्बभूव ह । स मुनिश्च तया वृष्ट्या प्लाविताखिलविग्रहः ॥५५॥
वनाद्वनचरः कश्चिच्छीतार्तश्चाययौ गृहम् ।
प्रज्वाल्यपावकं चक्रे गोपस्तच्छीतवारणम् । गतशीतं तमतिथिं ववन्दे शिरसा चतम् ॥
दृष्ट्वाऽतिथिं तु शीतार्तं ववन्दे शिरसा ततः ॥५६॥
ददौ तृणासनं भक्त्या तस्मै पाद्यादिकं ततः ।
ततो मधुरया वाचा तेनैवाऽतिथिना सह ॥५७॥
तस्थौ स्वस्थेन मनसा प्रश्नालाप प्रकुर्वता । गृहिण्या सह गोपेन स्वामिसेवासु दक्षया ॥५८॥
ततः कूष्माण्डकं नव्यं पक्वमत्यन्तयत्नतः । संप्राप्य हर्षिता साध्वी ददौ भागं विधाय सा ॥५९॥
अथाऽसौ दुर्बलो गोपो दिनिवशमुपोषणात् ।
आतिथेयो निजं भागं ददौ चाऽतिथये मुदा ॥६०॥

ने द्वापर में गृहस्थों का यही धर्म बतलाया है ॥४६॥ वे सभी धर्मों के ज्ञाता थे उनकी पत्नी का नाम श्रीबल्लभा था । उस ज्ञाति सेवी ने सभी धर्मों को किया ॥४७॥ वे सौराष्ट्र में अपनी पत्नी के साथ निवास करते थे । वहाँ बारह वर्ष का आकाल इन्द्र ने किया ॥४८॥ उस समय वर्षा नहीं हुई हे द्विज ! बहुत बड़ा दुर्भिक्ष हुआ । उस महान् दुर्भिक्ष के समय उस देश के रहने वाले लोग ॥४९॥ दुःखी हो गये और उनलोगों ने मर्यादा का भी त्यागकर दिया । द्वापर युग में महायोगी ज्ञानभद्र ॥५०॥ दुर्भिक्ष के कारण दरिद्र होकर अत्यन्त दुःखी हुए । भूख से व्याकुल पत्नी और पुत्रों को देखकर, वे दोनों ब्राह्मण ॥५१॥ फल मूल को लाने के लिए पर्वत की उपत्पका में गये । पर्वत की उपत्यका के किनारे वे दीर्घायु भूखे थे॥५२॥ वहाँ पर वे दोनों ब्राह्मण कुष्माण्ड के एक फल को प्राप्त किए । वे हर्ष पूर्वक उस कुष्माण्ड को अपने घर लाकर ॥५३॥ विप्रेन्द्र ज्ञानभद्र तेजी से चले गये । हे विप्र ! इसी बीच काले मेघों द्वारा आकाश के आवृत कर लिए जाने पर अत्यधिक वर्षा हुयी । उन ऋषि का सारा शरीर भिंग गया ॥५५॥ वन से कोई वनचर ठंढी से उनके घर आया । अग्नि जलाकर गोप ने उसकी ठंढी को मिटाया । ठंढी से रहित उस अतिथि को उन्होंने शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥५६॥ उन्होंने भक्ति पूर्वक उसको तृण का आसन प्रदान किया । उसके पश्चात् वे उसको पाद्य इत्यादि प्रदान किया । फिर मधुर बातें करते हुए उस अतिथि के साथ स्वस्थ मन वाले वे कुशल प्रश्न करते हुए स्वामी की सेवा में निपुण अपनी पत्नी के साथ ॥५७-५८॥ उसके

ततस्तद्गृहिणी साध्वी स्वामिभक्तिपरायणा ।
ददौ सापि निजं भागं तस्मै चातिथये मुदा ॥६१॥
अथाऽतिथेस्तयोस्तत्र दम्पत्योः सुमहात्मनोः ।
अभूद्भागद्वयंभुक्त्वा सुप्रीतो द्विजसत्तम ॥६२॥
विष्णुवत्पूजितस्याभ्यां सोऽतिथिार्दृढभक्तितः ।
विश्रम्य रात्रौ तत्रैव प्रातःस्नात्वा चिरंययौ ॥६३॥
गतैवमुपवासेन दिनानामेकविंशतिः । दम्पती तौ महात्मानौ पञ्चतां ययतुस्ततः ॥६४॥
तेन पुण्यप्रभावेन दम्पती तौ महायशौ । प्रापतुर्विष्णुसायुज्यं दुर्लभं योगिनामपि॥६५॥
तयोः पुण्यप्रभावेन विहितातिथिपूजया। तस्मिन्राज्ये तु दुर्भिक्षं विनष्टमभवत्ततः ॥६६॥
अत्यन्तसुखिता लोका:शोकव्याधिविवर्जिताः ।
धनधान्यादिसम्पन्ना बभूवुर्धर्मतत्पराः ॥६७॥
विनष्टा दस्यवस्तत्र नृपोऽभूल्लोकपालकः । निजाचाररता लोका जलदाः कामवर्षिणः॥६८॥
पूर्वजाः कोटिपुरुषास्तथैवाऽपरजास्तयोः । तेनैव कर्मणा मुक्तिं जग्मुः पापविवर्जिताः॥६९॥
निर्दोषा धनसम्पन्नाः सर्वलोकैकपूजिताः । शोकव्याधिविहीना च ववृधे सन्ततिस्तयोः ॥७०॥

लोमश उवाच

आगन्तुपूजामाहात्म्यं सेतिहासं मयोदितम् । युवयोःप्रीतयोर्विप्रौ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथः ॥७१॥

व्यास उवाच

इति ब्रुवति वै तस्मिँल्लोमशे तपसांधने ।
कालग्रस्तः कृष्ण आखुस्ततोत्तस्थौ विलान्निजात् ॥७२॥

पश्चात् अत्यन्त प्रयास से पके हुए नवीन कुष्माण्ड का विभाग करके देवी हर्षित हुयी ॥५९॥ उसके पश्चात् बीस दिन तक उपवास करने के कारण गृहस्वामी ने अपने भाग को प्रसन्नता पूर्वक अतिथि को दे दिया॥६०॥ उसके पश्चात् अपने स्वामी की भक्ति करने वाली उनकी पत्नी ने अपना भी भाग उसको दे दिया ॥६१॥ उसके पश्चात् उन महात्मा दम्पती को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी । वह अतिथि भी दोनों भागों को खाकर वह अतिथि भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥६२॥ उन दोनों के द्वारा सुदृढ भक्ति पूर्वक विष्णु के समान पूजित रात्रि में वहीं पर निवास करके प्रातःकाल वह स्नान करके चला गया । इस तरह उपवास करते हुए इक्कीस दिन बीत गये । वे दोनों महात्मा दम्पती मर गये ॥६३-६४॥ उस पुण्य के प्रभाव से वे दोनों भगवान् विष्णु के योगि दुर्लभ सायुज्य को प्राप्त किए ॥६५॥ अतिथि के पूजन जन्य पुण्य के प्रभाव से दुर्भिक्ष भी विनष्ट हो गया ॥६६॥ शोक तथा व्याधि से रहित लोग सुखी हो गये वे सब धर्म परायण होकर धन-धान्य से सम्पन्न हो गये ॥६७॥ राजा प्रजाओं का पालक हो गया और लुटेरे विनष्ट हो गये । लोग अपने आचार का पालन करने वाले हो गये और मेघ अपेक्षित मात्रा में वर्षा करने लगे ॥६८॥ करोड़ों जन्मों के पूर्वज उन दोनों के पुण्य से पाप रहित होकर मुक्ति को प्राप्त कर लिए ॥६९॥ शोक तथा व्याधि से रहित होकर तथा सभी लोगों से पूजित धन-धान्य सम्पन्न होकर उन दोनों की सन्तानें बढ़ी ॥७०॥ **लोमश महर्षि ने**

तमुत्थितं बिलात्कृष्णमूषकं क्रोधविह्वलः । पवित्रस्तत्रचोत्तस्थौ वदन्निति मुहुर्मुहुः ॥७३॥
अयं पापाशयो दुष्टो मूषकोनिशिचाऽऽश्रमम् ।
खनते तीक्ष्णदन्तौघैर्गृहद्रव्यं च कृन्तति ॥७४॥
सर्वेषामेव वर्णानां कृपा श्रेष्ठा प्रकीर्त्तिता । सा च सर्वेषु कर्तव्या न च दुष्टेषु जन्तषु ॥७५॥
इत्युक्त्वाऽसौ मूषिकं तं द्विजश्रेष्ठ ! कृतैनसम् ।
नाराचेनातितीक्ष्णेन प्राप्तकालं जघान ह ॥७६॥
स्रवच्द्रोणितधाराभिः प्लाविताङ्गः स मूषकः ।
पपात भूमौ विप्रर्षे ! व्यथया हतचेतनः ॥७७॥
आखौ निपतिते तस्मिन्दयालुर्द्विजसत्तमः । हाहाकारं ततः कृत्वा समुत्तस्थौ जवेन सः ॥७८॥
निजकर्णात्समानीय तुलसीपत्रमुत्तमम् । तस्याखोर्वदने शीर्षे कर्णयोश्च प्रदत्तावान् ॥७९॥
मातस्तुतुलसीदेवि ! गोविन्दाह्लादकारिणि ! ।
अस्याखोःकृतपापस्यकुरु त्वं गतिमुत्तमाम् ॥८०॥
इत्युक्त्वा स द्विजश्रेष्ठ ! सर्वलोकोपकारकः ।
हरे नारायणानन्त इत्युच्चैरकरोद्ध्वनिम् ॥८१॥
तुलसीपत्रसंस्पर्शान्मूषको वीतकल्मषः । श्रवणाद्धरिनाम्नश्च मुक्तोऽभूद्भवबन्धनात् ॥८२॥
ततो दूता महाविष्णोः सर्वलक्षणसंयुताः । आजग्मुः सरथाःशीघ्रं नेतुं तुगतकल्मषम् ॥८३॥
समारुह्य रथं दिव्यं विष्णुदूतगणैर्वृतः । जगाम परमं स्थानं मूषको द्विजसत्तम ! ॥८४॥

कहा— हे विप्रों ! तुम दोनों को मैंने अतिथि पूजा का माहात्म्य इतिहास पूर्वक सुनाया अब क्या सुनना चाहते हो ॥७१॥ **व्यासजी ने कहा—** तपोधन महर्षि के इस तरह से कहने पर काल से ग्रस्त एक काला चूहा बिल से निकला ॥७२॥ उस बिल से निकले हुए काले चूहे को देखकर क्रोध से विह्वल होकर पवित्र बार-बार कह रहा था ॥७३॥ यह दुष्ट तथा पापी चूहा रात में आश्रम को अपने तीक्ष्ण दाँतों से खन देता है और सामानों को काटता है ॥७४॥ सभी वर्णों पर कृपा करना श्रेष्ठ बतलाया गया है । कृपा सभी जीवों पर करनी चाहिए लेकिन दुष्ट जीवों पर नहीं ॥७५॥ इस तरह से कहकर वह उस चूहे को जो अपराध किया था अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से मार दिया ॥७६॥ रक्त की धारा से भिंगा वह चूहा हे विप्रर्षे व्यथ से पीडित होकर पृथिवी पर बेहोश होकर गिर पड़ा ॥७७॥ चूहे के गिरने पर दयालु ब्राह्मण श्रेष्ठ हाहाकार करते हुए वेग से उठे ॥७८॥ अपने कान से तुलसी लेकर उस चूहे के मुख, शिर और कानों में डाल दिये ॥७९॥ और उस ब्राह्मण ने कहा हे माँ तुलसी देवि ! हे भगवान् गोविन्द को प्रसन्न करने वाली इस पापी चूहे को आप उत्तम गति प्रदान करें ॥८०॥ इस तरह से कहकर सम्पूर्ण संसार का कल्याणकारी वह ब्राह्मण जोर से हे हरे ! हे नारायण हे अनन्त ! यह जोर से बोला ॥८१॥ तुलसी पत्र के संस्पर्श के कारण निष्पाप वह चूहा श्रीहरि के नाम का श्रवण करने के कारण संसार के बन्धन से मुक्त हो गया॥८२॥ उसके पश्चात् सभी लक्षणों से सम्पन्न श्रीहरि के दूत उस निष्पाप को लेने के लिए रथ लेकर आये ॥८३॥ भगवान् विष्णु के दूतों से घिरा हुआ वह रथ पर चढ़कर हे द्विजश्रेष्ठ ! परमपद में चला गया ॥८४॥

युगकोटिसहस्त्राणि स्थित्वा नारायणाश्रमे। ज्ञानमासाद्य तत्रैव मोक्षमाखुर्जगाम सः ॥८५॥

व्यास उवाच

माहात्म्यं तुलसीदेव्याः कथितं ते द्विजोत्तम ! ।
इदानीं ब्रूहि किं श्रोतुं महाभाग ! त्वमिच्छसि ॥८६॥

इति श्रीपद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे
अतिथिमाहात्म्यं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच

कलौ युगे महाभाग ! समायाते सुदारुणे। भविष्यन्ति जनाः सर्वे कीदृशास्तद्वदस्व मे॥१॥

व्यास उवाच

आद्यं सत्ययुगं प्राहुस्तत्रविप्रादयो जनाः। नारायणार्चनपराः शोकव्याधिविवर्जिताः॥२॥
सत्योक्तिभाषिणः सर्वे सदयादीर्घजीविनः। धनधान्यादिसम्पन्ना हिंसादम्भविवर्जिताः ॥३॥
परोपकरणाश्चैव सर्वशास्त्रविदस्तथा । एवंविधाः सत्ययुगे सर्वे लोका द्विजोत्तम ! ॥४॥
राजधर्मग्राहिणश्च भूपाला जनपालनाः। अहोसत्ययुगस्यास्ति को व्याख्यातुं गुणं क्षमः ॥५॥
अधर्मोच्चारणं यत्र जनाःकेऽपि न कुर्वते। त्रेतायुगेसमायाते धर्मः पादोनतां गतः ॥६॥

हजारों करोड़ वर्ष भगवान् नारायण के लोक में रहकर वहीं पर ज्ञान प्राप्त करके वह चूहा मुक्त हो गया॥८५॥ **व्यासजी ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! मैंने आपको तुलसी देवी का माहात्म्य सुनाया अब हे महाभाग ! आप इस समय क्या सुनना चाहते हैं ?॥८६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के अतिथि माहात्म्य वर्णन नामक पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

युगधर्म निरूपण पूर्वक पुराण का माहात्म्य वर्णन

जैमिनि महर्षि ने कहा— हे महाभाग ! भयङ्कर कलियुग के आने पर सभी लोग कैसे होगें ? इस बात को आप मुझे बतलाइये ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** प्रथम युग को सत्ययुग कहा गया है । उस युग में ब्राह्मण आदि भगवान् नारायण की पूजा करने वाले तथा शोक एवं व्याधि से रहित होते हैं ॥२॥ दया से युक्त वे सत्य बोलते हैं और दीर्घजीवी होते हैं धन-धान्य से सम्पन्न तथा हिंसा और दम्भ से रहित होते हैं ॥३॥ वे परोपकारी तथा शास्त्रज्ञ होते हैं । हे द्विजोत्तम ! सत्ययुग में सभी लोग धार्मिक होते हैं ॥४॥ राजा भी राज धर्म का पालन करने वाले तथा प्रजाओं का पालन करने वाले होते हैं सत्ययुग के गुण का वर्णन परिश्रम करके भी कौन कर सकता है ॥५॥ उस युग में कोई भी अधर्म का उच्चारण नहीं करता

अल्पशोकान्विता लोका:केचित्केचिदघाश्रया: ।
विष्णुध्यानरता लोका यज्ञदानपरायणा: ॥७॥

वर्णाश्रमाचाररता: सुखिन: स्वस्थचेतस:। क्षेत्रभूमिकृत: शूद्रा: सर्वे ब्राह्मणसेविन: ॥८॥
ब्राह्मणाश्च महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगा:। प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रिया: ॥९॥
तपोव्रतरता नित्यं दातारो विष्णुसेविन: । त्रेतायुगस्याऽवसानेद्वापरे युग आगते॥१०॥
द्विपादहीनो धर्म:स्यात्सुखदु:खान्वितानरा: । केचित्केचित्पापरता:केचित्केचिच्चधर्मिण: ॥११॥

केचित्केचिद्गुणैर्हीना: केचित्केचिन्महागुणा: ।
अत्यन्तदु:खिन:केचित्केचिच्चसुखिनस्तथा ॥१२॥

प्रतिग्रहे ब्राह्मणश्च कदाचित्कुरुते स्पृहाम् । भृभुजैर्धनलोभेन कदाचित्पीड्यते प्रजा॥१३॥
विष्णुपूजापराविप्रा: शूद्राश्च द्विजसेविन: । युगे युगे यदा धर्मो ययौपादोनतांद्विज ! ॥१४॥
तदा व्यासो विष्णुरूपो वेदभागं चकार ह। कलौ युगे चविप्रेन्द्र ! सर्वपापैकमन्दिरे॥१५॥
एकपादो भवेद्धर्म: सर्वपापरताजना:। ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा: पापपरायणा:॥१६॥
अत्यन्तकामिन: क्रूराभविष्यन्तिकलौ युगे । वेदनिन्दाकराश्चैव द्यूतचौर्यकरास्तथा ॥१७॥
विधवासङ्गलुब्धाश्च भविष्यन्ति कलौयुगे । वृत्त्यर्थं ब्राह्मणा: केचिन्महाकपटधर्मिण: ॥१८॥
सर्वे स्त्रैणा भविष्यन्ति मादकद्रव्यसेविन: । सदा स्त्रीयोनिनिरता: परद्रव्यं हरन्ति च ॥१९॥

है । त्रेतायुग के आने पर धर्म का एक पैर घट जाता है ॥६॥ लोगों को थोड़ा सा शोक होता है कुछ लोग पापी हो जाते हैं । लोग भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं और यज्ञ तथा दान करते रहते हैं ॥७॥ वे अपने वर्णाश्रम के आचार का पालन करते हैं सुखी तथा स्वस्थ चित्त वाले होते हैं । पृथिवी पर खेती करने वाले शूद्र ब्राह्मणों की सेवा करते हैं ॥८॥ ब्राह्मण भी माहात्मा तथा वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत होते हैं। वे दान नहीं लेने वाले, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होते हैं ॥९॥ वे सदा तपस्या और व्रत करते रहते हैं। दान करने वाले तथा भगवान् विष्णु की सेवा करने वाले होते हैं । त्रेतायुग के बीत जाने पर तथा द्वापर युग के आने पर ॥१०॥ धर्म दो पैरों से हीन हो जाता है और लोग सुख एवं दु:ख दोनों से युक्त होते हैं । कुछ लोग पाप करने लग जाते हैं और कुछ लोग धार्मिक होते हैं ॥११॥ कुछ लोग गुणहीन तथा कुछ लोग अत्यन्त गुणवान् होते हैं । कुछ लोग अत्यन्त दु:खी तथा कुछ लोग सुखी होते हैं ॥१२॥ कभी-कभी ब्राह्मण दान लेना चाहते हैं । कभी धन के लोभ से राजा भी प्रजाओं को कष्ट देते हैं ॥१३॥ ब्राह्मण भगवान् विष्णु की पूजा करते हैं और शुद्र ब्राह्मणों की सेवा करते हैं । प्रत्येक युग में धर्म के पैर घटते जाते हैं ॥१४॥ उस समय भगवान् विष्णु व्यास का रूप धारण करके वेदों का विभाग करते हैं । हे विप्र श्रेष्ठ ! पाप के एक मात्र आश्रय कलियुग में ॥१५॥ धर्म का केवल एक चरण रह जाता है और सभी लोग पाप करने लग जाते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र पाप परायण हो जाते हैं ॥१६॥ कलियुग में लोग अत्यन्त कामी तथा क्रूर हो जायेगे । सबलोग दूसरों की निन्दा करने वाले तथा जूए और चोरी करने वाले होंयेगे ॥१७॥ लोग कलियुग में विधवा के सङ्ग के लोभी होगें । वृत्ति के लिए कुछ ब्राह्मण महा कपटी होंगे ॥१८॥ सभी लोग मादक द्रव्य का सेवन करने वाले तथा स्त्री के भक्त होयेंगे ।

परान्नलोलुपा नित्यं तपोव्रतपराङ्मुखाः । पाखण्डसङ्गबद्धाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०॥
रक्ताम्बरा भविष्यन्ति ब्राह्मणाःशूद्रधर्मिणः । कलौ यास्यन्ति निर्वृत्ता उत्तमा अतिनीचताम्॥२१॥
नीचाश्च धनसम्पन्ना यास्यन्त्युच्चपदं प्रति ।
प्रदास्यन्त्युपकारिभ्यो दानानि सकला जनाः ।
यत्नादपिच नेष्यन्ति वृषला विप्रवर्त्तनम् ॥२२॥
मित्रस्नेहाद्वदिष्यन्ति कूटसाक्ष्यं कलौ जनाः। अधर्मबुद्धिलपना धर्मबुद्धिविलासिनः ॥२३॥
परोक्षनिन्दकाःक्रूराः सम्मुखे प्रियवादिनः। साध्वीवादं वदिष्यन्ति भर्तारं पुंश्चलीस्त्रियः ॥२४॥
परस्त्रीहिंसकाश्चैव गोत्रविक्रयिणो द्विजाः । कन्याविक्रयिणश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२५॥
स्त्रीजितास्त्रपुरुषाःसर्वे स्त्रियोऽप्यत्यन्तचञ्चलाः ।
कलौ युगे भविष्यन्तिकलौ मर्त्या दुराशयाः ॥२६॥
अल्पसस्या वसुमती मेघाःस्वल्पोदकास्तथा। अकालवर्षिणश्चाऽपि भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२७॥
कलौ विड्भोजिनो गावःस्वल्पक्षीराश्च जैमिने ! ।
घृतहीनं च तत्क्षीरं भविष्यति नसंशयः ॥२८॥
आत्मस्तुतिपरा लोकाः परनिन्दापरायणाः । भविष्यन्ति च खर्वाङ्गा बाला बह्वन्नभोजनाः॥२९॥
पितृयज्ञं करिष्यन्ति दम्भार्थं ब्राह्मणाःकलौ। सर्वे वचःस्नेहिनःस्युर्यावत्कार्यं न सिध्यति॥३०॥
नरान्धर्मपरान्दृष्ट्वा सर्वे चोपहसन्ति वै ॥३१॥
वर्धन्तेऽधर्मतो लोकास्तस्मात्पापरता जनाः । दशद्वादशवर्षे च समूलोऽप्येति संक्षयम्॥३२॥

सदा स्त्री की योनि में रत रहने वाले तथा दूसरे के द्रव्य का हरण करने वाले होंगे ॥१९॥ वे सदा परान्न के लोलुप तथा तप एवं व्रत से पराङ्मुख होंगे । पाखण्डियों का सङ्ग करने वाले लोग कलियुग में होंगे॥२०॥ शुद्रों के धर्म को अपनाने वाले ब्राह्मण लाल वस्त्र धारण करेंगे । कलियुग में उत्तम लोग भी नीचता प्राप्त कर लेंगे । नीच धन और सम्पत्ति से सम्पन्न होकर उच्च पद को प्राप्त करेंगे ॥२१॥ सब लोग उपकार करने वाले को ही दान देंगे । शूद्र प्रयास करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त करेंगे ॥२२॥ मित्र स्नेह के कारण लोग झूठी गवाही कलियुग में देंगे । ये अधर्म बुद्धि को बतलायेंगे तथा धर्म बुद्धि वाले विलासी हो जायेंगे ॥२३॥ वे क्रूर परोक्ष में निन्दा करने वाले लोग और सामने प्रिय बोलेगें । कुलटा स्त्रियाँ साध्वी के समान बातें करेंगी ॥२४॥ ब्राह्मण परस्त्री की हिंसा करेंगे ओर गोत्र को विकृत करेंगे । कलियुग में लोग कन्या को भी बेचने वाले होंगे ॥२५॥ सभी पुरुष स्त्रियों के वशवर्ती होंगे और स्त्रियाँ अत्यन्त चञ्चल होंगी। कलियुग में सभी मनुष्य दुषित अन्तःकरण वाले होंगे ॥२६॥ पृथिवी अल्प सस्यों वाली होयेगी और मेघ भी बहुत कम वर्षा करेंगे । कलियुग में वे अकाल में वर्षा करने वाले होंगे ॥२७॥ हे जैमिने ! कलियुग में गायें मैला खायेंगी और अत्यन्त कम दूध देंगी निश्चित रूप से वह दुग्ध घृत रहित होगा ॥२८॥ लोग आत्मश्लाघा करने वाले तथा दूसरों की निन्दा करने वाले होंगे । सबों का शरीर छोटा होगा और बालक बहुत खाने वाले होंगे ॥२९॥ कलियुग में ब्राह्मण दम्भ के लिए पितृयज्ञ करेंगे । सबलोग वाणी से तब तक स्नेहे करेंगे जब तक उनका कार्य सिद्ध नहीं होगा ॥३०॥ दूसरे मनुष्यों को देखकर सब लोग उनका

जलस्येव भविष्यन्ति यथा वर्षासु वृद्धयः । ततो लोका भविष्यन्ति कलौ गलितयौवनाः ॥३३॥
पञ्चमे वाऽपि षष्ठे वा वर्षे स्त्रीगर्भधारिणी ।
वह्वपत्याश्च पुरुषा भविष्यन्त्यतिदुःखिनः ॥३४॥
नेतुकामाश्च सर्वेऽपि दातुकामानकेऽपिच । कलौ म्लेच्छा भविष्यन्ति राजानःपापतत्पराः ॥३५॥
एकवर्णा भविष्यन्ति विषयार्थं कलौजनाः । कलेःप्रथमसन्ध्यायां हरिं निन्दन्ति मानवाः ॥३६॥
कलेर्मध्ये न पश्यन्ति हरेर्नामानि केवलम् । ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्या वृषलाश्च कलौयुगे॥३७॥
एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वारएव च। यदा यदा द्विजश्रेष्ठ ! हानिःसुकृतिनांभवेत् ॥३८॥
वृद्धिश्च पापिनां नृणां ज्ञेया वृद्धिस्तदा कलौ ।
यद्यप्ययं कलिर्घोरो मया प्रोक्तो द्विजोत्तम ॥३९॥
तथाप्यस्ति महानस्य गुणो गुणवताम्बर ! । सत्ये द्वादशभिर्वर्षैर्भवेत्पुण्यस्य साधनम्॥४०॥
तदर्धेन च त्रेतायां मासेन द्वापरे भवेत् । अहोरात्रेण वै विप्र ! भवेत्ताच्चकलौयुगे॥४१॥
तस्मात्कलियुगे नृणां दिनेनैवोत्तमागतिः । द्वादशाब्दैर्युगेऽन्यस्मिन्हरिमभ्यर्च्चयत्फलम् ॥४२॥
तत्फलं लभते मर्त्यो हरिमुच्चार्यं वै कलौ । हरेर्नामैकमप्यत्र कलौ वदति यो नरः ॥
कलिर्न बाधते तं च सत्यं सत्यं न संशयः ॥४३॥

जैमिनिरुवाच

मनः शुद्धिविहीनत्वात्समस्तं कर्म निष्फलम् ।
इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं मनोविस्मयदं मम ॥४४॥

उपहास करेंगे ॥३१॥ मनुष्यों की वृद्धि धर्म से होती है, अतएव पापी लोगों का दश या बारह वर्ष में समूल विनाश हो जायेगा ॥३२॥ जिस तरह वर्षा काल में ही जल होता है उसी तरह उसके कारण कलियुग में लोगों की जवानी विनष्ट हो जायेगी ॥३३॥ स्त्रियाँ पाञ्चवें अथवा छठे वर्ष की अवस्था में गर्भ धारण कर लेंगी । पुरुष अत्यधिक सन्तान वाले होने के कारण अत्यन्त दुःखी होंगे ॥३४॥ सब लोग लेना ही चाहेंगे देना कोई भी नहीं चाहेगा । कलियुग में राजागण म्लेच्छ और पापी हो जायेंगे ॥३५॥ कलियुग में सभी लोग एक वर्ण वाले तथा विषयी हो जायेंगे । कलियुग में प्रथम सन्ध्या में श्रीहरि की निन्दा करते हैं ॥३६॥ कलि के मध्य में श्रीहरि का नाम कहीं नहीं दिखेगा । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कलियुग में चारो वर्ण वाले एक वर्ण वाले हो जायेंगे । हे द्विजश्रेष्ठ ! जब-जब पुण्यवानों की हानि होती है, तब-तब पापियों की वृद्धि जाननी चाहिए । हे द्विजोत्तम ! मैंने यद्यपि कलियुग को भयङ्कर बतलाया है ॥३७-३९॥ हे गुणवानों में श्रेष्ठ ! इसका महान गुण है कि सत्य युग में जिस पुण्य की सिद्धि होती है, उसके आधे समय में त्रेता में सिद्धि होती है, द्वापर युग में एक मास में और कलियुग में एक दिन रात में उसकी सिद्धि होती है ॥४०-४१॥ अतएव कलियुग में ही मनुष्यों की उत्तम गति होती है दूसरे युग में बारह वर्षों की अर्चना करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥४२॥ उस फल को मनुष्य श्रीहरि का नामोच्चारण करके ही प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य इस कलियुग में केवल श्रीहरि के नाम का उच्चारण करता है, उसको कलियुग नहीं बाधित करता है, यह परम सत्य है ॥४३॥ **जैमिनि ने कहा—** पहले आपने कहा है कि

कलौ सर्वे भविष्यन्ति मनःशुद्धिविवर्जिताः ।
तेषां यथा भवेत्कर्मसकलं ब्रूहि तद्गुरो ॥४५॥

व्यास उवाच

यत्किंचित्कुरुते कर्म मर्त्यो धर्मं कलौ युगे ।
तदर्पयेन्महाविष्णौ भक्तिभावसमन्वितः ॥४६॥

विष्णौ समर्पितं कर्म सर्वमेवाऽक्षयं भवेत् ॥४७॥

व्यास उवाच

इति ते कथितं सर्वं वृत्तं ब्राह्मणसत्तम ! । यच्छ्रुत्वा भक्तिभावेन नरो मोक्षामवाप्नुयात् ॥४८॥

सूत उवाच

एवंप्रबोधितस्तेन जैमिनिः परमात्मना। क्रियायोगरतो भूत्वा जगाम परमं पदम् ॥४९॥
इमं क्रियायोगसारं व्यासेनोक्तं महात्मना । ये पठन्ति जना भक्त्या शृण्वन्ति च मुमुक्षवः॥५०॥
ते सर्वे पातकैर्घोरैर्बहुजन्मार्जितैरपि। विमुक्ताः परमां मुक्तिं लभन्ते नाऽत्रसंशयः ॥५१॥
यद्यदिष्टं पठन्त्येतच्छृण्वन्ति च मुमुक्षवः। लभन्ते तत्तदेवाऽऽशु प्रसादात्कमलापतेः ॥५२॥

श्लोकार्धं श्लोकमेकंवा श्लोकपादमथापि वा ।
नरः पठित्वाश्रुत्वाच लभतेवाञ्छितंफलम् ॥५३॥

लिखित्वालेखयित्वावा यःशास्त्रमिदमर्चयेत्। सविष्णुपूजनस्यैव फलं प्राप्नोतिमानवः॥५४॥

मन की शुद्धि नहीं होने पर सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं यह मेरे मन को आश्चर्यित करता है ॥४४॥ कलियुग में सभी लोग मन की शुद्धि से रहित होंगे। हे गुरो ! उनके कर्म जैसे सफल हो वह आप मुझे बतलाइये ॥४५॥ **व्यासजी ने कहा—** मनुष्य कलियुग में जो धर्म करता है उसे उस कर्म को भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु को समर्पित कर देना चाहिए ॥४६॥ भगवान् विष्णु को समर्पित सारा कर्म अक्षय हो जाता है ॥४७॥ **व्यासजी ने कहा—** हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इस तरह मैंने तुमको सारी बातें बतला दी उसको भक्तिभाव पूर्वक सुनकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर ले सकता है ॥४८॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से परमात्मा व्यास के द्वारा प्रबोधित जैमिनि महर्षि क्रियायोग में रत होकर परम पद को प्राप्त कर लिये॥४९॥ यह क्रियायोग सार महात्म्य व्यासजी के द्वारा उक्त है। जो मुमुक्षु पुरुष भक्ति पूर्वक इसे पढ़ते और सुनते हैं ॥५०॥ वे सभी अनेक जन्मों में अर्जित घोर पापों से मुक्त होकर परमा मुक्ति को निश्चित रूप से प्राप्त कर लेते हैं ॥५१॥ मुमुझु पुरुष इसको जिस-जिस इच्छा से पढ़ते हैं और सुनते हैं, वे शीघ्र ही श्रीभगवान् की कृपा से उसे प्राप्त कर लेते हैं ॥५२॥ एक श्लोक या आधा श्लोक या श्लोक के एक चरण को ही पढ़कर अथवा सुनकर मनुष्य अपने वाञ्छित फल को प्राप्त कर लेते हैं ॥५३॥ लिखकर अथवा लिखवा कर जो इस शास्त्र की पूजा करता है, वह मनुष्य भगवान् विष्णु की ही पूजा का फल प्राप्त करता

इदमतिशयगुह्यं निःसृतं व्यासवक्त्राद्रुचिरतरपुराणं प्रीतिदं वैष्णवानाम् ।
चिरममरवराद्यैर्वन्दिताङ्घ्रेर्मुरारेः सकलभुवनभर्त्तुश्चक्रिणः प्रीतयेऽस्तु ॥५५॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां क्रियायोगसारखण्डे व्यासजैमिनिसम्वादे युगधर्मनिरूपणपूर्वकं पुराणमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

है॥५४॥ यह अत्यन्त गोपनीय, मनोहर तथा वैष्णवों को प्रसन्न करने वाला पुराण महर्षि व्यास के मुख से निःसृत हैं । यह चिरकाल तक श्रेष्ठ देवताओं से वन्दित सम्पूर्ण जगत् के स्वामी चक्रधारी भगवान् मुरारी को प्रसन्न करे ॥५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के सातवें क्रियायोगसार खण्ड के व्यास जैमिनि संवाद के अन्तर्गत युग धर्म निरूपण पूर्वक पुराण माहात्म्य वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

सबों का कल्याण हो यह ग्रन्थ श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान को प्रसन्न करे ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण का सातवाँ क्रियायोगसार खण्ड सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।